Dr. A. B. L. Awasthi
Lucknow University

पृथ्वीराज रासो

द्वितीय-भाग



रचयिता

महाकवि चन्दबरदाई



सम्पादक

कविराव मोहनसिंह

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर



प्रकाशक

साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ

उदयपुर

प्रकाशक—
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर

प्रथम संस्करण, संवत् २०१२
मूल्य १०)

मुद्रक—
व्यवस्थापक
विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर

प्रकाशकीय

राजस्थान में प्राचीन-साहित्य, लोक साहित्य, इतिहास, पुरातत्व एवम् कला-विषयक प्रचुर सामग्री यत्र तत्र बिखरी हुई है। आवश्यकता है उसे खोज कर संग्रह और संपादित करने की। राजस्थान विश्व विद्यापीठ (तत्कालीन हिन्दी विद्यापीठ) उदयपुर ने इस आवश्यकता को अनिवार्य समझकर वि० सं० १९९८ में "साहित्य संस्थान" (उस समय प्राचीन साहित्य शोध-संस्थान) की ओर से एक योजना बना कर राजस्थान की साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक निधि को एकत्रित करने का काम हाथ में लिया। योजना के अनुसार "साहित्य-संस्थान" के अन्तर्गत विभिन्न प्रवृत्तियाँ निम्न छः विभागों में विकसित हो रही हैं (१) प्राचीन साहित्य विभाग, (२) लोक साहित्य विभाग, (३) पुरातत्त्व एवं इतिहास विभाग, (४) नव साहित्य-सृजन विभाग, (५) अध्ययन गृह एवं (६) सामान्य-विभाग।

१. साहित्य-संस्थान द्वारा सर्व प्रथम राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए हिन्दी और संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज और संग्रह का काम प्रारम्भ किया गया। राजकीय पुस्तकालय, जागीरदारों के ऐसे संग्रहालय एवं जहाँ भी ऐसी पुस्तकें थीं और देखने नहीं दी जाती थीं, धीरे २ इसके लिए वातावरण बना कर काम कराया जाने लगा। सब से पहले साहित्य-संस्थान द्वारा 'राजस्थान में हिन्दी के हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज' (बिब्लियोग्राफी) का काम हाथ में लिया, जिसके अब तक चार भाग 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' नाम से प्रकाशित किये जा चुके हैं और पाँचवाँ भाग शीघ्र ही प्रेस में दिया जाने वाला है।

प्राचीन साहित्य विभाग में 'हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज' के अतिरिक्त १६०००० चारण गीत विभिन्न विषयों के एकत्रित किये जा चुके हैं।

२. लोक साहित्य-विभाग द्वारा हजारों कहावतें, लोक-गीत, मुहावरे, लोक कहानियाँ, वात-ख्यात,ख्याल पहेलियाँ, बैठकों के गीत आदि संग्रह किये जा चुके हैं। लोक साहित्य में कहावतों के तीन भाग (१) मेवाड़ की कहावतें, (२) मालवी कहावतें तथा (३) राजस्थानी भीलों की कहावतें नाम से छप चुके हैं। लोक गीतों में

"राजस्थानी-भीलों के लोकगीत भाग १" प्रकाशित हो चुकी है तथा इसीसे संबन्धित 'आदि निवासी-भील' नामक पुस्तक का प्रकाशन हो चुका है। लोक-साहित्य की तीन चार और भी महत्व-पूर्ण पुस्तकें प्रकाशनार्थ तैयार हैं। आर्थिक सुविधा के प्राप्त होते ही पुस्तकें प्रेस में देदी जाँयगी।

३. पुरातत्व और इतिहास-विभाग के अन्तर्गत पट्टे, परवाने, ताम्रपत्र एवं ऐतिहासिक महत्त्व के अन्य कागज-पत्रों का संग्रह किया जाता है। प्राचीन मूर्तियाँ, सिक्के, शिलालेख, चित्र तथा अन्य काल कृतियाँ एकत्रित की जाती हैं। इसमें अच्छी सामग्री एकत्रित करली गई है।

साहित्य-संस्थान के काम और उसकी उपयोगिता देख कर प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने समस्त प्रकाशित और अप्रकाशित ऐतिहासिक एवं पुरातत्त्व संबन्धी निबन्ध संस्थान को प्रदान कर दिये थे। उन सब का प्रकाशन चार भागों में 'ओझा-निबन्ध-संग्रह' के नाम से किया जा चुका है। पुरातत्वज्ञों और ऐतिहासिकों के लिए ये निबन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी हैं।

इसी विभाग के अन्तर्गत स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की स्मृति में राजस्थान के इतिहास कार्य के लिए "ओझा आसन" स्थापित है जिससे प्रतिवर्ष राजस्थान के इतिहास से संबन्धित तीन भाषण लिखित रूप से अधिकारी विद्वान द्वारा कराये जाते हैं इस आसन से "पूर्व आधुनिक राजस्थान" नामक पुस्तक का प्रकाशन हो चुका है; जिसके लिए यू० पी० सरकार ने पुस्तक के लेखक को ७५०) रु० का पुरस्कार भी प्रदान किया है।

४. प्राची साहित्य की शोध-खोज के अलावा नवीन प्रगति शील साहित्य की ओर भी विद्यापीठ का ध्यान गया और इसके अन्तर्गत साहित्य सृजन का कार्य प्रारंभ किया गया। अब तक इस प्रवृति के अन्तर्गत एक "आचार्य-चाणक्य" नाटक दूसरी बृज भाषा का खंड काव्य "तुलसी दास" एवं तीसरी "नयाचीन" नामकी पुस्तकें प्रकाशित-की जा चुकी हैं।

पुस्तकों के सृजन के साथ साथ नवीन प्रगतिशील लेखकों को प्रत्साहित करने और साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिये "राजस्थान-सहित्य" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन किया जाता है।

५. अध्ययन गृह और संग्रहालय में अब तक १००० महत्व पूर्ण हस्त लिखित ग्रन्थ एवं २५०० मुद्रित ग्रन्थ एकत्रित किये जा चुके हैं। इसके अन्तर्गत प्राचीन चित्र, शिल्प कला के नमूने तथा ऐसी ही कलात्मक सामग्री इकट्ठी की जा रही है।

६. सामान्य विभाग में राजस्थानी के प्रसिद्ध महाकवि सूर्यमल की स्मृति में "सूर्यमल आसन" स्थापित है। इस आसन से प्रतिवर्ष "राजस्थानी भाषा और साहित्य" विषय पर किसी अधिकारी विद्वान् के तीन मौलिक भाषण आयोजित किये जाते हैं और उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाता है। इस आसन से "राजस्थानी भाषा" नामक पुस्तक प्रशिद्ध भाषा तत्वज्ञ डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की प्रकाशित हो चुकी है।

इसी के अन्तर्गत शोध–खोज सम्बन्धी साहित्य को प्रकाश में लाने के लिये "शोध–पत्रिका" नामक त्रैमासिक का प्रकाशन किया जाता है। इसके सम्पादक मंडल में प्रसिद्ध साहित्य के विद्वान् हैं। देश के सभी विद्वानों का सहयोग इस पत्रिका को प्राप्त है।

इस प्रकार साहित्य–संस्थान अपनी बहुमुखी कार्य-योजना द्वारा राजस्थान के बिखरे हुए साहित्य को एकत्रित कर प्रकाश में लाने का नम्र किन्तु अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। हमारे देश की प्राचीन साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराओं तथा चिन्तन-स्रोतों को सदैव गतिशील एवं अमर बनाये रखना है तो इस काम को और अधिक व्यापक बनाना होगा। राजस्थान और भारत के विद्वानों, विचारकों और साहित्यकारों का इस प्रकार के शोध–पूर्ण कार्यों की ओर अधिकाधिक प्रवृत होना आवश्यक है।

साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर पिछले दस वर्ष से हिन्दी के आदि महाकाव्य "पृथ्वीराज-रासो" का प्रमाणिक संस्करण हिन्दी अनुवाद सहित करवा रहा था, अब वह सम्पूर्ण रूप से तैयार हो चुका है और 'प्रथम खण्ड' का प्रकाशन गत वर्ष किया जा चुका है। प्रथम खण्ड के प्रकाशन में राजस्थान सरकार ने अपनी ओर से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस वर्ष साहित्य–संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ की ओर से राजस्थान सरकार के द्वारा भारत सरकार के शिक्षा–सचिवालय से सहायता के लिये निवेदन

किया गया था। राजस्थान सरकार के शिक्षा-सचिवालय द्वारा भेजे गये साहित्य-संस्थान के प्रार्थना-पत्र पर भारत सरकार के शिक्षा-सचिवालय ने ४८५००) अड़तालीस हजार पाँच सौ रूपये की सहायता निम्न कार्यों के लिये स्वीकार की:—

"पृथ्वीराज रासो के तीन खण्डों के प्रकाशन के लिये, पुस्तकालय के विकास के लिये एवं ध्वनि सुरक्षा यंत्र (साउण्ड रेकार्डिंग मशीन) खरीदने के लिये।

उक्त चारों मदों के लिए भारत सरकार के शिक्षा विकास-सचिवालय की ओर से उपर्युक्त सहायता स्वीकार की गई। इस स्वीकृत सहायता की रकम में संस्था की अपनी ओर से ⅓ एक तिहाई रमक मिलाकर मार्च १९५६ के पूर्व उक्त कार्यों को समाप्त करने की शर्त रखी गई थी। उसके अनुकूल ही हमने प्रस्तुत 'रासो' के प्रकाशन का कार्य किया है। भारत सरकार के शिक्षा-विकास-सचिवालय की ओर से प्रदान की गई इस अनिवार्य सहायता के लिये साहित्य-संस्थान की ओर से उक्त सचिवालय के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। साथ ही राजस्थान सरकार के शिक्षा सचिवालय और शिक्षा विभाग का अत्यन्त आभारी हूँ कि जिन्होंने संस्थान के कार्य को ध्यान में रखकर उक्त सहायता प्रदान करवाने में पूरा २ योग दिया। विशेष कर राजस्थान के मुख्य मंत्री (जो शिक्षा मंत्री भी हैं) माननीय श्री मोहन लालजी सुखाड़िया का अत्यन्त अनुग्रहीत हूँ जिन्होंने साहित्य-संस्थान के काम को और उसके द्वारा किये जाने वाले परिश्रम को महत्वपूर्ण और अनिवार्य उपयोगी मानकर सहायता प्रदान करने के लिये भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय को सिफारिश की। सच तो यह है कि उक्त सहायता श्री सुखाड़िया, भारत सरकार के डिप्टी शिक्षा सलाहकार डॉ० पी० डी० शुक्ला, डॉ० भान तथा असिस्टेंट शिक्षा सलाहकार श्री सोहन सिंह एम० ए० (लंदन) और उपशिक्षा मंत्री डॉ० श्रीमाली की प्रेरणा से ही मिल सकी है। इसलिये इन सबका मैं अत्यन्त आभारी हूँ और आशा करता हूँ कि आगे भी संस्थान के कार्य-विकास में आप सबका सक्रीय योग मिलता रहेगा।

राजस्थान विश्व विद्यापीठ के पीठ मंत्री और मेरे सहयोगी भाई भगवती लाल भट्ट ने इस सहायता को प्राप्त करने में काफी कष्ट उठाया, उसके लिए मैं इनका कृतज्ञ हूँ।

उन सब महानुभावों का भी मैं आभारी हूँ; जिन्होंने रासो के सम्पादन में ज्ञान * और प्राचीन प्रतियों द्वारा संस्थान और संपादक को सहायता दी है। आशा है भविष्य में भी संस्थान को उन सब की सहायता मिलती रहेगी, क्योंकि संस्था उन्हीं की है।

गिरिधारीलाल शर्मा
अध्यक्ष
साहित्य–संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर.

वसन्त पंचमी
वि० सं० २०१२

---

* महापंडित राहुल सांकृत्यायनजी ने सम्पादन की प्रणाली के बारे में सुझाव दिये और श्री लक्ष्मीलालजी जोशी (प्रचेता, राजस्थान विश्व विद्यापीठ) से हमें इस कार्य में समय २ पर उत्साह एवं प्रेरणा मिलती रही है, अतः मैं उक्त दोनों महानुभावों का आभार प्रदर्शित करता हूँ।

—सम्पादक

संस्था की ओर से

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर के अन्तर्गत आज से एक युग पूर्व प्राचीन साहित्य की शोध-खोज, संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन कार्य के लिये "प्राचीन साहित्य खोज विभाग" की स्थापना की गई थी। तब से आज तक इसके नाम में कार्य और प्रवृत्तियों के विकास एवं विस्तार के साथ अनेक परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे हैं। इस समय यह 'साहित्य-संस्थान' के नाम से प्रख्यात है। प्राचीन-साहित्य की शोध-खोज, संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन के अतिरिक्त आज इसमें लोक-साहित्य, इतिहास, पुरातत्व और कला-विषयक सामग्री की शोध-खोज कर, उसका सम्पादन एवं प्रकाशन का काम होता है। साथ ही नवीन-साहित्य के सृजन और विकास के लिये भी क्षेत्र तथा वातावरण तय्यार किया जाता है। नवीन उदीयमान प्रतिभाशाली लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन की समुचित-व्यवस्था करने के लिये साधन-सुविधाएँ एकत्रित की जाती हैं और उनके लिये अवसर उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। साहित्य-संस्थान विगत एक युग से भारतीय साहित्य, उसकी संस्कृति और विविध कलात्मक सामग्री के पुनर्शोधन के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है। संस्थान की ओर से अब तक कई महत्वपूर्ण प्रकाशन किये जा चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ भी उसी का परिणाम है।

दस वर्षों के अथक परिश्रम और अध्यवसाय के कारण ही आज यह हिन्दी साहित्य का आदि महाकाव्य हिन्दी अनुवाद सहित हिन्दी जगत के सामने प्रस्तुत किया जा सका है। इसके सम्पादन का आधार विभिन्न काल की विभिन्न हस्तलिखित 'पृथ्वीराज-रासो' की प्रतियां ही रही हैं। इसके सम्पादन और प्रकाशन में विपुलश्रम, शक्ति और धन का व्यय साहित्य-संस्थान की ओर से किया गया है।

इसके अधिकारी विद्वान् कविराव मोहनसिंह पिछले चालीस वर्षों से इस पर परिश्रम करते आरहे हैं और इन्हें 'पृथ्वीराज-रासो' का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद करने में अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी हैं लेकिन साहस और हिम्मत के साथ संस्थान के इस काम को इन्होंने आखिर समाप्त किया है। हिन्दी जगत में 'पृथ्वीराज-रासो' जैसे महान आदि काव्य ग्रन्थ के अब तक हिन्दी अनुवाद नहीं होना खटकने वाली बात थी और साहित्य की एक बहुतबड़ी कमी अनुभव की जाती थी। साहित्य-संस्थान ने केवल इसी कमी की पूर्ति के लिये इस महान ग्रन्थ के सम्पादन का काम हाथ में लिया था। सम्पादन के प्रारंभ से ही हमने इस बात को लक्ष्य में रखा था कि हम इसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता के विवाद में नहीं उतरेंगे और यही कारण है कि हमने केवल इसका हिन्दी अनुवाद मात्र ही प्रकाशित किया है। संस्थान ने केवल जमीन तय्यार की है। इस पर इमारत बनाकर मंजिल तक पहुँचाना हिन्दी साहित्य के विद्वानों का काम है।

गत वर्ष राजस्थान-सरकार के शिक्षा-विभाग ने 'पृथ्वीराज रासो' के प्रथम भाग के प्रकाशन के लिये सहायता प्रदान की थी; जिसके कारण प्रथम भाग का प्रकाशन किया जा सका था; उसके लिये मैं सरकार का कृतज्ञ हूँ।

इस वर्ष 'पृथ्वीराज रासो' के शेष तीन भागों के प्रकाशन के लिये राजस्थान-सरकार के द्वारा भारत-सरकार के शिक्षा-सचिवालय के पास साहित्य-संस्थान ने आवेदन किया था। जिस पर शिक्षा-सचिवालय ने सहानुभूति से विचार किया और (इन तीनों भागों के) प्रकाशन के लिये सहायता स्वीकार की। साहित्य संस्थान के काम को देखते हुए अवश्य ही यह सहायता अत्यल्प थी लेकिन हमारा तो केवल यही सन्तोष है कि १२ वर्षों के निरन्तर प्रयत्न के बाद आखिर राजस्थान सरकार और उसके द्वारा भारत-सरकार का ध्यान इस ओर गया तो सही। शोध-खोज का काम अन्य कामों की अपेक्षा अत्यन्त कठिन और व्यय साध्य है। सार्वजनिक संस्थाओं के लिये ऐसे कामों को करना और उसके लिये साधन सुविधायें जुटाना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

हमारे निवेदन को राजस्थान-सरकार के द्वारा भारत-सरकार के शिक्षा-विकास-सचिवालय ने स्वीकार किया, उसके लिये मैं भारत-सरकार और राजस्थान

सरकार के शिक्षाधिकारियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। सच तो यह है कि यदि भारत-सरकार की ओर से इस वर्ष हमें उक्त प्रकाशन-सहायता नहीं मिलती तो प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशित होना अत्यन्त कठिन था। इस सामयिक सहायता के स्वीकार करवाने में भारत-सरकार के शिक्षा विकास सचिवालय के उप-सलाहकार डॉ० पी० डी० शुक्ला, डॉ० भान तथा असिस्टेन्ट शिक्षा सलाहकार श्री सोहनसिंह एम० ए० (लंदन) और उप शिक्षा मंत्री डॉ० श्रीमाली की ओर से जो सहयोग दिया गया, उसके लिये संस्था की ओर से इन्हें धन्यवाद देना अपना फर्ज समझता हूँ। राजस्थान के प्रगतिशील मुख्य मंत्री (जो शिक्षा मंत्री भी हैं) श्री मोहनलाल सुखाड़िया का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ; जिन्होंने संस्थान के काम को उपयोगी समझा और भारत सरकार से सहायता दिलवाने में पूरा योग दिया। उपर्युक्त सभी महानुभावों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूं और आशा रखता हूँ कि भविष्य में भी राजस्थान विश्व विद्यापीठ के कार्य-विकास में आप सब का सम्पूर्ण सहयोग मिलता रहेगा।

मैं उन सभी को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' के सम्पादन में अपनी सलाह और सहायता दी। आशा है आगे भी वे सब सलाह और सहायता देते रहने की कृपा करेंगे।

विनीत

जनार्दनराय नागर

प्रोपकुलपति

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

अक्षय-तृतीया
वि० सं० २०१३

काव्य-सौष्ठव

पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और अनैतिहासिकता को ही केन्द्र बिन्दु बनाकर विद्वत्–समुदाय अब तक निष्कर्ष हीन वाग्जाल में भटकता रहा है। इस एकांगी विवेचन के कारण ही अब तक रासो के साहित्यिक मूल्यांकन को प्रायः भुला सा दिया है। इधर कुछ समय से इस सत्यांश की ओर ध्यान दिया जाने लगा है, फिर भी यह कार्य 'पाव में पूणी' भी नहीं कहा जासकता। राजस्थान विश्व विद्यापीठ के तत्वावधान में कविराव मोहनसिंह द्वारा सम्पादित इस रासो के द्वितीय भाग का साहित्यिक विवेचन एवं मूल्यांकन ही हमारा अभीष्ट है।

रासो (द्वितीय भाग) के काव्यत्व सम्बन्धी विवेचन की दृष्टि से मुख्यतः हमें उसमें निहित वस्तु-वर्णन और भाव-व्यञ्जना पर ही दृष्टि निक्षेप करना है। 'रासो' एक वीर रसात्मक महाकाव्य है, अतः उसमें युद्धादि के वर्णन की प्रधानता तो है ही; किन्तु साथ ही कवि ने अपनी उदात्त प्रतिभा द्वारा उसमें अपनी भावुकता का रस घोल कर जिस अपूर्व मिश्रण को तैयार किया है, वह हिन्दी साहित्य के अंग–प्रत्यंगों में पौष्टिकता का संचार करने वाला ही सिद्ध हुआ है। इसमें भावपक्ष और कलापक्ष की गंगा-जमुनी का जो संगम हुआ है, वह साहित्य की प्रांगण-भूमि के लिये एक अभूतपूर्व वस्तु है।

वस्तु वर्णन:—

पृथ्वीराज रासो वीर रस प्रधान एक ऐतिहासिक 'विशालकाय वीर-काव्य' है, जिसमें दिल्लीश्वर पृथ्वीराज के जीवन की आद्यान्त घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। घटनाओं की प्रमुखता के साथ ही कवि ने अपनी वर्णन कुशलता से उक्त इतिवृत्तात्मक अंशों में सरसता की वृद्धि की है, जिसकी अनुपस्थिति में सम्पूर्ण रासो लड़ाई-भिड़ाई का एक नीरस इतिहास मात्र ही रह जाता। रासो के वस्तु वर्णन को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है:—

(१) युद्धोत्साह और युद्ध वर्णनः–

जैसा कि कहा जा चुका है; पृथ्वीराज रासो में युद्ध की घटनाओं की प्रमुखता

है, अतः इसमें युद्धोत्साह और युद्ध का वर्णन प्रचुर मात्रा में हुआ है। इन वर्णन में हमें कवि की वास्तविक प्रतिभा और उत्साह के दर्शन होते हैं। सभी वर्णनों में वीर और रौद्र रस की प्रमुखता होने के कारण इन्हें भाव व्यञ्जना के अंतर्गत लिया जा सकता है। चन्द केवल कवि ही नहीं थे, वे एक वीर योद्धा भी थे और इसीलिए उनका युद्ध वर्णन सुनी सुनाई घटनाओं के आधार पर न होकर अनुभव सिद्ध सत्य है और इसीलिए युद्धोत्साह और युद्ध के वर्णन में वे सफल हो सके हैं यथा-भोलाराय समय में पट्टन पति भीम का युद्धार्थ निमंत्रण मिलने पर पृथ्वीराज के उत्साह का वर्णन निम्न पंक्तियों में कितना सुन्दर किया गया है:—

सुनि कग्गर नृप राज पृथु, भौ आनन्द सुभाइ।
मानौं वल्ली सूकते, वीरा रस जल पाइ॥

युद्ध भूमि की ओर अग्रसर होती हुई सेना इस प्रकार दिखा पड़ती है:—

वद्दल दल वल उभरि, सेन घुंमर घट घुंमरि।
स्रवन वयन संचयन, मयन मत्ते जनु खुंमरि॥
अरि अरिष्ट समदिष्ट, धिष्ट धारन धर घुंमर।
अग्गि झाल विनु घुंस, इसै दिक्खिय गज झुंमर॥

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि महाकवि चन्द अपने काव्य में युद्धोत्साह और युद्ध का वर्णन करने में कितने सफल हुए हैं। युद्ध का वर्णन हमें दो प्रकार का दृष्टिगत होता है- - प्रथम तो वीर रसान्तर्गत, जिसमें उपमा के प्रयोग का प्राचुर्य मिलता है और दूसरे प्रकार का वर्णन रौद्र और वीभत्स रसों के अंतर्गत आता है। चन्द के युद्ध वर्णन की यह विशेषता है कि छन्दों का चुनाव वर्णन के अनुकूल हुआ है।

(२) व्यूह वर्णन:—

रासो में युद्ध वर्णन की प्रचुरता होने के कारण व्यूह रचना के द्वारा युद्ध-कौशल का प्रदर्शन एक मुख्य वस्तु है। शत्रु पर विजय प्राप्त करने हेतु वीर अपनी सेना को अनेकानेक प्रकार के व्यूहों में सजाते हैं। इस प्रकार से सेना को व्यूहाकार सजा कर युद्ध का वर्णन करने की महाभारत में भी प्रचुरता है, जिसमें अभिमन्यु वध वाला व्यूह तो अधिक प्रसिद्ध है। संभवतः चन्द को रासो में वर्णित व्यूह-रचना

की प्रेरणा महाभारत से ही मिली हो। सभी युद्धों में किसी न किसी प्रकार की व्यूह रचना का वर्णन अवश्य मिलता है। जैसे-शशिवृता समय में यादव और कमधज्ज वीर मिलकर सर्पव्यूह की रचना करते हैं:—

मिलि जद्दव कमधज्ज, अहिय-व्यूहं आरंभिय।
पुच्छ सु लखि मनि बंधि, पाइ गुज्जर पारंभिय॥
सुधर मंडि वर बीर, पंग-बंधह रचि ठढ्ढौ।
फन अप्पन भय पुंज, जीभ कूंरभ सु गठ्ढौ॥

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर मयूर व्यूह, गरूड़ व्यूह आदि का भी युद्धोचित् वर्णन मिलता है।

(३) कबंध–युद्ध वर्णन:–

युद्ध करते हुए खड्ग की धार से कट मरना वीरोचित् कार्य है, किन्तु मस्तक के अलग हो जाने पर भी धड़ का लड़ते रहना अद्भुत कार्य है। इसका वर्णन करने में कवि अपनी और उस वीर दोनों की महत्ता समझता है! इसलिए चन्द ने कबंध के युद्ध करते रहने का अनेक स्थलों पर वर्णन किया है—

उठि परत भिरत भंजत अरिन, जै जै जै सुरलोक हुअ।
उठ्यौ कमंध पल पंच चव, कोन भाइ कंप्यौ सु धुअ॥

× × × ×

तिहि देखि रुद्र रुद्रह हस्यौ, हय-हय-हय नंदि कह्यौ।
कवि चंद शैल पुत्री चकित, पिक्खि बीर भारथ नयौ॥

कवि ने इन कबंधों के उठने और नाचने का ही वर्णन नहीं किया है; अपितु इनके द्वारा युद्ध के अलौकिक दृश्य का भी प्रदर्शन किया है, जो सराहनीय है।

(४) विवाह–वर्णन:–

रासो में वीर रस की प्रधानता है और शृंगार गौण रूप से आया है। शृंगार के अंतर्गत विवाह, नायिका भेद, नख-शिख और शृंगार वर्णन एवं उद्दीपन के रूप में प्रकृति का भी वर्णन आता है। 'युद्ध और विवाह वर्णन की

प्रधानता होने के कारण ही रासो श्रृंगार के संयोग पक्ष का काव्य है–इसे हम प्रेम के मिलन पक्ष का काव्य भी कह सकते हैं।' महाकवि चंद रासो में हमारे सम्मुख प्रेम का नया–नया 'रोमांस' प्रस्तुत करते हैं। पृथ्वीराज के अनेकों विवाहों और उनके उपलक्ष में होने वाले युद्धों का रासो में प्रचुर मात्रा में वर्णन मिलता है। इस भाग में भी शशिवृत्ता, इन्द्रावती और हम्मीर कुमारी से पृथ्वीराज का विवाह सम्पन्न हुआ है और प्रत्येक विवाह के लिए युद्ध भी करना पड़ा है। सारंगीपुर की राजकुमारी का विवाह तो पृथ्वीराज की खड्ग से करवाया गया है। इसे कवि ने गंधर्व विवाह कहा है।

(५) नायिका भेद वर्णनः–

प्रारम्भ से ही काव्य-शास्त्रकारों और कवियों का श्रृंगार के अंतर्गत नायिका-भेद पर अधिक ध्यान रहा है। आगे चलकर रीतिकाल में तो यह प्रवृति इतनी अधिक बढ़ गई थी कि कवियों के लिए नायिका भेद वर्णन के अतिरिक्त कथन योग्य कोई वस्तु ही नहीं रह गई थी। हिन्दी कविता के प्रारम्भ काल में चन्द ने भी यत्र तत्र इस प्रसंग पर प्रकाश डाला है। शशिवृता समय में नायिका के प्रधान चारों भेदों का वर्णन किया गया है। चन्द के अनुसार पद्मिनी के निम्नलिखित लक्षण होते हैं:—

कुटिल केस पद्मिनी, चक्र हस्तिन तन सोभा।
स्निग्ध दंत सोभा विसाल, गंध पद्म आलोभा॥
सुर समूह हंसी प्रमान, अलयई निद्रा तुछ जंपै।
अलप वाद मित काम, रति अभया भै कंपै॥
धीरज्ज छिमा लच्छिन सहज, असव बसन चतुरंग गति।
आवंक लोइ लगौ सहज, कांमग्रान भूलंत रति॥

हस्तिनी नायिका वक्र कुचों और वक्र दंतपंक्ति वाली, मधुतुल्य अंगवास युक्त कामेच्छा से भ्रमित, व्यंग वाक्य बोलने वाली, विषयानुरक्त, सम उदर वाली, मृग-नयनी और कृष्णाभिसारिका होती है:—

उर्द्ध केश हस्तिनी, वक्र अस्तन दसननि दुति।
मधुर गंध गरणाट, भुल्लि-भ्रम कांम बाम रति॥

गूढ़ सबद मन-जा विखान, रंग रंगन छामोदरि ।
चित्र नयन चंचल विसाल, श्याम-बरनी जामोदरि ॥
छिनु रुदय हसय विहसय लसय, वसि चित्तह चित-पुत्तलिय ।
नीवीय मान जानं बहुत, कंत चित्त जाइ न कलिय ॥

चित्रिणी नायिका के निम्नलिखित लक्षण बताये हैं—

दीघ देस चित्रिणी, चित्त हरणी चन्द्राननि ।
गंध म्रगंमद विदे, कोक शब्दनि उच्चारणि ॥
सील नील लज्जा प्रमान, रत्ति भै भय धन मारै ।
अलस नयन रस वलित, कलित कल बोल उचारै ॥
धीरज्ज छिमा छवलोक करि, अवलोकन गुन औसरे ।
विस्तीर्ण मंत्र मोहन पढ़ै, चित्त वित्त कथ्थां हु हरै ॥

शंखिनी नायिका—

अलप केस कुच थूल, थूल दंती उच्चारन ।
थूल उदर लंकीस, जंघ क्रिसलं गँध वारण ॥
घोर निन्द्र तन तास, अलप रसणा रस छंडै ।
अलप सील गंभीर, सबद कल हंतर मंडै ॥
आचार ध्रंम नहि सुद्ध मन, विधि विचार विभचार घन ।
आसंख-संख संखिनि गुनति, सुख्ख नाह पावै न तन ॥

चन्द ने नायिका भेद का सामान्य वर्गीकरण ही किया है। आगे चलकर रीतिकाल में किये जाने वाले नायिका भेद के दलदल में वे नहीं फँसे हैं !

(६) नखशिख और श्रृंगार वर्णनः—

यद्यपि नख शिख और श्रृंगार वर्णन का विवेचन श्रृंगार रस के अंतर्गत आ जाता है, किन्तु वर्णन की दृष्टि से इसका सूक्ष्म विवेचन यहाँ किया गया है ! नायिका भेद के अनुसार ही नख शिख काव्य-शास्त्रकारों का एक मुख्य विषय रहा है और कवियों ने भी इस पर बहुत कुछ लिखा है। चन्द ने भी श्रृंगार के अंतर्गत शशिवृता, इन्द्रावती के नखशिख का वर्णन किया है। शशिवृता समय में शशिवृता के नखशिख का वर्णन करते हुए नर्तक कहता है—

कहै सु नट राजेंद, ब्रह्म आमोद इक्क दिन।
चंद कला मुख कंज, लक्खि सह ब्रह सरूप तन॥
नैन सु मृग शुक नास, अधर बर बिंब पक्क भति।
कंठ कपोत भुजवर मृनाल, युगल नारंगि उरज सति॥
कटि लंक-सिंघ जुग जंघ रँभ, चलत हंस गति गयँद लजि।
सा नृपति काज त्रंमिय तरुनि, मनों मेनिका रूप सजि॥

कवि शशिवृता की वयःसंधि का वर्णन करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार बसन्त के आगमन पर शिशिर का अंत हो जाता है, उसी प्रकार उस बाला से शैशवावस्था के चले जाने पर वह लचकीली लता तुल्य कुमारी वय की वायु के झोंके से नमने लगी और वह सपल्लवित सी होगई। उसकी अंगवास पर भ्रमर सिर धुन-धुन कर मधुर गुंजार करते हैं, लेकिन रस का पान इसलिए नहीं करते कि उसके मन में कामदेव ने निवास कर लिया है—

ससिर अंत आवन वसंत, अंत बालह सैसव गम।
अलिन पंख कोकिल सुकंठ, सज्जि पौगुंड मिलत भ्रम॥
मुर मारुत मुरि वेलि, मुरे भुरि वैस प्रमानं।
तुछ कौं परसिस फुट्टि, आंन किस्सौर रँगानं॥
लीनी न अमी नक-स्याम मन, मधुप मधुर धुनि धुनि करिय।
जानी न वयन आवन वसँत, अग्याता जोवन अरिय॥

यहाँ भ्रमर उसके अधरामृत का पान इसलिए नहीं करते हैं, क्योंकि उन्हें डर है कि इसके मन में स्थित कामदेव जिसने अपने धनुष पर भ्रमर पंक्ति की प्रत्यंचा चढ़ा रखी है और जो अब पुरानी हो गई है, कहीं हमें पकड़ कर पुनः नयी प्रत्यंचा नहीं बनाले। यहाँ शशिवृता मुग्धा–अज्ञात–यौवना नायिका प्रदर्शित की गई है!

(७) ऋतु वर्णनः–

महाकाव्यकार अपने काव्यों में यथास्थान प्रकृति–वर्णन भी करते हैं, जिसमें उनको सूक्ष्म–निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। जो कवि दृश्य प्रकृति से अपना जितना अधिक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है, वह प्रकृति वर्णन करने में

उतना ही सफल होता है। कवि मानव प्रकृति के साथ ही साथ बाह्य प्रकृति का कुशल वर्णन कर अपने काव्य की उत्कृष्टता में वृद्धि करता है। मुख्यतया प्रकृति-वर्णन दो रूप में किया जाता है—(१) आलंबन रूप में; (२) उद्दीपन रूप में ! इन दोनों प्रकार के वर्णनों में ऋतु वर्णन का भी मुख्य स्थान होता है। महाकवि चन्द ने वीरोचित् मानव प्रकृति का तो सांगोपांग वर्णन किया है, किन्तु रासो (द्वि० भा०) में बाह्य प्रकृति का आलम्बन के रूप में दर्शन प्रायः नहीं ही होता है। यत्रतत्र उद्दीपन के रूप में वर्णन अवश्य मिलता है। यथा—शशिवृता समय के प्रारम्भ में ग्रीष्म का वर्णन—

लग्गि सीत कल मंद, नीर निकटं सु रजत घट।
अमित सुरंग सुगंध, तनह उवटंत रजत पट॥
मलय चन्द मल्लिका, धाम-धारा-ग्रह सुब्बर।
रंजि विपन बाटिका, सीत द्रुम छांह रजति तर॥

पावस के आगमन पर श्रोतानुरागी पृथ्वीराज के कामोद्दीपन में वृद्धि हो जाती है और उसे प्रतिक्षण शशिवृता का स्मरण हो आता है:—

मोर सोर चिहुँ ओर, घटा आसाढ़ बंधि नभ।
वच दादुर झिंगुरन, रटत चातिग रंजत सुभ॥
नील बरन वसुमतिय, पहरि आभ्रंन अलंकिय।
इंद्र-वधू सिर-व्यंद, धरे वसुमती सुरज्जिय॥
वरखंत बूँद घन मेघ सर, तब सुमरै जद्दव कुँअरि।
तन हंस धीर धीरज सुतन, इख फुट्टै मनमथ्थ करि॥

पावस के बीतने पर शरद् का आगमन हुआ। आकाश इस प्रकार स्वच्छ हो गया, जैसे सद्गुरु के ज्ञान द्वारा आत्मदर्शन (आत्म-बोध) से हृदय निर्मल हो जाता है-

गत पावस आगम शरद, गई गुडल नभ मान।
(ज्यौं) सद्गुरु मिलि अंदर दरस, मिलि प्रकटे गुरु ज्ञान॥

मार्गों का पंक सूख गया, सरिताओं का प्रवाह सूक्ष्म होगया, लताएँ कुम्हला गईं और मेघ रहित पृथ्वी पति हीन स्त्री के सदृश दिखाई देने लगी—

सुक्कि पंक उत्तरि सरित, गय वल्ली कुमिलाय ।
जलधर बिन यों मेदिनी, ज्यों पति हीन त्रियाय ॥

महाकाव्यों में सूर्योदय, रात्रि, नगर, वन, पनघट आदि सभी का वर्णन किया जाता है। रासो में प्रसंगानुकूल इनके वर्णन मिलते हैं। जैत्रराय समय में रात्रि के समाप्त होकर उज्ज्वल दिशा में अरुणिमा के उद्‌भासित होने की तुलना वयःसंधि के समय शैशवावस्था में यौवनावस्था की तनिक सी झलक दिखाई पड़ने से की गई है:—

निसि घट्टिय फट्टिय तिमिर, दिसि रत्ती धवलाइ ।
सैसव मे जुव्वन कछू, तुच्छ तुच्छ दरसाइ ॥

महाकवि चन्द प्रकृति-निरीक्षण और उसके कुशल वर्णन में उतने सफल नहीं हुए हैं, जितने उनके परवर्ती कविगण। इसका एक मात्र कारण यह है कि उनकी वृत्ति युद्ध वर्णन और वीरों के आन, बान और शान पर मर मिटने पर ही अधिक टिकी रही, प्रकृति पर नहीं !

(८) अन्यवर्णनः—

रासो में उपर्युक्त प्रमुख वर्णनों के अतिरिक्त अन्य वर्णन भी देखने को मिलते हैं। ईश्वर विश्वासी कवि भोलाराय समय में गोकलेश्वर की स्तुति करता हुआ कहता है:—

जा रख्या हय गर्व प्रीछित रिखं, दावानलं जालयं ।
सोयं मातुलं नन्द बद्धि सलिता, कालिन्दिनौ प्रीतयं ॥
जिं रख्यौ बर पानि प्रव्बत महा, गोवर्धनं धारणं ।
सोयं सा हरि रिख्खि धूवति वरं, जे द्रष्ट गोकलेश्वरं ॥

राजस्तुति का वर्णन रासो में अधिकता से मिलता है, क्योंकि इसमें वीरपूजा की भावना की प्रधानता है। प्रत्येक वीर चाहे वह क्षत्रीय हो, चाहे यवन, उसकी स्तुति की गयी है। सलख युद्ध समय में दूत पृथ्वीराज की स्तुति इस प्रकार करते हैं:—

श्रै चहुआन—नरयंद, इंद अवनी भूपाल-भूपालयं ।
जम्बू द्वीप महीप दीपणि वल, कीत्तिति विस्तारयं ॥

खग्गं त्रास मैवास त्रास. त्रसनं गर्भा निगर्भं गलं।
तोयं जैति जिहांन भांन, तपन त्वंनं दिष्टा जे वलं॥

धन कथा में पृथ्वीराज का संदेश ले जाने वाला वीर सामंत चंद पुंडीर रावल समर विक्रम का गुणानुवाद निम्न प्रकार से करता है—

समर सिंघ रावर नरिंद, समर साहस भर जित्तन।
अरु जोगिंद नरिंद, चित्त जोगिन्द समत्तन॥
कमल माल सोभन्ति, चंद लिल्लाट बीय दुति।
नयन रंग आभंग, जोग पारंभ सिंभ मति॥
मुंजीव ढाल जिप्पन विरद, नाग मुखी सिल्लार बनि।
सा चित्रकोट ओटह नृपति, महन रंभ मंडहि सुमति॥

आखेट वीरों का एक प्रिय खिलवाड़ हुआ करता है। राजा महाराजा सज-धज कर ससैन्य इस क्रीड़ा में प्रवृत्त होते हैं। युद्ध के समान इसमें भी उनकी महत्ता प्रदर्शित होती है। चन्द ने पृथ्वीराज की आखेट-क्रीड़ा का अनेकों स्थलों पर विस्तार से वर्णन किया है। शशिवृता समय में आखेट-वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि पृथ्वीराज के ससैन्य चलने पर वन में भीड़ सी लग गई। सेना राह बेराह चलने लगी:—

है भार भरिय कांनन सकल, मग अमग्ग दल संचरिय।

उस ऐश्वर्य को देखकर श्रेष्ठ शरीर धारी दिग्गज भी अपनी आँखों द्वारा दृष्टि प्रसार करने लगे। पृथ्वी ने भी इस मांगलिक दृश्य को देखने के लिए चक्षुओं की याचना की और सब कोई उसे देखने को संमुख होगये—

यों बंधि राज आखेट बर, वपु सुव सुभ्र दिख्खे सुचख।
थह मंगि अंखि मंगल पवन, सवै होइ जोबन समख॥

ऐसा था अपार ऐश्वर्य उस आखेट का और इतनी थी तल्लीनता उस कार्य में कि शिकारी अपने साथियों को ही नहीं अपितु ईश्वर को भी भूल गये—

धुर धुरंत धन स्वांन, अप्प पंजर तीतर बर।
मच्छ जाल बग्गुरि हि, फंद फंदैत सुबर धर॥

धनक वान हक्कां सुरान, सिंध पंजर जर लख्खन ।
खांट खैर विस भिल्ल, तार तारक्क चित्र पन ॥
सरहद्द चोट लग्गै रमत, भुलै साथ श्री नाथ पति ।
कवि चंद विरद ब्रंनन करै, श्रवन सुनै दिल्लीय न्रपति ॥

चन्द कुशल कवि और वीर योद्धा ही नहीं थे, अपितु उन्हें शकुन-शास्त्र और ज्योतिष-शास्त्र का भी पूर्ण ज्ञान था। कवि ने अपनी इसी बहुज्ञता का परिचय रासो में अनेक स्थानों पर दिया है। रेवातट समय में पृथ्वीराज जब युद्धार्थ प्रयाण करते हैं, तब उन्हें कौन २ से ग्रह थे, इसका वर्णन करते हुए कवि बताता है कि उस समय—

राह केत जय दीन, दुष्ट-टारै सुभ काजं ।
× × ×
गुरु पंचम रवि पंच, अष्ट मंगल नृप भारी ।

ये ग्रह युद्ध के लिए पृथ्वीराज को शुभ थे। इस प्रकार के वर्णन रासो में अनेक मिलते हैं। शहाबुद्दीन की बुरे ग्रहों के कारण ही पराजय होती थी। यही नहीं, शकुन देखकर ही चन्द पृथ्वीराज को प्रस्थान करने की मंत्रणा देता था। शकुन-शास्त्र के ज्ञान का नमूना जैत्रराय समय से दिया जा सकता है—

अट्ठ अट्ठ जोगिन्निय, सुक्र सम्हों सुरतान ।
दिसा सूल दिसि वाम, बैर कन्हा चहुआनं ॥
सिंघ बाम भैरवी, गहक बोली गोरी दिसि ।
गुर पंचम रवि नवौं, राह ग्यारमों सुरंग ससि ॥
ईसान मध्यदेवी पहकि, गहक मभ्भ धू धू वहक ।
आकास मद्धि गज्यौ गयन, परी बूँद बे बंग हक ॥

जब पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन में युद्ध हो रहा था, उस समय चौसठ ही योगिनियाँ और दैत्य, गुरु, शुक्र (इन्द्र) तुल्य पृथ्वीराज शाह को सम्मुख दिखाई दिया। उस दिन पृथ्वीराज को दिशा शूल था। गौरी के लिए निषिद्ध शकुनों में बायीं ओर सिंह और भैरवी उच्च स्वर में बोल रही थी। पृथ्वीराज को गुरू पाँचवें, रवि नवमें,

स्थान पर था और गौरी शाह को राहु और चन्द्रमा ग्यारहवें स्थान पर अशुभ फल-दायक था। ईशान कोण में देवी स्वरूप फेंकड़ी (जम्बू मादा) और उल्लू बोल रहे थे। इन उदाहरणों से प्रतीत होता है कि चन्द शकुन-शास्त्र और ज्योतिष के प्रकांड पंडित थे और उन्होंने इसका प्रयोग रासो में किया है।

उपर्युक्त वस्तु-वर्णन को देखने से प्रतीत होता है कि कवि ने केवल वर्णन के लिए ही वस्तु-वर्णन नहीं किया है, अपितु उसमें अपनी सहृदयता और भावुकता का मिश्रण करके उसे सर्व ग्राह्य भी बना दिया है। वस्तुओं के ये विस्तृत वर्णन और व्यापार मनुष्य की रागात्मिक वृत्ति के आलम्बन हुआ करते हैं। इन फड़कने वर्णनों को पढ़कर ही पाठक के सुप्त मानसिक स्थायी भाव जागृत होकर रस संज्ञा को प्राप्त होते हैं। इसीलिए इन वर्णनों में रसात्मकता का पूरा आभास मिल जाता है। यह सब देखकर कहा जा सकता है कि वर्णन की दृष्टि से चन्द की समता के हिन्दी साहित्य में इने-गिने कवि ही हैं। चन्द की रचना-कुशलता और कल्पना शक्ति अद्भुत थी। उन्होंने अपनी नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा और सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय रासो में सर्वत्र दिया है।

भाव व्यञ्जना:—

मनुष्य मात्र की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि एक ओर वह अपने भावों, विचारों, आकांक्षाओं की अभिव्यंजना करते हैं तो दूसरी ओर अपने सौन्दर्य ज्ञान के द्वारा उन्हें सुन्दरतम बनाकर उनमें एक अद्भुत चमत्कार भी उत्पन्न करना चाहते हैं। इन्हीं दो मूल तत्वों के आधार पर काव्य के दो पक्ष हो जाते हैं—भाव पक्ष और कलापक्ष। यद्यपि इन दोनों पक्षों का समुचित संयोग और सामंजस्य ही श्रेष्ठ काव्य का सूचक होता है, फिर भी भावों की प्रधानता सर्वमान्य है। रस, जिसे काव्य का आत्मा कहा गया है, इन्हीं भावों पर आधारित है। मानव हृदय में निहित ये भाव भी दो प्रकार के होते हैं-स्थायी और संचारी। किसी काव्य को पढ़कर मानव हृदय में वासना रूप से रत्यादि भाव जागृत होकर उद्दीपन विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से ही रस रूप निर्मित होते हैं। रस ९ प्रकार के कहे गये हैं। रासो में हमें इन्हीं रसों का मूल्यांकन करना है।

वीर रसः—

रासो वीर रस प्रधान काव्य है, अन्य रस उसमें गौण रूप में आये हैं। इस रस की प्रधानता होने के कारण श्यामसुन्दर दास ने अपने हिन्दी साहित्य में पृथ्वीराज रासो को 'विशालकाय वीर काव्य' कहा है। रासो में आद्यान्त पृथ्वीराज, उसके सहयोगी सामन्तों और विपक्षियों के शौर्य का वर्णन किया गया है। आदर्श वीरता ही इन वीरों का लक्षण है, संसार में अमर ख्याति प्राप्त करना ही इनकी कामना है। पृथ्वी भी वीर भोग्या होती है, वह बाँके वीरों का ही अनुसरण करती है। वीरों के दान स्वरूप जल द्वारा उसका भोग होता है और वीरों की तलवार से ही उसमें भारी पन (अर्थात् गर्भावस्था या क्षेत्रविस्तार) आता है। इस संयोग से वह अन्नपान रस को जन्म देती है। कायर को वह अच्छी नहीं लगती, उसको तो वीर पुरुष ही घोड़े के सूम एवं तलवार की धारा के बल पर अच्छी तरह भोग सकता है—

वीर भोग वसुमति, वीर बंका अनुसरई।
वीर दान भोगवै, वीर खग्गह गुर करई॥
अन्न पान रस द्रवै, लगे काइर नह अच्छी।
है खुर खग्गह धार, वीर भोगह बर अच्छी॥

इसीलिए यह पृथ्वी न तो किसी कुल में उत्पन्न हुई है और न किसी पुरुष की स्त्री ही है। घोड़े के खुर और तलवार की धार के बल पर ही वीर पुरुष इसका उपभोग कर सकते हैं—

न कस्यापि कुले जाता, न कस्य नर नारियम्।
हय क्षुर खड्ग धाराच, वीर भोग्या वसुन्धरा॥

सच्चा वीर अपने लिए युद्ध नहीं करता, वह लोक मंगल की भावना को प्रमुखता देता है। वह प्रजा की रक्षा करना मुख्य कर्त्तव्य समझता है और जब कोई प्रजा में उत्पात प्रारम्भ करता है तो वह उसे नष्ट करने को सन्नद्ध हो जाता है। भोलाराय समय में सलखानी जैत्र अपने भाइयों से कहता है:—

दिख्खिये दीन घर घर फिरै, गरू अत्त न हरु अत्तनै।
निन्द्र पियास छुध मोह तजि, दुख्ख सुख्ख इक्क न गनै॥

'तुम देखते नहीं कि हमारी दीन प्रजा शत्रुओं के उत्पात से घर घर की होरही है। इसमें हमारा गौरव नहीं, हलका पन ही है। अतः हमको पृथ्वी और प्रजा के लिए निन्द्रा,प्यास, भूख और मोह को छोड़ कर दुःख-सुख की परवाह नहीं करनी चाहिए।'

वे युद्ध-भूमि में मृत्यु प्राप्त करने के पश्चात् मोक्ष-प्राप्ति की कामना करते हैं। कवि ने भी क्षत्रियों के लिए मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र साधन खड्ग द्वारा कट मरना ही बताया है।

रजपूत मुत्ति खिति खड्ग खिरि, विधि विनाँन यों न्रम्मयौ।

जब उनके मस्तक धड़ से अलग होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, तो उन्हें पद पद पर शिव और पद २ पर मुक्ति के दर्शन होते हैं, साथ ही वे यश भी प्राप्त कर लेते हैं—

पग पगति सिंभ पग पग मुगति, मुगति लभ्य कित्ती सुजग।

मृत्योपरान्त सुन्दरी अप्सराओं की प्राप्ति का लोभ और शिव की मुण्डमाला में अपने मस्तक का समर्पण ही इनका ध्येय बना रहता है। यहाँ तक कि उसके धराशायी हो जाने पर—

तहँ झगरी मह माय, देवि हुँकारौ पायौ॥
हुँकारै हुँकार, जूह गिद्धनि उड्डायौ।
गिद्धिन ने अपछरा, लियौ चाहत नहीं पायौ॥
अवतरन सोइ उत–पति–गयौ, देव थान बिभ्रम भयौ।
जमलोक न शिवपुर ब्रह्मपुर, भान थान भानै वियौ॥—

'योगिनियाँ, गिद्धनियाँ, और अप्सराओं में परस्पर कलह उत्पन्न हो जाता है और उस वीर की आत्मा यमलोक, शिवलोक और ब्रह्मलोक को भी लाँघकर उच्चलोक में पहुँच जाती है।' इस ध्येय की प्राप्ति के लिए हँसते–हँसते मर मिटना ही इनकी सहज क्रीड़ा है। अपने भूभाग और स्वामी की रक्षा के लिए युद्ध भूमि में शत्रुओं का संहार कर अपना शिरच्छेदन चाहते हुए इस लोक में यश-प्राप्ति और परलोक में अप्सरा प्राप्ति ही इनके उत्साह के लिए प्रेरणास्पद वस्तु है। स्वामि-भक्ति इन वीरों की महान् विशेषता है। ये सामन्तगण अपने स्वामी के लिए शारीरिक मृत्यु को तृण तुल्य समझते हैं। यदि स्वामी इन्हें प्राणों से अपनाले, तो ये

वीर उनके लिए अपने पुत्रों और बंधु-बांधवों को क्रोधित होकर युद्ध में कटवाने को तैयार हो जाते हैं—

स्वामि काज सामंत, मरण तन तिनुक विचारौं।

× × ×

अप्पु अंगवै सुजीव, पुत्त बंधव खिभि भानं।

स्वामि भक्ति की इसी महानता को देख कर डॉ॰ त्रिवेदी अपने 'चंद वरदाई और उनका काव्य' में कहते हैं— "उस युग की वीरता का यह आदर्श कि स्वामि-धर्म ही प्रधान है- कोरा आदर्श मात्र ही नहीं था। उसका संस्थापन सेना के स्थायित्व तथा विशेष रूप से उसकी युद्धोचित् प्रवृत्ति की जागरूकता को ध्यान में रखते हुए अति आवश्यक अनुशासन को लेकर हुआ था। अनुशासन ही सेवा और युद्ध की प्रथम आवश्यकता है। आदिकाल से लेकर आज तक सेना में अनुशासन की दृढ़ता रखने के लिये नाना प्रकार के नियमों का विधान पाया जाता है। आज्ञाकारिता को दासता के साथ जोड़ना ठीक नहीं, क्योंकि उस युग में किराये के टट्टुओं से भारतीय सम्राटों की सेनाएं सुसज्जित नहीं होती थीं। युद्ध क्षत्रियों का व्यवसाय था और स्वामि-धर्म के लिए प्राणोत्सर्ग करना कर्त्तव्य था। सम्राट या सेनापति की आज्ञा-पालन के अनुशासन को चिरस्थायी और व्रत स्वरूप बनाने के लिये स्वामि-धर्म का इतना उत्कट प्रचार किया गया था कि वह सामान्य सैनिकों की नसों में कूट-कूट कर भर गया था और इसी आदर्श की रक्षा में उनका युद्ध में कट मरने का कार्य दुहाई दे रहा है। इसके अतिरिक्त स्वामि-धर्म को दार्शनिक जामा भी पहिना दिया था। स्वामि-धर्म हेतु युद्ध में वीर गति प्राप्त करने के उपरान्त नाना प्रकार के उच्च लोकों में स्थान प्राप्ति के निश्चय का विधान असामान्य उच्च श्रेणी के योद्धाओं के लिये किया गया प्रतीत होता है।" संभवतः युद्धकाल इन योद्धाओं के लिये अलौकिक आनन्द उत्पन्न करने वाला क्षण होता होगा, तभी तो ये यौद्धा जीवन-मरण का भय छोड़, असार संसार में निर्मल यश की अमरता और स्वामि-धर्म की रक्षा के लिए निकल पड़ते थे। कायरों में वीरता के शंखनाद की ध्वनि फूँक कर माता के स्तन्य की लज्जा के नाम पर मर मिटने वाले इस काल को शुक्लजी ने 'वीर गाथा काल' कहा है।

वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' होता है, जिसकी रासो में सर्वत्र व्यञ्जना मिलती है। आजीवन ज्ञान द्वारा हृदय में वासना रूप से स्थित अचेतन अवस्था वाले

इस स्थायी भाव की जागृति के पश्चात् इसे तीव्र करने वाले उद्दीपन भावों और उसके फल स्वरूप शारीरिक एवं मानसिक अनुभावों में लवण सागर की तरंगों के अनुरूप संचरित होने वाले संचारी भावों के मिश्रण से जिस अपूर्व रस का उद्भावन भावुक के हृदय में होता है, वही वीर रस कहलाता है। 'रासो' वीर रस प्रधान काव्य है, अतः इस (द्वितीय भाग) में इसके उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिल सकते हैं। युद्ध में दूतों द्वारा मुसलमानी सेना का वर्णन सुन कर—

सुनत सुअन सोमेस, भिख्ख भयमीत भयउ तन ।
रोस रंग प्रज्जुलिग, मंगि संनाह-अमर जन ।।
हयनि हुकम किय दैन, मत्त गज अंदुणि खुल्लिय ।
नालि गोल जुत जंम, हसम हाजर सह वुल्लिय ।।
लोहान वुल्लि आदर अनँत, विवरि वत्त दूतनि कही ।
विप्फुरे वीर हुँकनि सुनत, जनु कि पुंछ म्यंडी अही ।।—

'सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज की शरीराकृति भयंकर होगई और वह क्रोध से जल उठा। उसने दासों से अपना अक्षय कवच मँगवाया और सामन्तों को घोड़े देने की आज्ञा दी। मस्त हाथियों को जंजीरों से खोला गया और यान्त्रिक आग्नेयास्त्रों को तैयार किया गया। उपस्थित सैनिकों को सज धजकर आने की आज्ञा दी और सम्मान के साथ लोहाना आजान बाहु को बुलाया तथा दूतों द्वारा दिया गया विवरण सुनाया। दूत-वाक्यों और स्वामी की आज्ञा से बहादुर इस प्रकार उन्मत्त हुए, मानों साँप की पूँछ मसल दी गई हो।' यहाँ युद्धार्थ आई हुई मुसलमानी सेना आलम्बन है और पृथ्वीराज आश्रय। दूतों द्वारा विपक्षी सेना का अतिरंजित वर्णन करना उसके हृदय में जागृत उत्साह नामक स्थायी भाव को अधिक तीव्र कर देता है, जिसके फलस्वरूप शरीराकृति का भयंकर हो उठना, युद्धार्थ सज्जित हो जाना, हाथियों को जंजीरों से खोल देना और यान्त्रिक आग्नेयास्त्रों को तैयार करना आदि अनुभाव होते हैं। संचारी भावों में चपलता, हर्ष और क्रोध के संयोग से यहाँ वीर रस की निष्पत्ति हुए है। इस प्रकार के उदाहरण रासो में संख्यातीत मिल सकते हैं। युद्ध की सजावट, वीरों का उत्साह, सेना का पृथ्वी को रौंदते हुए चलना, तलवारों की लपक-झपक, रुण्ड-मुण्डों का कट-कट कर गिरना आदि वर्णनों

से चन्द ने युद्ध के सजीव चित्र उपस्थित कर दिये हैं। यदि यह कहा जाय कि चंद युद्ध-वर्णन करने वाले हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

वीर रस केवल युद्ध-वीरता तक ही सीमित नहीं रहता है। वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' हृदय की इतनी उदात्त वृत्ति है कि वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भी रस ग्रहण करती है। इसीलिए आचार्यों ने युद्ध वीर के अतिरिक्त दानवीर, दयावीर और धर्मवीर आदि विभाग और किये हैं। रासो (द्वितीय भाग) में भी इन चारों का वर्णन सहज रूप से मिलता रहता है। पृथ्वीराज की दान वीरता के अनेक उदाहरण मिलते हैं— युद्ध में विजयी हो जाने पर शत्रु सेना से जो भी धन हाथ लगता था, वह उसे अपनी सेना में वितरित कर देता था। स्वार्थ उसे उसी प्रकार नहीं छूता था, जैसे चिकने घड़े पर जल नहीं ठहरता या कमल पत्र को जल नहीं छूता या बुद्धिमान व्यक्ति की दूसरों की निन्दा करने की प्रवृत्ति नहीं होती। धनकथा में पाषाण लेख को पढ़कर जो असंख्य धनराशि निकली, उसे पृथ्वीराज ने इस प्रकार वितरित कर दिया—

बंटि दियौ प्रथिराज, भाग किन्नै सह श्रब्वर।
एक भाग कैमास, तीय अप्पे नर सिंध नर॥
पंच भाग चावंड, भाग अद्धौ बर कन्हं।
द्वादस भाग नरिंद, दियौ परिगह सब थंनं॥
प्रथिराज दिष्ट आये नहीं, चिकट कुंभ ज्यों जल अभिद।
लग्गे न नीर पत्रह कमल, भिदै न मति-छीवें उछिद।

पृथ्वीराज ने तो केवल अपनी ख्याति अक्षुण रखने के लिये यश ही अपने पास रखा—

रख्खन सु गल्ह राजंद्र गुर, जस रख्यौ निज बर सुकर।

इस कथन से पृथ्वीराज की अपार दान शीलता द्योतित होती है। चंद ने अपने काव्य-नायक की दया-वीरता के भी अनेक उदाहरण दिये हैं। गौरीशाह के अनेकों बार पराजित होने पर भी उसे बार-बार छोड़ देना, यही नहीं आतिथ्य सत्कार करके द्रव्यादि से उसका सम्मान कर अपने सामंत वीरों से रक्षित कर गजनी तक

में गौरीशाह की पराजय के फल स्वरूप बंधन में लेने के पश्चात् उसे छोड़ दिया गया और उसे नग, मोती, माणिक्क आदि से पिरोई हुई माला पहना कर गजनी भेज देना, पृथ्वीराज जैसे दयावीर की ही उदारता का द्योतक है। रेवातट के युद्ध भेज दिया—

मोतीय नग्ग मानिक नवल, करि सलाह संमेल करि।
पहिराइ राज मनुहार करि, गज्जनवै पठ्यौ सुचरि॥

इस पर डॉ० त्रिवेदी कहते हैं– "भले ही राजनीति पृथ्वीराज के इस कार्य की भर्त्सना करे, परन्तु धर्मनीति इस अंतिम हिन्दू वीर सम्राट के चरित्र में चार चाँद लगा देती है।" इस प्रकार कहा जा सकता है कि रासो वीर रस का ऐसा अक्षय कोष है जिसकी अजस्र धारा का निरंतर पान करते रहने पर भी हिन्दी संसार उसे उतना ही सजल और प्रवहमान पाता है। वीर रस की इस अपूर्व एवं समता-रहित मंजूषा का निर्माण कविवर चन्द की ही लोह लेखनी से सम्भव था।

रौद्र रसः-

जिस काव्य में वीर रस की प्रधानता होती है, उसमें सहायक रूप से रौद्र, वीभत्स और भयानक रस भी अनिवार्यतः आ जाते हैं और इन्हीं के सहयोग से वीर रस की व्यञ्जना उत्कृष्ट हो जाती है। रौद्र और वीर रस में अधिक अन्तर नहीं होता है! यदि वीर का स्थायी भाव 'उत्साह' है तो रौद्र का 'क्रोध'। दोनों का अन्तर अनुभावों पर दृष्टिपात करने से ही प्रतीत हो सकता है। यदि आश्रय की चेष्टाएँ विवेक युक्त रहती हैं तो वीर रस की व्यञ्जना होती है और यदि विवेक शून्य हो जाती हैं तो उसे हम वीर रस की कोटि में न लेकर रौद्र रस की श्रेणी में लेते हैं। रासो (द्वितीय भाग) में भी, जैसा कि कहा जा चुका है, रौद्र रस वीर रस के सहायक रूप में ही आया है। महाकवि चंद वीर रस की अभि-व्यञ्जना में जितने सफल हुए हैं, उतने ही रौद्र रस की अभिव्यञ्जना में भी। भोलाराय समय में भोराभीम के दूत, वीर मकवाना द्वारा शहाबुद्दीन के सम्मुख अपने स्वामी की प्रशंसा में यह कहने पर कि "ए धरनि भीम भंजन घढ़न, अप्प कियौ करतार रचि", शहाबुद्दीन के क्रोधातिरेक में वृद्धि हो गई, उसका कथन इस प्रकार किया गया है—

कलहु न मंडे काल, देस पुव्वेस पुलंगी।
अग्निवान दखि प्रभा, वाई-कूंना रस मंगी॥
मुसलमान दीवान, साहि अग्गे इह बुल्लौं।
(जौ)लरै चंपि चहुआन, (तौ)कार खग्गां रसु तुल्लौं॥
सुनि सवन किये रत्ते नयन, बयन साहि तत्तो तमसि।
जाने कि अग्गि स्यंची सुघृत, ताम तेज बढ्यौ वहसि॥

यहाँ वीर मकवाने का आत्माभिमान और उसके द्वारा कहे गये गर्व युक्त वचनों ने शाह के क्रोध के लिये उद्दीपन काम का किया। तब उसके नैत्रों का लाल हो जाना और क्रोधावेश में कुछ का कुछ कह देना और आगे चलकर दूत धर्म के विरुद्ध और मंत्रियों के समझाने पर भी मकवाने को धराशायी कर देना, रौद्र रस की ही व्यञ्जना करता है। सलख युद्ध समय में युद्ध करते हुए पृथ्वीराज और सलख का वर्णन भी ऐसा ही हुआ है—

हालाहल हुअ पिथ्थ जहँ, झालाहल झंकाल।
उतरण कुप्पौ सलख लखि, कालाहल कंकाल॥

रासो (द्वितीय भाग) में वीभत्स रस की स्वतन्त्र रूप से उद्भावना कहीं नहीं हुई है। सर्वत्र इसकी संसृष्टि युद्ध-वर्णन में ही वीर, रौद्र और भयानक रस के अंतर्गत हुई है। भयानक और वीभत्स तो अत्यधिक मिला दिये गये हैं। जहाँ युद्ध होता है, वहाँ की भूमि रुण्ड-मुण्डों से आच्छादित हो जाती है, लोथों से लोथें टकराकर पहाड़ सी दिखाई देने लगती हैं, श्रोणित-धारा वीरों की मुक्ति हेतु वैतरणी सी बन जाती है और हाथियों की रदपंक्तियाँ और मृत वीरों की आँतड़ियों में उलझ-उलझ कर योद्धा इधर से उधर गिर जाते हैं। योगिनियाँ, पिशाचिनियाँ और गिद्ध पंक्तियाँ झूम-झूम कर रक्त पान किया करती हैं। महाकवि चन्द ने युद्ध के ऐसे वीभत्स दृश्य का अनेकों जगह अंकन किया है। यथा—

खग उभारि दल रारि, तारि कट्टन दुज्जनवै।
औडन हत्थह नंकि, धंखि चालुक्क न रव्वै॥
कटि कबंध धर लुट्टि, लुत्थि पर लुत्थि अहुट्टिय।
श्रोन धार खलहलिय, मोहमाया भ्रम छुट्टिय।

तुटि दंत अंत पायक दुहि, वहर रूप धाव अछग ।।
पग पगति सिंभ पग गग मुगति, मुगति लभ्य कित्ती सुजग ।।

भयानक रसः—

यद्यपि कहीं २ भयानक रस स्वतन्त्र रूप से भी निरूपित किया गया है, किन्तु सर्वत्र इस रस की सहकारिता वीभत्स से ही रहती है। इसका वर्णन भी अधिकतर युद्ध वर्णन में ही मिलता है। यथा—

हय-हय-हय उच्चार, देव देवासुर भज्जिय।
रह-रह-रह उच्चार, धाइ धाइं घट बज्जिय ।।
त्रह-त्रह-त्रह त्रासंत, बहुल खग खग्गं गट्टन।
टूक टूक उत्तरिय, बाजि नर सुभ्भर पट्टन ।।
हरिवास हार-हर-हरू भुलिय, ध्रुअ मंडल सद्दह डुलै।
मंगल घनेव भारथ्थ किय, जिन सुब्रह्म साधन खुलै ।।

यहाँ देव तुल्य वीरों के मार-मार उच्चारण से देवता और दानव सभी आतंकित होगये। वीरों के शस्त्राघात से शत्रु त्राहि-त्राहि करने लगे। उस युद्ध को देखकर हरि अपने निवास स्थान को और हर मुण्डमाल तथा पार्वती को भी भूल गये। उन सामंतों के ऊर्ध्ववोष से ध्रुव मंडल भी कम्पित होगया। यहाँ देवतुल्य वीर आलम्बन विभाव, उनके द्वारा किया हुआ विकट युद्ध, मार २ और पकड़ो २ का उच्चारण एवं तलवारों का चमकना उद्दीपन विभाव, शत्रुओं का त्राहि २ करना, हरि का अपने निवास स्थान को और हर का मुण्डमाल और पार्वती को भूल जाना अनुभाव एवं त्रास, दैन्य आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार के उदाहरणों में ये पंक्तियाँ भी दी जा सकती हैं:-

गरल धरण गरमाल धरि, टपकति बुंदनि रत्त।
भिख्ख भयानक भंति तिहि, कंपति दिखि गिरिजत्त ।।

यहाँ भयानक और वीभत्स दोनों का गंगाजमुनी संयोग हो गया है।

रासो में यद्यपि नवों रसों का सांगोपांग वर्णन मिलता है, किन्तु इस भाग में हास्य, शान्त और करुण के उदाहरण नहीं से ही हैं। शान्त और करुण का तो प्रसंग ही इसमें नहीं मिलता। कहीं-२ युद्ध वर्णन के अंतर्गत ही हास्य संचारी

के रूप में आ गया है, अन्यथा इसकी स्वतन्त्र रूप से उद्भावना इस भाग में कहीं नहीं मिलती है ! रेवातट में शिव अपनी मुण्ड माला में एक वीर के मस्तक को उसी प्रकार देखते हैं, जिस प्रकार कोई दरिद्री प्राप्त-धन को बार-बार देखता है।

अद्भुत रसः—

अद्भुत रस में केवल मात्र आलंबन के वर्णन से ही रस की निष्पत्ति हो जाया करती है। किन्तु यह आलंबन सार्वकालिक और सार्वयुगीन नहीं होता। काल और परिस्थिति के विपरीत चित्रण में ही इसकी विशेषता निहित रहती है। इस प्रकार के वर्णन भी रासो में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। सामान्यतः यह मान्यता है कि युद्ध भूमि में वीर का मस्तक कट पड़ने पर वह मोक्ष और स्वर्ग में अप्सराओं की प्राप्ति करता है. किन्तु कहीं-२ वीर के धराशायी होने पर उसका अप्सरा के साथ विवाह होते भी किसी ने नहीं देखा, उसके माँस, प्राण पक्षी तथा शस्त्र और वस्त्र आदि का भी कहीं पता नहीं लगा, उसके शरीर का अग्नि-संस्कार भी नहीं हो सका और उसकी आत्मा ब्रह्मलोक, शिवलोक और रवि मंडल को भी भेदकर पूर्ण ज्योति में मिल गई—

रन मुक्कि न ग्रह गइय, बरत अच्छरि नन दिट्ठह ॥
कहुँति मंस कहुँ अंस, हंस कहुँ सस्त्र बस्त्र कहँ।
ब्रह्म थान शिव थान, थान दिख्खिय न जन्म जहँ ॥
दीयौ न अग्गि रवि भेद नन्नि, तत्व जोति जोतिहि मिल्यौ।

महाकवि चंद को देवी की सिद्धि और स्वप्न एवं प्रत्यक्ष में साक्षात्कार, जैन धर्मावलम्बी भोरा भीम के मंत्री की विलक्षण करामातें, वीरगति प्राप्त होने पर मृत वीरों का अप्सराओं द्वारा वरण, आत्माओं का भिन्न-२ लोकों में वास और कबंधों का युद्ध वर्णन इस प्रकार के अद्भुत रस की व्यञ्जना में सहायक होते हैं।

शृंगाररसः—

वीर रस का अतिरंजित वर्णन करने वाले सिद्धहस्त कवि चन्द ने शृंगार रस का भी पूर्ण परिपाक किया है। रासो में वीर रस की प्रधानता है और शृंगार उसमें गौण रूप से आया है। तत्कालीन समस्त वीर रसात्मक काव्यों में यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, इसीलिए शुक्लजी ने लिखा है—"इन काव्यों में शृंगार का

भी थोड़ा मिश्रण रहता था, पर गौण रस से; प्रधान रस वीर ही रहता था। शृंगार केवल सहायक के रूप में रहता था। जहाँ राजनैतिक कारणों से भी युद्ध होता था, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न कर कोई रूपवती स्त्री ही कारण कल्पित करके रचना की जाती थी।" इस भाग में शृंगार के संयोग पक्ष का ही वर्णन मिलता है, वियोग शृंगार का अवसर कवि को नहीं मिला है। भोलाराय समय में पृथ्वीराज के महामंत्री कैमास को वश में करने के लिए भोरा भीम के मंत्री अमरसिंह सेवरा द्वारा भेजी हुई कामकन्दला बाला के सौन्दर्य का चित्रण उद्दीपन के रूप में किया गया है। इस चित्रण में 'थोरथनी' (लघुस्तनी) का नूतन प्रयोग उसके श्यामा-सोड़षीपन का सूचक है। "उन्नित नितंब, जानि रवि ब्यंब वीय गति" कहकर गोलाकृति नितम्बों पर सूर्य और सूर्य बिम्ब की सुन्दर उत्प्रेक्षा की गई है। "चख चंचल उद्दीयन रीह" कहने में नैत्रों को उद्दीपन की सीमा बतलाना भी एक नई उक्ति है। उसके नख शिख का वर्णन करते हुए कवि ने सभी प्रचलित परम्परा प्राप्त उपमानों को लिया है। शशिवृता समय के प्रारम्भ में प्रकृति का वर्णन, ग्रीष्म के गमन और पावस के प्रवेश पर मध्य प्रदेश से आये हुए चन्द्रोदय नामक नर्तक से शशिवृता के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर पृथ्वीराज को श्रोतानुराग हो गया। इसमें भी शशिवृता का नख-शिख वर्णन परम्परानुरूप ही बन पड़ा है। अन्य दूतों द्वारा शशिवृता के आलंकारिक सौन्दर्य वर्णन ने राजा के श्रोतानुराग को अधिक पुष्ट कर दिया यौवन प्रवेश की उपमा बसन्तागम और शैशव की शिशिर (पतझड़) से देकर एक बड़े रूपक द्वारा वयःसन्धि का सुन्दर वर्णन किया गया है। यहाँ कवि ने रूप वर्णन द्वारा ही तुल्यानुराग की प्रतिष्ठा की है। श्लोक में शशिवृता का नख-शिख वर्णन इस प्रकार किया गया है—

पीनो–रु–पीन उरजा शशि सम वदना, पद्म पत्रायताक्षी।
ब्यंबोष्ठी तुंग नासा, गजपति गमना, दक्षना वृत नाभी॥
सुस्निग्धा चारु केशी मृदु पृथु जघना, वाम मध्या सुवेसी।
हेमांगी कंति हेला वर रुचि दसना, काम बाना कटाक्षी॥

यहाँ कुच विशेष पैने, मुख चन्द्रमा के समान, चक्षु कमल पत्र के समान, ओष्ठ बिम्बा फल के अनुरूप, नासिका उन्नत, चाल हथिनी की तरह, नाभि दक्षिणावृत,

प्रेम श्रेष्ठ, केश मंजुल, कोमल जंघाएँ, वय मध्या, काया सर्वांग स्वर्णिम, हाव भाव युक्त, रदपंक्ति रुचिकर और कटाक्ष कामदेव के बाणों के तुल्य कहे हैं—जो परम्परा युक्त पद्मिनी नायिका के लक्षण कहे जा सकते हैं। इसके बाद कवि ने संस्कृत काव्य-शास्त्रकारों के अनुरूप ही नायिका भेद वर्णन किया है। किन्तु यहाँ भी कवि की दृष्टि केवल मात्र सामान्य वर्गीकरण पर ही गई है, उसने परवर्ती कवियों की तरह बाल की खाल निकालने का प्रयत्न नहीं किया है। आगे चलकर शशिवृता के रूप का आलंकारिक वर्णन मिलता है—

तजि भूखन बर बाल, इक्क आचिज्ज उपन्नौ।
लता हेम पर चन्द, उभै खंजन ढिग चिन्नौ॥
श्रीफल उरज विसाल, बाववर भ्रंग-सु-पत्ती।
सुकिसु तरंग अरन्नि, करी भगावल वंती॥
सोभंत उरगपति सुभ्र शरन, हंस-मुत्ति-चर बर करी।
सुध काज चढ़ै पप्पील सुत, काम-रत्तिनी दुख डरी॥

यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार द्वारा कनकलता पर चन्द्रमा, खंजन, श्रीफल, वापी, भ्रंगपंक्ति, शुकी, सरिता, अर्गला, सर्पिणी, हंस, हाथी और पिपीलिका पंक्ति आदि प्रसिद्ध उपमानों से क्रमशः शशिवृता की गौरवर्ण युक्त देह, मुख, नैत्र, उरोज, नाभी भौंहे, नासिका, त्रिवली, दोनों भोंहों के बीच खिंची हुई रेखा, वेणी, पवित्र प्रेम (या भूषण ध्वनि), चाल और नाभी से उरोजों की ओर जाने वाली रोमावली की व्यंञ्जना की गई है। उसकी गौर देह पर बिखरी अलकों को उत्प्रेक्षा द्वारा 'कनक थंभ ते उत्तरी, उरग सुता दरसाइ' कहा गया है। आगे जब पृथ्वीराज शशिवृता का हाथ पकड़ लेता है, तब कवि उत्प्रेक्षा करता हुआ कहता है 'मानों कि लता कंचन लहरि, मत्तवीर गजराज गहि।' 'इन्द्रावती विवाह समय' में विवाह के समय सुन्दरी इन्द्रावती के रुनझुन-रुनझुन करते हुए सखियों की टोली के बीच आते हुए दृश्य के लिए कवि ने उत्प्रेक्षा करते हुए कहा है—

करि श्रृंगार अलि अलिन संग, रिमझिम झुंडन मंझ।
वसन रंग नवरंग रंगे, जानु कि फुल्लिय संझ॥

अतः कहा जा सकता है कि चन्द ने श्रृंगार रस के अन्तर्गत सभी शास्त्रीय अंगों

का वर्णन किया है। उसका सौन्दर्य चित्रण प्रायः उद्दीपन विभाव के रूप में ही मिलता है। चन्द मानव सौन्दर्य के चतुर चितेरे थे, इसीलिए उन्होंने संयोग की सजावट के इतने प्रचुर उपकरण प्रस्तुत किये हैं, जिसमें नख-शिख, वयः सन्धि और रूप वर्णनों की प्रमुखता मिलती है। चन्द के इसी प्रकार के शास्त्रीय और परम्परा-युक्त प्रसंगों को देख कर डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य' में कहा है— "इसीलिए इस श्रेणी की रचनाओं में आदिम कविता की स्पष्टता, अव्यवहित प्रभाव-विस्तरण और अनगढ़ भाव नहीं है बल्कि शास्त्रीय कविता की जटिलता और सुगढ़ भाव व्यञ्जना का प्रयास मिलता है।"

आचार्यों ने नवरसों के अंतर्गत मित्र और विरोधी रसों का भी उल्लेख किया है। उनकी दृष्टि में वीर और श्रृंगार रस का सामरस्य रस कोटि में नहीं, अपितु रसाभास की कोटि में आता है, क्योंकि श्रृंगार के स्थायी भाव 'रति' और वीर के स्थायी भाव 'उत्साह' की परिस्थितियों में विषमता होती है। इतना होने पर भी संस्कृत साहित्य के ही अनुरूप रासो में भी श्रृंगार और वीर रस की उक्तियों में सामरस्य उपस्थित किया गया है, जिसे उपयुक्त बनाने की भी चेष्टा की गई है। इस प्रकार के उदाहरणों में- धनकथा में चंद पुण्डीर के भाई लक्ष्मण के युद्ध कौशल का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

सत्र न सस्त्रन उव्वरिय मन–बर छुट्टिय नांहि।
ज्यों मध्या–प्रिय तुच्छ निसि, सेंरो सहर समांहि॥

'उस वीर के शस्त्राघात द्वारा कोई भी शत्रु नहीं बच पाया, फिर भी उसके श्रेष्ठ मन की इच्छा उसी प्रकार तृप्त नहीं हुई, जिस प्रकार मध्या स्त्री के पति की इच्छा, शहर में सबके सोजाने पर भी छोटी रात्रि होने के कारण प्रेयसी के साथ सुरति-सुख की प्राप्ति में अधिक आतुर बनी रहती है।' यहाँ वीर रस की उपमेय पंक्ति के लिए श्रृंगार की उपमान पंक्ति की योजना की गई है। इसी प्रकार शशिवृता समय में भी शस्त्राघात करते हुए वीर एक दूसरे को पकड़ते और छूट जाते हुए इस प्रकार दिखाई दे रहे थे, मानों दूती से नायक का संयोग होते देख कर नायिका सुरति की रात्रि में मनो मालिन्य कर बैठी हो—

शस्त्रघात आघात, बथ्थ अनबथ्थ सु लग्गा ।
सुरतु राति रति सेज, मिले-दूती मन भग्गा ॥

रेवातट समय में युद्धान्तर्गत पुंडीर वीर का लड़ने पहुँच जाना और शत्रु समूह को तुरंत भगा देने की तुलना शयन गृह में रात्रि को पति से सशंकित रहने वाली नवोढ़ा के सूर्योदय के पूर्व ही ब्राह्म मुहूर्त्त में वहाँ से भाग जाने से की गई है—

पुंडीर भीर भजन भिरन, लरन तिरच्छौ लग्गयउ ।
नव वधू जेम संका सु बर, उदै जानि जिम भग्गयउ ॥

अनंगपाल समय में भी इस प्रकार की उक्ति कही गई है । पट्टन पति और सोमेश्वर के यौद्धागण परस्पर आघात सहते हुए भी पीछे हटना उसी प्रकार पसन्द नहीं करते थे, जिस प्रकार प्रौढ़ा नायिका छैल छबीले पुरुष का सम्पर्क पाकर उससे रमण करती हुई प्रातःकाल होने देना नहीं चाहती:—

सार मार मच्ची कहर, दूअ दलनि सिरि संधि ।
प्रौढ़ा नायक छलय रमि, प्रात न बंछै संधि ॥

इन उक्तियों को देखने से प्रतीत होता है कि कवि को शृंगार और वीर रस की उक्तियों में सामंजस्य उपस्थित करना इष्ट था, इसीलिए उसने कहीं मध्या, कहीं खंडिता, कही नवोढ़ा और कहीं प्रौढ़ा नायिकाओं की उपमान पंक्तियों से युद्ध दृश्यों की तुलना की है । किन्तु इस प्रकार के दृश्यों का अंकन न तो वीर रस की पुष्टि ही करता है और न शृंगार की ही, अपितु इनमें रसाभास ही होता है । इस प्रकार की पद्धति का अनुसरण चंद के परवर्ती कवि जायसी में भी प्रचुरता के साथ मिलता है।

रासो (द्वितीय भाग) में रसों के प्रथक २ विवेचन को देखने के पश्चात् चन्द में एक और विशेषता पायी जाती है– वह है नव रसों का एकही छन्द में पर्यवसान किया जाना । इन स्थलों पर ऐसे वातावरण की नियोजना की जाती है, जिसके द्वारा उस विशेष परिस्थिति में उपस्थित भिन्न २ व्यक्तियों में भिन्न २ रस के अवयव भासित होने लगते हैं । ऐसे स्थल चन्द के उत्कृष्ट कला-कौशल के द्योतक है । यथा—

शशिवृता समय में पृथ्वीराज ने देवालय की सीढ़ियाँ चढ़कर ज्योंही शशिवृता का हाथ पकड़ा, त्यों ही वह कुमारी उसी प्रकार काँप उठी जैसे कोमल काम-लतिका प्रेम-

पवन के लगने से झकझोर दी गई हो। उसने हाथ पकड़ कर कुमारी को हृदय से लगा घोड़े की पीठ पर चढ़ा लिया। उसी समय उसके प्रेमयुक्त मन ने अपने प्रिय के कानों में अपनी बात कहदी। उस समय पृथ्वीराज में रौद्र, कुमारी में करुण, सामंतों में वीर, सम्बन्धियों में हास्य, युद्ध में वीभत्स और कमधज्ज वीर चन्द में भयानक रस भासित होने लगा—

गहि शशिवृत नरिंद, सिट्ठी लंघत ढहि-थोरी।
काम-लता कल्हरी, प्रेम मारुत झक-झोरी ॥
बर लीनी करि साहि, चंपि उर पुट्ठी लगाई।
मन सुरंग सोइ बत्त, कंत लगि कान सुनाई ॥
नृप भयो रुद्र करुना सुत्रिय, बीर भोग बर सुभर गति।
सगपन सु हास वीभच्छरिन, भय भयान कमधज्ज द्रुति ॥

यहाँ रौद्र, करुण, वीर, हास्य, वीभत्स और भयानक-इन छह रसों का पर्यवसान एक ही छन्द में किया है। इसी प्रकार प्रस्तुत प्रसंग से कुछ आगे चलकर जब वीरचंद कमधज्ज और श्रेष्ठ वीर पृथ्वीराज ने रात्रि में भी युद्ध प्रारम्भ करना चाहा तो शशिवृता के नैत्रों में शृंगार, सामंतों में वीर, पृथ्वीराज में रौद्र, चन्द में अद्भुत, कायरों में करुण, शत्रु समूह में वीभत्स, मृत वीरों में शान्त, अप्सराओं में हास्य और (हिन्दुओं के) भविष्य को सोचते हुए देवताओं में भयानक रस छागया—

भान कुँअरि शशिवृत, नैन शृंगार सुराजै।
बीर रुप सामंत, रुद्र प्रथिराज बिराजै ॥
चन्द अद्भुत जानि, भए कातर करुना मय।
बिभछ अरिन संमूह, सांत उपन्नो मरन भय ॥
उपज्यौ हास अपछरि अमर, भौ भयान भावी बिगति।
कमधज्ज राव प्रथिराज बर, लरन लोह चिंतेति रति ॥

उपर्युक्त छन्द में नवों रसों का पर्यवसान कर दिया गया है। कांगुरा युद्ध में भी इसी प्रकार का प्रसंग आया है—

खग वाहिय भिरि भान, अरिन अद्धर धर किन्नौ।
जै जै मुख उच्चार, सीस उमयापति लिन्नौ ॥

रीझि रुलिग उतमंग, अमिय विख जंग सु ढरयौ ।
टंडव मंडि असंघ, नंदि भौ अंग जु परयौ ॥
वीभच्छ भयानक भय उमा, रुद्र रुद्र मुख हास हुअ ।
सिंगार बीर अच्छर बरन, नव रस सुनिहि नरिंद हुअ ॥

यहाँ राजा भानु के उत्साह पूर्वक भिड़ते हुए खड्गाघात करने पर वीर; किन्तु विपक्षी वीरों (पृथ्वीराज और उसके सामंतों) द्वारा उसके शरीर को आश्रयहीन कर देने पर करुण; तब उसके कटे हुए सिर को उमापति द्वारा जय जयकार कर उठाने, उसके शंकर की मुंडमाला में झूलने, जिसके फलस्वरूप हिलने पर शिव के भाल से अमृत और कंठ से विष के ढुलक पड़ने पर अमृत के छींटे भानु के क्षत विक्षत शरीर पर पड़ने के कारण उसके नृत्य करने लग जाने एवं विष के नन्दीगण पर पड़ने पर उसका पान करने के लिए शिव के कंठ से सर्प के नीचे की ओर झपट पड़ने पर अद्भुत; उस समय पार्वती के रुधिर पान करने पर वीभत्स और भयानक; रुद्र के मुख पर रौद्र और हास्य; उस वीर का अप्सरा के साथ वरण होने पर शृंगार और राजा भानु के प्राणान्त हो जाने पर शान्त रस भासित हुआ। महाकवि चन्द ने जिस अद्भुत कौशल से इन भिन्न २ रसों का पर्यवसान एक ही छन्द में करने का प्रयास किया है, वह स्तुत्य है। आगे चलकर महाकवि तुलसी ने भी स्वयंवर प्रसंग में इसी प्रकार एक ही छन्द में नवों रसों का सामंजस्य उपस्थित करने की चेष्टा की है।

भाषाः—

श्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ के लिए अनुभूति की तीव्रता जितनी वांछनीय होती है, उतनी ही उसकी अभिव्यञ्जना की उपयोगिता भी स्वयं सिद्ध है। भावों की अभिव्यक्ति भाषा द्वारा ही होती है; अतः भाषा की श्रेष्ठता मनोभावों को सुन्दर रूप में व्यक्त करना ही है। रासोकार षट्भाषा शास्त्री था, अतः उसके काव्य में तत्कालीन प्रचलित सभी भाषाओं का प्रयोग मिलता है। भावानुकूल भाषा का प्रयोग तो इनकी विशेषता है ही, पर वीर रस की प्रमुखता होने के कारण इसमें ओज गुण की ही प्रधानता मिलती है। युद्ध-वर्णन में तो शब्द एक दूसरे पर टूट पड़ने से दिखाई देते हैं, जिससे युद्ध का एक स्पष्ट चित्र पाठकों के सम्मुख उपस्थित होजाता

है। इन वर्णनों में टकार बहुलता, महाप्राणत्व और द्वित्त एवं सामासिक शब्दों का प्रयोग ही भाषा में ओजगुण का सम्पादन करता है। किन्तु जहाँ शृंगार रस का वर्णन किया गया है, वहाँ भाषा में माधुर्य गुण भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। कहने का तात्पर्य यही है कि प्रसंग एवं भावानुकूल भाषा लिखने में महाकवि चन्द सिद्ध हस्त थे। उनकी भाषा सर्वदा भावों की अनुगामिनी ही रही है।

चन्द ने अनेकों नवीन शब्दों का भी प्रयोग किया है, जो प्रसंगानुकूल अत्यन्त सार्थक हुए हैं। जैसे 'थोरथनी' का प्रयोग लघुस्तनी अर्थात् कम उम्रवालो के लिए एक नूतन शब्द की रचना है, इसी प्रकार 'वार-सूर', 'ढाल ढंढोरि' और 'लोह-सार' आदि शब्द भी मिलते हैं। चन्द की भाषा में मुहावरों का प्रयोग एवं वक्र-कथन भी प्रचुर मात्रा में मिलता है, जो अर्थ में नवीन चमत्कार उत्पन्न कर देता है। 'घर घर फिरना', 'हथ्थ दिखाइय' और 'वज्जे वज्जाकर' (बाजे बजवा कर या डंके की चोट), 'घाइ दिन्यो लवन' आदि मुहावरों का प्रयोग सर्वत्र मिलता है। शशिवृता समय में पृथ्वीराज ने 'युद्ध से विदा ली' कहने के लिए 'ना–सज्जं पंजरो दीवो' (तन–पिंजर को स्वर्गागमन का पथिक नहीं बनाया) का प्रयोग किया है। इसी प्रकार देवगिरि समय में 'भान न उप्पर मुक्कहीं' से अर्थ है 'इस समय हमारा समय अंधकार मय है' और 'कोन हीन को नीर बिन, को तप–भांन नरिंद' से जयचन्द की लज्जा हीनता पर वक्र–कथन किया गया है।

अलंकारः–

काव्य में अलंकारों का प्रयोग शब्द और अर्थ दोनों की सौन्दर्य वृद्धि के लिये किया जाता है। अर्थात् अलंकार सौन्दर्य वृद्धि के विविध साधनों में से एक है। जहाँ इस साधन को साध्य बना देने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, वहाँ उस काव्य का काव्यत्व गौण ही नहीं अपितु नष्ट भी होजाता है। इसीलिये महान् कवि अलंकारों का प्रयोग भावोत्कर्ष के लिए ही करते हैं। महाकवि चन्द ने (इस भाग में) यद्यपि प्रायः सभी शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का प्रयोग किया है, किन्तु सर्वत्र इससे भाव-सौन्दर्य में अभिवृद्धि ही हुई है। साथ ही स्थिति और प्रसंगानुकूल होने के कारण वर्ण्य विषय में भी प्रभावोत्पादकता आगयी है। इसमें शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों के ही प्रयोग मिलते हैं; यद्यपि अर्थालंकारों के ही उदाहरण

अधिक हैं। रासो में रूपक और उत्प्रेक्षा की तो बाढ सी आगई है, किन्तु कहीं भी अस्वाभाविकता के भँवर नहीं पड़े हैं। युद्ध-वर्णन और शृंगार रस के अंतर्गत सौन्दर्य और नख-शिख वर्णन में तो अलंकारों (उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और संदेह) के प्रयोग से अर्थ-गौरव की ही वृद्धि हुई है। महाकवि चन्द साहित्य-शास्त्र के अनुपम ज्ञाता होने के कारण सभी अलंकारों को यथास्थान नियोजित करने में सफल हुए हैं। इस भाग में आये हुए अलंकारों को संक्षेप में इस प्रकार बताया जासकता है—

अनुप्रास– 'गाहंन गहन दुज्जन दलन, सुवर सूर सज्जिय सयन' – सलख० २२

× × ×

यमक– 'प्रात उदित रवि रत्त रँग, समर समर दिसि जग्गि', और–
'सुरतान भींच पंचौ परत, सूर सूर दिन अंथयौ' – धन० ३२, ४३

× × ×

श्लेष– "जित तित छुट्टै-पंखी, थावर जलह जंगमं जोती।
ससिपालं हरिपालं, भूपालं काल प्रतिपालं॥" — शशि० २८

× × ×

उपमा– "जैं अब्बूवैं भार, लाज अब्बू गँज रख्यौ।
मान प्रमान सम दान, अंग कवितन कवि सख्यौ॥" — भोला० ७

'वह वीर कवियों को काव्यांग के समान प्रिय था'–में चन्द ने नये उपमान का प्रयोग किया है, जो बहुत सुन्दर बन पड़ा है।

× × ×

रूपक:—

यद्यपि चंद ने सभी प्रकार के रूपकों का प्रयोग किया है, किन्तु सांग–रूपकों का यथातथ्य चित्रण चन्द की एक विशेषता है। जैसे–

कोट खलन सोभे विसाल, साम-सामंत सूर थँभ।
जस देवल उप्पनौ, बीय—गय गिरी सेत रँभ॥

प्रथिराज देव-दानव-दलन, लच्छि रूप जद्दव कुँअरि।
नव रस विलास पूजा करहि, बर-अच्छरि भइ पहुप-सरि ॥— शशि० २२१

× × ×

करिय पारि सोभंत, रुधिर जल रज्जि सज्जि सर।
केस भेस सैवाल, मकर कर जंघ मीन नर॥
खुप्परि कच्छ सु अच्छ, वसहि तहँ सिद्ध गिद्ध वर।
रंभ अंब तँह भरैं, फुल्लि पोयंन्नि मुख्ख नर॥—सलख० ४२

× × ×

उत्प्रेक्षा— सुनि कग्गर नृपराज पृथु, भौ आनन्द सुभाइ।
मानौं वल्ली सूकते, बीरा रस जल पाइ॥— भोला० १८

× × ×

"हनिय मत्त गजराज, सिंघ कर मत्थ सिंघ वहि।
मनों वास रँगरेज, मट्ट फुट्टयो सुरंग ढहि॥— धन० ६६

× × ×

चौहान हथ्थ बाला गहिय, सो ओपम कविचंद कहि।
मानों कि लता कंचन लहरि, मत्त वीर गजराज गहि॥—शशि० १५५

जहाँ कहीं कवि को रूप वर्णन, नखशिख वर्णन और नायिका भेद वर्णन (शृंगार रस) का अवसर मिला है, वहाँ २ कवि ने उत्प्रेक्षा का आशातीत, किन्तु सफल प्रयोग किया है।

× × ×

अतिशयोक्तिः— तजि भूखन वर बाल, इक्क आचिज्ज उपन्नौ।
लता हेम पर चंद, उभै खंजन ढिग चिन्हो॥
श्रीफल उरज विसाल, बाव वर भ्रङ्ग-सु-पत्ती।
सुकि सु तरंग अरन्नि, करी भग्गावल वंती॥
सोभंत उरगपति सुभ्र शरन, हंस-मुत्ति-चर बर करी।
सुध काज चढ़े पप्पील सुत, काम-पत्तिनी दुख डरी॥

(रूपकातिशयोक्ति)—शशि० १३८

× × ×

मुख छुट्टा नृप बैंनं, कै दिट्ठाय धावता नैनं।
बज्जी—वाहु सु वारं, धारं ढारि मत्तयौ धरयं॥
(चपलातिशयोक्ति)—शशि० २०७

× × ×

व्यतिरेक- देव ते-ज दैवत्त गुन, अवृत मत्ति गुन कंति।
शशिवृत्ता चहुआन सौं, सुवृत मंत गुनयंति॥— शशि० १७४

× × ×

संदेह- पुंछ चंपि जनु चील, स्यंघु सोवत जग्गाइय।
हक्काल्यौ कि वराह, दंग जनु अग्गि लगाइय॥
वरड छता के छेरि, गाइ व्यानी धग्गांनिय।
कै जग्गाए वीर, भीर भारथ मग्गानिय॥— सलख० १६

× × ×

विरोधाभास- आचिज्ज वाल चरियं, किं होजम्म जम्म विन हरियं।
कै विधि पुव्वह लिखियं, जोमन मारूत्त सुख्ख सुख्खाई॥-भोला. ८६

× × ×

परिसंख्या- वलभे वलभो वातं, नह अच्छी वीय भेदयौ भेदे।
भेदै अच्छरि कुलयं, पावारं प्रीति वालायं॥—भोला० २७

× × ×

इनके अतिरिक्त भी अनेकों अलंकार रासो (द्वितीय भाग) में पाये जाते हैं, किन्तु उनका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं है। यहाँ तो केवल सारांश में इतना ही कहा जा सकता है कि रासो में अधिकतर ऐसा कोई अलंकार नहीं पाया जाता, जो भावों पर हावी होगया हो या अनावश्यक रूप से ठूँसा गया हो या जो रस में बाधक सिद्ध हुआ हो। इसमें तो सर्वत्र अलंकारों का स्थिति और विषयानुकूल सहज प्रवाह मिलता है।

छन्द:-

छन्दों की दृष्टि से यद्यपि अन्य प्रकाशित रासो में विविध प्रकार के छन्द मिलते हैं, किन्तु स्वयं कवि के कथानुसार—

"छन्द प्रबंध कवित्त जति, साटक गाह दुहथ्थ"–

उसने केवल चार ही छन्दों का प्रयोग किया है। वे हैं:—कवित्त (छप्पय), साटक (शार्दूल विक्रीड़ित), गाथा और दोहा। इसके अतिरिक्त संस्कृत के श्लोक भी मिलते हैं। रासो वीर रस प्रधान काव्य है और 'कवित्त' (छप्पय) में इसका परिपाक करने में कवि को अभूत पूर्व सफलता प्राप्त हुई है। कवि का यह अत्यन्त प्रिय छन्द रहा है। साटक में अधिकतर ललित वर्णों वाली पदावली आई है, जिसमें संस्कृत वर्णों की बहुलता है।

अन्य विषय:–

महाकवि चन्द विविध विषयों के ज्ञाता थे। जहाँ वे एक श्रेष्ठ कवि और कुशल सेना नायक थे, वहाँ उन्हे ज्योतिष और नीतिशास्त्र का भी विषद ज्ञान था। उनका परम–नीतिज्ञ रूप रासो में उनके द्वारा कथित नीति की उक्तियों को देखने से ज्ञात हो सकता है। इन नीति–कथनों में भी यह विशेषता है कि ये केवल 'वाक्य-ज्ञान' मात्र नहीं है, जिनमें केवल मात्र उपदेश की प्रवृत्ति ही होती है। ये नीति कथन परिस्थिति और प्रसंगों के इतने अनुकूल हैं कि 'कान्ता सम्मित उपदेश' के रूप में रस की व्यञ्जना में सहायक होते रहे हैं। इस भाग में कवि ने दान, भूपाल, कायर, ईश्वर, शक्ति-सिद्धान्त, संसार की असारता, सेवक, मित्र, स्त्री, कर्म, काव्य, पृथ्वी और कीर्ति सम्बन्धी नीति वाक्य कहे हैं। जैसे—

(१) "है खुर खग्गसु भूमि, दान विद्या अधिकारिय।
रूप दान रस ज्ञान, तत्त नह मत्त विचारिय॥" —

पृथ्वी का स्वामित्व और दान सम्बन्धी

× × ×

"दान खग्ग विद्या विभौ, ए वत्तां नँह सीर।"– "

× × ×

भूमी द्रवैं सु लच्छी, वंका वीराइ वंकियं भूमी।
नहँ वंकी धर कब्बं, वंका वीराइ वंकियं होई॥– "

× × ×

(२) करतार हथ्थ केति कला, कियौ सु लभ्भै अप्पना ।
पापंग देह मिट्टी मिलै, दीदे देखि सु सप्पना ॥ — दैव (भाग्य)

× × ×

भुंगवैति कोइ, बड्डेति कोइ, कोइक पढ़ कोइ लभ्भवै ।
दैवान दुसंकह दैवगति, जो निम्रान सू त्रिम्मवै ॥ — "

× × ×

(३) "का काया मायाति का, का ग्रहनी ग्रह कौन ।
अप्पों अंख्यौं मिहचतें, जो देखियै सुलौन ॥" —
संसार की असारता एवं क्षणभंगुरता सम्बन्धी

× × ×

जग जीवनु अंछै इसौ, ज्यौं सुपनन्तर राति ।
अंजुलि जल जीवनु इसौ, आव घटति इम जाति ॥ — "

× × ×

"दुनियाँ रंग कसूम यह, कित्तिक दिना रहाहि" -- "

× × ×

(४) "सोइ सेवक सुनि साहि, स्वामि संकरै छुड़ावै ।
सोइ सुमित्त अप्पनौ चित्त मित्तें न दुरावै ॥
सोइ सुबंध अप्पनौ, दसा अवदसा न कथ्थै ।
सोइ सु तीय अप्पनी, अस्सु मुक्कै असु सथ्थै ॥
मति सोइ जोइ पय उप्पजै, तत्त सोइ तत्तहि मिलै । — विविध

× × ×

(५) "कहाँ पंच पंचौ बसत, कहाँ प्रकृति प्रति अंग ।
कहाँ हंस हंसह बसै, कौन करै रन जंग ॥" – कर्म संबंधी

× × ×

(६) रह्यौ न को रवि मंडलह, रहि कवि मुख्ख सु भल्ल ।
जीरन जुग पाखान ज्यौं, पूर रहंदी गल्लह ॥ —
काव्य सम्बन्धी

× × ×

(७) रहि हैं नरंणि गल्हां पहुमी, सार एक कित्ती सुमुख। —
कीर्ति सम्बन्धी

× × ×

चन्द की महत्ता इस बात से भी प्रदर्शित होती है कि उसने शशिवृता समय में पृथ्वीराज के अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करने हेतु उसके अमूर्त भावों-'लज्जा और वय'-का मूर्तीकरण करके उनमें वार्त्तालाप करवाया है। आधुनिक युग में छायावादी काव्य-शैली के प्रणेता महाकवि प्रसाद ने भी कामायनी में काम और लज्जा को इसी प्रकार का मूर्त स्वरूप दिया है।

अंत में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहा जा सकता है कि रासो (द्वितीय भाग) की "भाषा में बेडौल और बेमेल ठूँस ठाँस नहीं है, उसमें कवित्व का सहज प्रवाह है। यहाँ चन्द बरदाई ऐसे सहज प्रफुल्ल कवि के रूप में दृष्टिगत होते हैं, जो विषम परिस्थितियों से भी जीवन रस खींचते रहते हैं।" वीर, विद्वान् और प्रतिभा सम्पन्न महाकवि ने अपने वर्णन, रस-निरूपण और कथा-विस्तार से रासो को जो महत्ता प्रदान की है, वह अक्षुण्ण है।

नरेन्द्र व्यास, एम० ए०
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

—:०:—

सम्पादकीय

दोहा

तट बैठे बैठे मुये, पैठे भये निहाल।
बक झक मारत ही रहे, मोती लहे मराल ॥
(स्वरचित)

उपर्युक्त पद्य के अनुसार वक-बुद्धि वालों के लिए तो कुछ नहीं कहना है, किन्तु मराल बुद्धि वालों ने इस "महान् रासो सिन्धु" का हम से पूर्व काफी अवगाहन किया है और उनसे हमें कुछ मुक्ता कण भी प्राप्त हुए हैं। इसी से उत्साहित होकर हमने भी रासो का सम्पादन-कार्य अपने हाथों में लिया। हम अपने को हंस तो नहीं मानते, किन्तु गोताखोर (समुद्र में गोता लगा कर रत्न राशि खोजने वाले) अवश्य मानते हैं और उसी के अनुसार हमारा प्रयास भी चल रहा है (जिसमें कभी सफलता और कभी असफलता मिलती है, फिर भी खाली हाथ नहीं लौटते)। अपने इस प्रयत्न से हमने जो मुक्ता-राशि संचित कर साहित्य प्रेमी युवक-हंसों के सम्मुख प्रस्तुत की है, आशा है, उससे उनका लाभ ही होगा।

यह धारणा सर्व सम्मत है कि रासो में प्रक्षिप्त अंशों का बाहुल्य है। आज से चार सौ वर्ष पूर्व, जब इस ग्रन्थ का मेवाड़ेश्वर महाराणा अमरसिंह (प्रथम) ने संग्रह करवाया, तब ही यह निश्चय था कि इस रासो के मणि-राशि तुल्य छन्द बिखर गये थे। उक्त महाराणा ने ही उन्हें एकत्रित करवा कर वृहद् रूप दिलवाया।[1]

---

१. गुन मनियन रस पोइ, चन्द कवियन कर दिद्धिय।
छन्द गुनिन ते तुट्टि, मन्द कवि भिन २ किद्धिय ॥
देस देस विख्खरिय, मेल गुन पार न पावय।
उद्धिम करि मेलवत, आस बिन आलय आवय ॥
चित्रकोट रान अमरेस त्रप, हित श्रीमुख आयस दयौ ॥
गुन बीन बीन करुना उदधि, लखि रासो उद्दिम कियौ।

नोटः—रासो के वृहद् संस्करण का निर्माण कराने वाले महाराणा अमर (प्रथम) ही थे, दूसरे अमर नहीं हो सकते। कारण यह है कि प्रथम अमर स्वयं विद्वान् और विद्वानों के ग्राहक थे। वृहद् रासो की प्रतियें भी दूसरे अमर से पूर्व की मिलती है एवं राज प्रशस्ति में भी रासो का उल्लेख मिलता है।

अतः स्पष्ट है कि प्रक्षिप्त अंशों के मिल जाने से ही रासो के सम्बन्ध में अनेकों भ्रान्त धारणाएँ बनी हुई हैं। रासो के मूल रूप को ज्ञात करने हेतु छन्दों का चुनाव करते समय हमें कवि चन्द रचित छन्दों की जाति प्रकट करने और परिणाम संख्या बतलाने वाले पद्य[1] भी मिल गये हैं, जो रासो के वृहद्, मध्यम, लघु और लघुत्तम आदि सभी संस्करणों में है। रासो को वर्तमान रूप देने में हमें इन्हीं से अधिक सहायता मिली है।

हमारे इस प्रयास के मूल कारण स्वर्गीय महाराणा भूपालसिंहजी थे, जिन्होंने वि० सं० १९८४ में हमसे रासो का श्रवण किया। तभी से हमने रासो का अध्ययन प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् श्री नरोत्तमदास स्वामी और डा० दशरथ शर्मा ने हमारे इस उत्साह में वृद्धि की। उन्होंने रासो के शंका समाधान सम्बन्धी लेख में से कुछ अंश आग्रह पूर्वक "राजस्थान भारती" में प्रकाशित किया। इसकेबाद हमारे (विद्यापीठ के) प्रो० वाइस चांसलर ने, जो 'जनार्दन' ही नहीं 'नागर' भी हैं और जिन्होंने शायद रामायण को पढ़ा होगा। उन्हें रामनाम की महिमा की स्मृति होगी ही, किन्तु हम कह सकते हैं कि उन्हें यह चौपाई "खग जाने खग ही की भाषा" तो अवश्य याद है, इसीलिए इस प्राचीन ग्रन्थ 'रासो' के लिए मुझ जैसे प्राचीन पोथे पढ़ने वाले व्यक्ति को 'रासो-सम्पादक' बनाकर विद्यापीठ में घसीट लिया और हिन्दी के हंस तुल्य महान् कवि चन्द की अमृतमय वाणी के आशय को मुझ जैसे कपोत द्वारा साहित्य-संसार के समक्ष प्रकट कराया।

रासो के काव्य पक्ष का रसास्वादन तो इसके अनुवाद और साहित्यिक विवेचन से होगा, हमें तो यहाँ वर्णित घटनाएँ और व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित बातें बताना ही अपेक्षित है।

---

१. छन्द प्रबन्ध कवित्त जति, साटक गाह दुहत्थ।
लहु गुरु मंडित खंडि यहि, पिंगल अमर भरत्थ॥

—०—

पंच सहस नख सिख सरस, सकल आदि मुनि दिख्य।
घटि वढ़ि मति कोऊ पढ़ो, मुहि दूषन नव सिख्य॥

इस द्वितीय भाग में सर्व प्रथम 'भोलाराय समय' है। इस समय में होने वाली घटना अ० सं० ११४४ (वि० सं० १२३५) की है।[१] इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह युद्ध घटना सलख जैत्र की पुत्री इच्छनी के कारण नहीं हुई, किन्तु जैन धर्मावलम्बी चालुक्यों द्वारा शिवपुरी (संभव है शिवाना) के देव मन्दिरों पर उत्पात मचाने के कारण हुई थी।[२] सलख जैत्र का स्थान नागोर के आसपास था।[३] धारावर्ष चालुक्यों से मिल कर ही आबू का उपभोग कर रहा था।[४] चालुक्यों ने सलख जैत्र को भी अपनी ओर मिलाना चाहा, लेकिन वे उनके प्रलोभन में नहीं आये।[५] इसीलिये चालुक्यों ने उनके दुर्ग पर भेद नीति से अधिकार कर लिया[६] और उसकी रक्षा का भार आबू पति (धारावर्ष) पर छोड़कर चालुक्य लौट गये।[७] सलख जैत्र के पक्ष में उसका जामात्र पृथ्वीराज हो गया।[८] चालुक्यों ने पृथ्वीराज के मुख्यमंत्री को एक रूपवती खत्रानी के प्रेमपाश में डालकर नागोर पर अधिकार कर लिया। तब कवि चंद ने कैमास को वाक्य-ज्ञान द्वारा उस सुन्दरी के प्रेम-पाश से छुड़ाया।[९] इसके बाद उन ब्रह्म क्षत्रिय (ब्रह्मा के चुल्लू से उत्पन्न) चालुक्यों[१०] को वहाँ से मार भगाया[११] और सौजत्री (गुजरात–काठियावाड़) नामक स्थान पर उन्हें पराजित कर दिया।[१२] इस युद्ध में पृथ्वीराज का छोटा भाई हरिसिंह (हरि-राय) भी शरीक था।[१३] भोला भीम ने इस प्रकार द्वेष जागृत करके अजमेर और अनहलपुर पट्टन के प्राचीन सम्बन्ध (पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर पट्टन पति सिद्ध-राज का दोहित्र था) में अन्तर डाला।[१४]

---

(१) चौआलीसा शुक्रवार। (२) भोरा राइ भीमंग, सोर सिवपुर अज्जारिय। (३) मुरदेस सलख सुत जैतसी, नवसु कोट नागोर नर। (४) सुर खंडं जं बलयं, सा बलयं भीमयं राजं। (५) रस रसाल गुज्जरह-नरिंद रायंगन थप्पो; समर उभै समरंग करि, समरसु प्रज्जै हेज; डोलो लंभ न होइ। (६) भेद सब्रे बलु खद्द। (७) पट्टनवै पट्टन गयो, अब्बूवै सिर भार। (८) भान ढिल्ली इच्छावर। (९) जीता चन्द चरित; उट्ठावे नहँ सीस, लज्ज दाहिम चहुवानं। (१०) बंभान जग्य जे उप्पने, करौं सोइ त्रिब्बीर मय। (११) मेटि आन चालुक्य, आन चहुआन फिराइय; (१२) परो रारि हिन्दुवान सों, सोजत्ती रति वाह। (१३) वली वाहु हरस्यंघ, रेह रक्खन चहुआनिय; अनुज भिरि पर्‌यो दुसाल्लिय; वंदियहि वाहु वाहुज्ज दल। (१४) पलटि प्रीत कत जुग करन।

'सलख युद्ध' और चालुक्यों के साथ सोजत्री में होने वाली घटना एक ही समय की है ।[१] उधर सामंतगणों ने सोजत्री में चालुक्यों से लोहा लेकर उन्हें पराजित किया, इधर पृथ्वीराज सारुंडे (मारवाड़) नामक स्थान पर गौरी शाह से जा भिड़ा। युद्ध के अंत में सलखजैत्र ने शाह को बंदी बनाया ।

'धन कथा' के युद्ध में चित्तौड़ेश्वर रावल समर विक्रम (विक्रम केशरी) भी सम्मिलित थे। इस घटना के समय पृथ्वीराज के रैणसी के अतिरिक्त दूसरा राजकुमार (गोविन्दराज) हुआ जिसका युद्ध से लौटने पर उत्सव मनाया गया।[२] संभव है यह पुत्र रानी इच्छनी से ही हुआ हो, क्योंकि पृथ्वीराज के आने पर उसकी बहिन पृथाकुमारी के अतिरिक्त जो रानियाँ उससे मिलने आईं, उनमें उसका नाम नहीं है।[3] संभवतः वह उस समय प्रसूति-गृह में होगी।

'शशिवृता समय' में पृथ्वीराज का विवाह शशिवृता के साथ होने का उल्लेख हुआ है। यह राजकुमारी दक्षिण देशीय देवगिरि की न होकर मध्यप्रान्त (मालवा) स्थित देवास[४] के यादव राजा के भाई पुंज की पुत्री थी।[५] पृथ्वीराज को सर्व प्रथम उसका वृतान्त एक मालव निवासी नर्तक से ही ज्ञात हुआ ।[६] देवास के राजा को "यादव भान" लिखा है, जिसका अर्थ 'यादवों का सूर्य' भी हो सकता है। उसे 'तान' (तवन पाल) नाम से भी सम्बोधित किया है [७] (इसी की पुत्री हंसावती थी जो आगे चलकर पृथ्वीराज से ब्याही गई)। शशिवृता को वरण करने में पृथ्वीराज को कन्नौज पति जयचन्द के भाईयों में वीर चन्द से युद्ध करना पड़ा। दोनों सूर्यवंशी वीरों[८] में युद्ध होने के पश्चात् पृथ्वीराज शशिवृता को दिल्ली लेजाने में सफल हुआ।

'देवगिरि समय' के अंतर्गत पृथ्वीराज के शशिवृता सहित दिल्ली पहुँच जाने पर उसके सामंतों द्वारा किये गये युद्ध का वर्णन मिलता है। इस युद्ध में मेवाड़ेश्वर समर-विक्रम का युवराज रणसिंह भी चाहुआन के पक्ष में सम्मिलित हुआ।[९] इधर जयचन्द भी वीरचंद की सहायतार्थ आ पहुँचा, किन्तु मेवाड़ेश्वर और पृथ्वीराज की सम्मिलित वाहिनी ने उसे परास्त कर दिया।

---

१. चालुक्कां सोभति सध्यौ, सारोंडे मेंछन्द । २. आये नन्द उछाह घर । ३. दाहिम्मी, पृथु, भट्टी, पुण्डीरी आइ नृप ढिगं । ४. हो देवस द्विजराज । ५ देवरु पुंज कुमारि । ६. पुच्छिय विगति देस रह मझ्झं; को राजेन कवन धर मझ्झं; तुअ दिन अंतर कमियं, राजन कीलंत अप्प घर मझ्झं । ७. तान सु गुंन लहन्न; लग्गियो तान राज उर । ८. सूर वंस रजपूतं । ९. रन रुंधे पहु पंग नर; रन नरिंद-वाहन कुमार; रन रुंध्या अप डिंभरू; रन रुंध्यो बच्छरू ।

रेवातट समय में जिस युद्ध-का वर्णन मिलता है, वह पंजाब प्रान्त के लिए गौरीशाह और पृथ्वीराज में हुआ था।[1]

'अनंगपाल समय' के प्रारम्भ में मालवाप्रान्ती 'महिपाल; के साथ सोमेश्वर का युद्ध हुआ। तत् पश्चात् पृथ्वीराज का अनंगपाल और गौरीशाह की सेनाओं से युद्ध हुआ। तात्वी अनंगपाल का प्रजा की पुकार पर गौरीशाह की सहायता लेकर पृथ्वीराज पर चढ़ाई करना सम्भव है।

"घघर की लड़ाई" में पृथ्वीराज ने पेशोर और टिल्ला पहाड़ की ओर प्रस्थान किया।[2] वहाँ जाकर उसने, शाह द्वारा अधिकृत भू भागों एवं शाही भूभाग पर हलचल मचादी।[3] युद्ध में शाह को पकड़लिया गया, किन्तु संधि करने पर उससे वहुत सा भूभाग लौटा कर पुनः छोड़ दिया। तब शाह ने पुनः उस भूभाग के लिए युद्ध नहीं करने और अटक के इस पार नहीं आने की शपथ ली और गजनी गया।[4] मार्ग में रयसल्ल नामक हिन्दू वीर द्वारा उस पर आक्रमण करने पर पृथ्वी-राज के सामन्त लोहाने आजान बाहु ने उसे बचाकर सकुशल गजनी पहुँचा दिया।

"करनाटी समय" में पृथ्वीराज ने कर्नाटक प्रदेश पर चढ़ाई की, किन्तु विपक्षी वीरों ने उसका सामना नहीं किया। वहाँ से उसे भेंट स्वरूप एक परम रूपवती दासी (वैश्या) प्राप्त हुई जिसका नाम कर्नाटी था।

'देवास कथा (पीपायुद्ध)' से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज ने सामंतों से सम्मति लेकर देवास की ओर व्याह-विनोद (हंसावती को वरण करने) की इच्छा से प्रयाण किया। यह सूचना पाकर रुष्ट (शशिव्रता-विवाह के कारण) जयचंद की सहायता लेकर गौरी शाह मार्ग में ही आ भिड़ा।[5] इस युद्ध में पृथ्वी-

---

(१) गोरीबै दल सम्मुहों। गो पंजाब प्रमान, पंचासज गोरी नृपति। मुर पंच कोस लाहोर तैं। (२) 'जाइ लग्गा धर टिल्लै", "रहे पेसोर धरत्तिय", "टिल्ला धर लिज्जै" डेरा करिपेसोर नृप"। (३) जम भय तत्र नित्तिय धरा"।" (४) पेशंगी कर सीम, बीच पौरान कुरानं", "उत्तरों अटकतो मैं अत्तर", (५) "प्रथिराज गत्तु देवास दिसि, व्याह विनोद उमंग हिय। अन-च्चंत गज्जि गज्जन त्तलिय, आनि अचानक कंक किय।"

राजा की शक्ति के बलपर पीपा प्रतिहार ने शाह को बंदी बना लिया। इससे और भी स्पष्ट होजाता है कि शशिवृता एवं हंसावती दक्षिण देशीय देवगिरी की न होकर देवास की ही राजकुमारियाँ थीं।

'करहेरा युद्ध' से स्पष्ट है कि उज्जैन राजवंशी सारंगीपुर (संभवतः मालवान्तरगत प्रसिद्ध नगर सारंगपुर) के प्रमार भीम की पुत्री इन्द्रावती को व्याहने के हेतु पृथ्वीराज मध्यप्रान्त की ओर चल पड़ा।[१] मार्ग में उसे ज्ञात हुआ कि चित्तौड़ पर चालुक्यों ने आक्रमण कर दिया है, अतः उसने मेवाड़ेश्वर की सहायता करना अत्यावश्क समझा और इसीलिए अपने कुछ प्रसिद्ध सामंतों को अपना खड्ग देकर सारंगीपुर की ओर (राजकुमारी का खड्ग से विवाह करवाने हेतु) भेजा और स्वयं चित्तौड़ की ओर चलपड़ा। चालुक्यों से यह युद्ध मेवाड़ स्थित करहेरा (करेड़ा) नामक स्थान पर हुआ। चित्तौड़ेश्वर ने पृथ्वीराज से मिलकर चालुक्येश्वर भोरा भीम को साथियों सहित पाराजित कर भगा दिया। रानिङ्गराय झाला और प्रधान सामंत वीरधवल की शक्ति के कारण ही चालुक्येश्वर बाल-बाल बचकर घर को लौट सका। इन दोनों वीरों में वीर धवल ने ही अधिक बल प्रदर्शित किया।[२]

'इन्द्रावती विवाह' से ज्ञात होता है कि पहले तो इन्द्रावती के पिता भीम ने खड्ग के साथ अपनी पुत्री विवाह करने से इन्कार कर दिया, किन्तु बाद में पृथ्वीराज के सामंतों द्वारा पट्टनपुर की गायों को घेर कर युद्ध में पराजित कर देने पर उसने इन्द्रावती का विवाह खड्ग से कर दिया। (करहेरा युद्ध से स्पष्ट हो गया है कि यह राजकुमारी सारंगीपुर के राजा भीम की पुत्री थी)।

"जैत्रराय समय" से स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के विरोध मुख्य कारण पंजाब भूमि एवं पृथ्वीराज द्वारा नासिरूद्दीन मीर हुस्सेन और उसके पुत्र गाजी हुस्सेन को शरण देना ही था।[३] इस युद्ध में जैत्रराय ने शाह को पकड़ कर बन्दी बना लिया।

---

(१) "सारंगीपुर साज।" (२) जस धवलो मन उज्जलो, त्रिब्बी पहुमि न होइ।"
(३) "संगे हुसेन साहाबदी, पंचदेस बंटन सुधर।" "मैं रख्यौं हुस्सेन बर, बरबंधौं सुरतान।

"कांगुरा युद्ध" में पृथ्वीराज ने भोटीराज पर चढ़ाई की, क्योंकि वह और उसका साथी पल्हन गौरीशाह से मिले हुए थे। 'भोटी भान' का अर्थ-भोटियों का सूर्य (मुखिया) या उसका नाम विशेष दोनों हो सकते हैं। जब पृथ्वीराज ने युद्ध में भोटीराज को मार दिया तब उसका साथी पल्हन लड़ने को उद्यत हुआ, किन्तु पृथ्वीराज के सामंत नारेन और हम्मीर (रघुवंशी प्रतिहार)[१] ने उसे पराजित कर कांगुरा-दुर्ग पर अधिकार कर लिया। पश्चात् पल्हन को पाल्हन-वास (पाल्हम घाटी) पर नियुक्त किया।[२] पृथ्वीराज ने कांगुरा दुर्ग हम्मीर को दे दिया, जिसके फल-स्वरूप उसने अपनी पुत्री का विवाह पृथ्वीराज से कर दिया। विवाह के पश्चात् पृथ्वीराज दिल्ली लौट आया।

अतः स्पष्ट है कि सलखजैत्र नागोर (मारवाड़) के आसपास रहने वाले थे। पृथ्वीराज ने उनकी पुत्री इच्छनी से, जैन धर्मायलम्वी चालुक्यों के शिवपुरी (संभवतः शिवा ने) के देवालयों पर उत्पात मचाने के पूर्व ही, विवाह कर लिया था। इस समय आबू का धारावर्ष चालुक्यों के आधीन हो चुका था। ब्रह्म क्षत्रिय (ब्रह्मा के चुल्लू से उत्पन्न) चालुक्यों के उत्पातों के कारण ही पृथ्वीराज के सामंतों एवं पृथ्वीराज के छोटे भाई हरिसिंह (हरिराय) ने चालुक्यों को सोजत्री (गुजरात) नामक स्थान पर परास्त किया इस प्रकार उस भोरा भीम ने अजमेर से अपने प्राचीन सम्बन्ध को तोड़ दिया। शाह से भी उसी समय इतिहास प्रसिद्ध सारूंडे (मारवाड़) नामक स्थान पर युद्ध हुआ। पृथ्वीराज के रैंणसी के अतिरिक्त एक और पुत्र गोविन्दराज हुआ। शशिवृता और हँसावती देवास (मालवा) की ही राजकुमारियाँ थीं। यादव राजा भान को 'तान' (तवनपाल) लिखना भी इतिहास सम्मत है। शशिवृता-हरण वाले युद्ध में पृथ्वीराज और उसके सामंतों ने जिस

---

(१) "बर रघुवंश प्रधान, राज मंड्यौ बिच्चारिय।

(२) "पाल्हन-वास नरिंद, राज रख्यौ तिन थानं"।

नोट:— कांगुरा युद्ध में जिस जालंधर देवी का उल्लेख हुआ है और जिसका मंदिर कांगुरा में था; आज भी उसी स्थान पर देवी का प्राचीन मन्दिर है जिसे 'महामाया का मन्दिर' कहा जाता है। इसी समय में भोटी राज के साथी पल्हन का भी उल्लेख हुआ है। वहाँ पर पाल्हम नामक एक घाटी कही जाती है। संभव है वह उसीके नाम की स्मृति में हो।

स्थान पर विश्राम किया, वह स्थान सुठियार था जो मालवा स्थित सुंठालिया स्थान ही है। पृथ्वीराज के गौरी शाह से युद्ध अधिकतर पंजाब भूभाग के लिए ही होते थे। अनंगपाल का प्रजा की पुकार पर पृथ्वीराज से युद्ध करना भी संगत है। यह भी निश्चय है कि गौरी शाह द्वारा भारत के बहुत से भूभागों पर अधिकार कर लेने पर ही पृथ्वीराज ने चढ़ाई की। कर्नाटक प्रदेश पर पृथ्वीराज द्वारा चढ़ाई भी संभव है। देवास की ओर जाना भी यादव भान की पुत्री हंसावती से विवाह करना ही था। 'करहेरा युद्ध' में चालुक्येश्वर भोरा भीम का पराजित होकर कुशल पूर्वक घर लौटकर उसके मुख्य सामंत वीरधवल के बल पर ही संभव हुआ। इन्द्रावती के पिता सारंगीपुर (सारंगपुर-मालवा) के राजा थे। जैत्रराय समय में भी पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का विरोध पंजाब भूमि के लिए हो हुआ। प्रतिहार क्षत्रीय हाडुली हम्मीर को रघुवंशियों का मुखिया लिखना भी प्रतिहार क्षत्रियों का रघुवंशी होना सिद्ध करता है, जो ऐतिहासिक है। कांगुरा युद्ध में आया हुआ पाल्हन-वास (पालम घाटी) नामक स्थान भी ऐतिहासिक ही है।

इस प्रकार हमारे द्वारा सम्पादित रासो की घटनाओं के विषय और विरोधी पक्ष के लेखों में जमीन आसमान का अन्तर मिलता है। इससे यही समझना पड़ता है कि उन्होंने रासो पर बिना सोचे समझे, बिना पढ़े और बिना गम्भीर अध्ययन किये ही कीचड़ उछालने का प्रयत्न किया है। अस्तु हमारा कर्तव्य तो इसका सुस्पष्ट अर्थ करके इसके प्रत्येक गूढ़ विषय को विद्वानों के समक्ष रख देना ही है, जिसे हम भगवती वाणी की कृपा से पूरा कर चुके हैं। अब इसके निर्णय का भार तो सहृदय विद्वानों पर है।

रासो-प्रथम भाग गत वर्ष प्रकाशित हो गया था। उस पर कुछ ही विद्वानों ने प्रकाश डाला है और हमें अपनी सम्मतियों से विज्ञ भी किया, जिसके लिए हम उनके अनुग्रहीत हैं। भाषा की प्राचीनता के बारे में तो मुझे इतना ही कहना है कि मुझ पुराण-पुरुष से नई हिन्दी (चुलबुली भाषा) का आग्रह करना रंक से रत्न की आशा करना है। फिर भी जीर्ण पात्र में यदि अमृत रस भरा हो तो उसे कोई नहीं छोड़ता। चटकीलेपन के शोकीनों को कभी कभी 'चमकीले लिफाफे में गन्दे मजमून' भी मिल जाते हैं, जिन्हें प्राप्त करने पर प्रसन्नता और खोलकर पढ़ने पर हताश

होना पड़ता है। यह बात रासो में नहीं होगी, फिर भी उन सज्जनों के आदेश को मानकर हमारे संस्थान के अध्यक्ष श्री गिरिधारीलालजी शर्मा ने उसका कुछ सुधार करने का प्रयत्न किया है, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। एवं हमारे साथी नरेन्द्रजी व्यास एम. ए. ने भी इसकी भाषा का सुधार किया और हमारे अन्य साथी श्री उमाशंकरजी शुक्ल से हमें संस्कृत पद्यों के पाठ मिलान कर सुधारने एवं ज्योतिष सम्बन्धी विवेचनों में भी सहायता मिली है। अतः दोनों धन्यवाद के पात्र हैं।

भूमिका से हमारा तात्पर्य उस भाग के साहित्यिक-सौष्ठव से ही है, न कि सम्पूर्ण "रासो" के साहित्यिक विवेचन से। सम्पूर्ण रासो का साहित्यिक दिग्दर्शन संभव हो सका तो भिन्न रूप से ही किया जावेगा। सम्पादकीय में भी हमारा प्रयास अधिकतर ऐतिहासिक घटनाओं और व्यक्तियों के बारे में उठाई गई भ्रान्त धारणाओं का संकेत रूप में निराकरण करने की ओर ही रहा है। रासो में प्रयोजित विभिन्न शब्दों का व्युत्पत्ति मूलक रूप भी, संभव हो सका तो वृहद् शब्द कोष में दिखाया जावेगा। इन सभी कमियों का भी केवल मात्र कारण समय की न्यूनता ही है।

इस अवसर पर हम अपने अन्य साथियों को जो इस समय विद्यापीठ में हैं और नहीं भी हैं, नहीं भुला सकते। जिनमें रासो विभाग के संचालक श्री भगवतीलालजी भट्ट (वर्तमान पीठ मंत्री), श्री पुरषोत्तमजी मेनारिया (भूतपूर्व-मंत्री साहित्य संस्थान), श्री भैरूलालजी व्यास, श्री पृथ्वीसिंहजी चौहान 'प्रेमी', श्रीनाथूलालजी व्यास और श्री रूपसिंहजी बारहट के नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने बड़ी सजगता एवं तत्परता से इस कार्य में हमारा साथ दिया।

सम्पादकः—

पृथ्वीराज रासो

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

विषय सूची

विषय | पृष्ठ संख्या

भोलाराय समय–

युद्ध में सलख जैत्र के भाइयों में से क्षेमकरण, खंगार, उद्धरण, बलराय और वरसिंह का मारा जाना। ४३० से ४३४

सलख जैत्र के दुर्ग को आबू के राजा (धारावर्ष) की सुरक्षा में छोड़कर चालुक्येश्वर का लौटना, अपने सारंगदेव मकवाना नामक व्यक्ति को पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने के लिए सहायता प्राप्ति हेतु दूत बनाकर शाह के पास भेजना, लेकिन गौरी शाह द्वारा दूसरे की सहायता से युद्ध नहीं करने के कारण, निषेध कर जाना और बात बढ़ जाने पर सारंग देव को मार देना। ४३५ से ४४७

दूत के मारे जाने की सूचना पाकर भोराभीम का स्वतन्त्र रूप से पृथ्वीराज पर चढ़ाई करना और सोजत्री नामक स्थान पर आकर ठहरना, दूसरी ओर से शाह का चढ़ाई करना और सारुंडे नामक स्थान पर आकर ठहरना, पृथ्वीराज का सोजत्री की ओर कैमास को को नियुक्त करना और कैमास का नागोर पर आकर ठहरना, स्वयं पृथ्वीराज का शाह से मुकाबला करने हेतु सारुंडे की ओर बढ़ना, चालुक्यों का प्रपंच से एक रूपवती खत्राणी द्वारा कैमास को वश में करके नागोर पर अधिकार करना, किन्तु कवि चंद के ज्ञानोपदेश से कैमास का पुनः सावधान होकर चालुक्यों को नागोर से मार भगाना। ४४८ से ४७२

कैमास और उसके साथियों द्वारा चालुक्यों का पीछा करना और सोजत्री नामक स्थान पर रात को छापा मार कर उनको पराजित कर देना। ४७३ से ४९५

सलख युद्धः—

पृथ्वीराज को दूतों द्वारा शाह की चढ़ाई के विषय में सूचना मिलना और सामंतों से मंत्रणा करके पृथ्वीराज का अपनी सेना को बढ़ा कर युद्ध करना। ४९६ से ५१४

सोजत्री को विजय करके सामन्तों का इस युद्ध में सम्मिलित होना कन्ह चहुआन के आ उपस्थित होने से भयानक युद्ध छिड़ना। ५१५ से ५२६

खत्रानी द्वारा पृथ्वीराज के गुणों को सुनकर शशिवृत्ता में भी श्रोतानुराग उत्पन्न होने और शिव से वरदान प्राप्त करने का स्पष्टीकरण करना, दूत का कहना कि शशिवृता के पिता पुंज ने राजकुमारी का विवाह जयचंद के भाईयों में वीरचंद से करना निश्चय किया है फिर शशिवृता और पृथ्वीराज के मिलन के संकेत स्थल (हरसिद्धि नामक देवालय) की सूचना देना। ६०४ से ६३६

पृथ्वीराज का देवास पर चढ़ाई करना, वीर चन्द का भी देवास में आपहुँचना, शशिवृता का देवालय-गमन और पृथ्वीराज का उसे अपहरण करना, यादवी और कमधज्जी सेन द्वारा पृथ्वीराज को घेरना और युद्ध करना, सामंतों का शशिवृता के पिता पुंज को बाँधना सामंतों के आग्रह पर विजय के बाद पृथ्वीराज और घायल सामंतों को सूंठलिया (मालवा) के राजा के यहाँ विश्राम लेना, पृथ्वीराज का शशिवृता को लेकर दिल्ली के लिए प्रस्थान करना किन्तु शेष सामंतों का वीरचन्द को वहीं रोक लेना और डटा रहना। ६४० से ७३६

देवगिरि समयः—

वीरचन्द कादेवास दुर्ग को घेरकर कन्नौजेश्वर जयचन्द को और यादवराज का पृथ्वीराज को सूचना देना, वीरचन्द की पराजय की सूचना पाकर जयचन्द का देवास पर चढ़ाई करना, पृथ्वीराज का भी देवास की ओर आने का विचार करना, इतने में शहाबुद्दीन का अनंगपाल को उकसाना, यह देखकर पृथ्वीराज का चित्तौड़ेश्वर रावल समर-विक्रम को सूचना देना. रावलजी का कहना कि आप इस समय दिल्ली से अन्यत्र नहीं जावें केवल कुछ सामंतों को भेजदें ताकि युवराज रणसिंह कन्नौजेश्वर से सामना करेगा, रावलजी की सेना का देवास की ओर प्रस्थान करना, जयचन्द का देवगिरि (देवास) को घेर लेना। ७४० से ७४८

चाहुआनी एवं यादव सेना का जयचन्द की सेना पर रात को छापा मारना, मेवाड़ी सेना का आगमन और रणसिंह का जयचन्द पर आक्रमण करके विजय प्राप्त करना। ७४९ से ७५५

करनाटी पात्रः–

पृथ्वीराज का कर्नाटक देश पर चढ़ाई करना और भेंट-स्वरूप करनाटी नामक दासी (वैश्या) का प्राप्त होना। ८६५ से ८७०

देवास कथा (पीपा युद्ध):–

पृथ्वीराज का (हँसावती से) व्याह की इच्छा से देवास की ओर प्रस्थान करना, जयचन्द की सहायता लेकर शहाबुद्दीन का रास्ते में आ भिड़ना, युद्ध करते हुए वीर पीपा द्वारा शाह को बंदी बना लेना और दंडित करने पर छोड़ देना। ८७१ से ८६६

करहेरा युद्धः–

पृथ्वीराज का सारंगीपुर (सारंगीपुर–मालवा) के भीम प्रमार की पुत्री इन्द्रावती को वरण करने की इच्छा से मध्य प्रान्त की ओर प्रस्थान करना, रास्ते में चित्तौड़ पर भोरा भीम और उसके साथियों द्वारा चढ़ाई करने का समाचार सुनकर सामन्तों को विवाह के लिए अपना खड्ग देकर स्वयं चित्तौड़ेश्वर की सहायता के लिए चल पड़ना, मेवाड़ेश्वर और दिल्लीश्वर के मिल जाने पर चालुक्येश्वर को मार भगाना, चालुक्येश्वर का सकुशल घर लौट जाने में वीर धवल द्वारा अत्यधिक बल प्रदर्शित करना। ८६७ से ६१४

इन्द्रावती विवाहः–

इन्द्रावती के पिता द्वारा इन्द्रावती का पृथ्वीराज के खड्ग से विवाह करने के लिए निषेध कर देना, सामंतों द्वारा पट्टनपुर की गायों को घेरना, भीम और सामंतों में युद्ध होना. भीम की पराजय और पृथ्वीराज के खड्ग से इन्द्रावती का विवाह कर देना, इन्द्रावती को लेकर सामंतों का दिल्ली पहुँचना। ६१५ से ६३६

जैत्रराय समयः–

खट्टूवन में पृथ्वीराज का आखेट के लिए जाना और नीतिराय खत्री का बादशाह को सूचित करना, शाह का पृथ्वीराज के पास दूत

—:०❀०:—

"सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते"

पृथ्वीराज रासो

द्वितीय खण्ड

भोलाराय

(समय २०)

कवित्त (छप्पय)

चौआलीसा[1] शुक्रवार, चैत पुक्खह पगवारिय[2] ।
भोराराइ भीमंग, सोर शिवपुरी प्रजारिय ॥
आरज साँइ सलख्ख, राज संभरि संभारिय ।
चाहुवान सामंत, मंत कयमास पुकारिय ॥
धर[3] जांन पवारह पट्टनह, बोले बंक दुराइ दिल ।
कैबार कथ्थ नथ्थह तनी, खंगेराज क्रिवान[4] खल ॥ १ ॥

ग्रा० पा०, १ घ०, का० । २, ३, ४, दे० ।

शब्दार्थ:—पुक्खह=पक्ष । पगवारिय=फगवारिय, फगुआ के दिनों में (होलिकोत्सव के दिनों में) । सोर=शोरगुल, पुकार । आरज साँइ=आर्यों के स्वामी । जांन=जाती, गई हुई । पट्टनह=पट्टन वाले के अधीन । दुराइ=छिपा कर । कथ्थ=कथायें । नथ्थह=नाथ, स्वामी । तनी=की । क्रिवान=कृपाण ।

अर्थः—अ० सं० ११४४ (वि० सं० १२३५) के चैत्र मास में होलिकोत्सव के दिनों में (शील सप्तमी के दिनों में) शुक्रवार को चालुक्य भोराभीम ने (या उसके साथियों ने) शिवपुरी को (सम्भवतः शिवाने को) जला दिया । इस लिये सलख ने आर्यों के स्वामी संभरी पृथ्वीराज को इसकी सूचना दी । इस पर सामन्तों और कैमास मन्त्री ने पृथ्वीराज से कहा कि पँवारों ने, अपनी धरा को पट्टन वालों के अधीन में गई, समझ कर, (अपना आबू राज धारा वर्ष आदि के स्वार्थी होने से पट्टन राज्य के अधीन समझ कर) अपने बांकेपन को मन में छिपाते हुए आपको निमंत्रित किया है, क्योंकि हे स्वामी ! आपकी ख्याति अनेक प्रकार से प्रचलित है कि तलवार से आपने दुष्टों को कई बार मारा है ।

तपइ[1] तेज चहुवान, भांन ढिल्ली इच्छावर ।
वीर रूप उप्पनौ[2], पन्नु[3] रक्खे जुग्गिनिभर ।।
अब्बूवे[4] अनभंग, जंग खंगो खल दारुन ।
जोग भोग खग मग्ग, नीरु[5] खीत्रियां वधारन ।।
कित्ती अनंत सलखेज भुव, ध्रुव प्रमान धर रक्खई ।।
चव वरन सरन भुज दंड भर, दल दुज्जन भिरि भक्खई ।। २ ।।

प्रा० पा० १, २, ३, ४ दे० । ५ घ० ।

शब्दार्थः—भांन-दिल्ली= दिल्ली का सूर्य । इच्छावर=रानीइच्छनी का स्वामी । पन्नु=प्रण, प्रतिज्ञा । जुग्गिनिभर=दिल्ली के योद्धा । अब्बूवै=आबू राज वंशी । खंगौ=काट देने वाला, नष्ट करने वाला । नीरु=नीर, नूर, कान्ति । खीचियां=क्षत्रियों का । वधारन=बढ़ाने वाला । कित्ती=कीर्ति । ध्रुअ=ध्रुव । चव=चारों । दल-दुज्जन=शत्रु दल । भक्खई=भक्षण कर जायगा, संहार कर देगा ।

अर्थः—हे इच्छनी के स्वामी, दिल्ली के सूर्य स्वरूप चाहुवान नरेश्वर ! आप जिस प्रकार सप्रताप राज्य करते हैं और साक्षात् वीर रस स्वरूप उत्पन्न होकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए दिल्ली के योद्धाओं को अधीन में रखते हैं, उसी प्रकार आबू राजवंशी (सलख जैत्र) भी अभंगवीर है जो युद्ध में भयानक शत्रु को नष्ट करने वाला, (उचित ढंग से) योग, भोग और खड्ग मार्ग पर चलने और क्षत्रियों की कान्ति बढ़ाने वाला है, उसकी पृथ्वी पर अपार कीर्ति है । (उसका साथ देने से) वह आपके भू-भाग को ध्रुव तुल्य अटल रखने में समर्थ है । उसकी शरण में चारों वर्ण हैं अतः वह अपने भुज बल से भिड़कर शत्रु दल का संहार कर देगा ।

अनहल पुर आभ्रंन, राज भोरा भीमंदे ।
देसां गुज्जर खंड, डंड दरिया से बन्दे ।।
सेन सबल चतुरंग, बीर बीरा रस तुंगं ।
अति उतंग अनभंग, बिय न पुज्जै बल जंगं ।।
कलि काल कित्ति मित्ती इतिय, पलटि प्रीति कत जुग करन ।
भोरां नरिंद भीमंग बल, उभै दीन तक्कै सरन ।। ३ ।।

शब्दार्थः—आभ्रंन=आभरण, भूषण । डंड=दंड, कर । दरिया=दरियाव, समुद्र-तट प्रदेश । बिय न=दूसरा कोई नहीं । पुज्जै=पहुँच सकता, समानता कर सकता । मित्ती=मति । इतिय=इति, इति श्री । कत=की हुई । जुग-करन=अपने दोनों हाथों से उभै=दोनों । तक्कै=देखते, चाहते ।

अर्थः—अनहिलपुर पट्टन का भूषण स्वरूप राजा भोराभीम है, जिसने गुर्जर प्रदेश पर शासन होने से, समुद्र तट तक को दंडित कर झुका दिया है, जिसकी चतुरंगिनी सेना सबल है, जिसका वीर समूह वीर रस से परिपूर्ण है वह विशेष उन्नत और अभंग है । उसकी शक्ति के समक्ष युद्ध में उसका अन्य कोई सामना नहीं कर सकता किन्तु कलियुग के प्रभाव से उसकी कीर्ति और बुद्धि की इतिश्री हो गई इसलिए उसने अपनी स्थापित की हुई पुरातन प्रीति को अपने ही हाथों से उलट दिया । (अर्थात् अजमेर और पट्टन का जो पुरातन सम्बन्ध था उसे उसने अपने ही हाथों से तोड़ दिया) भोराभीम के उस (अपार) बल वैभव को देख कर दोनों दीन उसकी शरण चाहते हैं ।

गाथा

तक्कै चालुक्क रायं, त्रैलोकं चरनयं सरनं ।
मुर-खंडं जं बलयं, सा बलयं भीमयंराजं ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—मुर-खंडं=मरु प्रदेश को, मरु प्रदेश के प्रमुख स्थान, आबू को । जं=जो । बलयं=बल ।

अर्थः—त्रैलोक्य भी उस चालुक्य नरेश की शरण चाहता है और मरू प्रदेश (आबू) को जो बल (इस समय) प्राप्त है वह बल एक मात्र राजा भोराभीम का ही है ।

कवित्त

तिन प्रधान आवंत, अरघ सांई सलख्ख दिय ।
दिवस पंच भोजंन, दुजन आदर अदब्ब किय ॥
खट्ट अग्ग संझहसु, पानि[1] कग्गर कर अप्पौ[2] ।
रस रसाल गुज्जरह, नरिंद रायंगन थप्पौ[3] ॥
आरब्ब तेज ताजी ति सल, जर जरीन आभ्रन्न[4] वर ।
देखंत सेख लख्यौ बनै, दुअ सु दीन रिझ्झय सुनर ॥ ५ ॥

ग्रा० पा० १ से ४ पा० ।

शब्दार्थ:—तिन=उसका। आवंत=आने पर। अरघ=संमान। दुजन=बड़ा। खट्टअग्ग=आगे छठे दिन। संझहसु=सायंकाल को। कग्गर=कागज, पत्र। अप्पौ=अर्पित किया, दिया। रस-रसाल=प्रेमोपहार। रायं-गन=राजाओं में। थप्पौ=स्थापित किया, माना। आरब्ब=अरबी। ताजी=ताजी घोड़े। ति=तैसी ही। सल=सलह, शस्त्रादि। भेख=वेश, पोषाक। लग्यौ-वनैं=देखे ही बन आता।

अर्थ:—उस (भोरा भीम) के प्रधान के आने पर सलख जैत्र ने उसका सम्मान कर, तदनन्तर पाँच दिनों तक बड़े शिष्टाचार के साथ आतिथ्य सत्कार किया। तब छठे दिन सायंकाल के समय उस प्रधान ने भोरा भीम के पत्र को सलख के हाथ में देकर कहा कि गुर्जरेश्वर ने तुम्हें राजा माना है और इसीलिए प्रेमोपहार स्वरूप तीव्रगामी अरबी और ताजी जाति के अश्व, शस्त्रादि और वस्त्राभूषण भेजे हैं जिन्हें देखकर दोनों प्रकार के धर्मावलम्बी (हिन्दू और मुसलमान) मुग्ध हो जाते हैं।

दोहा

अब्बूवै है गै समर, समर समप्पन[1] तेज।
समर उभै सम रंग करि, सम रसु पुज्जै हैज ॥ ६ ॥

1. अ० पा० १, घ० पा० दे० का०।

शब्दार्थ:—अब्बूवै=आबूपति, (धारा वर्ष आदि)। है=हय, घोड़े। गै=गय, हाथी। समर=युद्ध। सरम=स्मरण कर, उसके प्रताप को सोचकर। समप्पन=समर्पित कर दिया। रसु=रस, प्रेम। पुज्जै=करेगा। हेज=प्रेम, कृपा।

अर्थ:—जिस भोरा भीमका (ईश्वर तुल्य) स्मरण कर (प्रताप देखकर, सोचकर) वर्तमान आबू पति (धारा वर्ष) हाथी घोड़े सहित अपना प्रताप युद्ध में समर्पित कर चुका है। इस बात को सोचते हुए तुमको भी चाहिये कि तुम दोनों सलख जैत्र भी उसी के समान प्रेम रक्खोगे तो वह भोरा भीम तुम्हारे पर भी वैसाही प्रेम रखता हुआ तुम्हें चाहेगा (कृपा रक्खेगा)।

कवित्त

जै अब्बू वै भार, लाज अब्बू गँज रख्यौ,
मान प्रमान सम दान, अंग कवितन कवि सख्यौ ॥
डोलौ लंमन होइ, घाइ बज्जै रस भीरं।
सलख सुतन पामार, समद लज्जा मुख नीरं ॥

मिलि मंत तंत इक्क सु करन, करक कसस स गुनं सुबर ॥
संवरन मंत मंतह खन, भान दांन दिख्यै सुबर ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—जै=जो । वै=आबूपति । [धारावर्ष] गँज रख्यौ=दबारक्खा, दबाने वाला । प्रमान=योग्य । सख्यौ=सखा, प्यारा । डोलो=डोला, विचलित हुआ । नमन होइ=नंमन होइ, नम्र न होकर । घाइ=घाव, आघात । भीरं=भीरुओ पर । पामार=प्रमार । मंत=मंत्रणा । तंत=तत्व । करक=कड़ाके के साथ, चटाके साथ । कसस=ऐंची । स-गुनं=अपने धनुष की डोरी, अपने धनुष की प्रत्यंचा । संवरन मंत=युद्ध मंत्रणा । मंतह-खन=मतवाला राजवंशी । भान=सूर्य । दांन=द्रोण ।

अर्थः—भार स्वरूपी आबूपति (धारावर्ष) को दबाने वाला सलख पुत्र जैत्र आबू की लज्जा स्वरूप था । उसकी जितनी प्रतिष्ठा थी, वह उतना ही दानी भी था और वह कवियों को कविता के अंगो के समान प्रिय था । वह (भोरा भीम के द्वारा कथित) इस संदेश को सुन कर न तो नम्र हुआ और न विचलित ही हुआ । वह प्रमार-वीर भीरु शत्रुओं पर (वीर) रस का आघात करने वाला मदयुक्त था । उसके मुख पर लज्जा और कांति सुशोभित थी । ऐसे उस वीर ने, अपने साथियों से तत्व युक्त ऐक्य मंत्रणा करके आवेश में तीव्रता से धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा कर, युद्ध करने की मंत्रणा निश्चित की । उस समय वह मतवाला राजवंशी सूर्य या द्रोण सा दिखाई पड़ा ।

तेग भारि पंमार, जैत जगहत्थ बत्त किय ।
मंगै हैल सु गल्ह, तात अविवेक छित्ति दिय ॥
भोरा भीम नरिंद, बंध पाखण्ड प्रगट्टै ।
आकर्षन मोहन सु[1] मंत्र, जंत्र जुग्गहि[2] जै पट्टै ॥
धन[3] द्रव्य देसु[4] बसि[5] बल करन, जानै ना उत्तर अर्‌यो ।
धाराधिनाथ धारी धरनि, बहल बेल नाथह धर्‌यौ ॥ ८ ॥

ग्रा० पा० १ घ० । २ पा० घ० । ३, ४ घ० । ५ पा० ।

शब्दार्थः—जगहत्थ=जागृत होने वाला । हल=हलों । गल्ह=गल्हों । बंध=बंधु गण । अर्‌यौ=अड़ा हुआ हूं । धारी=पकड़ी । बेल नाथह=शिव ने ।

अर्थः—उस युद्ध में जाग्रत होने वाले उस जैत्र प्रमार ने तलवार जमीन पर मार कर कहा कि वह (भोराभीम) गल्हों (असत्य प्रचार) तथा हल्हों (व्यर्थ के

कोलाहल) द्वारा पृथ्वी की मांग करता है और हमारे भाई ने (धारा वर्षादि) उसे अपने अविवेक के कारण सरलता पूर्वक पृथ्वी (आबू राज्य दे दी (अधीन कर दिया)। भोराभीम इस तरह हम भ्राता गणों में पाखण्ड फैलाता है। उसके प्रान्त में आकर्षण, मोहन मन्त्र और तन्त्र की ही प्रमुखता है (जैनी और यतियों के तांत्रिक जाल की ही प्रमुखता है) वह विशेष द्रव्य सम्पन्नता के बल पर ही दूसरों को वश में करना जानता है, किन्तु उसे यह ज्ञात नहीं कि मैं उत्तर में (आबू के उत्तरी भू भाग पर) अड़ा हुआ हूं। इस प्रकार उस धार राज वंशज ने पृथ्वी को दृढ़ ग्रहण किया अपनी राज्य रक्षा में लगा) और उसी समय शिवने भी नंदी को युद्ध क्षेत्र में जाने के लिए ग्रहण किया।

गाथा

नत्थांनी घन-घत्ती, खग्गह तमस उज्जलौ खरयं।
सोयं जैत कुमारं भारथ नत्थेव नथ्थयो धरयं ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—नत्थांनी=नाथ। घन-घत्ती=बहुत सो के ढाल दी। तमस=तामस। खरयं=चला कर। भारथ=महा भारत में। नत्थेव=न हुवा। नथ्थयौ=नहीं।

अर्थः—अनेकों को नाथ लेने वाला और तामस युक्त होकर उज्जवल खड्ग चलाने वाला वह जैत्र कुमार ऐसा था जिसके समान न तो महाभारत युद्ध में ही कोई योद्धा हुआ और न कोई पृथ्वी पर ही होगा।

कवित्त

तेगझारि[1] पावार[2], जैत जगहथ्थ उचारिय।
अरे भीम पाखंड, सत्र डंडह हनि जारिय ॥
है खुर खग्ग सु भूमि, दान विद्या अधिकारिय।
रूप दान रस ग्यान, तत्त नह मत्त विचारिय ॥
भोरे सुमत्ति भूलै अवर[3], बुद्धि समर साधन[4] सकल।
पर धान बंध कीजै मतौ, रथ जुत्तह खट्टूम कल ॥ १० ॥

प्रा० पा० १, २ घ०। ३ घ० पा०। ४ सर्व प्रति

शब्दार्थः—है खुर=घोड़े के सूम। रस=प्रेम। वंध=बंधन।

अर्थ:—युद्धार्थ सचेत रहने वाले जैत्र प्रमार ने तलवार को जमीन पर फटकार कर कहा-अरे पाखण्डी भीम ! तू डंडे द्वारा (भय दिखाकर) शस्त्रों को (शस्त्र धारियों को) नष्ट करना चाहता है। तुझे यह ज्ञात रहे कि पृथ्वी घोड़े के सूम और तलवार के बल पर है, दान देना विद्या के अधिकार में है। रूप के साथ प्रेम और ज्ञान के साथ दान का सम्बन्ध है इस तत्व को उसने अपनी बुद्धि से नहीं विचारा। वह भोली मति वाला (मूर्ख) अन्य के भरोसे भूल बैठा है। उसे यह ज्ञात नहीं कि बुद्धि को ही सब तरह से युद्ध का साधन माना गया है। अतः उसने अपने मंत्री और बंधुओं को मंत्रणा दी कि अब अपने सुन्दर रथों को जोतकर खट्टू की ओर बढ़ाना चाहिये (अतः पुर को खट्टू स्थान पर सुरक्षित रखना उचित है)।

वंधि थान[1] पारवान[2], थान थानह द्रब संचिय।
ता पच्छै है गै भँडार, अप्पन धर खंचिय[3]।
ता पच्छै सामंत, नाथ मिलि एक सुबत्तिय।
भोरा राइ दिसान, सैंध सगपन की कथ्थिय॥
आरब्ब-तेज गढ़ उद्धरन, खेम करन खंगार सिर।
मुरदेस सलख सुत जैतसी, नवसु कोटि नागौर नर॥ ११॥

ग्रा० पा० १, २, ३ पा०।

शब्दार्थ:—द्रब=द्रव्य। संचिय=संचित। खंचिय=खींचा, चलाया, बढ़ाया। सामंत-नाथ=पृथ्वीराज। सैंध=संदेश सूचना। आरब्ब-तेज=तेज अरबी घोड़े। मुरदेस=मरुदेशीय।

अर्थ:—समस्त द्रव्य का संचय कर उसे यत्र तत्र भूगर्भ में छिपाकर प्रस्तर खण्डों से ढ़क दिया। तत् पश्चात् हाथी, घोड़े और शेष भंडार को दुर्ग से बाहर निकाल कर अपने भूभाग की ओर अग्रसर किया और तब पृथ्वीराज से मंत्रणा-एक्य स्थापित-कर आये हुए प्रधान द्वारा भोरा भीम को अपने और पृथ्वीराज के सम्बन्ध की सूचना दी। इस प्रकार मरुप्रदेश स्थित नव दुर्गों में से नागौर के शासक सलख पुत्र जैत्र ने गढ़ के उद्धार का भार तीव्र गामी अरबी अश्वों, क्षेमकर्ण और खंगार के सिर पर दिया।

साटक

जा रख्या हय गर्व प्रीछित रिखं, दावा नलं जालयं।
सोयं मातुल नंद बद्धि[1] सलिता, कालिनदिनौ[2] प्रीतयं॥

जिं रख्यौ बर पानि प्रब्बत महा, गोवर्द्धनं धारनं ।
सोयं सा हरि रिक्खि धूवति वरं, जे दृढ़ गोकलेश्वरं ॥ १२ ॥

ग्रा० पा० १ २ सं० ।

शब्दार्थः—जा=जिसने । रख्या=रक्षा की । हय-गर्व=हत गर्भ, नष्ट हुए गर्भ की । प्रीछत=परिक्षित । रिखे=रख लिया, बचा लिया, रक्षा की । जालयं=जारयं, पान किया । मातुल=मामा कंस । नंद=न्यंद, निन्दित । सलिता=सरिता । कालिन्दी=यमुना । नो=से । जिं=जिसने । सोयं-सा=ऐसे वही । रिक्खि=रख-लिया । धूवति=उस ध्रुवको ।

अर्थः—जिसने (अश्वत्थामा द्वारा) उत्तरा के गर्भ नाश को बचाकर गर्भ में परिक्षित की रक्षा की और दावानल का पान कर लिया, उसी ने अपने मातुल (कंस) को निंदित कर उसका वध किया और उसी ने कालिन्दी नदी से प्रेम (वरण) किया। जिसने अपने श्रेष्ठ हाथ पर महान् गोवर्धन पर्वत को धारण किया (बृज की रक्षा की), उसी हरि ने श्रेष्ठ भक्त ध्रुव की रक्षा की, ऐसे (भक्तों के लिये) दृढ़ रहने वाले गोकलेश्वर की जय हो ।

दोहा

जिन रक्खी हरि भक्तिवर, दै हथ्थह[१] हम तेग ।
दुहुन भंति मंडन मरन, सुरनर रक्खौ वेग ॥ १३ ॥

ग्रा० पा० १ घ० पा० का० ।

शब्दार्थः—तेग=तलवार । भंति=भांति । मंडन=शोभा प्रद । सुर-नर=नरों में देवता स्वरूप, ब्राह्मण । वेग=शीघ्र ।

अर्थः—जिस ईश्वर ने भक्ति स्थापना के लिए देवस्वरूपी ब्राह्मणों को ज्ञान एवं हमारे हाथों में तलवार दी उस भक्ति और शस्त्र गौरव को बनाये रखने के लिए हमारा मरण शोभाप्रद है। अतः हमें देवस्वरूपी उन ब्राह्मणों की जैन धर्मावलम्बी चालुक्यों से शीघ्र रक्षा करनी चाहिए ।

जिहि द्यनौ जीयन-मरन, दई हथ्थ हम तेक ।
औरु ए च्यंतनु च्यंतियै, सो रण रक्खे एक ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—धंनो=देकर । जीयन-मरन=जन्म—मृत्यु, आवागमन । तेक=तलवार । औरुण=अन्य किसी का नहीं । च्यंततु=चिन्तन ।

अर्थः—जिस प्रभू ने प्राणियों के लिए संसार में आवागमन बनाया और हम क्षत्रियों के हाथ में तलवार दी, उसे छोड़ कर अन्य किसी का हमें चिंतन नहीं करना चाहिए, क्योंकि केवल वही एक प्रभू रण में हमारी रक्षा कर सकता है।

कवित्त

(तब) भीम वत्त सलखान, जैत बंधौ उच्चारिय ।
भूमि तात अप्पनी, रूधिर छटै[1] गल सारिय ॥
आदि अवनि व्यौहार, धनी धर धारण[2] खंडै ।
धनु[3] लुट्टत[4] गोआल, परह पुक्कार न छंडै ॥
दिख्खियै[5] दीन घर घर फिरै, गरूअत्त न हरूअत्तनै ।
निद्रा पियास छुध मोह तजि, दुख्ख सुख्ख इक्क न गनै ॥१५॥

ग्रा० पा० १ का० । २ दे । ३ दे० । ४ पा० । ५ दे० ।

शब्दार्थः—बंधौ=भाइयों को । सारिय=सबको, या लोहे द्वारा । व्योहार=व्यवहार, कर्तव्य । धारण खंडै=खड्ग धाराओं द्वारा कट पड़े । धनु=धन, गोधन, पशुधन । गोआल=ग्वाल । परह=औरों को । गरुअत्त न=गौरव नहीं । हरूअत्तने=हलकापन । छुध=क्षुधा, भूख ।

अर्थः—फिर सलखानी जैत्र ने अपने भाइयों को भीम का संदेश सुनाया और कहा—हे भाइयों ! यह पृथ्वी अपनी है । इसे हम अपने गले के रूधिर से सींचकर तृप्त करेंगे । पृथ्वी पर आदि से हमारा कर्तव्य प्रख्यात है कि पृथ्वी का स्वामी, पृथ्वी के लिये युद्ध करता हुआ, खड्ग धाराओं के प्रहारों द्वारा कट पड़ता है । कहते हैं कि पशु धन के लूटे जाने पर ग्वाल, औरों को नहीं पुकार कर, स्वयं ही उनकी रक्षा कर लेता है । तुम देखते नहीं कि हमारी दीन प्रजा शत्रुओं (चालुक्यों) के उत्पात से घर-घर की हो रही है । इसमें हमारा गौरव नहीं, हलकापन ही है । अतः हमको पृथ्वी और प्रजा के लिये निद्रा, प्यास, भूख और मोह को छोड़कर दुःख सुख की परवाह नहीं करनी चाहिये ।

दोहा

हरूअ घरघ्घर बुल्लियै, कुजस कहै सब कोइ ।
बहु उचार मुख उच्चरै, जुद्ध बिना इलि खोइ ॥१६॥

शब्दार्थः—हरूअ=हलके । बुल्लियै=बोले जाते, कहे जाते । बहु उच्चार=विविध बातें । इलि= इला, पृथ्वी ।

अर्थः—(जिन्हें प्रजा और पृथ्वी-रक्षा का ध्यान नहीं होता) ऐसे व्यक्ति प्रत्येक गृह में हलके कहे जाते हैं और उनका सब कोई अपयश करता है। जो बिना युद्ध किये पृथ्वी खो बैठते हैं, उनके लिये प्रत्येक मुख से अनेक बातें कहीं जाती है।

सकल परिग्गह एक किय, खट दिस पूजा सद्धि ।
कागर दै चहुवान कौं, पठइय दूत समद्धि ॥१७॥

शब्दार्थः—परिग्गह=परिवार । एक-किय=एकत्रित कर । खट=खट्टू । पूजा=पूगे,पहुँचे । सद्धि= सिधा कर, प्रस्थान करके । कागर=कागद, पत्र । समद्धि=सम्बन्धी ।

अर्थः— इसके पश्चात् समस्त परिवार को एकत्रित कर वहाँ से प्रस्थान करके खट्टू की ओर पहुँचे और उन पृथ्वीराज के सम्बन्धी प्रमारों (सलख जैत्र) ने पत्र देकर पृथ्वीराज के पास दूत भेजा ।

सुनि कग्गर नृपराज पृथु, भौ आनंद सुभाइ ।
मानौं बल्ली सूकते, बीरा रस जल पाइ ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—कग्गर=कागज, पत्र । नृप-राज=राजाओं के राजा । पृथु=पृथ्वीराज । भौ=हुआ । सुभाइ=स्वाभाविक । वल्ली=बेली, लता ।

अर्थः—सलख-जैत्र द्वारा प्रेषित पत्र को सुनने पर राजाओं के राजा पृथ्वीराज को इस प्रकार स्वाभाविक हर्ष हो आया, मानों सूखती हुई (उत्साह रूपी) लता को वीर रस रूपी जल प्राप्त हुआ हो ।

कवित्त

पंच हथ्थि[1] सत बाजि, द्रव्य ध्यन्नौ[2] सतपंचं ।
धर मत्ती मेवात, ध्यन्न[3] ध्यन्सार[4] सुखंचं[5] ॥
तेग इक्क[6] खुरसानि, इक्क माला गुनदानं ।
आदर संजुत बोलि, मुक्कि मंत्री अगिवानं ॥
वड भाग[7] राज सोमेस सुश्र, (कहि) सलखराज आगम[8]अवन[9] ।
सुनि वत्त[10] राय भीमंग[11] हिय, मनहु[12] घाइ[13] ध्यन्नो[14] लवन ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १ से १४ दे० ।

शब्दार्थः—हथ्थि=हाथी । सत=सात । द्रव्य=द्रम्म, मुद्रायें । ध्यन्नो=दिया । सत-पंच=पांचसौं । मत्ती=मतवाली, अच्छी उपजवाली । ध्यन्न=दिया । ध्यंसार=हिंसार । सुखंचं=प्रसन्नता पूर्वक । गुनदानं=जिसकी गिनती नहीं, अमूल्य । मुक्कि=छोड़ा, रवाना किया, भेजा । अगिवानं=अगवानी को । सलखराज=सलख-जैत्र । अवन=अवनि, भूभाग ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने सलख जैत्र को प्रसन्नता पूर्वक पांच हाथी, सात घोड़े और पाँचसौ मुद्राओं के साथ मेवात का मतवाला भूभाग (जहाँ उत्तम कृषि होती थी) एवं हिंसार के परगनों का पट्टा दिया । उसी के साथ एक खुरासानी तलवार और एक अमूल्य माला भी भेजी और उनको अगवानी के लिये अपने मंत्री को भेजकर उन्हें आदर सहित अपने पास बुलाया । सलखजैत्र के आने पर पृथ्वीराज ने कहा-आज मुझ राजा सोमेश्वर के पुत्र का सौभाग्य हैं कि आप मेरे भूभाग में आये । यह बात जब राजा भोरा भीम ने सुनी तो उसके हृदय की ऐसी दशा हो गई मानो घाव पर नमक छिड़का हो ।

दोहा

गढु साह्यौ, सुनि भीमने, कन्यावर पृथ्वीराज ।
बोलि मंत्रि सज्जन कह्यौ, दुंद[1] बजाने[2] बाज[3] ॥ २० ॥

ग्रा० पा० १ से ३ दे० ।

शब्दार्थः—गढु=गढ़, दुर्ग । साह्यौ=पकड़ा, घेरा । कन्यावर=कुमारी के पति । सज्जन=सजने को । दुंद=द्वंद्व, जोरों से, ऊँचे स्वर से । बजाने=बजे । बाज=बाजे, वाद्य ।

अर्थ —(लौट कर आये हुए मंत्री द्वारा) जब भोरा भीम ने सुना कि सलख जैत्र ने उसके संदेश को ठुकराते हुए यह भी धमकी दी है कि जानते नहीं, 'मेरी कुमारी (इच्छनी) का पति दिल्ली पति पृथ्वीराज है', तो उसने सलख जैत्र के दुर्ग को घेरना निश्चय कर अपने मुख्य मंत्री को बुला कर युद्ध की तैयारी करने की आज्ञा दी। जिससे ऊँचे स्वर से रणवाद्य बजने लगे।

किित्तिक वत्त सोमेस सुव, तुँव रक्खे पामार।
विट्ठि अवाई जट्ट जढ, गल्ह पुरे गामार ।।२०।।

ग्रा० पा० दे०।

शब्दार्थः—तुँव=तुम। विट्ठि=बैठकर। अवाइ=आकर, पंचों के बैठने का स्थान,चौराहा। जट्ट=जाट, जाति विशेष। जढ़=जड़, मूर्ख। गल्ह पूरै=गप्पें हाँकता। गामार=गँवार।

अर्थः— भीम मन ही बोला कि हे पृथ्वीराज ! तू प्रमारों को क्यों कर शरण देता है। मूर्ख जाट जैसे पंचायती स्थान पर बैठकर बातें करते हैं वैसे ही तू गँवारों की सी गप्पे हाँकता है।

धुर धारी खुर खुंदिधर, कंध कढें गल गाजि।
विनु वल भिरैं वयल्ल लों, भिरतैं चालैं भाजि ।।२१।।

ग्रा० पा० दे०

शब्दार्थः—खुर खुंदि धर=पैर से पृथ्वी को खोदता हुआ। कढ़ें=उठा कर। गल गाजि=टांडता है। वल=बल। वयल्ललों=बैल के समान। भाजि=भाग जाता है।

अर्थः—जिस प्रकार शक्ति हीन बैल व्यर्थ ही अपने खुरों से पृथ्वी को कुरेदता हुआ (खोदता हुआ) धुरा को धारण कर, कंधा उठाकर टाँडता है (व्यर्थ ही शौर्य प्रदर्शित करता है) उसी प्रकार यद्यपि तू आडम्बर प्रदर्शित करता है किन्तु सामना होते ही भाग जाता है।

कवित्त

जंपि राज[1] भोरा भुवंग[2], अंग, कंपे रस बीरह।
विसम[3]भार[4] उरधार[5],वारि[6] बोरहुँ[7] अरि[8] नीरह।।
दिसि दिसान कग्गर प्रमान, फट्टै[9] पट्टनवै ।।
वारिधि बंदर स्यंध[10] वान, बाज सोरठ ठट्टनवै ।।

कच्छेनि जथ्थ जद्दो[11] जहर, सेन इक्क भए आनि भर ।
चालुक्क राइ चालंत दल, अम्मर घुम्मर घमड वर ॥ २२ ॥

ग्रा० पा० १ से ११ दे० ।

शब्दार्थः—जंपि=कहने लगा । भुवंग=भीम । अरि-नीरह=शत्रु के पानी को, शत्रु के नूर को । फट्टे=फटे, लिखे गये । वारिधि-बन्दर=समुद्र-तट । स्यंध-वान=सिंध के रहने वाले । सोरठ-ठट्टनवै=सौराष्ट्र समूह । कच्छेनि=कच्छवासी । जथ्थ=जहाँ, या युथ । जद्दों=यादव (भाटी) क्षत्रिय । अम्मर=बादल । घुम्मर=घुमड़ना । घमड=घुमड़ना ।

अर्थः—भोरा भीम के अंग प्रत्यंग वीर रस के उत्साह से फड़क उठे और वह कहने लगा कि मैं अपने हृदय में विषम ज्वाला को धारण कर शत्रु समूह की कान्ति को जलमग्न कर दूँगा । उसी समय पट्टन प्रान्त की प्रत्येक दिशाओं– समुद्र तटीय देशों– सिंध, सौराष्ट्र, ठठ्ठा, कच्छ प्रान्त, एवं जहाँ हलाहल विष स्वरूपी यादव (भाटी) निवास करते हैं, वहाँ पत्र भेजे गये, जिससे सब वीर ससैन्य आकर एकत्रित हो गये । तब उस चालुक्य नरेश की सेना इस प्रकार उमड़ती-घुमड़ती हुई चली, मानों बादल घुमड़ रहे हों ।

मिलिय सेन भीमंग, जानु टिड्डिय वरिखागम ।
अग्गनीर पछ्छ कीच, भीच गर्जंत जुद्ध क्रम ॥
तरणि तेज सम तुंग, गुंग नीसान गहिर रव ।
सिलह क्रंति चमक्रंति, डक्क उठंति जानु दव[1] ॥
हलमलत हयद्दल हींस हय, गज गुमान गुंजत गरुत्र ।
हाकंप संक संकत सहर, खोदि करत उप्पर तरुत्र ॥ २३ ॥

ग्रा० पा० १ दे० ।

शब्दार्थः—वरिखागम=वर्षागम, वर्षा का आगमन । अग्ग=आगे । पछ्छ=पीछे । भीच=भीमकाय । गुंग=गड़ गड़ा रहे थे । क्रंति=कांति । डक्क=दहक । दव=दावाग्नि । हलमलत=हलचल होने पर । हयद्दल=अश्वारोही सेना । हींस=हिनहिनाहट । गुंजत=गर्जना करते हुए । हाकंप=हुंकार । सहर=सिहर, शिखर । उप्पर तरुत्र=उथल पुथल ।

अर्थः—भीम की सेना इस प्रकार एकत्रित हुई, मानों टिड्डी दल हो, या वर्षा का आगम दिखाई पड़ता हो । सेना के चलने पर उसके अग्रभाग को जहाँ जल दिखाई देता

था, वहाँ उसके पश्च भाग को कीचड़ मिलता था। युद्ध भूमि में चलते हुए भीमकाय वीर गर्जना कर रहे थे। उनका तेज सूर्य के समान दिखाई पड़ता था। उस समय नक्कारे गहरी आवाज से गड़ गड़ा रहे थे। वीरों के कवचों की कांति इस प्रकार चमक रही थी, मानों दावाग्नि दहक उठी हो। अश्वारोही सेना में हलचल होने पर घोड़ों की हिनहिनाहट हो रही थी और मदाभिमानी गजसमूह गंभीर गर्जना (भीषण चिंघाड़) कर रहे थे। हुंकार की शङ्का से गिरि-शिखर शंकित हो रहे थे। वे इस प्रकार उथल पुथल होरहे थे, मानों उन्हें खोदकर ऊपर नीचे किया गया हो।

गाथा

मत्ता मेघ दिसानं, रिस्सानं चालुक्कं वीरं[1]।
नैनं तेज ति तुट्ठं, ज्यौं तत्ताइं अग्गियं बुद्दं ॥ २४ ॥

ग्रा० पा० १ दे।

शब्दार्थः—दिसानं=दशा, हालत, तरह। रिस्सानं=रीस, क्रोध। तेज=प्रकाश, ज्वाला। तुट्ठं=तुट्टं, टूट पड़ी, फैलगई। तत्ताइं-अग्गियं=तप्त-अग्नि, प्रज्वलित अग्नि। बुद्दं=बुदबुदे, चिनगारियां।

अर्थः—उस समय चालुक्य वीर क्रोध से उमड़ते हुए मतवाले मेघों की तरह दिखाई पड़े। उनके नेत्रों से तेज (ज्वाला) इस प्रकार फैल रहा था, जैसे प्रज्वलित अग्नि से चिनगारियाँ छूट रही हों।

दोहा

ठानिज्जै मानिज्ज मत, हानिज्जै गुर ग्यान।
वेद धर्म जिन भंजए, जैन ध्रंम परिमान ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—ठानिज्जै=ठानना चाहिये, समझना चाहिये, मानना चाहिये। मानिज्ज=मान्य। मत=भांति, तरह। हानिज्जै=हनिये, नष्ट करिये। जिन भंजए=नहीं भजें, उपासना नहीं करैं। परिमान=मानले, मानकर चले।

अर्थः—उन चालुक्यों ने प्रमार क्षैत्र में यह आदेश प्रसारित किया कि सभी व्यक्ति अपने सद्गुरु ज्ञान को नष्ट कर के वेद धर्म की उपासना न कर, जैन धर्म को मुख्य रूप से मानकर चलें (कोई भी जैन धर्म के विरुद्ध नहीं चले)।

चढ्यो भीम भोरा[1] सुभर, अप्पूरणि[2] निसि अद्ध।
रौरि परी गढ़ उप्परे, भेद सबै बलु[3] खद्ध ॥ २६ ॥

ग्रा० पा० १ से ३ दे०।

शब्दार्थः—अप्पूरणि=व्यतीत न हो पाई। अद्ध=आधी। रौरि=हलचल। परी=मचगई। बलु=बल। खद्ध=नष्ट कर दिया।

अर्थः—अर्धरात्रि भी व्यतीत भी न हो पाई थी कि उसी समय हम्मीर नामक किसी व्यक्ति से भेद लेकर भोरा भीम सलख जैत्र के गढ़ पर चढ़गया, जिससे गढ़ में हलचल मचगई। उस भेद ने ही प्रमारों के बल को नष्ट कर दिया।

गाथा

बलभे बलभो बातं, नह अच्छी बिय भेदयौ भेदे[1]।
मेदै अच्छरि कुलयं, पावार प्रीति[2] बालायं ॥ २७ ॥

ग्रा० पा० १ घ० पा० २ पा०।

शब्दार्थः—बलभे=वल्लभ, मित्रों से। बलभो-बातं=मित्रता की बातें, व्यवहार। बियं=दूसरी, विपरीत। अच्छरि=अप्सरायें। पावारं=प्रमार।

अर्थः—(यह देख कर दुर्ग रक्षक प्रमार बोला) प्रमार वीर मित्रों से मित्रता का व्यवहार करते हैं; उसके विपरीत भेद नीति को अपनाना अच्छा नहीं समझते। वे यदि किसी के हृदय को भेदते हैं तो केवल अप्सराओं के हृदय को ही भेदते हैं और उन्हीं बालाओं (अप्सराओं) से प्रेम भी करते हैं।

दोहा

हंकार्‌यों खंगारणे, रे हंमीर गँवार।
चालुक्का चढि को सकै, मै सुधि लही अबार ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—हंकार्‌यो=हुंकार की (या ललकार कर आगे कर लिया)। खंगारणे=खंगार प्रमार ने। को=कौन। सुधिलही=सावधान हो गया। अबार=अब।

अर्थः—भेद दाता हम्मीर नामक व्यक्ति पर दुर्ग रक्षक खंगार प्रमार ने हुँकार की (या उसको ललकार कर आगे करलिया)। और कहा! हे गंवार! देखताहूं, अब कोई चालुक्य गढ़ पर कैसे चढ़ सकता है? मैं अब सावधान हो गया हूं।

कवित्त

खीमकरण[1] खंगार, उद्ध उद्धरण गह्यौ गिरि ।
बल[2] बरसिंघ[3] ततार, सार लग्गौ प्रहार सिरि ॥
मंस अंत नु टुट्टई, वीर वंटई जरा ज्यौं ।
जरासंध जोरयौ, जोर रब्खी दुव पा ज्यौं ॥
दिखि रत्त[4] मत्त मत्ती उमा, जै जै जै जंपै सुभर ।
पांमार पंच पंचौ[5] मिलै, रह्यौ इक्कु औसाफु धर ॥ २६ ॥

ग्रा० पा० १ घ० । २ से० ५ दे० ।

शब्दार्थः—उद्ध=ऊर्ध्व । बल=बलराय । ततार=तेज, वेग से बढ़ने वाला । सार=लोहा । सिरि=सिरपर । मंस=मांस । अंत=आँतें । जोर=जोड़ । पा=पाई, दिखाई पड़ी । रत्त=रक्त । पंच=पांचों तत्व । औ साफु=पराजय का अभिशाप (मिथ्या वाद) ।

अर्थः— तब क्षेम करण, बलराय, वीर खंगार और उद्धरण ने दुर्ग स्थित ऊर्ध्व गिरि का भार ग्रहण किया और बलराय तथा जोशीले वरसिंह ने भी शत्रुओं पर शस्त्र---प्रहार करना शुरु किया । उस समय उन वीरों का मांस तथा आँतें कट पड़ी और उनके शरीर के टुकड़े २ हो गये । लेकिन जरा ने जिस प्रकार जरासंध के शरीर को जोड़ दिया था, उसी प्रकार इन वीरों के दोनों हिस्से फटे हुए होने पर भी जुड़े हुए के समान दिखाई पड़े । उन मतवालों के रक्त से देवी प्रमत्त दिखाई पड़ी, और बहादुरों का जय २ कार करने लगी । वे पाँचों प्रमार (क्षेमकरण, खंगार, उद्धरण, बलराय और वरसिंह) पंच तत्व में मिलगये; केवल पराजय का अभिशाप (मिथ्यावाद) ही पृथ्वी पर रह गया ।

परै जुम्भिफ रणधीर, मरण भौ छंडि जम्म धर ।
पुत्र मित्र सज्जन सु लच्छि, टरै नन काल चालछर ॥
धरी लच्छी धरुधरयौ, धार उद्धारि पवारं ।
सह परिगह छह पुत्त, तुट्टि धारा-धर धारं ॥
धुत्र धाइ भ्यंम लीनो सु गढ़, सुकल पुख्ख[1] पुण्यो[2] स दिन ।
गढ़ चढ़यौ भोर भीमंग सुनि, नभ लग्यौ सलखानि[3] तन ॥ ३० ॥

ग्रा० पा० १ घ० २, ३ दे० ।

शब्दार्थ:—जुम्भिम=जूभकर । भौ=भय । जम्मधर=जन्मभूमि । छर=छल । धरु=धड़ । छह-पुत्त=छः पुत्र । धारा-धर=खड्गधारणकर्ता । धारा=खड्ग । ध्रुअ=निश्चय । भ्यंम=भीम । पक्ख=पक्ष । पुण्यौ स दिन=पूर्णिमा के दिन । भोर-भीमंग=भोरा भीम ।

अर्थ:—इस प्रकार वे रणधीर वीर मृत्यु का भय छोड़कर जन्म भूमि के लिये झूम कर (युद्ध कर) धराशायी हुए । सत्य है-काल की छद्म चाल के आगे मित्र, पुत्र, सज्जन और लक्ष्मी कोई भी नहीं बच सकते । लक्ष्मी वहीं की वहीं धरी रह गई और वह मृत काया भी वहीं पड़ी रही । उन प्रमारों ने अपने धार राज वंश का उद्धार किया (धार राज वंश को निष्कलंक रक्खा) और तलवार के धारण कर्ता छह पुत्रों और साथियों सहित खड्ग-धार द्वारा कट कर गिर पड़े । इस प्रकार निश्चय रूप से बढ़ कर भीम ने शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के दिन दुर्ग को ले लिया । इधर गढ़ पर भीम को चढ़ा हुआ (अधिकार किये हुए) सुन कर सलख जैत्र का शरीर नभ से जा लगा (क्रोध से उन्मत्त हो गया)

दोहा

एक मास दिन पंच रहि, गढ़ मुक्यौ तिन बार ।
पट्टनवै पट्टन गयौ, अब्बूवै सिर भार ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ:—तिनबार=उस समय । पट्टनवै=पट्टन पति । अब्बूवै=आबू वाले के । सिर-भार=गढ़ रक्षा का भार ।

अर्थ:—सलख जैत्र के दुर्ग पर एक मास और पांच दिन रह कर पट्टन पति ने दुर्ग को छोड़ दिया और उसकी रक्षा का भार आबू वाले (धारा वर्ष) के सिर पर देकर पट्टन को प्रस्थान किया ।

कवित्त

वाहन वटि सौ तुरंग, चमर पसमी चौरंगा ।
पंच-घाट-पंचास, अस्सि तंबोली खंगा ।
उभय मत्त गजराज, सेत बलभद्र समानं ।
लिखि कग्गर चालुक्क, बोलि सारंग मकवानं ॥
सा लोभ अंग नन भूठ मन, चित उदार सच्ची कहन ।
इन दूत सुलच्छिन होंहि नृप, तब सु राज हत्थह गहन ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ:—वाहन वटि=अच्छे घोड़ों वाला देश, कच्छ, काठियावाड़ । चौरंगा=चार रंग वाले, या चौसरें ढलने योग्य । पंच-बाट पंचास=पांच कम पचास-४५ । असिस=असि, तलवारें । तंबोली=ताम्रवर्ण की आमन (जलह, एक प्रकार की कलई या चमक जो तलवार पर की जाती है) की हुई । खंगा=काट करने योग्य । सेत=श्वेत । बलभद्र=बलराम, कृष्ण के बड़े भाई । मकवानं=मकवाना (झाला) क्षत्रिय । सा=वह । नन=नहीं । राज-हथ्थह-गहन=राज्य-व्यवस्थार्थ हस्तगत रखना चाहिये ।

अर्थ:—तब (भोरा भीम ने गौरी शाह के पास) सारंगदेव द्वारा कच्छ देशीय सौ घोड़े, चौसरें चलाने योग्य मुलायम चमर, ताम्रवर्णी (आमन की हुई) और अच्छा काट करने वाली ४५ तलवारें, बलराम के समान दो श्वेत गजराज भेजने का निश्चय किया । उस सारंगदेव मकवाने के अंग को लोभ और मन को झूँठ ने नहीं छुआ था । वह उदारचित्त और सत्य बोलने वाला था । कवि कहता है कि इन लक्षणों वाले दूतों को भली प्रकार राज्य-व्यवस्थार्थ हस्तगत रखना चाहिये ।

दोहा

सुनि कग्गर गोरी गरुअ, कर खंची कम्मान ।
कै भंजौ मेछानि दल, कै रंजौं खुरसान ।।३३।।

शब्दार्थ:—गरुअ=गर्वीले । खंची=ऐंची । मेछानि दल=अपने साथियों के दल को, यवन सेना को । रंजौं=प्रसन्न कर दूंगा ।

अर्थ:—सारंगदेव मकवाने द्वारा प्राप्त हुए पत्र को सुनकर अभिमानी गौरीशाह ने कमान को हाथ में लेकर खींचा और बोला कि या तो मैं अपनी यवन-सेना को नष्ट करवा दूंगा अथवा खुरासान प्रदेश को प्रसन्न कर दूंगा ।

कवित्त

खां ततार खुरसान, खांन न्याजी खां रुस्तम ।
खां पिरोज पाहार, वली निसुरत्ति जुद्ध जम ।।
तुंगीखां निरहुंति, अग्गिवानी मुख पानी ।
द्वै उज्जवक्क उजाक, रेह रक्खन मैदानी ।।
चालुक्क लिखै कग्गद जुवै, वखत वांन दस्सन दुनम ।
हम्मीर मिले हंमीर वर, वर भीमानी भीम रम ।।३४।।

शब्दार्थः—निरहुंति=नृशंसकारी । वखतवान=अच्छेदिन वाला । दस्सन=दर्शन-स्वरूप । दुनम=दुनिया में । हंमीर=अमीर । भीमानी=भयावनी खड्ग ।

अर्थः—भीम ने पत्र में लिखा था- हे सुलतान ! आपके बलवान योद्धा-तत्तारखाँ, खुरासानखां, न्याज़ीखां, रुस्तमखां, पहाड़खां, निसुरत्तिखां और नृशंसकारी तुंगीखां यम-स्वरूप हैं; जिनके मुख पर कान्ति प्रतिभासित होती है और जो युद्ध-स्थल में सदा अग्रगण्य रहने वाले हैं। अतः आज आपके अच्छे दिन हैं और इसी लिए दुनिया में आप दर्शनीय हैं। आप जैसे अमीर यदि मुझ अमीर से मिल जांय तो मेरी (भीम की) भयावनी खड्ग युद्ध स्थल में ठीक तरह से (शत्रुओं का) दमन कर सकेगी।

दोहा

कही बत्त सुलितान नै[1], रे[2] सारंग वर वीर[3] ।
दान खग्ग विद्याविभौ, ए वत्तां नँह सीर[4] ॥३५॥

ग्रा० पा० १, २, ३, ४ दे० ।

शब्दार्थः—सुलितान=सुलतान । विभौ=वैभव । वत्तां=बातें । सीर=साझे में, शामिल ।

अर्थः—(पत्र को सुनकर) सुलतान बोला-हे श्रेष्ठ वीर सारंदेव ! सुन, दान, खड्ग, विद्या और वैभव-इतनी बातें वीरों को सम्मिलित रूप में शोभा नहीं देती।

गाथा

भूमी द्रवै सु लच्छी, वंका वीराइ वंकियं भूमी ।
नहँ वंकी धर कव्वं, वंका वीराइ वंकियं होई ॥३६॥

शब्दार्थः—वंका वीराइ=बांके वीरों से ही । बंकियं=बांकी । कव्वं=कभी भी ।

अर्थः—बांके वीरों से ही भूमि बांकी कहलाती है; वह (बांकी) भूमि उन्हें लक्ष्मी स्रवती रहती है। केवल पृथ्वी कभी बांकी (भयावनी या अजयी) नहीं हो सकती; बांके वीरों के कारण ही वह बांकी कहलाती है।

कवित्त

वीर भोग वसुमती, बीर वंका अनुसरई ।
वीर दान भोगवै, बीर खग्गह गुर करई ॥

अन्न पान रस द्रवै, लगे काइर नह अच्छी ।
है खुर खग्गह धार, बीर भोगह बर अच्छी ॥
जंपैन बीर सारंग तें, भोरा नाम अभंग भर ।
भुग्गवै कौन को भुग्गि हैं, करौं चरक्का खग्ग बर ॥३७॥

शब्दार्थः—भोग=भोक्ता । अनुसरई=अनुसरण । दान=दान के जल से । भोगवै=भोग होता, संयोग होता । गुर=भारीपन या गर्भवती तथा विस्तार । द्रवै=स्रवती, देती । काइर=कायर । है खुर=घोड़े के सूम । बर=बल से । तें=तू ही । भुग्ग वै=भोग रहा है । भुग्गि है=भोगेगा । चरक्का=चटाका, वार ।

अर्थः—पृथ्वी वीर-भोग्या होती है; वह बांके वीरों का ही अनुसरण करती है । वीरों के दान स्वरूप जल के द्वारा उसका भोग होता है और वीरों की तलवार से ही उसमें भारीपन (अर्थात् गर्भावस्था या क्षेत्र विस्तार) होता है । इस संयोग से वह अन्न पान रस को जन्म देती है (स्रवती है) । कायर को वह अच्छी नहीं लगती, उसको तो वीर पुरुष ही घोड़े के सूम एवं तलवार की धारा के बल पर अच्छी तरह भोग सकता है । हे सारंगदेव ! तू ही कह, जिसका नाम भोरा है, वह अभंग योद्धा कैसे हो सकता है ? इस भूमि को अभी कौन भोग रहा है और आगे को कौन भोगेगा-यह नहीं कहा जा सकता । मैं तो केवल खड्ग का श्रेष्ठ वार करना ही ठीक समझता हूँ ।

श्लोक

न कस्यापि कुले जाता, न कस्य नर नारियम् ।
हय क्षुर खड्ग धारा च, वीर भोग्या वसुन्धरा ॥ ३८ ॥

शब्दार्थः—कस्यापि=किसी भी । जाता=उत्पन्न हुई । क्षुर=खुर ।

अर्थः—यह पृथ्वी न तो किसी कुल में उत्पन्न हुई है और न किसी पुरुष की स्त्री ही है । घोड़े के खुर और तलवार की धारा के बल पर ही वीर पुरुष इसका उपभोग कर सकते हैं ।

दोहा

सुणी[1] वत्त[2] सारंग वर, केहा देहा नेह ।
दई दुहथ्थैं पिंजरह[3] ह्यंदु मिच्छन[4] छेह ।। ३९ ।।

ग्रा० पा० १, २, ३, ४, दे० ।

शब्दार्थः—केहा=क्या है । देहा=शारीरिक । नेह=सम्बन्ध । दुहथ्थैं=दो हाथ । पिंजरह=पिंजरा, शरीर । ह्यंदु=हिन्दू । मिच्छन=मुसलमान । छेह=किनारा, पक्षपात ।

अर्थः—यह बात सुन कर सारंगदेव बोला-शरीर से प्रेम करना वृथा है, क्योंकि वह नाशवान है । ईश्वर ने सबको दो हाथ दिये हैं; उसने हिन्दू और मुसलमान का पक्षपात नहीं रखा (अर्थात् युद्ध में सामना होने पर दोनों दल वाले अपना हस्त-कौशल प्रदर्शित कर सकते हैं) ।

कवित्त

सुनि[1] गज्जनवै गज्जि[2], कहै भोरा भीमंदे ।
धर पाखंड निदान, वीर विद्या[3] दिय-वंदे ।
दीहा दू ती[4] मभ्भ, मोहि चहुवान चरक्का ।
ता पच्छैं[5] गल्हवान, गल्लह करि हैं धर धक्का ।।
पाखंड डंड रच्चै नहीं, जिम्मी जर कंकर उरा[6] ।
संभरिय काल कंटक हनौं, ता पाछैं गुज्जर धरा ।। ४० ।।

ग्रा० पा० १ से ६ दे० ।

शब्दार्थः— गज्जनवै=गजनी पति । गज्जि=गर्जनाकर । निदान=कारण । दिय-वंदे=वंदना करदी, विदा देदी । दीहा=दिन । दू ति-मभ्भ=दो तीन दिनों में । ता पच्छैं=उसके बाद । गल्हवान=यश निर्माता । धक्का=धक २ कर, बढ़ २ कर । गल्लह=यश । जर=जड़ । उरा=हृदय । पाछैं=पश्चात् ।

अर्थः— यह सुनकर गजनापति गर्जना करके बोला-भीम यद्यपि भोला कहा जाता है, किन्तु उसको धरा (देश) पाखण्डों के कारण स्थिर है, उसने वीर विद्या को नमस्कार कर लिया है (वीर विद्या वहाँ नहीं है) । जीवन के दो तीन दिनों में (कम आयु में) मुझे चौहान पृथ्वीराज से टक्कर लेनी है । हम दोनों के बाद (भविष्य में) यश निर्माता हमारा बढ़ २ कर मनमाना यश वर्णन करेंगे । यह शरीर तो जड़ हृदय

के कारण कंकरीली जमीन के समान है, जहाँ पाखण्ड-दण्ड (वृत्त) की रचना नहीं हो सकती। मैं पहले काल-कंटक स्वरूप संभरी नरेश का नाश करके, पश्चात् गुजरात का नाश करूँगा।

सुनै सद्द सुलितान, बोल बासीठ उसट्टै[1]।
रस रसाल फेरी फरक्कि, कर चंपि लुहट्टै[2] ॥
भीमा सौं भारथ्थ, चाव[3] लग्गै सुलिताना[4]।
मुसलमान दीवान, वंक बुल्ल्यौ मकवाना[5] ॥
चालुक्क राइ चालंत दल, कालु[6] कलहु[7] छंडन करै।
मेवार अजैपुर गज्जनै, तीनि राइ तिज्जर डरै ॥४१॥

ग्रा० पा० १ से ७ दे०।

शब्दार्थः—सद्द=शब्द, वचन। उसट्टै=उमस कर। रस रसाल=नजराने की चीजों को। फेरी=लौटाली। फरक्कि=फड़कते हुए। लुहट्टै=तलवार। भारथ्थ=युद्ध। चाव=उत्साह। दीवान=पागल। वंक= बांका। कालु=काल। तिज्जर=उसकी ताप से।

अर्थः—सुलतान के वचन सुन कर वह वीर मकवाना वसीठ बढ़ २ कर बोलने लगा और उसने अपने शरीर को फड़काते हुए भेंट की हुई वस्तुओं को वापस लौटाली। उस बाँके वीर ने तलवार को हाथ में पकड़ कर कहा—हे सुलतान ! भीम से युद्ध करने के लिये उत्साहित होना मुसलमानों का (तुम्हारा) पागलपन है। जब चालुक्य नरेश का दल चलाता है,तो काल भी उसके सामने युद्ध करना छोड़ देता है। उसकी ताप से मेवाड़, अजमेर तथा गजनी-तीनों स्थानों के राजा डरते हैं।

नहि जालंधर-वार, वंग चंगी न तिलंगी।
कुंकन कच्छ पुरोठ, ठट्ट स्यंधू[1] सरवंगी ॥
गवरि गोर गुज्जरिय, सवर सेंरठ[2] अरु पंडं।
मुरि मरहठ नँदवार, राइ मालव गुन छंडं ॥
चामिली वार अरु स्यंध उर, सकहि न मंडरु खग्ग रुकि।
चालुक्क राइ चालंत दल, कालु कलहु मंडै न झुकि ॥ ४२ ॥

गा० पा० १, दे०। २ घ०।

शब्दार्थः—जालंधर-वार=जालंधर-प्रदेश । वंग=वंग, बंगाल । तिलंगी=तिलंगाना । कुंकन= कोंकण । पुरोठ=जगन्नाथ पुरी के आस पास का स्थान । ठट्ठ=ठट्ठा । स्यंधु=सिंधु, सिन्ध । सरवंगी= समस्त । गवरि=गोर-प्रदेश । गोर=गोडों का स्थान, गौंडवाना । गुज्जरिय=गुजरात प्रांत । सबर= सबल । सोरंठ=सौराष्ट्र । पंडव=पांडव-प्रदेश । मुरि=मुड़ जाते हैं । नंदवार=नदराय । गुनछंडं= अपने क्षत्रियत्व के लक्षणों को छोड़ कर । चामिली वार=चंबल नदी । स्यंध=सिंध । सकहिन-मंडर= नहींमँड सकते; कदमों पर साबित नहीं रह सकते, नहीं डट सकते ।

अर्थः—उसके (भीम के) समस्त जालंधर, बंगाल, तिलंगाना, कोंकण, कच्छ, पुरोठ (जगन्नाथ पुरी के आस पास के स्थान-बिहार, उडोसा, आदि), ठट्ठा, समस्त सिन्ध, गौड़ प्रदेश, गौंडवाना (गौड़ो का स्थान), गुजरात, सबल सौराष्ट्र, पाण्डव प्रदेश, महाराष्ट्र, नंदराय और मालव के राजा भी अपने क्षत्रियत्व के लक्षणों को छोड़ कर लौट जाते हैं । चंबल नदी से लगा कर सिंधु नदी के क्षेत्र तक के वीर उसके सामने नहीं टिक सकते और उसकी तलवार को नहीं रोक सकते । उस चालुक्य नरेश का दल जब चलता है, तब उससे टेढ़ा होकर कालभी कलह नहीं कर सकता ।

जिन जूना जंगाल, बाढ़ बाढ़ेल उछट्टी ।
जिन आसावलि अङ्ग, देस[1] बाघेल पलट्टी ॥
जिन भरि भोरा भीम, सीम[2] चंपी आसेरी ।
(जिन) जंगवेग जद्दोंनि, कढ्ढि अब्बूअ तसेरी ॥
मकवान बोलि अगवान सौं, मकरि तास सम जुद्ध सचि ।
ए धरनि भीम भंजन घढ़न[3], अप्प कियौ करतार रचि ॥ ४३ ॥

ग्रा०पा० १ दे । २ पा० । ३ घ० ।

शब्दार्थः—जूना=प्राचीन । जंगाल=जंगल-प्रदेश । बाढ़=खड्ग । बाढ़ेल=खड्गधारी । उछट्टी=आघात किया । जंग वेग=सवेग युद्धकर्ता । अब्बूअ=आबूराज वंशी । तसेरी=त्रस्त किये । अगवान=मुसलमानों के अगुए को, समस्त खड़े हुए को । मकरि=मतकर । तास सम=उससे । सचि= सत्य है । घढ़न=गढ़ों को ।

अर्थः—वीर मकवाना यवनों के अग्रणी (शहाबुद्दीन) से कहने लगा कि जिस खड्ग धारी ने प्राचीन जङ्गल प्रदेश पर अपनी खड्ग का आघात किया, जिसने

आसावली के अङ्ग स्वरूप बघेल देश को पलट दिया, जिसने आसेरी की सीमा को दबाया, जिसने सवेग युद्ध-कर्ता यादवों को हटा दिया और जिसने आबू राजवंशियों को त्रस्त कर दिया; ऐसे उस (भोला भीम) से युद्ध करने की मत सोच। मैं सत्य कहता हूं–सृजता ने स्वयं अपने हाथों से इस पृथ्वी पर दुर्गों के नाश हेतु ही भीम की रचना की है।

कलहु न मंडे[१] काल, देस पुव्वेस पुलंगी।
अग्निवान दखि[२] प्रभा, वाई-कूंना रस संगी॥
मुसलमान दीवान, साहि अग्गे इह[३] बुल्लौ।
(जौ)लरै चंपि चहुवान(तौ)कार खग्गां रसु[४] तुल्लौं[५]॥
सुनि स्रवन किये[६] रत्त नयन, बयन साहि तत्तो तमसि।
जाने कि अग्गि स्यंची[७] सुघृत, ताम तेज बढ्यौ वहसि॥ ४४॥

प्रा० पा० १ से ७ दे०।

शब्दार्थः—अग्गिवान=अग्नितुल्य। दखि=देखकर। वाइ-कूनां=वायुकोण। रससंगी= वीर रसकी इच्छा करने वाले, युद्ध की इच्छा करने वाले। स्यंची=सींच दी। ताम=तैसे। वहसि=वहस के कारण।

अर्थः—मकवाना के वचनों को सुनकर शाह के नैत्र लाल हो गये और वह तमतमाकर आतुरता से बोलने लगा-हे वीर मकवाना ! सुन, मेरे समक्ष काल भी कलह का मंडन नहीं कर सकता। मेरी अग्नि तुल्य प्रभा को देख कर, मुझ से वीर रस की (युद्ध की) इच्छा रखने वाले (मेरी अग्नि-प्रभा को अधिक प्रज्वलित करने के लिए) वायु कोण तुल्य बनजाते हैं। मेरे (शाह के) सामने तू मुसलमानों को पागल कहता है, किन्तु तेरा राजा (भीम) यदि चाहुवान (पृथ्वीराज) को दबाकर मुझ से लड़ना चाहें तो मैं वीर रस से युक्तहोकर काल के समान खड्ग को उठाऊँगा। उस समय उस दूत के (कुतर्क) बहस करने से, शाह का तेज इस प्रकार बढ़ गया; जैसे प्रज्वलित अग्नि में घृत सींच दिया गया हो।

मदयानी किं करै, किं न[१] जंपै मतिहीना,
किं वायस ना भरवै, किं न कवि करै सु हीना॥
अवुध बाल किं कहै, खलह सों किं नहँ होई।

त्रासवंत किं करै, खुधावंतह किं जोई ॥
किं करै काम अंती कठिन, किं न करै लोभी नवन ।
किं करै न तसकर त्रप्प वर, अबुध इष्ट सत्तह सुमन ॥ ४५ ॥

ग्रा० पा० १ पा०, का० ।

शब्दार्थ:—मदपानी=मद्यपी । किं=क्या । हीना=बुराई । खुधावंतह=क्षुधित । जोई=जोना, देखना । काम अंती=अंतर में जिसके काम बसता है, कामी । त्रप्प=तृप्ति, संतोष ।

अर्थ:—मद्यपि क्या नहीं करता, मति हीन क्या नहीं कहता, वायस क्या नहीं खाता कवि किसकी तुच्छता पर (बुराइयों पर) प्रकाश नहीं डालता, अबोध बच्चा क्या नहीं कहता, दुष्ट क्या नहीं करता, त्रसित क्या करने को बाध्य नहीं होता, क्षुधित क्या नहीं देखता, कामी कौनसा कठिन कार्य नहीं करता और लोभी किससे नहीं नमता (अर्थात् क्रोधित शाह के कथन भी उसी प्रकार ज्ञान शून्य थे) ।

रमरा[1] रोस सुलितान, हसम हाजुर फुरमानं ।
वर वजीर वरजत, ऐब लग्गै सुबिहानं ॥
अवध वसीठ रु भट्ट, नीति ह्यंदू तुरकानं ।
स्वामि सकज बोलंत, बग्घ अरु सप्पा खानं ॥
जल्लान आन साहाब दी, हल हलाल किज्जै गमन ।
अल्लह[2] न आलि लभ्भै रवा, खलक खांन खग्गह हसन ॥ ४६ ॥

ग्रा० पा० १, २, दे० ।

शब्दार्थ:—रमरा=रम गया । हसम=सेना । हाजुर=हाजिर, उपस्थित । ऐब=बुराई, कलंक । सुबिहानं=सुबहान, मुस्लिम । अवध=अबध्य । ह्यंदू=हिन्दू । बग्घ=व्याघ्र, सिंह । सप्पा=सर्प । खानं=खाना, डसना । जल्लान आन=जलन मत ला । अल्लह=अल्लाह । आलि=अली । लभ्भै=प्राप्त । रवा=रब, ईश्वर ।

अर्थ:—जिसकी आज्ञा के साथ ही सेना उपस्थित हो जाती थी, ऐसे शाह के हृदय में क्रोध रमने लगा । यह देख कर श्रेष्ठ वजीर मंत्री ने उसे निषेध किया कि इस प्रकार क्रोध करने से मुस्लिम धर्म को कलंक लगेगा; क्योंकि हिन्दू और मुसलमान

दोनों की नीति में दूत और बंदीजन सदा अवध्य कहे गये हैं। ये अपने स्वामी के कार्य के लिये कुछ भी कह सकते हैं। इन दोनों का स्वभाव सिंह और सर्प के समान होता है, जो दूसरों को काटना या डसना ही जानते हैं (कटु सत्य कह कर दुःख ही पहुँचा जानते हैं)। इसलिये हे शहाबुद्दीन! आप इस मकवाने (दूत) के कथन को सुन कर मन में रोष उत्पन्न मत करिये। आप तो हलाल के (धर्म के) रास्ते पर ही चलिये। ऐसा करने से अल्लाह, अली और रब की प्राप्ति नहीं हो सकती और संसार में मुस्लिम खड्ग का परिहास ही होता है।

दोहा

कही वत्त मकवान नै, नहि मंनी सुलितान।
अप्पुन अप्पुन सथ्थलै, वल मण्डौ चहूवान ॥४७॥

शब्दार्थः—मंनी=मानी। वल=बल।

अर्थः—मकवाने वीर ने शाह से बहु तेरा कहा, किन्तु सुलतान ने उसकी बात को नहीं माना। तब उस भोलाभीम के प्रतिनिधि ने कहा कि अब तो अपने २ साथियों को साथ लेकर चौहान से अलग २ हो शक्ति को परीक्षा करनी होगी।

कवित्त

करि सिद्धानी आन, बंग जे सुनहित ह्यंदू[1]।
ते हिन्दू मुख निंद, निगम अग्गे[2] जिन[3] ज्यन्दू[4] ॥
इक्क बार सुनि बंग, सहस पातक रजपूतनि।
त्रक्क[5] सोधि त्रक्कह[6] परत्त[7], कवन कट्ठै तिन[8] भूतनि[9] ॥
रजपूत मुक्कि खिति[10] खग्ग[11] खिरि[12], बिधि बिनान यौं त्रम्मयौ।
कलि जाहि मिटै महि मंडलहि, पै न मिटै तनु[13] अम्मयौ ॥४८॥

ग्रा० पा० १ से १३ दे०।

शब्दार्थः—सिद्धानी=सिद्धराज की। आन=दुहाई। बंग=बांग, खुदा से पुकार। सुनहित=सुनते हैं। ह्यंदू=हिन्दु। जिन=जो। ज्यंदू=जिन, प्रेत। त्रक्क=नर्क। सोधि=खोजकर, जान बूझकर। भूतनि=प्राणियों को। खिति=क्षिति। खग्ग-खिरि=खड्ग द्वारा कट पड़े। बिनान=विज्ञान, विधान। अम्मयो=यह श्रम, यह पीड़ा।

अर्थः—मकवाना पुनः सिद्धराज की दुहाई देता हुआ कहने लगा-जो हिन्दू अपने कानों से बाँग सुन लेता है वह निन्दनीय और शास्त्रानुसार प्रेत-तुल्य कहा जाता है। यदि कोई क्षत्रीय एक वार भी मुसलमानों की बाँग सुनले तो वह सहस्त्रों पापों का भागी बनता है और घोर नरक में पड़ता है। उसके उद्धार करने की सामर्थ्य किसी प्राणी में नहीं होती। अतः क्षत्रियों की मुक्ति एक मात्र पृथ्वी पर खड्ग द्वारा कट पड़ने में ही है। उनके लिये यही विधि-विधान है। भू-मण्डल से कलि काल का मिटना सम्भव है, किन्तु मेरे शरीर में शाह द्वारा स्वामी के अपमान की जो पीड़ा हुई है, उसका मिटना असम्भव है।

गाथा

सज्जय[1] सेन सुराजं[2], उप्पम चंद जंपीयं[3] वरयं।
जानिजै परिमानं, है हल्लें[4] वद्दलं छाहं[5] ॥४६॥

प्रा० पा० १ से ५ दे०।

शब्दार्थः—है हल्लें=घोड़े चले।

अर्थः—(वह कहता ही गया)-राजा भोरा भीम की सेना जब सजती है, तो कवि उसकी तुलना करते हुए कहते हैं कि उसके घोड़े चलते हुए इस प्रकार दिखाई देते हैं मानों पृथ्वी पर बादलों की छाया चल पड़ी हो।

दामिनि तेग तरिछं, घनयं सेन टोपयं वगयं।
त्रित्तत वाजि त्रिभंगी, घुघ्घर घमक दद्दूरं रवयं ॥५०॥

शब्दार्थः-तरिछं=टेढ़ी, तिरछी। घनयं=घटा। वगयं=बकपंक्ति। त्रित्तत=नाचते हुए। वाजि=घोड़े। घुंघ्घर=घुंघरू। घमक=आवाज। दद्दुरं=मेंढक।

अर्थः—उसकी तिरछी तलवारें ही बिजली, सेना ही घटाएँ, सिरस्त्राण ही बक पंक्ति और त्रिभंगी गति से नृत्य करते हुए घोड़ों के पैरों के नूपुरों की झंकार ही दादुर-रव बन जाता है।

कवित्त

वद्दल दलवल उभरि, सेन घुंमर घट घुंमरि,
सवन वयन[1] संचयन[2], मयन मत्ते जनुखुंमरि ॥

अरि अरिष्ट सम दिष्ट, धिष्ट धारन धर धुंमर ।
अग्गि झाल विनु धुंम, इसै दिक्खिय[3] गज झुंमर ॥
चालुक्कराइ सज्जै सयन, हय हिंसारन उच्छरै ।
सिद्धान वंस सिद्धान गति, सिद्ध इष्ट गुन विस्तरै ॥ ५१ ॥

ग्रा० पा० १ से ३ दे० ।

शब्दार्थः—सेन-धुंमर=सेना द्वारा उड़ती हुई धूल, (धूम्र वर्ण रज-राशि) । घट=घटा । स्रवन=श्रवण । संचयन=संचार नहीं करपाते, नहीं सुनाई देते । खुंमरि=खुमारी, तंद्रा । अरि=अड़ती, पड़ती । धिष्ट=धृष्ट । धुंम्मर=धूम, उत्पात । झुम्मर= झूमके, समूह । हिंसारन=हिन-हिनाते हुए । सिद्धान-बंस=सिद्धराज का वंशज । सिद्धान-गति=सिद्धराज की तरह ही ।

अर्थः—उस (भीम) की सैन्य-शक्ति का उभार बादलों की तरह दिखाई पड़ता है और उसके चलने से उड़ती हुई धूम्र वर्ण रज राशि घुमड़ती हुई घटा सी दीखाई पड़ती है । जिस प्रकार कामान्ध पुरुष तन्द्रा के वशीभूत होकर कुछ भी नहीं सुनता; उसी प्रकार (सेनाके चलने पर) कानों को वचन नहीं सुनाई पड़ते हैं । शत्रुओं पर उसकी अरिष्टकारी दृष्टि पड़ते ही वे दुष्ट शत्रु पृथ्वी पर धूम मचाना छोड़ देते हैं । उसका गज-समूह ऐसा दिखाई पड़ता है मानों अग्नि-ज्वाला रहित धूम्र हो । उस चालुक्य नरेश की सेना के सज्जित होने पर घोड़े हिन-हिनाते एवं कूदते-फांदते हुए चलते हैं । इस प्रकार सिद्धराजका वंशज सिद्धराज की तरह ही अपने इष्ट-सिद्धि के गुण का विस्तार करता है ।

सुनि साहाब वजीर, बोलि बलकी अप्पानां ।
कक्कस करतें वर कमान, तानो लगि कानां ॥
छल छुट्टत[1] छातीह, हनत सारंग सु पानां[2] ।
मार मार उच्चार, तेग कढ्ढी मकवानां ॥
हैजम हुजाव सिर उच्छटि, बिज्जलि कै अंबर अरी ।
कंनान भंजि खुप्परि खला, मही अग्गि उच्छटि परी ॥ ५२ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—साहाब=शहाबुद्दीन । बल-की=बल किया । अप्पाना=अपना । कक्कस=कर्कश, कठोर । छल=छल्ले से, प्रत्यंचा के मध्य भाग से । सुपानं=अपने हाथों से । कंनान=कानों को, कानों की टोहियो को । खुप्परि=खोपड़ी । खला=खल, दुष्ट ।

अर्थः—मकवाने के वचन सुन कर शाह ने वजीर को बतलाते हुए (वजीर ने नीति वाक्य कहे थे, इसलिए यह कहते हुए कि दूत आदि इतनी बकवास नहीं करते) क्रोधित होकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से कान तक कमान को खींच कर प्रत्यंचा पर लगे हुए बाण को सारगदेव पर मारा। बाण के छाती पर लगते ही उस वीर मकवाने ने मार-२ शब्द का उच्चारण करते हुए तलवार निकाली और पास ही खड़े हुए शाह के अंगरक्षक अश्वारोही (हेज़म) हुज़ाब के सिर पर इस प्रकार प्रहार किया मानो आकाश-स्थित बिजली टूट पड़ी हो। उस प्रहार से दुष्ट हेज़म (अश्वारोही) के कानों को टोहियों के साथ-२ उसका मस्तक भी कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

हैजम धुकि धर पर्यौ, पर्यौ मांझी मकवानां।
रस रसाल लुट्टीय, औब लग्गिय सुरतानां॥
गयौ साहि औसाफ़, साख भग्गिय दुनियाना।
बुरो बुरो सब कोइ, कहत संजम सुनियाना॥
करतार हथ्थ केती कला, कियौ सु लम्भै अप्पना।
पापंग देह मट्टी मिलै, दीदे देखि सु सप्पना॥ ५३॥

शब्दार्थः—धुकि=लड़खड़ाकर। रस-रसाल=प्रेमोपहार। औसाफ=इन्साफ, न्याय। साख=साक्षी, विश्वास। सं=उसे। जम=जिमि, जैसे ही। सुनियाना=सुनने वालों ने। पापंग=पापपूर्ण। दीदे=मुख, दर्शन।

अर्थः—इस प्रकार हेज़म और वीर मकवाना दोनों ही धराशायी हुए। तब भीम द्वारा प्रेमोपहार में भेजी हुई समस्त सामग्री लूट लीगई। मकवाने को मार देने से शाह की अत्यन्त निन्दा हुई। इस प्रकार शाह की न्याय परायणता नष्ट हुई और दुनिया से उसकी प्रतिष्ठा उठ गई। जिसने यह बात सुनी, उसने शाह को बुरा ही कहा। ईश्वर के हाथों में कितनी ही कला है-जो जैसा करता है वह वैसा ही पाता है। यह पाप पूर्ण देह एक दिन मिट्टी में मिल जाती है, फिर उसका दर्शन स्वप्न तुल्य हो जाता है।

सुन्यौ भीम वध्यौ[1] वसीठ, खिभिझ[2] खुल्लिय[3] खज्जीना।
करि सिद्धानी आन, मेटि मिच्छाइन दीना॥

वंग सद्द कंना न, जीह जंना जन वढ्ढौं ।
असी सहस सेना सजंत, गोरी जर कढ्ढौं ॥
ढल्लांनि माल[४] ढींचाल जनु, असम समुद सेना फिरी[५] ।
मह[६] मोह छंडि रत्ते विखम, दइ दिवान गुन दुस्तरी ॥५४॥

ग्रा० पा० १, २, ३ ५, ६ दे० । ४ पा० घ० दे० ।

शब्दार्थ:—वध्यौ=मार दिया । वसीठ=दूत । खज्जीना=खजाना । मिच्छाइन=म्लेच्छ धर्म को । कंना न=कानों पर नहीं । जीह=जिह्वा । जंनाजन=जैन२ । जर=जड़, मूल । ढल्लांनि माल=ढलेतों की पंक्ति । ढींचाल=भयंकर । असम=विषम । मह मोह=महान् मोह । दिवान=पागलपन, उन्मत्तता । दुस्तरी=दुस्तर ।

अर्थ:—दूत के मारे जाने की बात सुन भीम ने क्रोधित होकर युद्ध व्ययार्थ खजाने खोल दिये और सिद्धराज की दुहाई देते हुए प्रतिज्ञा की कि मैं म्लेच्छ धर्म को मिटा दूँगा, बांग शब्द को कानों पर नहीं आने दूँगा, प्रत्येक व्यक्ति की जिह्वा पर जिन २ (जैन) शब्द की वृद्धि कर दूंगा और अस्सी हजार सेना के सजने पर गौरी शाह को जड़ से उखाड़ दूंगा। उसके इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर समुद्र के समान विषमता लिये हुए भयंकर ढ़लेतों (ढ़ाल धारियों) की पंक्ति उमड़चली। उस समय वीरों ने अपने महान् मोह को छोड़ दिया और उन्होंने विषमता में लीन होकर उन्मत्तता के दुस्तर गुणों को प्राप्त किया ।

दोहा

ढल्लानं हल्लौ हलं, चौंरानं चब दंत ।
भोरानं भुव उप्परै, मैं छुट्टा मैंमंत ॥५५॥

शब्दार्थ:—ढल्लानं=ढलेतों की । हल्लो हलं=हलचल । चौरानं=चमर । चब=चारों ओर । दंत=दंतियों पर, हाथियों पर । भोरानं=भोला भीम के (वीर) । मैं=हाथी । मैंमंत=मतवाले ।

अर्थ:—(सेना के चल पड़ने पर) ढलेतों की हलचल मच गई । चारों ओर हाथियों पर चमर चलते हुए दिखाई पड़े । उस समय भोरा भीम के वीर इस प्रकार दिखाई पड़े मानों पृथ्वी पर मतवाले हाथियों को शृंखलाओं से छोड़ दिया गया हो ।

घोरानं छत्रं छतं, मोरानं मंथान ।
सारन्नी पक्खर जरी, हेमानी गत्तान ॥५६॥

शब्दार्थ:—घोरानं=घोड़ों से । छतं=छिति, पृथ्वी । मोरानं=मोर, मोहर, हरावली सेना । सारन्नी पाखर=लोह पाखरें । जरी=जटित । हेमानी=स्वर्ण से । गत्तान=तरह ।

अर्थ:—अश्वों और छत्रों से पृथ्वी आच्छन्न हो गई। सेनाग्रभाग (हरावल) शत्रु मंथन के लिए तत्पर हो गया । लोह पाखरें स्वर्ण से जटित भासित होने लगीं ।

कवित्त

नीलानी नीजूह, धाम लग्गी चालुक्कां ।
हंकारी हाकंत, सत्थ सत्तरिवै झुंकां ॥
गोम गाज उच्छरिय, धोमधर कंप हलक्किय ।
नागभाग सत दीह, नीय तन कंप सलक्किय ॥
प्राजाल माल हींचाल हलि, कलि कलाप कलि उल्लटियं ।
पहुराइ पित्थ छित्तांग छिति, नित नियंग सुर उच्छटिय ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ:—नीलानी=कालिमा, अपयश । नीजूह=क्रूर समूह । हंकारी=बुलाई । झुंकां=झोंक दी । गोम=आकाश । गाज=गर्जना । उच्छरिय=उठी, चल पड़ी । सत दीह=सात दिनों तक । सलक्किय= कलबलाने लग गया । प्राजाल माल=प्रज्वलित ज्वाल-माला । हींचाल=अश्व समूह । नियंग=निखंग, भाता (जिसमें तीर रखे जाते हैं) । सुर=सर, शर । उच्छटिय=मारा ।

अर्थ:— उन चालुक्यों पर शाह को बुलाने की नील कालिमां (अपयश) तो लगी ही, किन्तु उन्होंने अपनी ७० हजार सेना को भी युद्ध में झोंक दिया । सेना की गर्जना आकाश में फैल गयी । धूमित (कुचली हुई) पृथ्वी काँपकर चलायमान हो गई । शेष नाग का कपाल शरीर के निकट सिमट कर सात दिन तक किलबिलाने (छटपटाने) लग गया । घोड़े प्रज्ज्वलित ज्वाल माला के समान तीव्र वेग से बढ़ चले, जिससे इस कलियुग में इतना शोर हुआ मानों स्वयं कलियुग उलट चला हो । किन्तु पृथ्वी का छत्र स्वरूप राजा पृथ्वीराज, ऐसे शत्रुओं पर हमेशां अपने निखंग से बाण निकाल कर मारता ही रहा ।

दोहा

बोलां बद्धनियांह धन, पामारां चहुवान ।
वीरंदाइ वसीठियाँ, सो हिन्दू सुरतान ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—बद्धनियाह=बढ़ने वाले। धन=धन्य है। वीरंदाइ=वीर। वसीठियाँ=दूतों द्वारा निमंत्रित कर लिया।

अर्थः—बोल (युद्ध के लिए ललकार) पर बढ़ने वाले प्रमार और चौहान वीरों को एवं इस हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज को धन्य है, जो मुस्लिम वीरों को दूतों द्वारा युद्धार्थ निमंत्रित करते रहते हैं।

जित्ती धर चहुआन की, जित्ती ताइ तुखार।
परठी पट्टनवै परत, मग्गा दान सवार॥ ५६॥

शब्दार्थः—जित्ती=जितनी। जित्ती=विजय की। ताइ=ताते, तेज। तुखार=घोड़े। परठी=जान। परत=पड़ती। मग्गां=रास्ते। दान-सवार=दान से सँवारे हुए, दान द्वारा साफ किये हुए।

अर्थः—चौहान सम्राट ने जितनी भूमि विजय की है, वह सब अपने तेज घोड़ों के बल पर ही की है; किन्तु पट्टन पति की अधिकृत भूमि का रास्ता केवल दान द्वारा ही साफ किया हुआ है, (अर्थात् चालुक्यों ने जितनी भूमि अधिकार में की है, वह धन राशि खर्च करके ही की है-युद्ध करके नहीं)।

कवित्त

गज्जनेस गोरी नरयंद[1] सेन दुस्तर[2] अस[3] सज्जिय।
खां ततार खुरसांन, मीर माहीव[4] विरज्जिय॥
हय गय नर असुरांण[5], सुनी चांवद्दिसि वत्तं।
पट्टनवै पट्टन पलानि[6] वीर गोरी जुध मतं॥
मयमंत राज प्रथिराज पर, अब्बूवै ऊपर करै।
सुरतान सेन[7] सज्यौ सुनै, धर गिर जल रज उच्छरे॥६०॥

ग्रा० पा० १ से ६ दे०। ७ दे०, घ०, का०।

शब्दार्थः—अस=इस प्रकार। असुरांन=असुर, यवन। पट्टन-पलानि=पट्टनी सेना सजाई। पर=पक्ष।

अर्थः—उधर गजनी पति गौरीशाह ने ऐसी दुस्तर सेना सजाई, जिसमें तत्तार-खां, खुरासांन खां, मीर माहिब आदि वीर सुशोभित होते थे, हाथी, घोड़े और यवन

वीरों के सज्जित होने की बात चारों ओर फैल गई। पट्टन वालों ने भी पट्टनी सेना सजाई तथा गौरीशाह भी युद्धोन्मत्त हुआ। आबू राज वंशी सलखजैत्र भी मतवाले पृथ्वीराज की सहायतार्थ तैयार हुआ। शाही दल की तैयारी को सुनकर पृथ्वी, पहाड़, जल और रजराशि सभी एकमेक हो गये।

दोहा

ढिल्लीवै सेना सजय, रंजंन रन राव्त्त।
मधुर महुब्बति खान वर, दिय कग्गद गुन मत्त ॥६१॥

शब्दार्थ:—ढिल्लीवै=दिल्लीश्वर। रंजन=प्रसन्न करने वाली। राव्त्त=राजवंशी। मधुर=मृदुभाषी। गुन मत्त=गुण प्रद मंत्रणा देने वाला, हित प्रद मंत्रणा देने वाला।

अर्थ:—इधर हितप्रद मंत्रणा देने वाले मृदुभाषी मुहब्बतखां ने पृथ्वीराज को गुप्त पत्र द्वारा सूचित किया, जिससे दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) ने भी युद्ध स्थल में राजवंशियों के मन को मोहित कर देने वाली अपनी सेना को सजाया।

कवित्त

चाहुआन सामंत, मंत कैमास उपाइय।
बंदि लग्ग हुंकार, बंध बंधान उचाइय॥
दस गुन्नां बल देखि, साजि साधन सु सुगंधह।
दुहु मुक्खांहीं लग्गि, बीच चम्पौ सुमृदंगह॥
गोरीय एक गुज्जर धनी, मुख विचित्र धनि संभरी।
हज्जार दून द्वादस भरह, दोमि लग्गि दुह दिसि बुरी ॥६२॥

शब्दार्थ—वंदि=वंदना करके। बंध बंधान=एक दूसरे भाई को, एक दूसरे को। उचाइय=उठाया, खड़ा किया। सुगंधह=सौरभ, प्रशंसा। मुख=सामने। हज्जार दून=एक हजार से दूने, दो हजार। द्वादस भरह= बारह हजार से भिड़े। दोमि=दावाग्नि।

अर्थ—मुख्य मन्त्री कयमास द्वारा निश्चित की हुई मंत्रणा को पृथ्वीराज के सामंतों ने मानकर, इष्ट वंदना करके, हुँकार करते हुए एक दूसरे को युद्धार्थ खड़ा किया। उनकी शक्ति उस समय दस गुनी दीख पड़ी। उनके युद्ध साधन की तैयारी की सौरभ (प्रशंसा) चारों ओर फैल गई। दोनों ओर शत्रु सेनाओं के छा जाने

से उनकी स्थिति दोनों ओर से दबाकर बजायी जाने वाली मृदंग के समान हो गई। एक और गौरीशाह और दूसरी ओर गुर्जरेश्वर जैसे प्रबल शत्रु चढ़ आये थे; किन्तु सम्भरी नरेश (पृथ्वीराज) को धन्य है, जिसने विचित्र ढ़ंग से दोनों का सामना किया। उसके दो सहस्र योद्धा, बारह सहस्र विपत्नी-योंद्धाओं से इस प्रकार भिड़ गये; मानों दोनों विपत्नी-दलों के बीच में भयंकर दावाग्नि प्रज्ज्वलित हो गई हो।

सारुँड़े साहाबदीन, सुलितान विलग्गौ।
सोभत्ती भर भीम, राउ लक्खन असि दग्गौ॥
नागौरैं सामंत, ईस-चहुवान पिथाई।
असपति गुज्जर पती, जानि मिरदंग बजाई॥
दुहुँ बीच हजारी अट्ठ चव, ग्रेहां मंत परठ्यौ।
चामंडराय कैमास सम, खींची खग्ग बरट्ट्यौ॥६४॥ 63

शब्दार्थ:—साहाबदीन=शहाबुद्दीन। विलग्गौ=लगा, अड़ा। सोभत्ती=सोजत्री। लक्खन=लाखों। असिदग्गों=तलवार से दागने लगा। ईस=स्वामी। पिथाई=पृथ्वीराज। दुहुँ=दो हजार। हजारी अट्ठ चव=बारह सहस्र। बरट्ठ्यौ=बल प्रदर्शित किया।

अर्थ:—सारुँड़े नामक स्थान पर आकर शहाबुद्दीन सुलतान अड़ गया और सोजत्री की ओर भोला भीम लाखों सामंतों सहित तलवार की ज्वाला से शत्रुओं को दग्ध करने लगा। स्वामी पृथ्वीराज चौहान के सामन्त नागोर की ओर बढ़े। एक ही पृथ्वीराज के दोनों ओर चालुक्य और गौरीशाह इस प्रकार से प्रतीत हुए; मानों एक ही मृदंग दोनों ओर से ताल लगाकर बजाई जा रही हो। दोनों शत्रुओं के बारह सहस्र योद्धाओं के बीच में पृथ्वीराज के दो सहस्र वीरों ने गृह मंत्रणा करके कैमास और चामंडराय को नेता बनाया। तब उक्त दोनों वीरों ने सेना का नैतृत्व ग्रहण करते हुए तलवार खींचकर बल प्रदर्शित किया।

मतौ मंडि नागौर राइ कयमास विचारं।
दल समूह सुलितान[1], मिल्यौ नाहर परिहारं॥
सोभत्ती चालुक्की राइ, भोरा वढ़ि लग्गौ।
तुब्ब अवाज सजि जूह जियन कज्जैं नन[2] भग्गौ॥

चामंड जैत उच्चारयौ, बाबारो लंबी सु भुव ।
सुलतान सेन क्त्तिक कहौं, हम ठिल्लें खुरसान ध्रुव ।।६५।। 64
ग्रा० पा० १, २ दे० ।

शब्दार्थः—सोझती=सोजत्री । तुछ अवाज=तनिक सी बात पर । जूह=यूथ । जियन=जीवन के लिये । बाबारो=बड़े बाप का पुत्र । लंबी सु भुव=लम्बी भुजा वाला । धुव=ध्रुव, अटल ।

अर्थः—मंत्रणा का मंडन करते हुए कैमास ने नागौर का भार लेना निश्चय किया और नाहरराय परिहार भी सुलतान की सेना को समूह रूप में (विशेष संख्या में) सुनकर पृथ्वीराज से मिल गया । सोजत्री की ओर से चालुक्य नरेश भोराभीम बढ़ा । उसने तनिक सी बात पर ही अपनी सेना के यूथ को सजाया । अतः सामन्तों ने निश्चय किया कि जीवन के मोह में पड़ कर पीछे पैर नहीं देना चाहिये । इस पर पृथ्वीराज के बड़े बाप का लम्बी भुजाओं वाला पुत्र (गोविन्दराय), चामंडराय और और जैत्रसी को सम्बोधित करते हुए बोला कि शाही सेना हमारे सामने क्या वस्तु है ? (अर्थात् नगण्य है) अतः हम निश्चय रूप से अटल खुरासानी दल को पीछे ढ़केल देंगे ।

कहौ तो वंधौ साहि, धाइ चालुक्क विडारौं ।
स्वामि काज सामंत, मरण तन तिनुक विचारौं ।।
अप्पु अंगवै सुजीव, पुत्त वंधव खिझि भानं ।
चक्रवती त्रिन वत्त, वीत रागी करि जानं ।
अंतरौ एह[१] कैमास सुणि[२], मरण[३] तुच्छ मारण[४] वहुत ।
उन आस मोह नन आस हम, त्रिगुन[५] एगुन[६] तजि[७] रहत[८] ।।६५।।
ग्रा० पा० १ से ८ दे० ।

शब्दार्थः—कहो तो=यदि तुम कहो तो । वंधौं=बांधों, बंधन में लूं । साहि=शाह को । चाह= इच्छा करके । विडारौं=नष्ट कर दो । तिनुक=तिनके के समान । अप्पु अंगवै=स्वयं स्वामी अपनाता है । वत्त=समान । वीतरागी=राग रहित । अंतरौ=अंतर । उन आस मोह=शत्रु पक्ष वाले मोह की आशा में रहते हैं । नन=नहीं ।

अर्थः—वह वीर पुनः कैमास को सम्बोधित कर कहने लगा कि हे मंत्रीवर ! यदि तुम कहो तो मैं शाह को बांध लूँ, या आगे बढ़कर चालुक्य (या चालुक्य सेना)

का नाश कर दूँ ! हम सामन्तगण अपने स्वामी के लिए शारीरिक मृत्यु को तृण तुल्य समझते हैं। यदि स्वामी हमें प्राणों से अपनालें तो हम उसके लिए अपने पुत्रों और बंधु बांधवों को क्रोधित होकर (युद्ध में) कटवाने को तैयार हो जाते हैं। चक्रवर्तीपन को तृणवत मानने के कारण ही हम राग रहित कहे जाते हैं। हममें और शत्रु पक्ष वालों में केवल इतना ही अन्तर है कि हम थोड़ों को मरना है किन्तु वहुतों को मारना है और उन्हें (शत्रु पक्ष को) मोह की आशा है किन्तु हमें मोह की आशा नहीं क्योंकि जिस प्रकार निर्गुणी ममत्व का त्याग करके रहता है उसी प्रकार हम भी ममत्व रहित होकर रहते हैं।

पहिलै भंजौ भीम, बोलि वग्गरी विसाले।
महनसीह परिहार, देहदुज्जर मुंच्छाले ॥
रा जद्दुन जज्जीह, जीह जद्दो-जामानी।
ओछाही सारंग, देव पच्छे परवानी ॥
चालुक्क चंपि धूनी धरा, सा सुरतानह संभरी।
वेदल वधाइ वढ्ढाइया, वोल उचाए[1] डंमरी[2] ॥ ६६ ॥

ग्रा०पा०१, २, दे०घ०पा०।

शब्दार्थः– देह दुज्जर=नष्ट नहीं होने वाली काया वाला। मुंच्छाले=मूंछवाला। जज्जीह=जग्र, काल। जीह=जो। ओछाही=उत्साही। पच्छे=पक्ष में। परवानी=निश्चय। वढ्ढाइ=बढ़ा। वधाइया=बुलाया। उचाये=उठाये, कहे। डंमरी=आडम्बर युक्त।

अर्थः—विशालकाय देवराज बग्गरी, कठिनाई से नष्ट होने वाली काया वाला मूँछाला महनसी परिहार, यमतुल्य यादव नरेश जामराय और उत्साही वीर सारंगदेव ने प्रामाणिक शब्दों में कहा कि पहले हम भीम का नाश करेंगे; क्योंकि उस चालुक्य ने पृथ्वी को दबाकर कंपित कर दिया है, एवं अपनी सेना को बढ़ाते हुए शाह को भी सूचित किया है और इसीलिए वह भी बढ़ा है। साथ ही उसने हमें आडम्बर युक्त (अभिमान पूर्वक) वचन भी कहे हैं।

रा प्रथिराज प्रसंग, राउ वोले वड़ गुज्जर।
तिन तोली तरवारि, [1]साहि उप्पर दल दुज्जर ॥
कयमासह गढ़ सौंपि, कह्यौ कोटां रा रक्खन।
तु मंत्री सस्त्रधार, भार भारी भर भक्खन ॥

आलोप अवारी संभरिय, मत्त[2] विहत्तति[3] वत्त हुअ ।
आरीर हजारी पंच सैं, चाहुवान खल घत्तुअ ॥ ६७ ॥

ग्रा० पा० १ से ३ दे० ।

शब्दार्थः—तोली=उठाई । दुब्भर=दुरुह । सौंपि=सौंपा । कोटारां=अन्य गढ़ों की । रक्खन=रक्षा का भार । भारी=बड़े २ । भर=भट, योद्धा । भक्खन=नष्ट करने वाला । आलोप=लुप्त करने वाली । अवारी=कुसमय में । संभरिय=संध्या । विहत्तति=दोनों । वत्त=बात । आरीर=अड़पड़ने वाले । सैं=सब । चाहुवान-खल=चाहुवान के शत्रु । घत्त=नाश करना ।

अर्थः—प्रसंगराय खींची और रामराय बड़ गुज्जर ने राजा (पृथ्वीराज) से कहते हुए शाह के दुरुह दल पर तलवार उठाई । तब पृथ्वीराज ने कैमास को नागौर सौंपा और कहा-हे मंत्री ! तू हमारे दुर्गों का रक्षक है और तूही शस्त्रधार द्वारा युद्धभार ग्रहणकर बड़े २ शत्रुओं को नष्ट करने वाला है । इस कुसमय में लुप्त करने वाली (शत्रुओं की सेना रूपी) सँध्या छागई है और यह दो मस्त हाथियों से भिड़ने जैसी बात है । वे सभी पांच हजार चालुक्य भिड़ पडने वाले हैं । अतः तू उन दुष्ट शत्रुओं से भिड़कर उनका नाश करदे ।

लोहानौ भयौ अग्गु, तोन सै पंच हकेरिय
पंच हजारह सेन[1], एकदस अट्ठह भेरिय ॥
उच्छंगी संनाह, टारि ते सुभट सनेरिय
मिले जाय जहां अग्ग, फौज चहुआन सुफेरियं ॥
उत्तंग ढाल बैरख बनिय, पज्जूनह सो टारियह ।
अस पत्ति सेन नख खग्ग कहि, सावन सार सुवत्त[2] इह[3] ॥ ६६ ॥ 68

ग्रा० पा० १, का । २, ३, घ० पा० ।

शब्दार्थः—तोन=त्रोण, भाथे । तोन से पंच=पांचसौ तरकस धारी । हकेरिय=बढ़ाये गये । सेन=सेना । एक दस अट्ठह=गुन्नीस । उच्छंगी=अच्छी, सुन्दर । सनेरिय=पास में आये हुए । फेरिय=फेरदी, विचरण कराया । बैरख=पताका । असपति=असुरपति, शाह । सेन=बाज । सावन-सार=लोह कुंत । सुवत्त=श्रवत, बरसाना ।

अर्थः—उस समय वीर लोहाना आजानबाहु आगे बढ़ा । उसके साथ ही तरकस धारी ५०० वीर भी बढ़े । उसके साथ में ५००० संख्या वाली सेना थी, जिसमें उन्नीस भेरियाँ थीं । श्रेष्ठ कवचों से जिनका शरीर मंडित था, ऐसे पास में रहने वाले वीरों

को चुना गया । वे, सब जहाँ चहुआनी सेना थी, उसमें सम्मिलित होगये। उसी समय वीर पज्जून उठी हुई ढालें और फहराती हुई पताकाओं वाले वीरों को अपने साथ में लेकर आगे बढ़ा और उसने तीक्ष्ण नखों वाले बाज पक्षी तुल्य शाह पर लोहकुंत बरसाना (चलाना) प्रारम्भ किया।

मतौ मंडि सामंत, सेन बंटे चहुग्रानं।
रा चावंड[1] जैतसी[2], मुक्कि कयमासह थानं॥
अड्डु ए संबोधि, चंपि चालुक्क मुख लग्गा।
जितै मिले संभरी, जोग सद्धै अप भग्गा॥
वंटई फौज प्रथिराज त्रिप, अर्क वीर[3] राका हरी।
अपु[4] लज्ज लई धर संभरी, संभरवै कंधह धरी॥ ६६॥

ग्रा० पा० १, २ घ० पा०। ३, ४ दे०।

शब्दार्थः—मतौ मंडि=मंत्रणा करके। वंटे=विभाजन किया। अड्डु=अर्गला स्वरूप। ए=इस प्रकार। जितै=जितने भी। मिले=सामना किया। जोग=जैसा लिखा वैसा योग। सद्धे=साधा, भोगा। अपभग्गा=अपने भाग्य में। राका=निशि, अंधकार। हरी=नाश किया। संभरवै=सांभर पति, चाहुवान नरेश (पृथ्वीराज)।

अर्थः—इधर सामंतों से मंत्रणा करके पृथ्वीराज ने अपनी सेना का विभाजन किया और जिस स्थान (नागोर) पर कैमास नियुक्त किया गया था, वहीं चामंडराय और जैतसी को भी नियुक्त किया। उन्हें यह सम्बोधित करते हुए कहा कि तुम दोनों हमारी अर्गला स्वरूप हो, अतः गुर्जरी सेना से सामना करके उसे दबा देना। जिसने भी आकर चौहान पृथ्वीराज से सामना किया उसने अपने भाग्य में जैसा लिखा था वैसा ही भोगा। इस प्रकार सेना का विभाजन कर, उस सूर्य स्वरूपी वीर पृथ्वीराज ने शत्रु रूपी छाये हुए अंधेरे का नाश किया और उस संभरी नरेश पृथ्वीराज ने चाहुआन वंश की लज्जा और भू भाग का भार अपने कंधों पर धारण किया।

दोहा

खीची खग्ग परट्ठि बर, बर भीमँग चालुक्क।
तिहुँ दिस तिहुँ बर धाइया, ज्यौं पिच्छमि आरक्क॥७०॥

शब्दार्थः—खीची=ऐंचली, म्यान से निकाली। परट्ठि=प्रवेश करके। तिहुं दिसि=चामुण्डराय, जैतसी और कैमास की ओर। तिहूँवर=उस समय। धाइया=बढ़े, धावा किया। पिच्छमि=पश्चिमी, सायंकाल समय का। आरक्क=अर्क, सूर्य।

अर्थः—चामुंडराय, जैत्रसिंह और कयमास ने विपत्ती दल में प्रवेश करके तलवारों को म्यान से निकाली। यह देखकर श्रेष्ठ वीर भीम और उसके साथी चालुक्यों ने उन तीनों (चामुण्डराय, जैतसी और कयमास) की ओर, पश्चिम दिशा में डूबते हुए निस्तेज सूर्य की तरह होते हुए भी, धावा किया।

रोकि मुक्ख सुरतान को, चाहुवान दै वांन।
वर वसीठ भोरा सुभर, चलि नागोरणि थान ॥७१॥

ग्रा० पा० १ दे०।

शब्दार्थः—मुक्ख=मुहानां। दै-वांन=वचन देकर, आज्ञा देकर।

अर्थः— चौहान ने आज्ञा देकर सुलतान के मुहाने को रोक लिया है यह जानकर भोराभीम ने अपने दूत और कुछ वीरों को कैमास के पास जाने के लिए नागौर को रवाना किया।

कवित्त

मिलिधर भीमँग राव, चाव पत्तौ पति गुज्जर।
विखम बैर उद्धार, सार वीरत्त सु दुज्जर।
चाहुआन सुरतान, काम कंदल क्रत लग्गं।
देवँग बद्दल सीम, मार जरजी जसु जग्गं॥
कलमलिय उअर परताप तन, छुध पियास निद्रा गमिय।
अनुराग तरुनि खल खेध जिय दुअ दुराह चालुक दमिय॥ 72

शब्दार्थः—चाव=चाह, उत्साह। दुज्जर=असह्य। देवँग=देव तुल्य अँग वाला (पृथ्वीराज)। बद्दल सीम=बादल तुल्य अपार सीमा वाली शाही सेना। मार=कामदेव। जरजी=जारी, व्यभिचार। जसु=यश। उअर=उर। दुअ=दोनों के लिये। दुराह=बुरा रास्ता। दमिय=दमन किया।

अर्थः—चाहुआनी भूभाग में आकर गुर्जरेश्वर भीम उत्साह युक्त होगया, किन्तु उसका पृथ्वीराज के विषम वैर से मुक्त होना कठिन था; क्योंकि उस (पृथ्वीराज)

का लोहा और वीरत्व दोनों ही असह्य थे। इसीलिये भीम ने उस वैर से मुक्त होने के लिए एक ओर तो शाह को चाहुवान नरेश पृथ्वीराज से भिड़ा दिया और दूसरी ओर कयमास को काम कंदला (एक सुन्दरी) के सुरति प्रसंग में लगा दिया। देव-तुल्य पृथ्वीराज तो सीमा प्रदेश पर शाह के विरुद्ध चढ़ा हुआ ही था, इधर भीम ने कैमास को काम और व्यभिचार में फँसाकर यश प्राप्त किया; क्योंकि पृथ्वीराज के प्रताप ने उस (भीम) के हृदय और शरीर को कलमला दिया था (जलन पैदा करदी थी) जिससे उसकी क्षुधा, प्यास और निद्रा नष्ट हो गई थी। इसीलिये उसने एक (कैमास) को तरुणी के अनुराग में फँसाकर और दूसरे (पृथ्वीराज) को दुष्ट (गौरी) द्वारा पीड़ा पहुँचाकर, शिकार बनाया। इस तरह चालुक्य भीम ने दोनों वीरों (पृथ्वीराज और कयमास) का दो बुरे रास्तों द्वारा दमन करना चाहा।

सोझत्ती है गै उभार, दल अरि संपत्तो।
सुभर सार भीमंग, गज्जि गज्जनअसिरत्तौ[1]॥
आयस रहसि विचार, मुक्ख मंत्री आभासिय।
तिहि निसाह परधान, अंध लच्छी उप्पासिय॥
पामार राम रन उद्धरन, गुर गुरीठ[2] पैरंग गुर।
रानिग झाल खग झालि[3] बल[4], बीर देव बघेल धुर॥ ७३॥

ग्रा० पा० १ से ४ घ० पा०।

शब्दार्थः—सोझत्ती=सोजत्री। उभार=उभरता, उठाता, बढ़ाता। आयस=आज्ञा, आदेश। रहसि=रहस्य। आभासिय=आभास कराया, कहा। गुर=गुरु। गरीठ=गरिष्ठ, कठिन। पैरंग=पैरने वाला, पार करने वाला। गुर=भारी, अधिक।

अर्थः—सौजत्री की ओर से हाथी घोड़ों को बढ़ाता हुआ शत्रु दल आगे बढ़ा। इस प्रकार (पृथ्वीराज पर) एक ओर से भोराभीम के सशस्त्र योद्धाओं और दूसरी ओर से खड्ग-रस में लीन गज्जनेश्वर ने गर्जना की। राजाज्ञा के रहस्य पर विचार करने को भोराभीम ने अपने मुख्य मंत्री को सूचित किया, तब उस रात्रि को, अंधा जैसे लक्ष्मी की उपासना करता है (उद्योग रहित होकर लक्ष्मी चाहता है) उसी प्रकार मनमानी विजय की कल्पना करने वाले उसके मंत्रीगण एकत्रित हुए। युद्ध द्वारा मुक्ति देने वाला गुरू तुल्य प्रमार रामराय, बलपूर्वक खड्ग ग्रहण करने वाला रानिग मकवाना, धुरा स्वरूपी वीर देव बाघेला

सोढ़ा सारँग देव, गंग डाभी सु गुज्ज-गुर ।
बर चाचिग्ग सुदेव[1], धीर[2] बाघेल ध्रंमधुर ।।
अमर सीह सेवरा, बीर बिद्या बल जासं ।
मित्र अट्ठ मिलि काज, चिंत चिंतिय बिसवासं[3] ।।
उच्चरै गरुव भीमग तब, करौ मंत्र उच्चार चित ।
पंमार सरन चहुआन गय, लहो सगप्पन होर हित ।। ७४ ।।

ग्रा० पा० १, २ घ० पा० का० । ३ पा० ।

शब्दार्थः—गुज्ज-गुर=भारी गर्जना करने वाला, ऊर्ध्व घोषणा करने वाला। सगप्पन=सम्बन्ध, सम्बन्धी। हीर=सीर, पत्त ।

अर्थः—सोढ़ा सारंग देव, ऊर्ध्व घोषणा करने वाला गंगडाभी, श्रेष्ठ वीर चाचिग देव, धर्म की धुरा स्वरूप वाघेलाधीर और बावन ही वीरों को वश करने की विद्या जानने वाला अमरसिंह सेवरा इन आठों मंत्रियों ने मिलकर विश्वास पूर्वक चित्त से चिंतन किया। तब भोरा भीम उनसे गर्व पूर्वक कहने कहने लगा कि तुम सब चित्त में सोचकर अपनी २ मंत्रणा कह सुनाओ; क्योंकि प्रमार (सलख-जैत्र आदि) चाहुवान (पृथ्वीराज) की शरण में गये हैं और उसने (पृथ्वीराज ने) भी अपने सम्बन्धी का पत्त लिया है।

दोहा

इह कहि वहि[1] बज्जन बिलसि, बज्जि निसान निहाइ[2] ।
करि पाखंड जु[3] अमर धर, बंधन दाहिम राइ[4] ।। ७५ ।।

ग्रा० पा० १, २, ४, घ० दे० पा० । ३ दे० ।

शब्दार्थः—वहि=वहन किये, बढ़ाये। बज्जन=वाजि, घोड़े। निहाइ=भयंकर स्वर से, जोरों से। पाखंड=प्रपंच। बंधन=बंधन में लेने को, वश में करने को।

अर्थः—यह कह कर उसने उत्साह पूर्वक घोड़ों को बढ़ाया। उसी समय जोरों से नक्कारे बजने लगे, और तभी अमरसिंह सेवरा ने दाहिमा कयमास को वश में करने का प्रपंच शुरु किया।

कवित्त

वर पट्टन वै रान, तेन झाला अधिकारिय ।
मतो मंडि चालुक्क, अमर सेवर सुधि भारिय ॥
भैरों भट्ट प्रमान[1], बुद्धि कायथ[2] अधिकारिय ।
सो मत्तें सो मत्त, बुद्धि सेनह विच्चारिय ॥
दल मलहि सेंन चहुआन कौ, अरु भंजै सुरतान दल ।
मंत्री सुराज कैमास वर, साम दाम कीजै सु छल ॥ ७६ ॥

ग्रा० पा० १, २ घ० ।

शब्दार्थः—तेन=उसका । मतो-मंडि=मंत्रणा की । सुधि=सावधानी । प्रमाण=प्रमाणिक, प्रसिद्ध । बुद्धि=बुद्धराय । सों-मत्तें=उस मंत्र से । सो मत्त=सब सहमत हुए । सेनह=सेन, सज्जन, हित चाहने वाले ।

अर्थः—पट्टन पति भीम अधिकारी रानिंग झाला, अन्य चालुक्य वीर, विशेष सावधान अमरसिंह सेवरा, प्रसिद्ध भैरव भट्ट और अधिकारी बुद्धराय कायस्थ सभी ने मिलकर मंत्रणा की और निश्चय किया कि चाहुवानी सेना को कुचल कर शाही दल को नष्ट कर दिया जाय; किन्तु पहले पृथ्वीराज के श्रेष्ठ मन्त्री कयमास को सामदाम और छल द्वारा किसी तरह वश में करना आवश्यक है । इस विचारपूर्ण मंत्रणा से भीम का हित चाहने वाले सभी साथी सहमत हो गये ।

गाथा

चढ़ियं चालुक सेनं, चहुआनं साधनं भीरं ।
दिसि कैमास प्रमानं, अमरसिंह मुक्कियं मंत्रं ॥ ७७ ॥

शब्दार्थः—चढ़ियं=चढ़ाई की, सजाई की । भीरं=समूह । मुक्कियं=चलाया, प्रचार किया, साधन किया । मंत्रं=मन्त्री को ।

अर्थः—इस मंत्रणा के निश्चित हो जाने पर चालुक्य ने इधर तो चौहान पृथ्वीराज के सैन्य समूह पर युद्ध साधन करने के लिए सेना सजाई और उधर अपने मन्त्री अमरसिंह सेवरा को कैमास की ओर भेजा ।

कवित्त

जिह[1] अमरसीह[2] सेवरा, आनि देवंग परव्वत ।

जिह अमरसीह[3] सेवरा, द्रव्य आन्यौ अनि अब्बत ॥
जिह[4] अमरसीह[5] सेवरा, चंद मावसि उग्गाइय ।
जिह[6] अमरसीह[7] सेवरा, पदमनी मात रिझाइय ॥
बट उभै कोस उद्धोत हुअ, विप्रसीस मुंडिय सकल ।
चित मंत ध्रंम आध्रंमबर, सुबर मंत्र किज्जै सकल ॥ ७८ ॥
ग्रा० पा० ४ से ७ दे० ।

शब्दार्थ:—अनि=अन्यका, अन्यत्र से । अब्बत=सब । मावसि=अमावस्या को । उद्धोत=ऊर्ध्व, उन्नत ।

अर्थ:—जिस अमरसिंह सेवरा ने देवताओं को पर्वतों पर स्थापित किया, सब ओर से दंडरूप द्रव्य ले २ कर संग्रह किया, अमावस्या को चन्द्रोदय कर दिया (असंभव को संभव कर दिया), पद्मावती (देवी) को प्रसन्न किया, बारह २ कोस के घेरे में जो उन्नत माना गया और जैन धर्म का प्रचार करके जिसने सब ब्राह्मणों का मुण्डन कराया, उसने अपने चित्त में धर्म अधर्म के मंतव्य को नहीं सोच कर केवल अपनी मंत्रणा के प्रचार करने को ही श्रेयस्कर माना ।

गाथा

न-को-न-को नरपती, पत्ती चालुक्क राइयो सरिसा[1] ।
किं चहुवान, सु-मंती, कैमासं जानयं बीर ॥ ७६ ॥
ग्रा. पा. १, घ. ।

शब्दार्थ:—न-को-न-को=अन्य कोई नहीं । सरिसा=समान । किं=क्या । सु-मंती=श्रेष्ठ मन्त्री ।

अर्थ:—अमरसिंह सेवरा ने कयमास मन्त्री को लिखा— हे श्रेष्ठ मन्त्री कैमास ! चालुक्येश्वर भीम के समान अन्य कोई राजा नहीं हो सकता, तब तुमने चाहुवान (पृथ्वीराज) को वीर कैसे समझ रक्खा है ?

साटक

स्वस्ति श्री जय भूप भूपति भयं, भीमं भयं वर्तते ।
पायाये तलवंत[1] देव खिनयो, मंत्रा मही नक्खते ॥
हेमं कूट[2]-कुठार[3] खग्ग[4] खलयं, देवा चरित्तं भयं ।
दारिद्रं यदईव आननरयो, द्रिष्टा[5] सया पावयं[7] ॥८०॥
ग्रा. पा. १ से ७ पा. ।

शब्दार्थः—जय भूप=विजयी राजा दाहिमा नरेश कयमास। भूपति भयं=राजा हो गये। भीमं भयं=भीम का भय। वर्तते=काम में लेते, मानते। पायाये तलवंत=उसके चरण तल के समीप। देव खिनयो=क्षण भर में देव तुल्य। मंत्रा=मंत्रणा। मही=पृथ्वी पर। नक्खते=नहीं क्षत होती। हेमंकूट=हिमाचल के शिखर तक। कुठार=कठोर, दुष्ट। खग्ग=खड्ग। खलयं=स्खलयम्, प्रवाहित होती है, नष्ट करती, चलती। भयं=हो गये। यद ईव=अगर। आनन रयो=अन्य कोई राजा नहीं। द्रिष्टा=देखो। स या=उसके। पावयं=चरण।

अर्थः—स्वस्ति श्री दाहिम राज (कयमास) तुम्हारी जय हो। सुनो जो भोरा भीम के भय को मानते हैं, वे नरेश तुल्य होजाते हैं। इसके पद तल के समीप रहने वाला क्षण मात्र में ही देव तुल्य माना जाने लगता है। इसकी मंत्रता पृथ्वी पर अक्षय है (पृथ्वी से लेकर) हिमाचल के शिखर तक कोई भी दुष्ट नर नहीं रह सकता है; क्यों कि इसकी खड्ग वहाँ तक चलती रहती है। इसी कारण इस राजा का चरित्र देव तुल्य होगया है। यदि किसी को दारिद्रय ने घेर रक्खा हो तो उसे चाहिये कि वह इस राजा भोरा भीम के चरणों की ओर देखे (अर्थात् इनके चरणों का सहारा ले); क्योंकि उसे दूर करने वाला इसके अतिरिक्त अन्य कोई राजा नहीं है।

जं तं वारिधि वंध नेव घलयं, भीमं भयानं बलं।
कल्पं केलि[१] मरोरि मारव दिसा, बध्यं पुरं बन्दरं॥
दीवं देवय देव हव्वस पुरं, हब्सी हुजावं पुरं।
सोयं भीम वलिष्ट मध्य वलयं, लेनं कलिंदू स्तरं॥८१॥

ग्रा. पा. १ पा.।

शब्दार्थ—जं=जैसे। तं=तमोगुण, तमोगुणी। बंधनेव=बांधने को, निर्माण करने को, खोदने को। कल्पं=कल्प के प्रारम्भ से। केलि=केल वृक्ष। बध्यं=नष्ट किया। बन्दरं=बन्दर, समुद्र तटीय स्थान। दीवं=दीप्तिमान। हव्वस=होम कर देने योग्य। कलिंदू=कालिन्दी। स्तरं=स्थल।

अर्थः— जैसे सगर के साठ सहस्र तमोगुण धारी पुत्र समुद्र को बांधने (खोदने) को चले थे वैसी ही भीम की भयानक शक्ति है जिसने कल्पादि से चली आती हुई मालव धरा को क्रीड़ा मात्र में तोड़-मरोड़ दिया और समुद्र तटीय नगरों को ध्वंस कर दिया। वह साक्षात दीप्तिमान देवाधि देव है। वही हब्सी और हुज्जाब पुरों

(मुस्लिम नगरों) को भी होम देने वाला है। वह (भोलाभीम) अत्यन्त बलिष्ट है और कालिन्दी के दुस्तर भू भाग (दिल्ली) को लेने में समर्थ है।

गाथा

इंदो वारिधि बंधं, वारिधि मद्धे सु इंद्रनं द्रिष्टा ।
वारिधि अंचन इंदो, सा भीमं रूपयं भूपं ।।८२।।

शब्दार्थः—इन्दो=चन्द्रमा । वारिधि=समुद्र । बंधं=बंधं, अन्तर्गत । नं=नहीं । द्रिष्टा=दीखता । अंचन=आचमन करने वाला, अंजुली द्वारा पी जाने वाला ।

अर्थः—समुद्र के अन्तर्गत चन्द्रमा दिखाई देता है, चन्द्रमा के अंतर्गत समुद्र नहीं दिखाई देता; किन्तु इस पृथ्वी पर भीम स्वरूपी ऐसा चन्द्रमा है जो समुद्र को (शत्रु सेना को) अंजुली करने पीजाने वाला है (अपने में समा देने वाला है)।

भूपति भीम नरिंदं, भू भारं काज अवतारं ।
तुं कैमास न जानं, तो नंतो छंडि चहुवानं ।। ८३ ।।

शब्दार्थः—नंतो=नाता, सम्बन्ध ।

अर्थः—पृथ्वी के स्वामी राजा भीम ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही अवतार धारण किया है। हे कैमास ! तू ने अभी तक उसे नहीं पहचाना है। अतः अब भी पहचान ले और चाहुवान (पृथ्वीराज) से सम्बन्ध छोड़ दे।

कवित्त

गुज्जरवै धर देहिं, देहि धोरहरा ग्रामं ।
मति सपूर कैमास, देइवहु द्रव्य सु तामं ।।
मध्य पहर जंमद्धि, द्रव्य आवै बड[1] बंदर ।
सो अप्पफैं[2] चालुक्क, करै कयमास इन्द्र घर ।।
को सुनै[3] कहै को जंपि को, को उत्तरू तिहि[4] देइ फिरि ।
कैमास मंत्रि किन्नौवसै, मनुहु चित्र पुत्तलि लिहरि[5] ।। ८४ ।।

प्रा० प० १ से ५ दे० ।

शब्दार्थः—मति सपूर=सम्पूर्ण मतिवाला, मतिमांन । सु तामं=तुम्हको । मध्यपहर=एक प्रहर में ।

बंदर= बंदरगाह, समुद्रतटीय स्थान। अप्पै=अर्पै, अर्पित करेगा। इन्द्र घर=इन्द्र तुल्य भवन। वसै=वश में। लिहरि=लीक, (रेखा)।

अर्थः—हे मतिमान कैमास! वह गुर्जरेश्वर तुझे धोरहरा ग्राम के साथ अनेक भूभाग और बड़े बड़े बन्दरगाहों से एक प्रहर में प्राप्त होने वाला बहुत सा द्रव्य देकर तेरे घर को इन्द्र तुल्य वैभव सम्पन्न कर देगा। दूत द्वारा इस प्रकार की सूचना मिलने पर (कवि कहता है कि) कौन सुने और कौन उत्तर दे, कैमास कुछ न बोल सका। उस समय वह (लोभ से) वशीभूत होकर चित्र लिखित पुत्तलिका के सदृश (स्तब्ध) हो गया।

दोहा

अमरसिंह पासैं प्रसन, मति[1] मंत्री[2] जल जुथ्थ[3]।
तत्त तरुणि[4] आनी चहुनि, सुनौ सुमंगल कथ्थ ॥ ८५ ॥

प्रा० पा० १ से ४ दे०।

शब्दार्थः—पासैं=पास, द्वारा। जल जुथ्थ=जाल। चहुनि=चारों ने।

अर्थः—अमरसिंह के द्वारा प्रसन्नता पूर्वक जाल में फँसे हुए उस मतिमान् मन्त्री (कैमास) के समक्ष, अमरसिंह और उसके चारों साथियों ने एक तरुणि बाला प्रस्तुत की। उसका सुमंगल वृत्तान्त सुनो।

कवित्त

कुटिल केस वय स्याम, गौर गुन वाम काम रति।
थोर[1] थनी[2] उन्नित नितंब, जानि रवि व्यंब बीय[3] गति ॥
चख चंचल उदियन रीह, करी मनु ब्रह्म अप्पु[4] कर।
ता समान कोइ आन, नाहि असमान थान धर ॥
वैनीय दंडु डुल्लइ[5] तनह, तिहि उप्पम[6] कवि चंद कहि।
जुब्बन तुरंग सुमुनह - करण, मनहु मार ओगी सु गहि ॥ ८६ ॥

प्रा० पा० १ से ६ दे०।

शब्दार्थः—गौर=गौरी। थोर थनि=छोटे स्तनों वाली (कम उम्र वाली)। बीय=दो। गति=तरह। उदियन रीह=उद्दीपन की सीमा। असमान थान धर=आसमान, (नभ मंडल) और भू मण्डल पर। सुमुनह-करण=पुष्प पाणी। मार=कामदेव। ओगी=चाबुक।

अर्थः—वह बाला कुटिल केश वाली (घुंघराले बाल वाली) और शोडष वर्षीया थी। उसके स्त्रियोचित् गुण गौरी के समान थे। वह वामा साक्षात् कामदेव की स्त्री, रति के समान और लघुस्तनी (कम उम्र वाली) थी, उसके उभरे हुए नितम्ब ऐसी शोभा पाते थे मानों सूर्य और उसका प्रतिबिंब (गोलाकृति) दोनों पास २ सुशोभित हो रहे हो। उसके चपल नैत्र उद्दीपन की सीमा तुल्य थे। ब्रह्मा ने मानों उसे अपने ही हाथों से रचा हो। उसके समान नभ मंडल और भू मंडल पर अन्य कोई सुन्दरी नहीं देखी गई। कवि चंद कहता है कि उसका वेणी-दण्ड शरीर पर इस प्रकार झूमता था मानों यौवन रूपी घोड़े को अधिक तेज करने के लिये पुष्पपाणि कामदेव ने चाबुक गृहण किया हो।

चंद वदन चख कमल, भूव[1] जनु भ्रमर गंधरत।
कीर नास बिंबोष्ठ, दसन दामिनी दमंकत[2] ॥
भुज म्रनाल कुच कोक, स्यंघ[3] ल्यंकी[4] गतिबारुण[5]।
कनक कंति दुति देह, जंघ कदली दल आरुण[6] ॥
अलसंघ नयन मयनह[7] मुदित, उदित अनँगह अंगतिहि।
आनी सुमंत्र आरंभ वर, दिखखत[8] भुल्लत[9] देव जिहि ॥ ८७ ॥

ग्रा. पा. १ से, ६ दे।

शब्दार्थः—भूव=भौंहें। स्यंघ=सिंह सिंघ। बारुण=वारुण, हाथी। कंति=कांति। दल=पान, पाणि, हाथ। आरुण=अरुण वर्ण। अलसंग=अलसित, आलस युक्त। उदित=अंकुरित। भुल्लत=भूल जाते, सुध-बुध खो बैठते।

अर्थः—जिसका चन्द्रमाँ सा मुख, कमल से नैत्र, गंधरत भ्रमरों सी भौंहें, शुक सी नासिका, बिम्बाफल से अरुण ओष्ठ, चमकती हुई बिजली सी दंत पंक्ति, म्रनाल दंड सी भुजायें, चक्रवाक से कुच, सिंह सी पतली कमर, हाथी सी चाल, स्वर्ण कांति सी देह द्युति, कदली स्तम्भ सी जंघाएँ, अरुण वर्ण हाथ (हथेलियें) काम की उमंग में भरे हुए अलसाये नैत्र थे, उसके अंग प्रत्यंग से काम अंकुरित हो रहा था। जिसके दर्शन मात्र से देवता भी अपनी सुध-बुध खो बैठते थे, ऐसी उस बाला को अमरसिंह आदि ने मन्त्रणा करके कैमास के पास भेजी।

अंग चरित्र कि चित, चित्त मन मत्थ विकारिय।
मानहु मयन[1] तुरंग[2], अंग आनँग प्रचारिय ॥

किधो जोग मन भजन, रवन[3] सांई[4] सुख सागर।
मानहु मयन मवास[5], सेन सज्जी रति नागर॥
सलिता सु रूप लोयन लहरि, रहे मीन मन[6] भौंर परि।
घन हाइ भाइ गुन ग्राह सम, कवि का ब्रंननु[7] सकइ करि॥ ८८॥

प्र. पा. १ से, ७ दे.।

शब्दार्थः—मयन=मतवाले, तेज। प्रचारिय=प्रचारा, चाबुक मारा। भजन=भंजन। रवन=रमणी। सांई=स्वामी। मवास=मेवासी। रति=प्रेम। नागर=नागरपन, चतुरता। सलिता=सरिता। मनु=मन। भौंर=भँवर, जलचक्र, चक्कर। हाइ-भाइ=हाव-भाव। गुण=गुणे गये, माने गये। ब्रंननु=वर्णन।

अर्थः—उसका अंग शारीरिक चंचलता से और चित्त काम विकार से युक्त दिखाई पड़ता था, मानों मस्त (तेज) घोड़े के शरीर पर कामदेव ने चाबुक मार दिया हो। वह रमणी योगियों के मन का भंजन करने वाली थी अथवा अपने स्वामी के लिये सुख का समुद्र रूप थी। मदन मेवासी (चोर) द्वारा प्रेम और चतुरता की सेना रूप में मानों वह सजाई गई हो। उसका रूप सरिता के समान था जिसमें नैत्रों की चितवन लहरों के समान दिखाई देती थी। उसकी भँवर (चक्कर) में मन रूपी मीन पड़ जाते थे। उसके हाव-भाव ही ग्राह स्वरूप थे। इसका वर्णन कवि कहाँ तक कर सकता है।

गाथा

आचिज्ज बाल चरियं, किं होजम्म जम्म विन हरियं।
कै विधि पुव्वह लिखियं, जोमन मारुत्त सुख्ख सुख्खाई॥ ८९॥

शब्दार्थः—आचिज्ज=आश्चर्य। बाल-चरियं=बाला का चरित्र। होजंम=होमा गया। जम्म=जन्म। विन=उसका। हरियं=हरा-भरा। पुव्वह=पहले से ही। जोमन=यौवन। सुक्खाई=सुखा देगा, सूख जावेगा।

अर्थः—उस बाला का चरित्र आश्चर्य प्रद था। जिस कैमास का जन्म सदा हरा-भरा था (रसिक चित्त वाला था), उस बाला के द्वारा होम दिया गया, या यही कहना पड़ता है कि ब्रह्मा ने उस (कैमास) के भाग्य में पहले से ही यह बात लिख दी थी, कि उस बाला के यौवन रूपी पवन के संचार से उसका वह सरस जीवन सूख जावेगा।

दोहा

दूरति[1] बाले बाल गुन, रही चित्र परिमांन।
कै आई अहि लोंकतें, कै अमरेख बखांन ॥६०॥

ग्रा. पा. १, घ. पा. का.।

शब्दार्थः—दूरति=दुराती हुई, छिपाती हुई। बाल गुन=बाल स्वभाव, स्त्री स्वभाव। अमरेख=इन्द्र बखांन=प्रशंसित।

अर्थः—कयमास के समक्ष आकर वह बाला स्त्री स्वभाव के कारण ठिठक कर चित्र पुत्तलिकासी स्तंभित हो गई। उस समय वह ऐसी दिखाई दी मानों वह नाग लोक से आई हो (नाग कन्या हो) या इन्द्र द्वारा प्रशंसित देवाङ्गना हो।

सुरपुर नरपुर नागपुर, इह आचिज्ज सु कीन।
धनि मन्त्री सेवर अमर, दाहिम्मा[1] बल[2] छीन[3] ॥६१॥

ग्रा. पा. १ से ३ पा.।

शब्दार्थः—आचिज्ज=आश्चर्य। धनि=धन्य।

अर्थः—स्वर्ग पृथ्वी और नाग लोक के निवासियों ने भी यह देख कर आश्चर्य प्रकट किया और कहा कि भीम के मन्त्री अमरसिंह सेवरा को धन्य है जिसने दाहिमें कयमास को सहज में शक्ति रहित कर दिया।

यों वसि भौ कैमास वर, ज्यों रोगी भेखेज।
ज्यों नट वसि कपि नंचई, ज्यों त्रिय वसि पति सेज ॥६२॥

शब्दार्थः—वसि=वश में। भेखेज=भेषज, औषधी। नट=बादीगर। नंचई=नाचता। सेज=शैया पर, शयन समय।

अर्थः—कैमास उस बाला के वश में इस प्रकार होगया, जैसे रोगी औषधी के, बन्दर बाजीगर के और पति शयन समय स्त्री के वश में होजाता है।

कवित्त

आनि फिरी भीमंग, नयर नागौर घरघ्घर।

वसि किन्नौ दाहिम्म, धरनि भौ कंप धरद्धर ॥
सुपन वीर वरदाइ, भरकि उठि सुठि संचरि तहँ ।
जहँ मन्त्री भर सुभर, करिग वसि वसन देव जहँ ॥
धूमंग धूप डंबरि परिय, किल किलंत डौरु करह ।
दनु देव नाग सब वसि करन, कितिक बात बुद्धिय नरह ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ.—आनि फिरी=दुहाई दी गई । भरकि=चौंक कर । सुठि=श्रुति, सुनने पर, ज्ञात होने पर। संचरि=गया । भर-सुभर=योद्धाओं में श्रेष्ठ योद्धा । वसन=वश में । धुमंग=धूम्र । डंबरि परिय=उठने लगा । किल किलंत=किलकारी करती हुई । डौरु=डमरु ।

अर्थ.—फिर नागोरान्तर्गत् प्रत्येक गृह में भीम की दुहाई फेरदी गई । कैमास को वश में कर लेने के कारण पृथ्वी भी काँप उठी । इस बात की सूचना देवी ने चन्द-वरदाई को स्वप्न में दी, जिससे वह भी चौंक उठा । फिर वह सुन्दरी देवी, देवताओं को भी वशीभूत करने वाले किन्तु, इस समय स्वयं कामकन्दला बाला के वश में हुए, श्रेष्ठ वीर मन्त्री कैमास के पास पहुँची । उसके वहाँ पहुँचने पर धूप का धूम उठने लगा और देवी कर में डमरु लिए हुए किलकारी करती हुई दीखाई पड़ी । वह महा-माया देवता, दानव और नागादि को वश में करने वाली थी; फिर मनुष्य की बुद्धि तो उसके समक्ष कितनी है ।

दोहा

इह चरित्त दिखी मात तहँ, कटक सँपत्ती आय[1] ।
चंद जप्यौ जप जुगति सम, निसि सुपनंतर पाय[2] ॥ ६४ ॥

ग्रा० पा० १, २, घ० का० ।

शब्दार्थ:—दिखी=दिखा कर, बतलाकर । कटक=सेना । सँपती=पहुँची । जुगतिसम=युक्ति पूर्बक ।

अर्थ:—इस घटना से चन्द को अवगत कर, देवी नागोरान्तर्गत चहुवानी सेना में पहुँची । इधर इस स्वप्न को देख कर चन्द ने युक्ति पूर्वक देवी का स्मरण किया ।

सुकवि चंद चल्ल्यौ सु निज, पुर नागौर निधान ।
जहँ[1] कैमास पलट्टि तन, करत केलि आह्वान ॥ ६५ ॥ interpolated

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—निज=स्वयम् । केलि=क्रीड़ा ।

अर्थ:—फिर कविचंद स्वय नागौर को रवाना हुआ, जहाँ कैमास की काया पलट होने से वह रतिक्रीड़ा का आह्वान कर रहा था ।

दिखि नयन भल हलि भयौ, हल हल हल्ल्यौ अंग ।
क्रोध लग्गि किलि कुप्पयौ, दिख्खित डिंभन रंग ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ:—भल हलि भयौ=ज्वाज्वल्यमान, ज्वाला युक्त । हल हल हल्यौ=कंपित हुआ । क्रोध लग्गि=क्रोध के वश में देखकर । किली=कीलने, रोकने को । कुप्पयौ=क्रोधित हुआ । डिंभन=दंभियों का । रंग=चरित्र, पाखंड ।

अर्थ:—अमरसिंह सेवरादि दंभियों के पाखण्ड को देखकर कविचंद के नैत्रों से ज्वाला प्रकट होने लगी और उसका अंग प्रत्यंग क्रोध के कारण काँपने लगा । विपक्षियों को क्रोधित देख वह क्रोध के वशीभूत होकर उनके उस पाखण्ड का कीलन करने (रोकने) को उद्यत हुआ ।

साटक

चामंडा वर खग्ग मंडित करा, हुंकार सद्दाधरं ।
प्रब्भासं[1] सह स्यंघ[2] सत्य तपसं, रुंडाल माला उरं ॥
लग्ना हस्त मुखी प्रचंड नयना, पायातु दुर्गेश्वरी ।
काली कल्प कराल काल वदनां, अंगे कलिंगे जया ॥ ६७ ॥

प्रा० पा० १, २ दे० ।

शब्दार्थ:—सद्दा=शब्द । प्रब्भासं=प्रभायुक्त । सह=सहित । स्यंघ=सिंह । सत्यतपसं=सत्य तपस्वी । रुण्डाल=रुंडमुंड । लग्ना=लगन स्वरूप, अभिलाषा स्वरूपी । हस्त मुखी=प्रसन्न वदना । प्रचंड नयना=ज्वाज्वल्य मान नैत्रों वाली । पायातु=रक्षा कर । कल्प=कल्प काय ।

अर्थ:—वह देवी की स्तुति करने लगा-हे चामुण्डे ! हाथ में श्रेष्ठ खड्ग रखने वाली, हुंकार शब्द करने वाली, मुण्ड माला धारण करने वाली, प्रभा युक्त, सिंह एवं सत्य तपस्वी (शिव) सहित, अभिलाषा स्वरूपी, प्रसन्न वदना, जाज्वल्यमान नैत्रोंवाली, हे दुर्गेश्वरी ! तू हमारी रक्षा कर । हे काली ! कल्पकाय, भयंकर काल के समान मुख वाली, कलिङ्ग देश की अंग स्वरूपा तेरी जय हो ।

माया तूं त्रिंदार[१] माल कलया, जाता[२] जगद् ब्रह्मनी ।
माया तूं माहेश्वरी जह कहं, अग्गोचरं गोचरं ॥
सिक्खं रिक्ख सपट्ट नंचत वसा, हिंगोल हुँ हूं करं ।
सा हुंकार हहक्क[३] सद्द[४] सुनयं, जात दलं दुर्जनं ॥ ६८ ॥

ग्रा० पा० १ से ४ दे० ।

शब्दार्थः—त्रिंदार माल=वृन्दार वृक्ष के फूलों की माला । कलया=सुन्दर । जाता जगद्=जगत जननी । ब्रह्मनी=ब्रह्माणी । जह कहं=जहाँ तहाँ । अग्गोचरं=अज्ञात । गोचरं=ज्ञात । सिक्खं रिक्ख=ऋषि शिरोमणि, शिव । सपट्ट=पटाधारी (सिंह सहित) । सा=वह, उस । हहक्क सद्द=हूँ हूं स्वर, हुँकार । जातं=पलायन हो जाता है ।

अर्थः—हे महामाया ! तू सुन्दर वृन्दार पुष्पों की माला से सुशोभित है, तू ही जगत-जननी है, तू ही ब्रह्माणी है । हे माहेश्वरी ! जहाँ तहाँ अज्ञात और ज्ञात रूप में तू ही है । ऋषियों में शिरोमणि शिव के वश में होकर सिंह सहित नृत्य करती हुई, हे हिंगुलाज देवी ! जब तू हूँ हूँ शब्द करती है तब उस हूंकार को सुनकर शत्रु सेना पलायन कर जाती है ।

खग्गं झामिति[१] झाम झाम झमियं, तस्यास्य मंत्रे मुखं ।
सा मंत्रे उच्चार धार धरियं, भंगं[२] अभंगा अरी ॥
जग्यानं[३] जय जोग जोग पतयं, पाखंड खंडायनं ।
कालीलं किललंति कंति त्रिपुरा तस्यासि ध्यानं धरं ॥ ६६ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० । ३, घ० पा० ।

शब्दार्थः—झामिति=झमाके के साथ, शीघ्रता पूर्वक । झामं२=झमाझम । झमियं=झड़ती । धार=धारा, खंग । जग्यानं=जाग्रत हो जाते । जय=जिससे । जोग=योगी । जोगपतयं=योगेश्वर, शिव । कालीलं=काली । किललंति=क्रीड़ा करती । कंति-त्रिपुरा=त्रिपुर सुन्दरी ।

अर्थः—तू तलवार को झमझमाती, झाड़ती हुई अपने मुख से जिस मन्त्र का उच्चारण करती रहती है, उसका उच्चारण कर जो व्यक्ति खड्ग धारण करता है वह अभंग शत्रुओं का नाश कर देता है । उस मंत्र से पाखंडों का खण्डन करने वाले योगेश्वर महायोगी शिवभी जाग्रत हो जोते हैं । ऐसा मंत्रोच्चारण करने वाली एवं वीर क्रीड़ा करने वाली हे काली त्रिपुरा सुन्दरी ! मैं तेरा ध्यान करता हूँ ।

आई तूं उमया अखंड तनुया[1] दात! दुरी नासिनी।
संतुष्टा सुर नाग किंनर गना दैत्यानि सं आसिनी ॥
यस्या चारु चवंति चारु कमलं, संतुष्टयं साधुनं।
जैनं वर्धस वद्धयाइ चरनं, जै जै सु जिह्वासनं ॥ १०० ॥

ग्रा० पा० १ दे०।

शब्दार्थः—आई=माता। अखंड तनुया=अखंड काय। दाता=दात्री। गना=गण। त्रासिनी=संताप देने वाली। चारु=श्रेष्ठ। चवंति=कहकर। चारु कमलं=श्रेष्ठ कमल मुख। वर्धस=वृद्धि पाया हुआ। वद्धयाइं=नाश होगा।

अर्थः—हे माता! हे उमा! हे अविनाशी शरीर वाली! हे बुरी वासनाओं का नाश करने वाली! हे सुर, नाग और किन्नरगणों को प्रसन्न करने वाली! हे दैत्यों को संताप देने वाली! हे कमलवत् श्रेष्ठ मुख से श्रेष्ठ वचन कहकर साधु पुरुषों को संतुष्ट करने वाली! हे जिह्वासन पर बैठने वाली! तेरी जय हो। तेरे पदार्पण से वृद्धि पाये हुए जैन धर्मावलम्बियों का नाश होगा।

दोहा

वद्धा-जैन सु जैन लगि, जीता चंद चरित्त।
भामीं भट्ट सुमंत किय मरन जियन करि हित्त ॥

शब्दार्थः—बद्धा-जैन=जैन धर्मावलम्बियों ने वृद्धि प्राप्त की। जैन-लगि=जहाँ तक। भामीं=विश्वासी। भट्=भट्ट, कविचंद।

अर्थः—जैन धर्मावलम्बियों ने कैमास को वश में करके, अपनी जो कुछ गौरव वृद्धि की थी, उस पर कविचंद ने देवी की कृपा से विजय प्राप्त की (कयमास को पुनः रास्ते पर लाया)। तब उस विश्वासी भट्ट कवि (चंद) ने एक यही श्रेष्ठ मंत्रणा कह-सुनाई कि हे मंत्रीवर कैमास! तुझे मृत्यु और जीवन के हित की (यश प्राप्ति की) बात ही करनी चाहिये [इसी में तेरे जैसे वीर की शोभा है]।

कवित्त

उट्ठावै नहँ सीस, लज्ज दाहिम चहुवानं।
उठे सीस नहँ लीस, लज्ज कुलपन कुलपानं ॥
उठै सीस नहँ लीस, करै भारथ बहुकाजं।
उठै सीस नहँ लीस, देव गति देवनि साजं ॥

उट्ठै न सीस संमुह सरस, लज्ज विरद्दां भार सिर ।
कैमास काज लग्गी गवनु, विसर वीर दिक्ख्योविधर ॥ १०२ ॥

शब्दार्थः—कुलपानं=कुल का आपान, वंशबल । देवनि साजं=देव स्वरूप । लग्गी-गवनु=गमन करने लगे, चल पड़े हों । विसर=सिर रहित । धर=धड़, शरीर ।

अर्थः—कविचंद की सुमंत्रणा सुनकर दाहिमें कैमास ने पृथ्वीराज के सकोच से, वंश लज्जा और वंश बल की हीनता के भय से, अपने द्वारा किये हुए बहुत से युद्धों पर पानी फिर जाने से, देवताओं सी अपनी गति (चाल चलन) और अपने स्वरूप में धब्बा लगने से, और वंश विरुद के भार की लज्जा से उसके (कविचंद के) समक्ष सिर नहीं उठाया । उस समय ऐसा दिखाई पड़ा, मानो उस वीर की विशाल काया सिर रहित हो । किन्तु साथ ही यह भी ज्ञात हो रहा था कि उस (कयमास) द्वारा किये हुए दुष्कृत्य भी उससे चल पड़े हों ।

दोहा

बर बरदाइ नरिंद कवि, दै आसिख छिति-राज ।
तूं लज्जिन कैमास बर, मंत विरोधन काज ॥१०३॥

शब्दार्थः—नरिंद कवि=राजा पृथ्वीराज का कवि, (या कविराज) । आसिख=आशीष, आशीर्वाद । छिति-राज=पृथ्वीराज, पृथ्वीभट्ट [या हे पृथ्वी पति] । लज्जिन=लज्जित न हो । मंत=मंत्रणा । विरोधन=विरोधियों की ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज का श्रेष्ठ वरदाई कवि 'पृथ्वी भट्ट' आशीर्वाद देता हुआ कहने लगा- हे वीर ! (या हे पृथ्वी पति कैमास !) तू सब तरह से श्रेष्ठ है, अतः तुझे लज्जित नहीं होना चाहिये । यह जो कुछ हुवा है, वह विरोधियों की मंत्रणा के ही फलस्वरुप हुआ है । तू तो निष्कलंक है ।

कवित्त

चन्दह[1] चंडि प्रताप, मन्त्रि[2] कयमास छुडाइय ।
मेटि आन चालुक्क, आन चहुवान फिराइय ॥
लज्ज[3] रज्ज[4] कयमास, सीस ढक्कै न उघारै ।
सवलां सों संग्राम, लरन रति वाह विचारै ॥
उज्जली रैंन उज्जल दिसा, जसु उज्जल को धाइया ।
दाहिम्म राइ दाहर तनै, मिलह सुरंग वनाइया ॥१०४॥

ग्रा० पा० १, ३, ४ दे० । २ का० घ० ।

शब्दार्थः—आन=दुहाई लज्ज रज्ज=राजा के संकोच से । सबलां सौं=सबल शत्रु से । रतिवाह=रात्रि को छापा मारकर । उज्जल दिसा=पवित्र भू भाग की ओर । सिलह=कवच, साजबाज ।

अर्थः—चन्द ने चंडी के प्रताप से मन्त्री कयमास को उस बाला के प्रेम जाल से छुड़ाया और नागौर से चालुक्क की दुहाई मिटाकर चौहान की दुहाई फिरा दी। राजा के संकोच से कैमास ने मुँह छिपालिया और तब (उस संकोच को मिटाने के लिए) उसने सबल शत्रु पर रात्रि में छापा मार कर युद्ध करने की बात सोची। उसने (दाहरराय के पुत्र दाहिमें ने) अपने यश को उज्ज्वल करने के लिये शुल्क पक्ष की रात्रि में पवित्र भू भाग की ओर चलने का विचार करके उसी समय युद्धार्थ सुरंगी सलह (कवच) धारण किया।

सथ्थ राउ[1] चामंड, सथ्थ सज्जिय परिहारं ।
महनसिंह बल्लहार[2], नाम रंनौ[3] खग झारं ॥
रा— भोंहा — चंदेल, राउ — भट्टी महनंगी ।
भर भट्टी वहु सथ्थ, सार अग्गी तन दंगी ॥
जाजुल्य तेज नरस्यंध[4] नर, चहुवानह कूरंभ गुर ।
सामंत सूर[5] सत्तह सुमति, सुवर वीर भारथ्थभर ॥१०५॥

ग्रा. पा. १ से ५ दे. ।

शब्दार्थः—सत्थ=साथ में । बल्हार=बलहरा । रंन्नौ=रनराय । दंगी=दागने वाले, जलाने वाले । नरस्यंध=नृसिंह । कूरंभ-गुर=कछवाहों में बड़ा, कछवाहों का मुखिया । सत्तह=सात । भर=भिड़ने योग्य ।

अर्थः—उस (कयमास) के साथ में (उसका भाई) चामंडराय, प्रतिहार वीर महनसी, युद्ध में खडग चलाने वाला बलहरा रनराय, चंदेला भोंहाराय, शस्त्र की आग से शत्रु काया को जलाने वाले बहुत से भट्टी वीरों सहित भट्टीराज महनसी, जाज्वल्य मान तेज वाला चाहुवान वीर नृसिंह और कछवाहों का मुखिया (पज्जून) ये सातों श्रेष्ठ मति वाले और युद्ध में भिड़ पड़ने वाले बहादुर सामन्त थे ।

परम पवित्र पवार, जांन उद्यांन पँचाइय ।
सारँग सिसु चालुक्क, राउ[1] रघुवंश सुभाइन ॥

रत्तिवाहु रण[२] च्यंति[३], सेनु सज्यौ विनु राजं ।
तरणि[४] तेज तम हरण[५], मेघ मत्तो जनु गाजं ।।
कलहंत केलि मंडिय विखम, गरुअ ग्रब्ब गहिलौत गुर ।
लंगरिय लौह लग्गौ रसैं, स्वामि धुंम[६] जिहि भार धुर ।।१०६।।
ग्रा० पा० १ से ६ दे० ।

शब्दार्थः—पंचाइन=सिंह । सुभाइन=अच्छे भाव वाला । रत्तिवाहु=रात्रि को छापा मारना । च्यंति=चिंतनकर, सोचकर । गुर=भारी, विशेष । ग्रब्ब=गर्व । रसैं=रस में । धुंम=धर्म । धुर=ध्रुव, निश्चय ।

अर्थः—वन में विचरण करते हुए सिंह तुल्य परम पवित्र वीर पँवार, छोटी उम्र वाले चालुक्य वीर सारंगराय और अच्छे भावों वाले रघुवंशीराय ने मिलकर शत्रु सेना पर रात्रि को ही छापा मारकर युद्ध करना निश्चय किया और पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में ही सेना को सजा ली। उनका तेज, शत्रु रूपी तम का नाश करने के लिये सूर्य के सदृश था और मस्ती में वे मेघ के समान गर्जना करते थे। उन्होंने जिस समय विषम कलह केलि का मण्डन किया, उसी समय विशेष गर्व को धारण करने वाले वीरवर गुहिलोत और लंघरीराय भी, जिनके कन्धों पर निश्चय रूप से स्वामि धर्म का भार था, वे वीर लोह रस में (युद्ध रस में) लीन हो गये ।

अचल अरुण[१] अनताइ, कन्ह विनु[२] वीर व्रसंगं।
रा-निड्डर रट्ठयौर[३], सार झिल्लन रण[४] रंगं ।।
वावारौ वरस्यंघ[५], रेह रक्खन अजमेरं ।
दहियाँ जंगल राउ[६], जंग मग्गह धर मेरं ।।
ठंठरी टांक चांटा चपल, अकल मत्ति जिहि[७] उद्धरिय ।
ठिल्लै सु वज्र वज्रंग तन, खल खंडै वज्रनि वत्तिय ।।१०७।।
ग्रा. पा. १ दे. पा. । २ से ७ दे. ।

शब्दार्थः—अचल=निश्चल, अटल । विनु वीर=जिसके समान कोई वीर नहीं, उसके समान दूसरा वीर नहीं । व्रसंगं=भ्रसुंगी, भ्रसुंडी, हाथी । झिल्लन=झेलने वाला । वावारौ=बावा का पुत्र । रेह=रेखा, मर्यादा । अकल मत्ति=अज्ञात बुद्धि, जिसकी बुद्धि का पार नहीं । उद्धरिय=मोक्ष पाया ।

अर्थः—क्रोधावेश से अरुण काय हुआ अटल वीर आततताई, जिसके समान अन्य कोई वीर नहीं, ऐसा मस्त हाथी के समान कन्ह चाहुवान, रणाङ्गण में शस्त्राघात

को झेलने वाला राष्ट्रवर निड्डुरराय अजमेर की मर्यादा को रखने वाला पृथ्वीराज के बाबा का पुत्र वरसिंहराय, युद्ध मार्ग में सुमेरु पर्वत के समान डटने वाला और जंगल प्रान्त के (किसी) भू भाग पर शासन करने वाला जंगलराज) दहिया वीर, ठंठरीरा राय टांक और महान् बुद्धिमान तथा मोक्ष प्राप्ति करने वाला चपल वीर चाँटा आदि उन सब वीरों ने वज्र के समान शरीर धारियों को वज्रवत होकर ठेल दिया और उन्हीं बलवानों ने वज्रघात स्वरूपी शस्त्राघात द्वारा शत्रुओं को खण्ड २ कर दिया।

वर जद्दव जै स्यंघ[1], राउ[2] जंघारौ सुब्भर।
किल्हन कनक नर्यंद[3], इंद्र दल दिखिय दुब्भर॥
वली वाहु हर स्यंघ, रेह रक्खन चहु आनिय।
सुवर वैर वाहरु वलिय, संभरि घर जानिय॥
अजमेरि मुक्कि चहुवान कौं, एधाए उप्पर[4] करण।
दिन इक्क बार वलिवंड खल, उभै लब्भि लडडू जिरण॥१०८॥

ग्रा० पा० १ से ४ दे०।

शब्दार्थ:--सुब्भर=अच्छा योद्धा। नर्यंद=राजा। दुब्भर=दुरुह, मुश्किल से। रेह=रेखा, मर्यादा। वैर=बदला। वाहरु=सहायक। उप्पकरण=सहायता करने को।

अर्थ:—श्रेष्ठ वीर जयसिंह यादव, श्रेष्ठ योद्धा जंघाराभीम, इन्द्र की सेना में भी कठिनता से प्राप्त होने जैसी राजा पद धारी कल्हनराय और कनकराय, कुलकी मर्यादा रखने वाला और चाहुवान के भूभाग का बदला लेने में सहायक होने वाला पृथ्वीराज का भुजास्वरूपी (उसका छोटा भाई) हरिसिंह (हरिराय) इत्यादि वीर पृथ्वीराज से विदा होकर, अजमेर को छोड़ नागोर में कयमास की सहायता के लिए रवाना हुए और उन बरिबंड़ (बलवान) वीरों ने एक ही दिन में दोनों शत्रु (शाह और चालुक्य) रूपी जीर्ण (कठार, जो मुश्किल से खाये जाँय ऐसे) लड्डुओं को दोनों हाथों में प्राप्त कर लिये।

दोहा

रूके[1] सेन चालुक्क रण[2], रहे लोह करि कोट,
पय दल गज बल हय चपल, भये आनि सब जोट॥१०९॥

ग्रा० पा० १, २ दे०।

शब्दार्थः—आनि=आकर । जोट=जुटगये ।

अर्थः—उन वीरों ने लोह-कोट बनकर चालुक्की सेना को रोक लिया और वे पैदल तथा हाथियों और घोड़ों के बल पर आकर जुट पड़े ।

कवित्त

कलह अग्ग सामंत, काम कैमास कुसल्लिय ।
गज्जु[1] अज्जुअरु[2] जज्जु[3], अनुज मिरि[4] पर्यौ दुसल्लिय ॥
धाराणी[5] झरकुट्टि, छुट्टि छक्का[6] सामंता ।
पारध्धी[7] पारारि, धींग लग्यौ[8] धावंता ॥
असमांन हल्लि भुंमी धरिय, धाइ धमंक धमंक धर ।
वंदि यहि वाहु वाहुज्ज[9] दल, प्रथीराज राजंग भर ॥ ११० ॥
ग्रा० पा० १ से ६ दे० ।

शब्दार्थः—अग्ग=अग्रणी । गज्जु=गर्जना । अज्जुअरु=आर्य, आर्यवीर । जज्जु=जज्ञ, (यम) काल । दुसल्लिय=बुरी तरह से चुभने वाला, शल्य, (नटसाल स्वरूप) । धाराणी=तलवार से । झर=झड़, आग । छुट्टि छक्का=घायल होकर प्राणान्त होगा । पारारि=परिन्दों पर । धींग=धींगाना, उत्पात । धावंता=बढ़कर । असमान=आसमान । धाइ=धावने ने, आक्रमण से । धमंक धमंक=धमधमाना, आवाज करना । वाहुज्ज=वाहु स्वरूपी, भ्राता । राजंग=राजा का अंग स्वरूपी । भर=भट, योद्धा ।

अर्थः—सामन्तों और कार्य कुशल कैमास से आगे होकर चलने वाला और काल सदृश गर्जना करने वाला पृथ्वीराज का भाई आर्य वीर हरिराय शत्रुओं के लिये शल्य स्वरूप होकर भिड़ गया । उस समय उसकी तलवार से आग झड़नें लगी जिससे शत्रु घायल होकर मरने लगे । शिकारी जिस प्रकार पक्षी समूह में उत्पात मचा देता है उसी प्रकार उसने शत्रु दल में उत्पात मचा दिया, जिससे आसमान भी हिल गया और उसके आक्रमण से पृथ्वी धम धमा गई । यह देख कर समस्त सेना पृथ्वीराज के अंग और बाहु स्वरूपी उस योद्धा को भुजाओं की वन्दना करने लगी ।

भर-भिरि चौकि चंपि चलि, मिलि ठिलि जहँ दल राइ ।
सबर जुद्ध दरवार भौ, चढ़ि चालुक्क रिसाइ ॥१११॥

शब्दार्थ:—भर-भिरि=योद्धा से भिड़ते हुए। चौकी=पहरा देने वाली सेना। दलराई=सेनापति। सबर=सब। दरबार=खास डेरों में।

अर्थ:—पृथ्वीराज के सामन्त भिड़ते हुए और चालुक्की सेना की चौकी (राजा के आसपास पहरा देने वाली सेना) को दबाते हुए आगे बढ़ चले और जहाँ उनका सेनापति था, वहाँ एक दूसरे को ठेलते हुए एकत्रित हो गये। उन सबल वीरों के उस मुख्य वितान पर युद्ध छेड़ने से चालुक्की वीर क्रोध करके लड़ने को तत्पर हो गये।

कवित्त

मिले मल्ल आलंग, जंग भोरा भुअंग जगि।
कै कुलाह कंतार, धार[1] डंडूर पूर लगि॥
है हुल्लह छुट्यौ कि, सिंघ मेंगल मे मत्ता।
कै अप्पाना[2] अप्प, राव रावत्त विरत्ता॥
आवर्त सयन उत्तर दिसा, इन लग्गी लहरि॥
धावंत धींग सामन्त सौ, सूर समर लग्गे समरि॥११२॥

प्रा० पा० १ का०। २ दे०।

शब्दार्थ:—आलंग=अलंघी, जिनको पार कर आगे कोई नहीं बढ़ सकता। जगि=जागृत किया, उत्तेजित किया। कुलाह=एक पक्षी विशेष। कंतार=कतार। धार=खड्ग। डंडूर=रुंडों की। है हुल्लह=हा हुल्लड़ करता, गर्जना करता। अप्पाना=सामर्थ्य, शक्ति। आवर्त=लगातार। लग्गी लहरि=हवा लगी, आघात का असर पहुँचा।

अर्थ:—जब भोरा भुवंग के मल्ल समान अलंघनीय वीर आमिले और उन्होंने युद्ध को उत्तेजित कर दिया तब ऐसा प्रतीत हुआ मानों कुलाहों की कतार बढ़ी हो, या खड्ग धारा खण्डों की पूर्ति कर रही हो, या भीषण गर्जना करता हुआ सिंह मस्त हाथियों पर छूट पड़ा हो। इस प्रकार कई राजा और राजवंशी अपनी सामर्थ्य के बल पर युद्ध में विरक्त (मोह रहित) दिखाई पड़े। लगातार उत्तर दिशा की सेना पर घात होने लगी जिससे ईशान कोणवाली सेना पर भी उस आघात का असर पहुँचा। (पृथ्वीराज के) सौ सामन्तों को उत्पात करते हुए बढ़ते देखकर, चालुक्की सेना के योद्धा सँभल कर समर में प्रवृत्त हुए।

चंडिय देवि पसाई, हस्ति तौरे मैमत्ता ।
चढ़्यौ राउ भीमंग, चौर मौरह सिलहत्ता ।।
का अप्पानी रारि, काइ वाइ[1] हि डंडूरी ।
कै छुट्यौ संग्राम, स्यंघु[2] संकर निज्जूरी ।।
कै वीर धाम धुज्जिय धरा, के उलाल[3] कल पंत हुअ ।
जा जंपु जंपि जंपन कहै, जंपि राज भीमंग भुअ ।।११३।।

ग्रा. पा. १ घ. । २, ३ पा. ।

शब्दार्थ:—चंडिय=चंडी पुत्र, देवी पुत्र, कविचन्द । पसाई=कृपा से । मै मत्ता=मदमस्त । चौर=चंवर । मौहर=मोर छल । सिलहत्ता=कवच से सुशोभित । अप्पानी=आपान की । वाइ हि-डंडूरी= डंडूरी हवा (वात चक्र) । स्यंघु=सिंह । संकर निज्जूरी=शृंखला से बँधा हुआ । उलाल=उल्कापात ।

अर्थ:—भवानी की कृपा से देवी पुत्र (कविचन्द) ने भी युद्ध करते हुए अनेक मदमस्त हाथियों को नष्ट कर दिया । उसी समय चँवर, मोरछल और कवच से सुशोभित होकर भींमगराय चढ़ा । वह आपान (ताकत) की लड़ाई थी, अथवा डँडूरी-हवा (वात चक्र) थी । उस समय संग्राम में ऐसा दृश्य दिखाई पड़ा मानों शृंखला से शेर छूटा हो अथवा बावन ही वीरों का उत्पात या कल्पान्त हुआ हो ऐसा दिखाई पड़ा । इस प्रकार जो भी कुछ कहता वह यही कथन करता कि पृथ्वी पर यदि कोई राजा कहा जा सकता है तो वह भोरा भींमग ही है ।

ना अप्पानो रारि, नाहिं वाई सु डंडूरी ।
ना छुट्टौ संग्राम, स्यंधु[1] संकर निज्जूरी ।।
हैहक्कां धर कंप, चंप उत्तर थी लग्गिय ।
चौकी गस्त गुराइ, कोट ओटह उत भग्गिय ।।
सा दुर्ग देव सत्तरि पती, पति पहारु पिल्यौ[2] करिय ।
आहंन हंन हंते वहत[3], निसि निसान सद्दह भरिय ।।११४।।

ग्रा. पा. १, से. ३ दे. ।

शब्दार्थ:—अप्पानी=जोशीली । है हक्कां=हुंकार । गुराइ=भारी । सत्तरि=७० सीत्तर । पति पहारु= पहाड़राय । पिल्यौ=बढ़ाया । सद्दह=ध्वनि । भरिय=परिपूर्ण होगई ।

अर्थ:—किन्तु चालुक्यों का न तो वह जोश युक्त युद्ध ही बना रहा न वात चक्र स्वरुप आक्रमण ही रह पाया और न वे (चालुक्की वीर) शृंखला से छूटे हुए सिंह ही

कहे जा सके। हुँकार करती हुई चाहुवान की सेना ने उन्हें घर दबाया, जिससे पृथ्वी कम्पायमान हो गई और पहरा देने वाली दिवाल तुल्य प्रतिहारी-सेना की आड़ टूट गई। उस सित्तर दुर्गों के स्वामी (गुर्जरेश्वर) पर पृथ्वीराज के सामंत पहाड़राय तोमर ने हाथी को बढ़ाया। उस समय उस रात्रि में मार २ ध्वनि के साथ साथ नक्कारों की ध्वनि से दिशायें परिपूर्ण हो गईं।

दोहा

सद्दा सद्द उसद्द हुव, वज्जा वज्जिय लग्ग।
जूना जंजर वैर¹ वल, भई सुरासर जग्ग ॥११५॥

¹ ग्र. पा. १ दे.।

शब्दार्थः—सद्दासद्द=आवाज के साथ आवाज। उसद्द=प्रतिध्वनि। वज्जा=बाजे। वज्जिय=बजने। जंजर=जज्जर, यमराज। जूना=जोये गये, देखे गये, दिखाई पड़े। जग्ग=जागृत।

अर्थः—वीर घोष पर वीर घोष प्रतिध्वनित होने लगा और बाजे बजने लगे। प्रति शोध के जोश में आये हुए वे वीर ऐसे दिखाई पड़े, मानों यमराज हों या देव और दानव जागृत हुए हों।

संभर सौं लग्गे समर, अंमर कौतिग एव।
घरी सत्त सत्तमि दिवस, उग्यौ उडग्गन देव ॥११६॥

शब्दार्थः—संभरी=चाहुवान हरिराय। अंमर=अमर, देवता। एव=इस प्रकार। उडग्गनदेव=तारापति, चन्द्रमाँ।

अर्थः—देवतागण चाहुवान (हरिराय) के युद्ध कौतुक को देखते ही रहगये। उसके युद्ध करते २ उस सप्तमी तिथि के दिन सातघड़ी रात्रि जाने पर चन्द्रमाँ भी उदय हो गया।

है पग गै पग रथ अ-रत्थ, बढि बढी नर लग्गा।
के घायां घननंत भयें, भंभरि भर लग्गा ॥
चालुक्कां चंप्पौ सयंन, सैं-दल सामंता।
गौ गिरद कैमास, भूप भोरां धावंता ॥
रथ सिलह सत्थ सज्जन कह्यौ, गहकि गज्जि भोरा सुभर।
को करै काल सौं चाल क्रित, महन रंभ मानों अमर ॥११७॥

शब्दार्थः—पग=पगना, बढ़ना। रथ अ–रथ=रथों से रथ। घाया=घाव, आघात। घननंत= आवाज। भयें=होने पर। भंभरि=भरहरा कर। सें–दल=सेना सहित। गौ–गिरद=अंग रक्षक वीरों का परकोटा टूट गया। गहकि=गहरा। चाल–क्रित=धोका। महनंरस=महान आरम्भ, युद्धारम्भ।

अर्थः—हाथियों से हाथी, घोड़ों से घोड़े, रथों से रथ, और मनुष्यों से मनुष्य बढ़ कर एक दूसरे से उलझ गये। शस्त्राघातों की ध्वनि होने पर कितने ही योद्धा भरहराकर (भयभीत होकर) भागने लगे। सामन्तों ने सेना सहित बढ़कर चालुक्यों को ससैन्य धर दबाया और कयमास के आक्रमण से भोराभीम के अंगरक्षक वीरों का परकोट टूट गया। यह देख कर गंभीर गर्जना करते हुए वीर भोराभीम ने एक दम रथ तैयार करने और वीरों को कवच सजने की आज्ञा दी। उस काल-स्वरूपी भोराभीम से कौन धोका कर सकता है। उसका युद्धारम्भ देवताओं के युद्धारम्भ के समान था।

हक्कार्‌यौ रा भीम, मत्त मैंगल गज्जाना।
सहस पंच साहन समुद[1], ढल्लां[2] ढल्लानां॥
जंतु मंत्र गौरा गंहक्क, छोनी सह[3] संकिय।
साहन वाहन वर विरद, आव्रत्त उतकिय॥
लल्लरिय लोह अप्पां अपन, भर उभ्भार लग्गौ गयन।
हल हले सेन सामन्त रण[4] मनहु अंत जम जुत्थयन॥११८॥
ग्रा० पा० १ से ४ दे०।

शब्दार्थः—हक्कार्‌यौ=बढ़ाया, बढ़ावा दिया, उत्साहित किया। मेंगल=हाथी। साहन=साहनी, अश्वरोही। समुद=प्रसन्नता युक्त। ढल्लां–ढल्लाना=ढालों से ढालें मिलाई। जंतु=जंत्र, यंत्र। गहक्क= आवाज। छोनी=पृथ्वी। आव्रत=लगातार फिरना, चक्कर लगाना। उतंकिय=उत्तंग, ऊँचे उठाकर। लल्लरिय=लहलहाना, हिलाना। भर–उभ्भार=भड़ने पर ज्वाला। हलहले= विचलित हो गये। जम=यम। जुत्थयन=जुटपड़े।

अर्थ.—भीम के बढ़ावा देने (उत्साहित करने) पर मस्त हाथी गर्जना करने लगे। पांच सहस्र अश्वारोही सैनिकों ने प्रसन्नता पूर्वक ढालों से ढालें मिलाई। यंत्र-मंत्र-चालित आग्नेयास्त्र ध्वनि करने लगे, जिससे सारी पृथ्वी शंकित हो गई। प्रतिष्ठा-

सम्पन्न श्रेष्ठ अश्वारोही अश्वों को ऊँचे उठा २ कर चक्कर दिलाने लगे। वे अपने २ अस्त्र-शस्त्र हिलाते हुए आगे बढ़े; जिनके झड़ने से ज्वाला प्रगट होकर आसमान से जा लगी। इससे सेना और सामन्त सभी युद्ध में विचलित हो गये ! उस समय ऐसा दिखाई पड़ा मानों यम जुट कर अंत कर रहा हो।

महन रंभ आरंभ, लग्गि भोरा सनाह सजि।
तव लग्गि दल रुक्कयौ, राइ कंठीर कन्ह रजि॥
भरि[1] अभंग चालुक्क, रोस आयास प्रमानं।
हालाहल तमसयो, तमसि तामस-तन भानं।
त्रयनेत जग्गि प्रलै काल जनु, बंध-बंध गज्जे उभय।
बंभान जग्य जे उप्पनै, करौं सोइ त्रिब्बीर[2] मय॥ ११६॥

ग्रा० पा० १ घ०। २ पा०।

शब्दार्थः—भरि=भिड़ पड़े। आयास=क्लेष, कलह, युद्ध। हालाहल=हलाहल। तमसयो=तमतमा पड़ा, ऊफन पड़ा, गरम हो गया। तामस-तन=तमोगुणियों के शरीरों को। भान=नष्ट कर दिये। बंध-बंध=भाई २, दोनों भाई। बंभान=ब्रह्मा। त्रिब्बीर= निर्बीज।

अर्थः—इस प्रकार युद्धारंभ करके भोरा भीम कवच सजने लगा। तब तक कंठीर-राय और कन्ह चाहुवान ने सुशोभित होकर चालुक्की वीर सेना को रोक रक्खा। जिस समय वे चालुक्य के अभंग सामंतों से भिड़ पड़े, उससमय उनका रोष कलह के उपयुक्त ही था। उसी समय उनमें हलाहल उफन पड़ा और वे क्रोधित होकर तमोगुणी विपक्षियों के शरीरों को नष्ट करने लगे। उस समय ऐसा दिखाई पड़ा; मानो शङ्कर का तृतीय नैत्र खुल पड़ा हो, या प्रलयकाल हो गया हो। वे दोनों भाई (कंठीर राय और कन्ह चाहुवान) शत्रुओं पर गर्जना करते हुए कहने लगे कि आज हम ब्रह्म यज्ञ के समय (चल्लू से) उत्पन्न चालुक्यों को निर्बीज कर देंगे।

खग उभारि दल रारि, तारि कट्ठन दुज्जन वै।
ओडन हत्थह नंकि, धंखि चालुक्क नरव्वै॥
कटि कवंध धर लुट्टि, लुत्थि पर लुत्थि अहुट्टिय।
श्रोनधार खल हलिय, मोहमाया भ्रम छुट्टिय॥

तुटिदंत' अंत पायक ढुहि, वहर रूप धावै अछग ।
पग पगति सिंभ पग पग मुगति, मुगति लभ्य कित्ती सुजग ।। १२० ।।

ग्रा० पा० १ दे०

शब्दार्थ:—तारि=ताड़ना देकर । औडन= चांपपर । धंखि=धके, बढ़े । नरव्वै=नर वीर । वहररूप= कटे हुए, क्षत–विक्षत । अछग=अक्षत । सिंभ=शंभू के ।

अर्थ:—सामंत समूह ने युद्ध में शत्रुपक्ष वालों को ताड़ना देकर उन्हें भगा देने के लिए तलवारें उठाईं, तब चालुक्या-वीर धनुष की चाप पर हाथ डालकर आगे बढ़ा। उस समय रुंड कट २ कर पृथ्वी पर लौटने लगे और लोथों पर लोथें अड़ गईं। श्रोणितधारा कल कल करके बहने लगी. और सांसारिक मोहमाया का भ्रम नष्ट हो गया। रद पंक्ति और आँतडियाँ टूट टूट कर छिन्न भिन्न होकर विखर गयीं। कितने ही पैदल सैनिक घायल होकर लुढ़कने लगे और कितने ही क्षत विक्षत होते हुए भी रणाङ्गण में अक्षत रूप होकर फिरने लगे। वहाँ पग २ पर शिव के दर्शन होने लगे और पग २ पर मुक्ति प्राप्त होने लगी। साथ ही सचेत योद्धा कीर्ति के यश लाभ को प्राप्त करने लगे।

दोहा

कित्ती सजन जग्यौ' नृपति, सुर विध्वंसन काल ।
बीस सहस पारस परिय, मनो वीर बर माल ।। १२१ ।।

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—कित्ती=कीर्ति । सजन=सृजन । पारस परिय= घेरा डाला ।

अर्थ:—जब चालुक्य नरेश अपनी कीर्त्ति का सृजन करने को जग उठा तो ऐसा प्रतीत हुआ, मानों देवताओं के महत्व का ध्वंस करने को स्वयं यमराज जागृत हुआ हो। उसी समय बीस सहस्र चालुक्की योद्धाओं ने सामंतों को इस प्रकार घेर लिया, मानों उस चाहुवानी दल के गले में वीरों की वरमाल डाल दी गई हो।

भर पर भर वज्जैं सुभर, हय गय दल वल टुट्टि ।
चंद उग्गि मध्थह चढ्यौ, वर अष्टमी अहुट्टि ।। १२२ ।।

शब्दार्थ:—भर पर भर=एक वीर दूसरे पर झपटते हुए। वज्जै=वार किया। अहुट्टि=जुट पड़ने पर।

अर्थः—उन श्रेष्ठ वीरों ने एक दूसरे पर झपटते हुए अनेकों वार किये, जिससे हाथी, घोड़े और सेना का बल नष्ट हो गया। इस प्रकार अष्टमी की रात्रि को युद्ध करते २ श्रेष्ठ चन्द्रमाँ उदित होकर सिर पर आगया। (अर्थात् अर्द्ध रात्रि हो गई)।

सै बंधन बंधन्न ब्रहम, पंच पंच ले तत्त।
दल छिक्क छिप्पै मुकति, अप्पु भूत अपुतत्त॥ १२३॥

शब्दार्थः—सै-बंधन=बंधन सहित। बंधन्न ब्रहम=ब्रह्मा के बंधन में पड़ गये। पंच ले तत्त=पंच तत्वों में मिल गये। छिक्कत=पार करते हुए। छिप्पै=लिप्त हो गये। अप्पु=अपनी। भूत=भौतिक आत्मा। अपु=अर्पण करदी।

अर्थः—जो वीर सांसारिक बंधनों से युक्त थे, वे मरने पर ब्रह्म के बंधन में पड़ गये। उनके पांचों तत्व पांचों तत्वों में मिल गये। वे सेना को पार करते हुए मोक्ष में लिप्त हो गये। उस समय उन्होंने अपनी भौतिक आत्मा को तत्वमय परमात्मा को समर्पित करदी।

सिसिर आइ काइर तनह, ग्रीषम सूर प्रमान,
वे तट्टै ये तत्त गुन, विधि विधान देवान॥ १२४॥

शब्दार्थः—सिसिर=शिशिर ऋतु। आइ=आगया, प्रवेश कर गया, दिखाई पड़ा। सूर=बहादुर। तट्टै=त्रसटै, तृसित त्रासित, कंपित। तत्त=तप्त, तेज। देवान=देवता।

अर्थ—उस समय कायरों के शरीर में शिशिर और वीरों के शरीर में ग्रीष्म ऋतु दिखाई पड़ी। उनमें से पहले (कायर) त्रसित (कम्पित) और दूसरे (बहादुर) तप्त (तेजयुक्त) दीख पड़े। कायरों और वीरों के लिये विधाता और देवताओं द्वारा निर्मित ऐसा स्वाभाविक नियम सदा से ही कहा गया है।

बालप्पन जुब्बंन पन, लई वडप्पन कीत्ति।
धनि हालाहल वित्ति तहाँ, भई कन्ह जिमि कित्ति॥ १२५।

शब्दार्थः—जुब्बंनपन=युवा होने पर। धनि=धन्य है। हलाहलवित्ति=हलाहल तुल्य युद्ध होने पर।

अर्थः—धन्य है, उस नर नाह कन्ह को, जिसने जिस प्रकार बालपन से युवा होने तक बड़प्पन द्वारा कीर्ति प्राप्त की, उसी प्रकार हलाहल तुल्य युद्ध के वातावरण में भी कीर्ति को प्राप्त किया।

कवित्त

धंनि[१] सूर सामंत, नौंन ह्वै मिले अरिरिण[२] अट।
इक्क भाग[३] हुइ रखा, भाग चव सट्ठि खार घट॥
ते दुसेन मुख धरिण[४], लज्ज सौं निट्ठि उतारैं।
मार मार उच्चार[५] सार सम्हौं गहि झारै[६]॥
उर धरयौ सिंधु सिंधव स्रनर[७], उदर मद्धि फुट्यौ सुभट[८]।
चामंड राइ दाहर तनै, नो न[९] नेह वंध्यौ सुघट॥१२६॥

ग्रा. पा. १, २, दे. । ३, ५, दे पा. । ४, ६, से ६ दे.

शब्दार्थ:—अरिरिण अर=शत्रुओं रूपी आटे में। दुसेन=दुसह्य। धरिण=धारण करने, उतारने। निट्ठि=मुश्किल से। सम्हौं=सामने, समक्ष। सिंधु=समुद्र या सिंधु नदी से बना हुआ। सिंधव=सेंधव नमक।

अर्थ:—पृथ्वीराज के उन बहादुर सामन्तों को धन्य है, जो शत्रु रूपी आटे में नमक रूप होकर मिल गये। जहाँ आटे रूपी शत्रु समूह का वजन ६४ गुना था, वहाँ नमक स्वरुपी चाहुवानी वीरों का परिमाण केवल एक गुना ही था। यद्यपि उन खार-स्वरुपी योद्धाओं को मुख में लेना दुःसह्य था फिर भी उन चालुक्यों ने लज्जित होते हुए बड़ी कठिनाई से उन्हें (खार-स्वरुपी वीरों का) अपने में उतरने दिया। (अर्थात् वे रोके न रुके सेना के मुहाने में प्रवेश कर गये)। वे वीर मार मार शब्दोच्चारण करते हुए शत्रुओं के समक्ष लोहा झाड़ने लगे। फिर वे सिन्धु से उत्पन्न क्षार (नमक) स्वरूप योद्धागण शत्रु समूह के उर में (मध्य भाग में) प्रवेश कर गये। अन्य सामन्त तो वहाँ जाकर भी कुछ नहीं कर पाये, किन्तु उस उदर स्वरूप मध्य भाग में जाकर एक ही सामन्त ने उसका (उदर स्वरूपी मध्य भाग का) विस्फोट कर दिया। वह वीर दाहिर का पुत्र चामण्डराय था, जिसका शरीर स्वामी के नमक और स्नेह के संयोग से बना हुआ था।

एक वीस इकईस, एक इक तीस सहस वर।
इक्क सहस इक्क डेढ, इक्क वल उभय सस्त्रझर॥
एक एक इक लख्ख, विलख[१] बल वीरणि देवं।
(ते) जग्गि[२] वीर वीराधि, वीर वीरा रस सेवं॥

मारु महंन नांहर वली, हली क्रित्ती दख्खिण—वयह ।
निड्डुर नरिंन्द पजून वल, हाइ हाइ करि दिसि दसह ।।१२७।।
ग्रा. पा. १, २, दे ।

शब्दार्थः—विलख=दो लक्ष । वीरणि=वीर ।

अर्थः—उन वीरों में शस्त्र झड़ी लगाने वाला एक एक वीर कोई बीस, कोई इक्कीस, कोई इकतीस, कोई एक हजार, कोई डेढ़ हजार, कोई दो हजार, कोई एक लक्ष और कोई दो लक्ष वीरों के समान था। उन सबका बल देवताओं के सदृश था। वे श्रेष्ठ वीर, वीर रस की उपासना के लिये बावन ही वीरों के समान जग पड़े। उनमें मारु महनसी, जिसकी वंश सूचक उपाधि नाहर थी और जिसकी कीर्ति दक्षिण के राजाओं में फैल चुकी थी, उसकी तथा राजा निड्डुरराय व पज्जूनराय की शक्ति से दसों दिशाओं में हाहाकार मच गया।

दोहा

हय हय गय नह सूर वर, दिख्खि भयानक देव ।
जंबूरा हम्मीर सों, भर भारत्थ वितेव ।।१२८।।

शब्दार्थः—हय=मारे गये। नह सूर वर=श्रेष्ठ योद्धा न रहे (बचे)। जंबूरा=जंबू पति। भर=भट, योद्धा। भारत्थ=युद्ध। वितेव=बीत गये, समाप्त होगये।

अर्थः—उस युद्ध में हाथी घोड़े और बहादुर कोई भी नहीं बच पाये। उस समय जंबू-पति हाहुली हमीर भयानक देव-स्वरूपी दिखाई पड़ा और उसी की शक्ति से उस युद्ध में विपक्षी (चालुक्य के) योद्धा समाप्त हो गये।

कवित्त

हय गय नर आहुटे, लुथि आहुट्टि लुत्थि पर ।
इक हत्थ दुअ वि हथ, उच्च चढि खित्त मद्धि धर ।।
वलि वावन रामह सुग्रीव[१], पंच पंडौ बल भारी ।
जरासिंध नरकेस, नरनि नर सिंघ उचारी ।।
इन समह समर इत देव मय, क्रत द्वापर कलियुग्ग मझि ।
इन करिय सोह करि हैं न को, करो सु कोइन बत्त बुझि ।।१२६।।
ग्रा० पा० १ घ० ।

शब्दार्थः—आहुटे=भिड़ पड़े। आहिट्टि=अड़ गई, पट गई। हत्थ=हत, मारा जाता हुआ भी। विहथ=मार गिराता। उच्च चढ़ि=ऊँचा चढ़ता, ऊँचा जाता, स्वर्ग गमन करता। खित्त=क्षेत्र। मद्धि=में। धर=धड़, रुण्ड। नरकेस, नृपेष, नृघ। कृत=किया। बुझि=बूझना, कहना, सुनना।

अर्थः—उस समय हाथी घोड़े और मनुष्य परस्पर भिड़ पड़े। लोथों पर लोथे पट गई। उस रण क्षेत्र में एक वीर मरता हुआ भी दो को मार गिराता था। यद्यपि उसका रुण्ड पृथ्वी पर ही पड़ा हुआ दिखाई देता था फिर भी वह सदेह स्वर्ग में जाता दिखाई देता था। उन वीरों में कोई बलि, कोई (पृथ्वी का तीन पैंर करता हुआ) वामन, कोई सुग्रीव, कोई राम, कोई पांचों पांडव, कोई जरासंध, कोई नृघ और कोई मनुष्यों में नृसिंह तुल्य कहा जाता था। उन सबका वह युद्ध देव-युद्ध तुल्य था। उन्होंने कलियुग में भी द्वापर के समान महाभारत कर बताया। उन्होंने जैसा युद्ध किया वैसा कोई नहीं करेगा। अतः उनके सदृश साहस करने की बात के विषय में किसी का कहना सुनना वृथा है।

तरनि तेज तप हरन, भरन पोखन दोखन खल।
उदर त्रत्ति जं करिय, उदर कड्ढै सु मध्यमल ॥
बल भट्टी जंकरिय, करिय कर दंत मत्त गहि।
घरी एक इक पाय, खग्ग टिक खग्ग खेत रहि ॥
जंबूर लग्ग भग्गान तउ, बर बुल्लै[१] तामस वयन।
चालुक्क आंन जंपे मुखह, रत्त मुक्ख अग्गी नयन ॥१३०॥
ग्रा० १ घ०।

शब्दार्थः—तप=प्रताप। पोखन=पोषण। दोखन=दूषित करने वाले। उदर वृत्ति=भिक्षुक। जं=जैसा। मल=मेल, निकृष्टता। जंबूर=जंबूरा, जंबूपति हाहूलि हम्मीर। लग्ग=लगने पर, भिड़ने पर, नहीं हटा, नहीं भगा। आन=दुहाई।

अर्थः—उन वीरों का तेज सूर्य के समान था जो दूसरों के प्रताप का हरण करने और अपने साथियों का भरण पोषण करने वाला तथा विपक्षियों को दूषित करने वाला था। ऐसे तेज-धारियों ने शत्रुओं को भिक्षुक बना दिया और उनके उदर से निकृष्टता को निकाल दिया। उसी समय चालुक्य पक्षीय वीर भट्टी ने अपने हाथों से हस्ति दन्त गृहण कर बल प्रदर्शित किया और वह एक ही पैर पर एक घड़ी तक तलवार

को टेक कर रण क्षेत्र में खड़ा जंबूपति हाहुलीराय हम्मीर के भिड़ने पर भी वह नहीं हटा। वह तमोगुण युक्त वचन कहने और चालुक्य की दुहाई देने लगा। उस समय उसका मुख अरुण वर्ण गया और नैत्रों से आग बरसने लगी।

दोहा

नयन वयन तन अग्गि जगि, क्रित्ति अग्गि जगज्जग्गि।
वर विताल जंगम विहँसि, दये सीस नर खग्गि ॥१३१॥

शब्दार्थः—अग्गि=अग्नि। अग्गि=आगे, सामने। जगजग्गि=जगमगा उठी। वितालः=वेताल।

अर्थः—उसके नैत्रों से, वाणी से और शरीर से अग्नि प्रज्वलित हो गई, जिससे उसकी कीर्ति जगमगा उठी। उस वीर ने जब अपना मस्तक युद्ध में कटवादिया तब यह दृश्य देखकर रणस्थल में डोलते हुए वीर वेताल उसकी वीरता पर हर्षित हो गये।

रण-खग्गा भग्गा-न को, पत्ता चालुक राइ।
हंमीरां हम्मीर वर, भो वर बीर विभाइ ॥१३२॥

शब्दार्थः—रण-खग्गा=युद्ध में कट पड़ा। भग्गा-न को=नहीं भगा। पत्ता=चल पड़ा, हटगया। हंमीरां हम्मीर=अमीर योद्धाओं से अमीर योद्धा। विभाइ=क्रूर भाव युक्त, भयानक।

अर्थः—उस युद्ध में चाहुवान के वीर सामंत तलवार से कट पड़े; किन्तु भागे नहीं। उन वैभव सम्पन्न वीरों के एक दूसरे से भिड़ने पर, वीर रस ने भयानक स्वरूप धारण कर लिया। यह देखकर चालुक्य नरेश रणस्थल से चलपड़ा।

कवित्त

सुअन सूर सामंत, मंत लग्गे विरुभानं।
रा चामण्ड जैतसी, राम वड गुज्जर दानं॥
उद्दिग वांह पगार, कन्ह कूरंभ पजू नं।
खीची राव प्रसंग, चंद पुण्डीर सु दूनं॥
महनंग मेर मारू मरद, देव राज वग्गरि सलख।
देवक्रंन[1] कुंअर अल्हन अनुज, इनवीरा रस लखि अलख ॥१३३॥

[1] प्रा॰ पा॰ १ पा॰।

शब्दार्थ:—सुअन=पुत्र, वंशज। मंत=मतवाले। विरुझानं=उलझे। दानं=दानी, दान वीर। सुदून=दुगुना। मेर=मेरु, सुमेरु। अलख=अलक्ष।

अर्थ:—वीर सामंतों के वंशज (पुत्रादि) मतवाले होकर विपक्षियों से उलझ पड़े। जिनमें प्रमुख, चामंडराय, जैत्र प्रमार, दानवीर रामराय बड़ गुज्जर, उहिगपगार, कन्ह, कछवाहा पज्जून, प्रसंगराय खींची, दुगुना श्रेष्ठ वीर चन्द पुण्डीर, सुमेरु तुल्य, मरुदेशीय मरदाना महनसी, देवराज वग्गरी, सलख, कुमार देव कन्न, और उसका भाई अल्हन आदि थे, जिनका वीरत्व अलक्ष (नभूतो न भविष्यति) देखा गया।

निड्डर वर नर सिंघ, वीर भोंहा भर रूपं।
वीर सिंह बर सिंघ, गरुअ गोइंद अनूपं॥
रा बड़ गुज्जर राम, बलिय बंभन रस वीरं।
दाहिम्मौ नर सिंघ, गरुअ सारँग रन धीर।
चालुक्क वीर रन सिंघ दे, दै दुवाह दुज्जन दहन।
सुरतांन गहन मोखन चहै, चालुक्का लग्गो महन॥ १३४॥

शब्दार्थ:—भररूपं=योद्धाओं की शोभा स्वरूप। गरुअ=बड़ा, भारी। बंभन=ब्रह्म राय। दै-दुवाह=दोनों हाथ फैलाये। महन=महान, विशेष तौर से।

अर्थ:—श्रेष्ठ वीर निड्डुराय, नरसिंह, योद्धओं का शोभा स्वरूपी वीर भोंहा, वीरसिंह, वरसिंह, अनुपम वीर बड़ा गोविन्दराय, बड़ गुज्जर रामराय, वीर रस स्वरूप, बलवान ब्रह्मराय, दाहिमा नरसिंह. युद्ध में धैर्य रखने वाला भारी वीर सारंगराय, और रनसिंह देव-चालुक्क आदि वीरों ने शत्रुओं का दमन करने के लिये दोनों हाथ फैलाये, बादशाह को पकड़ने और छोड़ने की इच्छा रखने वाले वे वीर चालुक्यों को ग्रहण स्वरूप होकर विशेष रूप से लग गये (भिड़ गये)।

घट्टिय घट्टनि घट्ट, कीन दिक्खे इन भंतिय।
(ज्यों) प्रात उडग्गन चंद, दीह दीपक ज्यों कंतिय।
तमसि तमसि सामंत, जाइ वर बीर सुरुंध्यौ।
उभयपुत्त इक बंधु, भीम भारथ बल वंध्यौ॥
औ हनय हथ्थ लग्गी तनह, उपम चंद सारह करिय।
धूमली रत्ति मे वंक खग, मनोंचंद ह्वै विस्तरिय॥ १३५॥

शब्दार्थ:–घट्टिय=घड़ी। घट्टनि=घटी। घट्ट=शरीर। भंतिय=भांति। कंतिय=कांति। भीम=पृथ्वीराज का सामंत जंघारा भीम। चंद-स रह=सार वंशी, बंदीजन कविचंद।

अर्थ:—उस समय वीरों के शरीर पर ऐसी घड़ी (विषम काल) के बीतने पर युद्ध स्थल में वे ऐसे दिखाई पड़े, जैसे प्रातःकाल होने पर प्रभाहीन तारे और चन्द्रमाँ तथा दिन में जलता हुआ कांतिहीन दीपक दिखाई देता है। यह देख कर क्रोधित हो तेहुए श्रेष्ठ वीर सामन्त जंघारा भीम ने शत्रुओं को रौंध दिया। और उसने अपने दो पुत्रों और एक भाई के सहित युद्ध में बज्र वृद्धि की, उसके हाथ चलाने और शत्रुओं के शरीर पर वार करने की तुलना करते हुए सारवंशीय कविचंद कहता है कि उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानों उसकी बांकी अलवार ने धूमिल निशा में चन्द्ररूप धारण करके विस्तार पाया है।

नर नाहर ज्यों लर्यौ, अयुत नाहर धर खंडिय।
नाहर राइ नरिंद, खेत माया तन छंडिय[1] ॥
ढढौरी जै[2] ढाल, हाल चालुक्कह कड्ढै।
आंन राज प्रथिराज, लाज सांई सिर चढ्ढै ॥
हसि कहिरु बाग कढ्ढिय बली, मिलि मर्यौरि सम्हौ लर्यौ।
जाने कि अग्गि लग्गी बनह, वंस दाव दव्व प्रज्जर्यौ ॥१३६॥

ग्रा० पा० १ पा०। २ घ० पा० का०।

शब्दार्थ:–नर नाहर=नृसिंह। अयुत=दस हजार। ढंढौरी=टटोल ली। जै-ढाल=अजेय ढाल, स्वरूपी वीर। हाल=चरित्र। मर्यौरि=मरोड़ता हुआ। सम्हौं=समक्ष। बंस=बांस। दव=दावाग्नि।

अर्थ:—वीर नाहरराय (प्रतिहार) नृसिंह के समान ही लड़ पड़ा और उसने दस हजार सिंह सदृश वीरों को पृथ्वी पर खंड २ करके डाल दिये और तब उसने भी रण क्षेत्र में माया रूपी (पंचतत्वमय) शरीर से छुटकारा पा लिया। (युद्ध करने के समय) उसने अजेय ढ़ाल स्वरूपी वीरों को टटोल कर चालुक्यों के चरित्र को प्रकट कर दिया। स्वामी-लज्जा को सिर पर चढ़ाकर उसने पृथ्वीराज की दुहाई फिरा दी। हँस कर वीर घोष करते हुए उस बलवान ने घोड़े की रास बढ़ाई और शत्रु दल में प्रवेश कर वह शत्रुओं को मरोड़ता हुआ, समक्ष होकर लड़ने लगा। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानों वन में आग लग गई हो या दावाग्नि से दग्ध होकर बांस प्रज्ज्वलित हो गये हों।

बड़ गुज्जर रा जैत, छत्र देखै पट्टनवै ।
वै नीसांनी मार, घाट गिर वर घट्टन वै ॥
अधरा खंडन खग्ग, झग्ग झूरे सु पमारह ।
मनो सराली जंग, पांन कुट्टै गंसारह ॥
रा रामदेव देवत्त तुव, जाजै जोरि जुहथ्थ किय ।
नर नाग देव देवी विहसि, पंजुलि पंजु प्रहास दिय ॥१३७॥

शब्दार्थः—छत्र=छत्रधारी । पट्टन वै=पट्टन वाले । निस्सानी मार=लक्ष वेधी वार । घाट=तरह । घट्टन वै=घटने जैसे, ध्वंस करने जैसे । अधरा-खंडन=ओष्ठ दबाता हुआ । झग्ग=झड़िग, झाड़ता हुआ । झूरे=झाड़ दिये । सराली=साल, चावल । प.न=पाणि, हाथ । गमारह=गँवार, जंगली, ग्रामीण । तुव=स्तुव, स्तुति किया हुआ । जाजै=जूझवार । जोरि=खड्ग को मुट्ठी में मिला कर, ग्रहण कर । हथ्थकिय=वार किया । प्रहास=अट्टहास ।

अर्थः—रामदेव बड़ गुज्जर और जैत्र प्रमार ने पट्टन पति के छत्रधारी वीरों की ओर देखा । उस समय उनके लक्ष्य वेधी वार पहाड़ों को ध्वंस करने जैसे (वज्रघात से) प्रतीत हो रहे थे । यह देखकर ओष्ठ दबाता हुआ और खड्ग के प्रहार की झड़ी लगाता हुआ प्रमार वीर भी शत्रु दल को इस प्रकार नष्ट करने लगा मानों युद्धस्थल रूपी क्षैत्र (खेत) में ग्रामीण लोग (वीर) हाथों से साल (चावल) कूट रहे हों । उसी तरह देवताओं द्वारा स्तुति किये हुए जुझवार बड़ गुज्जर रामदेव ने भी अपनी खड्ग को मुट्ठी में ग्रहण करते हुए वार किया । जिसे देखकर नर, नाग, देवी, देवताओं ने हर्षित हो कर पुष्पांजलि अर्पित की । (अर्थात् फूल बरसाये) ।

जिन थक्का जार देव, सेव थक्की मातंगी,
धर थक्की धर भार, थक्यौ[1] शिव माल सुरंगी ।
धर थक्का करिवार, वान थक्का कमाना ।
मुख थक्का मुखमार, ठांन थक्का तुर कांना ॥
थक्कान जैंत जज्जर बली[2], कलिन राम गुज्जर अरी ।
चालुक्क राय गुज्जर पती, धाइ धाइ घुंमर परी ॥ १३८ ॥

प्रा० पा० १, २, पा० ।

शब्दार्थः—जिन=जैनधर्मावलम्बी, चालुक्य । सेव=सेवा करती हुई, उत्तर देती हुई । मातंगी=रण-चंडी । ठान=ठानते हुए, स्थापित करते हुए । तुरकाना=तुरुष्क । जज्जर=काल, यम । कलिन=कल

दिये, दल २ में फँसा दिये । धाइ-धाइ=भाग २ कर । धुंमर परी=दिशाओं को धूमिल करदी ।

अर्थः—जैन धर्मावलम्बी (चालुक्य) देव मदिरों को जलाते हुए, रण चण्डी उन (चालुक्यों) के क्रूर कर्मों का उत्तर देती हुई, पृथ्वी उन भार स्वरूपी (चालुक्यों) वीरों का भार वहन करती हुई, शिव सुरंगी मुण्डमाला पिरोते हुए सामन्तों के हाथ वार करते हुए कमानों से बाण चलाते हुए वीरों के मुख मार २ घोषणा करते हुए और विजयी चालुक्य मुसलमानों को दिल्ली के भूभाग पर स्थापित करने के लिए निमंत्रण देते हुए थक गये; किन्तु यम स्वरूपी जैत्र प्रमार और रामराय बड़गुज्जर शत्रुओं को दल २ में फँसाते हुए नहीं थके। उन वीरों की मार से चालुक्येश्वर और चालुक्की वीर के भागने पर दिशाएँ रजाच्छादित होकर धूमिल वर्ण की होगई ।

दोहा

परि रारि हिन्दुवान सों, सोजत्ती रति वाह ।
दिल लग्गा वरदाइ वत्त, जे हंदे हथ वाह ॥१३६॥

शब्दार्थः—सोजत्ती=सोजत्री, गुजरात, काठियावाड़ में एक स्थान । रतिवाह=रात्रि का युद्ध, (रात में छापा डालना) । जे हंदे=हनंदे, जिन्होंने चलाये । हथ वाह=हाथ (तलवारों का वार किया) ।

अर्थः—इस प्रकार सोजत्री नामक स्थान पर हिन्दुओं में रात्रि का युद्ध हुआ और तलवार चलाने वाले वीरों की कीर्ति का वर्णन करने में (मुग्ध) बरदाई कवि का भी दिल लग गया ।

कवित्त

हय-हय-हय उच्चार, देव देवासुर भज्जिय ।
रह-रह-रह[1] उच्चार, घाइ घाइं घट बज्जिय ॥
त्रह त्रह त्रह त्रासंत, बहुल खग खग्गं गट्टन ।
टूक टूक उत्तरिय, बाजि नर सुभ्भर पट्टन ॥
हरि-वास हार-हर-हरु भुलिय, धुम्र मंडल सद्दह डुलै ।
मंगल धनेव भारथ्थ किय, जिन सुब्रह्म साधन खुलै ॥१४०॥

१ मा. पा. १ का. ।

शब्दार्थ:—हय-हय-हय=मार, मार ध्वनि। रह-रह-रह=ठहरो, ठहरो। बहुल=बहुत से। गट्टन=गट्ठन, गांठी, जोड़ी, मिलाई। ठूक ठूक=ठहक ठहक, ठनठनाती हुई। उत्तरिय=उतार दिये, पार कर दिये। वास=स्थान। हरु=हरा, पार्वती। मंगल=मंगल प्रदा। धनेव=धन्य है।

अर्थ:—देव तुल्य वीरों के मार २ उच्चारण से देवता और दानव भयभीत होकर भागने लगे। उन वीरों ने ठहरो ठहरो कहते हुए एक दूसरे के शरीर पर शस्त्राघात किया। उन वीरों द्वारा त्रसित शत्रु त्राहि त्राहि करने लगे। उस समय बहुत से वीरों ने तलवार से तलवार को मिलाई। जिससे ठनठनाती हुई उसने पट्टन पति के (गुर्जरेश्वर के) घोड़े, सैनिक और कितने ही श्रेष्ठ योद्धाओं को (भवसिंधु से) पार कर दिया। उस युद्ध को देखने में लगकर हरि अपने निवास स्थान को और हर मुण्ड माल तथा हरा (पार्वती) को भूलगये। उन सामन्तों के ऊर्ध्व घोष से ध्रुव मण्डल भी कंपित हो गया। धन्य है उन वीरों को जिहोंने विपत्तियों के लिये यह मङ्गल प्रद युद्ध किया, जिससे उन जैन धर्मावलम्बियों (चालुक्यों) के लिये ब्रह्म प्राप्ति के साधन का द्वार खुल गया।

दोहा

सर्व ध्यान बंधन सु ब्रह्म, पंच पंच लै तत्त।
पंच पंच पंचह मिलै, अप्प भूत अह बत्त ॥१४१॥

शब्दार्थ:—बंधन=बँधागये, बन्धन में आ गये। पंच-पंच=दसों इन्द्रीयाँ। अप्प=अर्पित कर गये। भूत=प्राणियों को। अह-बत्त=यह बात, अपनी यह यश ख्याति।

अर्थ:—मृत्यु को प्राप्त करने वाले वे वीर ब्रह्म के ध्यान के बंधन में बँधगये। वे दसों इन्द्रियों के तत्व (शक्ति) को साथ ले गये, और तब दसों इन्द्रियाँ पंचतत्व में मिल गई। (अर्थात् उन्हें वे शून्य रूप में शरीर के साथ छोड़ गये) इस प्रकार वे बचे हुए प्राणियों को अपनी यश ख्याति (कहानी) अर्पित कर चलते बने।

दोहा

दस सहस्र दुअभुज परिग[1], रहि दरबार जुझाई।
हसम सहित हैवर समित, कतिहुन वान सिराइ ॥१४२॥

प्रा० पा० १ दे०।

शब्दार्थः—दुग्र–भुज=दोनों तरफ के भुजा स्वरूपी वीर। जुभ्काई=जूझने पर, हमला करने पर। परिग=चल बसे। वान=तीर। सिराई=चल सकते थे।

अर्थः—मुख्य खेमे पर आक्रमण होने से दोनों ओर के दस हजार यौद्धा अपने घोड़ों और सेना सहित युद्ध में काम आये। उस समय रणस्थल में इधर उधर पड़ी हुई लाशों के ढ़ेर के कारण बाण नहीं चल सकते थे।

लुत्थि रही दरबार गुथि, घरी पंच असि रीस।
तिन महि सक कयमास सथ, रहिग अठारह वीस ॥१४३॥

शब्दार्थः—असि रीस=क्रोध पूर्वक खड्गाघात हुआ। सक=साका करने योग्य।

अर्थः—इस प्रकार क्रोध के कारण खड्ग युद्ध द्वारा खास खेमे मे पाँच घड़ी तक लोथों से लोथें गुथ गई (गुत्थम गुत्था हो गई)। उनमें से कयमास के शाका करने (प्रसिद्ध युद्ध छेड़ने) योग्य केवल अठारह या बीस साथी ही शेष रहे।

अप्पां ही अप्पां जुरिग, भग्गा धरबर धाइ।
मुवान को म्रत जाकरह, कट्ठी कट्ठन खाइ॥ १४४ ॥

शब्दार्थः—अप्पां ही अप्पां =आपस में ही। मुवान को=कोन नहीं मारा गया। म्रत=मोत के आगे। जा करह=उसके हाथ से। कट्ठी=काठी की। कट्ठन खाइ=डंडे की मार खाकर।

अर्थ—भोले के अंग रक्षक काठी वीर के डंडे की मार के आगे बहुत से तो आपस में ही भिड़ गये और उनके श्रेष्ठ धड़ बढ़ते हुए नष्ट हो गये। ऐसा कौन शेष रहा, जो उसके हाथ से नहीं मारा गया [अर्थात् कोई मारा गया और कोई घायल होकर ही बचा]।

कवित्त

आयौ कट्ठी स्वामि काज साहन सामंता।
बारह सें बानेत, सुम्रत ढ़ूंढन धावंता॥
है वे लग्गे हत्थ तत्थ, भोरेरा कज्जै॥
जो वित्त कु वित्तयौ, देव दरवार सुगज्जै॥
संग्राम लगि संकट सु पहु, पहु प्रहास पिंगीय पहरु[1]।
दुट्टै[2] जि सस्त्र छत्री सिरणि[3], गिनत होइ[4] ब्रह्मा गहरु॥ १४५ ॥

प्रा० पा० १, ४ दे०।

शब्दार्थ:–सहन=ग्रहण करने योग्य ब्रनेत=धनुर्धारी । सु–म्रत=वे म्रत वीरों को । है वै=हेवर, घोड़े । भं.रें–रा–कज्जै=भोरा भीम के युद्ध में । वित्तक=बात । लग्गि=लग गये, ढोने लगे । सु पहु=राजवंशी योद्धा । पहु=राजा, चालुक्येश्वर । प्रहास=परिहास । पिंगियपहरू=पिंगल वर्ण समय होने पर, उषा समय । जि=जितने । छत्री क्षत्रियों के । सिरणि=सिर । गहरु=देरी, समय ।

अर्थ:— इस प्रकार युद्ध करता हुआ सामन्तों को गृहण करने योग्य कट्ठी वीर अपने स्वामी के कार्य के लिए मारा गया । उस समय बारह सहस्र धनुर्धारी वीर मृत वीरों के शवों को खोजने में लग गये । उन्हें भोरा भीम के साथ होने वाले उस युद्ध में विपक्षियों के बहुत से हाथी और घोड़े हाथ लगे । जो होनहार था वही होकर रहा । वे देव स्वरूपी वीर विजय होकर विपक्षियों के मुख्य खेमे में प्रवेश करके गर्जना करने लगे । कट्ठी वीर के मरने पर उषाकाल होते २ वे राज वंशी सामंत विपक्षी चालुक्येश्वर पर युद्ध- आपत्ति ढोने लगे, जिससे उस (भोरा भीम) का परिहास ही हो पाया । वहाँ पर शस्त्राघात द्वारा जितने क्षत्रियों के मस्तक कट पड़े, उनकी गिनती करने में ब्रह्मा को भी देर लगी ।

का कट्ठी जुझयौ, रह्यौ राणिग[1] देउ[2] दर ।
जेन सहू धरि छत्र, मंत्रु निव्वह्यौ मंडि सिर ॥
गरुव राइ पैरंभ, रह्यौ. ग्यारह सै सेंभर ।
पहारिय[3] राइ पवार, नेहु निव्वह्यौ सु निव्वर ।
जानैन चंद आनँद अनँत, सहस तीन- तेरह परिय ।
गुज्जजरिय ग्रेह संदेह मिटि, सहस मंत दह निव्वरिय ॥ १४६ ॥

प्रा० पा० १ से ३ दे० ।

शब्दार्थ–का=क्या, [कहाँ तक प्रशंसा की जावे] । दर=द्वार पर, [द्वार रक्षक होकर] । सहू=सब । धरिछत्र=छत्रधारी । मंडिसिर=सिरपर झेलकर । गरुअ राइ=बड़ा गोविन्दराय । पैरंभ=पैरने वाला, पार लगाने वाला । ग्यारहसै=ग्यारहसौ । सेंभर=संभरी, चाहुवानी वीर । पहारिय राइ=पहाड़राय तोमर । पवार=प्रमार, [सिंह प्रमार] । निव्वह्यौ=निमाया । निव्वर=निम्मर, निर्मल, पवित्र । मंत=मतवाले । निव्वरिय=निपट पाये ।

अर्थ—कट्ठीवीर के जूझने की प्रशंसा कहाँ तक की जाय (कथनीय है) उस युद्ध में रानिङ्ग देव (मकवाना) मुख्य खेमे का द्वार रक्षक होकर डटा रहा और भी जितने

छत्रधारी जैन धर्मावलम्बी (चालुक्य) थे, उन्होंने आपत्ति को सिर पर झेलते हुए, आपस में जो युद्ध संत्रणा हुई थी उसको निभाया। उस समय बड़े गोविन्दराय (चाहुवान) ने ग्यारहसौं चाहुवान वीरों को उस युद्ध-आपत्ति से पार किया (बचाये) उस समय पहाड़राय तोमर और प्रमार वीर (सिंह प्रमार) ने भी पवित्र प्रेम को निभाते हुए साथ दया कवि चंद कहता है कि मैं उस हर्ष प्रद चरित्र को नहीं जान सका, जिनके आघातों से एक हजार विपक्षी तीन तेरह होकर (तितर बितर होकर) नाश को प्राप्त हो गये और जिससे गुर्जर देशीय वीरों के मन में ,जो शङ्का (चाहुवानो सेना को तुच्छ समझने की) थी वह मिट गई। उन सहस्र विपक्षियों से केवल दस मतवाले चाहुवानी सामन्त ही निपट गये [दस सामन्तों ने एक सहस्र विपक्षियों पर विजय प्राप्त की]।

जित्यौ रति रतिवाह, सिंघ लीनौ गज्ज घेरिय।
बलि दाहिम कैमास, दियौ चालुक मुख-फेरिय ॥
बरति-संग वे थांन, राइ भोरा हय मंडिय।
दिसि दिसांन कग्गद प्रमान आव आवन-लगि छंडिय ॥
ढुँढयौ खेत सामंत भर, आपन पर उत्तारयौ।
तिन राति[1] रारि चहुवान दल, मंत सुमंत विचारयौ ॥१४७॥

ग्रा० पा० १ पा० क्रा०।

शब्दार्थः—रति=रात्रि। सिघ=सिंह प्रमार। मुख-फेरिय=मुँह फिरा दिया, युद्ध से हटा दिया। बरति-संग=साथियों में बीती। वे-थान=उस स्थान पर। हय-मंडिय=घोड़ों को पलाने, विदा हुआ। आव=आना। आवन-लगि=अवसर आने तक। उत्तार्यौ=उतारे, पार किये।

अर्थः—इस प्रकार (सामंत वीरों ने) रात्रि में छापा मारकर विजय प्राप्त की। सिंह प्रमार ने चालुक्येश्वर के हाथी को घेर लिया और दाहिमें कयमास ने उसको युद्ध स्थल से हटा दिया। अपने साथियों के साथ ऐसी घटना घटित होने पर भोराराय ने अपने घोड़े पलाने (विदा हुआ) और दसों दिशाओं में अपने पक्ष वालों को आज्ञा पत्र भेज कर यह संदेश दिया कि अवसर आने पर जब बुलाया जाय, तब वे आकर उपस्थित होवें। इधर सामन्तों ने रण क्षेत्र की खोज की और अपने तथा पराये मृतवीरों का अंतिम संस्कार द्वारा उद्धार किया (मोक्ष प्राप्ति करवाई)। उस रात्रि के युद्ध में चाहुवानी सेना के मतवाले वीरों ने अपनी सु मंत्रणा का इस प्रकार भलिभांति निर्वाह किया (जैसी प्रतिज्ञा थी उसका अंत तक पालन कर विजय प्राप्त की)।

सलख युद्ध

(समय २१)

दोहा

प्रह[1] पग्गह[2] उग्गह[3] ति रण[4], भिरण[5] भूप चहुवान ।
स्यंघालोकन[6] कथ्थ[7] कहि, सुकवि चन्द वख्खान ॥ १ ॥

प्रा० पा० १, घ०, । २, का० । ३ से ७ दे० ।

शब्दार्थः—पग्गह=पहुंचे । उग्गह=उगाहनां, अवगाहन करके, मन्थन करके । ति=वे । भिरण=भिड़ा । स्यंघालोकन=सिंहावलोकन ।

अर्थः—पृथ्वीराज के सामन्त भोला भीम की सेना का युद्ध में संहार (मंथन) कर अपने घर पहुँचे । उसी समय गोरीशाह के साथ पृथ्वीराज ने युद्ध छेड़ दिया; जिसका वर्णन मैं (कविचन्द) करता हूँ और चालुक्यों के साथ हुए युद्ध का भी प्रारम्भ में सिंहावलोकन कराता हूँ ।

धन त्रिधन दोइ धपहि, धपहि रन वीररु काइर ।
छुट्टैं वल-वे पांन, वीर हक्कें बल साइर ॥
अधम जुद्ध नहँ आदि, जुद्ध हिंदवान हिन्दु वर ।
चाहुआंन सुरतान, कहौं कलहंत केलि भर ॥
आ देवसेव चहुआन किति, चालुक्कां लग्गो[1] भिरन ।
सम मुगति बंध बंधै बलिय, सुबर वीर लग्गे ति रण ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ घ० ।

शब्दार्थः—धन=धनिक । त्रिधन=निर्धन । धपहि=तृप्त होते, संतोष करते । छुट्टैं=छूटे, बचे । बल-वे=बलवानों के । पान=पाणि, हाथ । हक्के=बढ़े, आक्रमण किया । आ=इस । देवसेव=देवतासी । किति=कीर्ति । लग्गे=लग गये, भिड़े ।

अर्थः—जिस प्रकार धनवान और निर्धन दोनों ही तृप्त (धनवान सुख से और निर्धन दुःख से) दीखते हैं; उसी प्रकार वीर और कायर युद्ध में (मारते हुए और मार सहते हुए) संतुष्ट दिखाई देते हैं । कायर (चालुक्य) बलवानों के हाथों से छूट कर (बच कर) और प्रचण्ड वीर (चाहुआन-सामन्त) आक्रमण कर प्रसन्नता का

अनुभव करने लगे; क्योंकि हिन्दुस्तान के श्रेष्ठ हिन्दू आदि काल से ही निकृष्ट तरीकों से युद्ध नहीं करते हैं। इसलिये अब मैं चाहुआन (पृथ्वीराज) और सुलतान (शाहबुद्दीन) की युद्ध-क्रीड़ा का वर्णन करता हूँ। चालुक्यों के साथ हुए युद्ध में भी पृथ्वीराज चहुआन की कीर्ति देवताओं के समान ही रही थी; इसी प्रकार शाह के साथ हो रहे युद्ध में भी शक्तिशाली वीर मोक्ष प्राप्ति की इच्छा कर युद्ध-रत हुए।

गाथा

ढिल्लिय ढाहन सस्त्रं, बज्जिय आवाज राज राजेन्दं ।
ग्रामंपुर अजमेरं, जग्गे सय वीर विक्कंदं ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—ढाहन=ढहाने, ध्वंस करने। ढिल्लिय=दिल्ली। राजराजेन्दं=राज राजेश्वर पृथ्वीराज। जग्गे=जागृत हो गये, तत्पर हो गये। विक्कंदं=निकंद करने वाले, नष्ट करने वाले।

अर्थः—जिस समय राजराजेश्वर पृथ्वीराज और अजमेर नगर के सौ सामन्तों ने विपक्षियों द्वारा दिल्ली को ध्वस्त करने वाली शस्त्रों की खनखनाहट सुनी, उसी समय वे उनका नाश करने के लिये तत्पर हो गये।

दोहा

सयन-सिंह लग्गा सु अरी, सुनि करी बर प्रथिराज ।
सारूँडे संम्हो चढ्यौ, तहँ गोरी प्रतिबाज ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—सयन-सिंह=सुषुप्तसिंह। लग्गा=लग गये, आधमके। संम्हो=सामने। चढ्यौ=चढ़ा, चलपड़ा। बाज=बाजी लेने को, बाजी मारने को।

अर्थः—सोये हुए सिंह के समान पृथ्वीराज ने जब सुना कि हाथी के समान शक्तिशाली शत्रु गोरी आगया है; तब वह उससे (गौरी से) युद्ध करने के लिये सारुंडे की ओर रवाना हो गया।

गाथा

भारद्वाज सु पंखी, उग्गयो[1] मुक्ख उदरयो इक्कं ।
त्यौं इह[2] कथ्थ प्रमानं, जानिज्यो कोविदं लोई ॥ ५ ॥

प्रा० पा० १, २, दे०।

शब्दार्थ:—भारद्वाज=एक पक्षी जिसके दो मुंह होते हैं। इह कथ्थ=यह बात। लोई=लोगों।

अर्थ:—हे कोविदों! इन दोनों युद्ध घटनाओं को इस प्रकार समझना चाहिये, जिस प्रकार भारद्वाज पक्षी के एक पेट और दो मुँह होते हैं। दोनों मुखों से यह पक्षी जिस प्रकार अपने खाद्य को पेट में लेता है, उसी प्रकार चाहुआन-सेना ने चालुक्यों और सुलतान दोनों से एक साथ युद्ध ठाना।

दोहा

उत भोरा भीमंग सौं, सूरणि[1] सध्यौ[2] सार।
इत पृथिराज नर्‌यंद[3] के, दूत आइ दरबार[4] ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० १ से ४, दे०।

शब्दार्थ:—सूरणि=सामन्तों ने। सध्यौ=साधन किया। नर्‌यंद==राजा।

अर्थ:—उधर भोरा भीम (के साथियों) के साथ सामन्तों ने लोहा लेना प्रारंभ किया, इधर उसी समय राजा पृथ्वीराज की राज सभा में कुछ दूत आकर उपस्थित हुए।

अंग भसम जंगम जु गति, जटा जूट सिर मंडि।
कसि-लँगोट म्रिग चर्मपट, वड़ आडंमर हंढि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ:—मंडि=सजा हुआ। वड़=बड़े। आडंमर=आडम्बर से। हंडि=चलते थे।

अर्थ:—उन दूतों के अंगों पर भस्म मली हुई थी और उनके रहन सहन का ढंग चलते-फिरते साधुओं के समान था। उनके सिर पर जटा जूट बधा था और लंगोट कसी हुई थी तथा मृग-चर्म पहने हुए थे। उनकी चाल आडबर-युक्त थी।

नयनि जोति वत्तनि विदुख, अस न दंभ कहु आंन।
खबरि होत वुल्ले निकट, दुवा दिन्न[1] चहुवान ॥ ८ ॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ.—वत्तनि=बातें। विदुख=विद्वता युक्त। अस=ऐसा। न=नहीं। आन=अन्य में। दुवा=आशीर्वाद। दिन्न=दी, दिया।

अर्थः—उनके नैत्रों से ज्योति प्रगट होती थी, उनकी बातें विद्वत्तायुक्त थी और उनके समान दूसरे में दम्भ नहीं था। उनके आने की सूचना पाकर चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) ने उन्हें बुलाया। उन्होंने उपस्थित होकर राजा को आशीर्वाद दिया।

साटक

औ चहुवान-नरयंद[१], इंद अवनीभूपाल-भूपालयं।
जबू द्वीप महीप दीपणि[२] बलं, कीत्तिति विस्तारयं।
खग्गं त्रास मेवास त्रास त्रसनं, गर्भानि गर्भं गलं॥
तोयं जैति जिहांन भांन तपनं[३] त्वंनं[४] दिष्टा जे बलं॥ ६॥

ग्रा० पा० १, २ दे०। ३, ४ पा०।

शब्दार्थः—इंद अवनि=अवनि पति। दीपणि=दीप्तिमान। बलं=शक्ति से। गर्भानि=अभिमानियों के। गलं=निगल गया। जिहांन=जहाँ=जहाँ-न, पृथ्वीपर। त्वं-नं=तेरे समान नहीं। दिष्ट=दिखाई देता। जे बलं=जो भी अन्य बलवान।

अर्थः—वे दूत कहने लगे, हे अवनिपति, जम्बूद्वीप के राजाओं में तेजस्वी और राजाओं के राजा-चहुआन-राजा! आपने अपनी शक्ति से कीर्तिका व्यापक विस्तार किया है; आपकी तलवार से भयभीत हो मेवास प्रान्त त्रस्त रहता है और आपने अभिमानियों के अभिमान को भी नष्ट किया है; ऐसे हे सूर्य के समान तेजस्वीराजा-आपकी जय हो। आपके समान बलवान राजा संसार में दूसा नहीं देखा गया।

दोहा

सुनि दुवाह जंगम चरणि, आडंम्बर तिन तिच्छ।
रिभिझय गल्हाँ गुर सुनत, कहौ खवरि की मिच्छ॥ १०॥

शब्दार्थः—दुवाह=दुवा, आशीर्वाद। चरणि=दूतों से। तिच्छ=तत्क्षण, उसी समय। गल्हाँ=बखान। रिभिझय=प्रसन्न हुआ। खवरि=खबर। मिच्छ=मुस्लिम की। की=क्या।

अर्थः—आडम्बर युक्त शारीरिक वेशभूषा वाले चलते फिरते योगियों रूपी दूतों के मुख से आशीर्वाद और अपनी कीर्ति का वर्णन सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और उनसे पूछा कि मुस्लिम शत्रुओं की क्या खबर है? (उसे मेरे समक्ष कहो)।

कहै दूत दिल्लेस सुनि, चरचि[१] वत्त[२] सुरतान[३]।
हम आए तव उनि[४] कियौ, बाहिर नगर मिलान ॥ ११ ॥
ग्रा० पा० १ से ४ दे०।

शब्दार्थः—सुनि=सुनिये। चरचि=रचना पूर्वक । उनि=उसने । बाहिर=बाहर। मिलान=प्रस्तान किया, डेरा डाला ।

अर्थः—दूतों ने रचना पूर्वक (बात बनाकर) कहना शुरू किया, हे दिल्लीश्वर ! सुनिये, जब हम वहाँ से रवाना हुए, तव उसने (बादशाह ने) शंहर के बाहर प्रस्थान किया (डेरा डाला)।

कहै विवरि सांई सुनौ, गज्जनेस सह भेउ।
तीनि लक्ख साहन सबल, अकल अमंत अतेउ ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—भेउ=भेद। साहन=अश्वारोही। अकल=ज्ञान नहीं हो सकता। अमंत=कुमंत्रणा। अतेउ=अपार।

अर्थः—वे कहने लगे, हे स्वामी। गज़नी पति के भेद को सुनिये, (हम उसका वर्णन ब्यौरेवार, क्रमशः करते हैं)। उसके अधीन तीन लाख सबल अश्वारोही हैं, जिनकी अपार कुमंत्रणाओं का ज्ञान नहीं हो सकता।

वंके मुख वंके चखनि[१], वंकी करणि[२] कमान।
वंक दीह सम करि गिनै[३], वंके खग्ग अमान ॥ १३ ॥
ग्रा० पा० १, २, दे०। ३ दे० पा०।

शब्दार्थः—वंके=बांके। चखनि=नयन। करणि=हाथ में। वंकदीह=आपत्ति के दिनों को। अमान=अमानी, नहीं मानने वाले, हठी ले।

अर्थः—उनकी आकृति-मुँह और आँखें-वक्र है और सदा हाथ में रहने वाली कमानें भी टेढ़ी हैं। वे कठिन समय को भी सम-भाव से मानते हैं। उनके पास टेढ़ी तलवारे हैं तथा वे जिद्दी (हठी) हैं।

दोहा

कहै दूत प्रथिराज सम, मिच्छ सयन[१] वर जोर।
सहर निकसि डेरा[२] भए, वंव वज्जि घन घोर ॥ १४ ॥
ग्रा० पा० १, २ दे०।

शब्दार्थ—सम=से । मिच्छ सयन=म्लेच्छ सेना । बरजोर=बलशाली । वंव=रणवाद्य ।

अर्थ:—दूतों ने आगे कहा—हे राजन्, मुसलमानी सेना शक्तिशाली है। जब उसने शहर से बाहर आकर खेमा डाला, तब उसके रणवाद्य तुमुल घोष से बज उठे।

कवित्त

सुनत सुअन[1] सोमेस, भिख्ख[2] भयभीत[3] भयउ[4] तन ।
रोस रंग प्रज्जुलिग, मंगि संनाह-अमर जन ॥
हयनिं[5] हुकम किय दैन, मत्त गज[6] अंदुणि[7] खुल्लिय ।
नालि गोल जुत जंम, हसम हाजर सह बुल्लिय ॥
लोहान बुल्लि[8] आदर अनँत, विवरि वत्त दूतनि[9] कही ।
विप्फुरे वीर हुँकनि[10] सुनत, जनुकि पुंछ म्यंडी[11] अही ॥ १५ ॥

ग्रा०पा०१ से ४, ६ से १० दे० । ५ पा० ।

शब्दार्थ:–भिख्ख=भेख । भयभीत=भयंकर । सनाह-अमर=अक्षय कवच । जन=दास । हयनि=घोड़ों को । दैन=देने की वितीर्ण करने की । अंदुणि=शृंखलाओं से । जंम=जंमूरे, छोटी तोपें । हसम=सेना । हाजर=उपस्थित । विप्फरै=उन्मत्त हो गये । हंकनि=हुंकार । म्यंडी=मसल दी गई ।

अर्थ:—दूतों की बातों को सुन कर सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज की शरीराकृति भयंकर हो गई और वह क्रोध से जल उठा। उसने दासों से अपना अक्षय कवच मँगवाया और सामन्तों को घोड़े देने की आज्ञा दी। मस्त हाथियों को जंजीरों से खोला गया और यान्त्रिक आग्नेयास्त्रों को तय्यार किया गया। उपस्थित सैनिकों को तय्यार होकर आने की आज्ञा दी और सम्मान के साथ लोहाना आजानबाहु को बुलाया तथा दूतों द्वारा दिया गया विवरण सुनाया। दूत-वाक्यों और स्वामी की आज्ञा से बहादुर इस प्रकार उन्मत्त हुए मानो सांप की पूँछ मसल दी गई हो।

पुंछ[1] चंपि जनु चील, स्यंघु,[2] सोवत जग्गाइय ।
हक्काल्यौ[3] कि वराह, दंग जनु अग्गि लगाइय ॥
वरड छता के छेरि, गाइ ब्यानी वग्गांनिय ।
कै जग्गाए वीर, भीर भारथ मग्गानिय ॥
विरचयौ एम लोहान सुनि, जत्र कत्र मिच्छनि[4] करौं ।
सोमेस आन सुरतान धर, तर उप्पर गज्जन[5] धरौं ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १ से ४ दे० । ५ भीं० पा० ।

शब्दार्थ:—पुंछ=पूंछ। स्यंधु=सिंह। हक्काल्यौ=ललकारा, घेरा गया। दंग=चिनगारी। धरडछता=मधु मक्खियों का छाता। छेरि=छेड़ा। वग्गांनिय=व्याघ्रनी, सिंहनी। मग्गांनिय=रास्ता। एम=इस तरह। धर=पकड़ कर। धरौं=धर दूंगा।

अर्थ:—(वीर इस प्रकार उन्मत्त हो उठे) मानों चील द्वारा सर्प की पूंछ दबादी गई हो, अथवा सोये हुए सिंह को जगाया हो, या वराह को घेरा गया हो, अथवा चिनगारी द्वारा आग लगादी गई हो, अथवा मधु मक्खियों के छाते को या ब्याही हुई गाय तथा शेरनी को छेड़ दी गई हो, अथवा युद्ध मार्ग पर सहायतार्थ बावनही वीर जगाये गये हों। उसी तरह राजा की आज्ञा को सुन कर वीर लोहना क्रोध में आकर कहने लगा कि मैं मुसलमानों को तितर बितर कर दूँगा। मुझे राजा सोमेश्वर की आन है कि मैं निश्चित ही गौरी शाह को पकड़ कर गजनी को उथल पुथल कर दूंगा।

सुनि अवाज सुविहांन, सलख अब्बू लज[1] रक्खन।
सहस सत्त सजि सेन, गिलन गौरी भर भक्खन॥
गजनि[2] पंति ढुलि ढाल, तत्त तुक्खार[3] पक्खरिय।
जंत्र गोर गहरांण, मिलन मिच्छांन मखखरिय॥
अनभूत भूत संनाह सजि, वजि निसांन धन घुम्मरिय।
इम जैत सु वन दु वननि दहन, लरण[4] लोह मनु[5] गुंमरिय॥ १७॥

प्रा० पा० १ से ५ दे०।

शब्दार्थ:—सुविहान=सुमान, 'मुसलमानों का खुदा स्वरूपी शहाबुद्दीन। अब्बू=आबू राज वंश की। गिलन=गिल जाने के लिये। तत्त=तेज। तुख्खार=घोड़े। पख्खरिय=पाखरों से सजाये गये। गहरांण=गहराये, गहरी आवाज होने लगी। मक्खरिय=मच्छर, मस्ती। सुवन=भली प्रकार से सुसज्जित होकर। मनु=मन में। गुमरिय=गरूर ले आया।

अर्थ:—मुसलमानों की ललकार को सुन कर आबू वंश की लाज रखने वाले वीरवर सलखानी ने गौरीशाह को भस्मसात करने और उसके साथियों को नष्ट करने के लिये सात हजार बहादुरों की सेना सजाई। हाथियों पर ढालें हिलने लगी, तेज गति से चलने वाले घोड़ों पर पांखरे डाली गई; आग्नेयास्त्र गंभीर नाद करते हुए छूटने लगे, बादलों की गड़गड़ाहट के समान युद्ध के नक्कारे बजने लगे। और

मुसलमानों के साथ युद्ध में जूझ पड़ने के लिये लोहाना वीर उन्मत्त हो उठा। उस असाधारण वीर ने अपना कवच धारण किया। इस प्रकार प्रमार-वीर जैत्र सुसज्जित होकर शत्रुओं रूपी वन को अपनी लोह ज्वाला द्वारा जलाने को तत्पर हुआ।

पुनि गुज्जर वलि दंड, लोह अनडंडनि डंडन।
रहसि राम रण[1] रंग[2], नथन अन नथ्थन संडन॥
अट्ठ ससस असवार, सार पाहार प्रव्रत्तिय।
दांन ध्यांन असनांन, सोक संसार त्रिवत्तिय॥
अनच्यंत[3] आइ सारोंड सह, जनु अकाल पावस मँडे।
आवाज साहि श्रवननि[4] सुनत, सकल सुख्ख विभ्रम छँडे॥ १८॥

ग्रा० पा० १ से ३ दे०। ४ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—गुज्जर=बड़गुज्जर। रहसि=रहस्य। संडन=वृषभ। पाहार=प्रहार। त्रिवत्तिय=निवृत्त। अनच्यंत=अचानक, बिना बुलाये।

अर्थः—दण्डित नहीं किये जाने वाले वीरों को अपनी शक्ति से दण्डित करने वाला कौतुक से आयोजित की गई रण क्रीड़ा में नहीं नाथे जाने वाले शक्तिशाली बैलों के समान वीरों को काबू करने वाला, शस्त्राघात में प्रवृत्त रहने वाला, स्नान, ध्यांन, दान आदि सुकर्म करने वाला, तथा सांसारिक दुःखों से निवृत्त रहने वाला बलवान बड़ गुज्जर रामराय अपने आठ हजार अश्वारोही साथियों के साथ सारुंडे नामक स्थान पर इस प्रकार अचानक आ पहुँचा; जैसे प्रलय काल में मेघ आकर अचानक उमड़ पड़े हों। उसके आ पहुँचने की आवाज सुनते ही बादशाह के सांसारिक सुख-रूपी भ्रम विलीन होगये।

फूनि आइय[1] गुरराम, माम भुज डंड समर जिहि।
जनु[2] भारथ्थह[3] द्रोन, श्रोन वर खंत सस्त्र जिहि॥
अश्व अयुत तिहि तीनि[4], ग्यांन विग्यान विनांनिय।
मंत्र जंत्र आराध, सथ्थ जिन वीर विग्यांनिय।
आसीस आंनि चहुआन दै, कहा विरम साजि-न-चलौ।
चंपै न सीम साहाब सक, धकधकि धर करि हौं प्रलौ॥ १९॥

ग्रा० पा० १ भीं० पा० घ०। २ का० घ०। ३ घ० दे०। ४ दे०।

शब्दार्थः—माम=मांन, संमान । श्रोन=शोणित । विनांनिय=विनय । सीम=सीमा, भूभाग । साहाब–सक=यवन शहाबुद्दीन । धक-धकि-धर=धधक पैदाकर, क्रोधाग्नि प्रगट कर । प्रलौ=प्रलय ।

अर्थः—इतने में गुरुराम पुरोहित भी आपहुँचा, जिसके भुज दण्डों का युद्ध में सम्मान होता था; जिसमें महाभारत के द्रोणाचार्य के समान शौर्य और शक्ति थी, जिसके शस्त्र-प्रहारों से युद्ध क्षेत्र में खून की धारा बहती थी और जिसमें दस सहस्र अश्वारोही वीरों के समान ज्ञान, विज्ञान एवं विनय-तीन शक्तियाँ थी। मंत्र, यन्त्र और आराधना ही जिसके वीर साथी थे; ऐसे गुरुराम पुरोहित ने आकर पृथ्वीराज को आशीर्वाद और दिया कि क्या देर है ? सजकर शीघ्र प्रस्थान करना चाहिये और शहाबुद्दीन जब तक अपने भूभाग पर कब्जा नहीं करे उससे पूर्व ही हमें सचेत हो जाना चाहिये और क्रुद्ध हो-प्रलय मचा देना चाहिये !

दोहा

दिखि[1] डरांन[2] डम्मर सयन, गहकि गज्जि नीसान ।
धर धुमर अंबर मिलिय, मुदित रोस रीसांन ॥ २० ॥
ग्रा० पा० १, २ दे० ।

शब्दार्थः—डरांन=डरने लग गये । डम्मर=आडम्बर । धुंमर=धूम्रवर्ण की रज । मुदित=उत्साह युक्त । रोस=क्रोध करके । रीसांन=तम तमा उठे ।

अर्थः—तत्काल सेना सजाई गई । सेना की सजावट को देखकर लोग भयभीत हो गये । गम्भीर घोष से नक्कारे बज उठे और पृथ्वी से धूम्रवर्ण की धूल (रज) उड़ कर आकाश में मिलने लगी । यौद्धागण उत्साहित हो उठे और क्रोध से उनकी आकृति लाल होगई ।

कवित्त

सहस पंच दस सेन, अलप चहुआंन सँघातिय ।
वाल पोस प्रित्यंग[1], सस्त्र सत्रंग निघातिय ॥
चमर तबल टंकार, हंक हंकार हकारिय ।
लोह छक्क धर धक्क, कंक अनसंक वकारिय ॥
सहस तीस सह सेन मिलि, गिलन मिच्छ गज्जे गहर ।
तिन संग वीर वेताल चढि, पढ़त मंत बद्धे कहर ॥ २१ ॥
ग्रा० पा० १ दे० ।

शब्दार्थः—बाल पोस=बचपन से ही साथ साथ पले हुए। व्रित्यंग=प्रेम। सत्रंग=शत्रुओं के अंग को। घातिय=घात करने वाले। छक्क=छके हुए। धक्क=धाक, आतंक। कंक=कंकाल, शरीर-अनसंक=निर्भय। बक्कारिय=ललकारने लगे।

अर्थः—चाहुवान के अल्प संघाती १५००० पन्द्रह हजार थे, जो बाल्यकाल से ही साथ-साथ पले थे (अर्थात् बालमित्र थे), और जो शस्त्रों द्वारा शत्रुओं के अंगोंपर आघात करने वाले थे, ऐसे वीरों पर चँवर ढुलने के साथ २ तबलास्त्र की टंकारें होने लगी और वे हुँकार करते हुए आगे बढकर शत्रुओं को विचलित करने लगे। लोहे से छके हुए वे वीर आतंक फैलाते हुए निर्भयकाय शत्रुओं को ललकार ने लगे। तीस सहस्र संगठित म्लेच्छ सेना को नष्ट करने के लिये वे गंभीर गर्जना करने लगे। उनके साथ मंत्र पढ़ते हुए वीर बेताल चल पड़े, जिससे रण-क्रीड़ा में और भी वृद्धि हो पाई।

सज्जि धायौ चहुवान, साहि सारौंड सु संभरि,
उत जित्यौ रतिवाह[1], चंपि चाल्लुक निसंकरि[2] ॥
धनि सुभाग पृथिराज, राह भोरा विड्डार्‌यौ।
अरि अनंत कलहंत, सेनु सामंतनि झार्‌यौ ॥
यौ (यो) लग्ग एखग्ग उडि हथ्थतें, (ज्यौं) त्रीय-नयन मत्तो मयन।
गाहंन गहन दुज्जन दलन, सुबर सूर सज्जिय सयन ॥ २२ ॥

म्रा० पा० १, २ पा० दे०।

शब्दार्थः—सारौंड=सारूंड़ा नामक स्थान। संभरि=सुनकर। निसंकरि=निश्शंक, निर्भय। विड्डार्‌यौ=विंडुरादिया, भयभीत कर दिया, भगा दिया, परास्त किया। त्रीय-नयन=तृतीय नैत्र। मत्तो मयन=मतवाला कामदेव।

अर्थः—इधर बादशाह के 'सारुंडे' पहुँचने की खबर सुन कर पृथ्वीराज चहुआन तय्यार होकर रवाना हुआ और उधर चाहुआन के सामन्तों ने रात्रि में धावा कर चालुक्यों को दबा लिया तथा पृथ्वीराज के सौभाग्य से भोला भीम को परास्त कर रास्ता साफ कर दिया एवं उन्हीं सामन्तों ने शहाबुद्दीन की अपार सेना पर हमला कर दिया उनके हाथों की तलवारें इस प्रकार तेजी से उठ उठ कर प्रहार करने लगी मानो मदोन्मत्त कामदेव के लिये शिव का तीसरा नैत्र खुल गया हो। ऐसा लगता

था उन शक्तिशाली वीरों ने भयंकर शत्रुओं को नष्ट कर देने के लिये ही सेना को सजाया हो।

लोहानो अगिवान, सैन सै-पंच हलक्किय ।
पंच सहस सो सोम-पुत्त, करि तोन खलक्किय ॥
गे[1]-डंडा-नीसांन, एक दह[2] अट्ठह भेरिय ।
ओ छंगी संनाह, फौज चहुवान हकेरिय[3] ॥
उत्तंग ढाल कीवै रखें[4], को हंके अट्ठारहां ।
निसि जाम तीनि बित्तो पतिय, पंजूराय सुढारहां ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ से ४ दे० ।

शब्दार्थः—सै-पंच=पांचसौ । हलक्किय=हलकारा, बढ़ाया । करि=कर, हाथ । तोन=त्रोण, भाथा । खलक्किय=खलकाया, खाली किया । गै=हाथी । डंड-निसान=ध्वजदंड । एक-दह-अट्ठह=गुन्नीस । ओछंगी-सनाह=कवच अंग में नहीं समाता । हकेरिय=हकारा, आगे को । उतंग-ढाल=ढालें ऊँची उठाई । कीवै रखें=रक्षार्थ । को=कोई २ । हंके=चलाने लगे । अट्ठारहां= अठारह टंकी कमाने । पतिय=पहूँचा । पंजूराय=कछवाहा पज्जूनराय । सुढारहां=भली प्रकार से ढाहने वाला, पछाड़ने वाला (या सुडोल) ।

अर्थः—उधर वीर लोहाना ने आगे होकर पांच सौ सैनिकों को बढ़ाया और इधर सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज पांच हजार सैनिकों सहित आगे बढ़ कर बाण-वृष्टि करने लगा और अपने तरकस को खाली करने लगा। गुन्नीस रण भेरियाँ बजने लगी और हाथियों पर ध्वज दण्ड फहराने लगे। उस समय रणोन्मत्त वीरों के अंग में कवच नहीं समा पाते थे। चाहुआन राजा ने शत्रु सेना को आगे कर लिया और भगा दिया। कोई भागता हुआ शत्रु अंग रक्षणार्थ ढालों को ऊँचा उठाता और कोई अठारह टंकी कमानों से बाण चलाता जाता था। इस प्रकार रात्रि की तीन प्रहर युद्ध करते हुए बीत गई। उसी समय शत्रुओं को और अधिक त्रस्त करने और कुचलने के लिये वीर वर पज्जूनराय भी आ पहुँचा।

दोहा

दल सज्जिग सुलितान[1] ने, है गै गगन गँभीर ।
जनुभद्दों भर उन्नमत, बाइ भांन वनि[2] धीर ॥ २४ ॥

प्रा० पा० १, दे० । २ पा० ।

शब्दार्थः—गँभीर=गहरे। भद्दों=भाद्रपद। उन्नमत=उमड़े। बाइ=वायु पवन। भान=भानु, सूर्य।

अर्थः—सुलतान की सजाई हुई सेना, घोड़े और हाथियों के कारण घने बादलों के समान दिखाई देती थी और सुलतान के योद्धा भाद्रपद में उमड़ते हुए मेघों के समान मालूम होते थे; उनका संहार करने के लिये चाहुआन और उसके अविचल योद्धा पवन और सूर्य के समान बने हुवे थे। (वायु के चलने और सूर्य के उदय होने से बादल नहीं ठहरते)।

कवित्त

खां खुरसांन ततार खांन, रुस्तम्म अधिकारी।
वलिय[1] खांन पेरोज[2], मियां[3] रोजन रजधारी॥
खां-रुंमी[4] हवसी हुजाव, खानि[5] खाना रुस्तम खां।
जमन जुद्ध वर मुद्ध, सुद्ध अनिरुद्ध मुस्तखां॥
सुरतान चमाउ हथ्थ धरि, गहकि गज्जि खग हथ्थ लिय।
रक्खे सुजीय हम साह सुनि, जौ वंधै चहुवांन जिय॥ २५॥

ग्रा. पा. १ दे.। २ पा. दे.। ३, ४, ५, दे.।

शब्दार्थः—पेरोज=पिरोज। खानि=वंशज। जमन=यवन। मुद्ध=मुग्ध, अनुरागी। अनि=सेना। रुद्ध=रोंधने वाला। चमाउ=सेना। हत्थ धरि=हाथ में लेकर, नियन्त्रण करते हुए। गहकि=गहरी। जिय=जीता।

अर्थः—खुरासांन खां, तत्तार खां, अधिकारी रुस्तम खां, बलवान पीरोज खां, राजसी ठाट-बाट रखने वाला मिया रोजन (रमजान खां) रुमी खां, हबशी खां, हुजाद-खां, खांन वंशज रुस्तम खां और युद्धानुरागी, शुद्ध मन वाला एवं सेना को कुचलने वाला मुस्त खां (मुस्तफा खां) आदि ने सुलतान की सेना का नियन्त्रण कर गर्जना करते हुए हाथों में तलवारें लीं और कहा — हे शाह! यदि हम पृथ्वीराज को जीवित पकड़ लेंगे तब ही हम जीवित रहेंगे (अन्यथा नहीं)।

कवित्त

बोल[1] मंनि[2] सुलतांन[3], वाह लंवी पस्सारिय,
है हिंना सुरसान, मरण तांई[4] अधिकारिय।
सरण जाइ खुरसांन, वंधि मारुफ[1] मुह ग्गल[6]॥
खेलि खांन सजि प्रांन, सेंनु सज्यौ दिसि जंगल।

बढि सु बर भिस्त अरु वचन जिय, आनंद्यौ गौरी गरुव,
धाए सुधूय बद्दर मनौ, सस्त्र धार धावै धरुव ॥ २६ ॥

ग्रा० पा० १ से ६, दे० ।

शब्दार्थः—मंनि=मानकर । हिंना=हीन, तुच्छ । खुरसान=मुल्क । तांई=तक । जाइ=जिसके । मुह=मुझ । गगल=गले में । खैंलि=खेल ले, बाजी लगाले । खांन=गौरी । भिस्त=बहिश्त । धरुव=धुर वा बादल ।

अर्थः—सुलतान की बात मान कर मारुफ खाँ ने लम्बी बाँहें कर कहा:-खुरासांन मुल्क हमारे लिये तुच्छ हैं, और मृत्यु पर्यन्त हम उसके अधिकारी हैं। जिसकी (शहाबुद्दीन की) शरण में खुरासान मुल्क है, वह मुझ मारुफ के गले में बँधा हुआ है। मेरा सिर कटने पर ही उसका अनिष्ट हो सकता है)। हे खांन ! (गोरी) तुम सज्जित होकर प्राणों को बाजी लगादो; क्योंकि जंगलो राजा (पृथ्वीराज) के विरुद्ध तुमने सेना सजाई है। यदि हम कट जायेंगे (मर जायेंगे) तो बहिश्त नसीब होगी और जीत जायेंगे तो वचन का पालन होगा। मारुफ के इन वचनों को सुनकर गौरीशाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसी समय सेना इस प्रकार आगे बढी मानों धूम्र वर्ण के बादल बढ़े हों, शस्त्रों की धारें भी बादलों से छूटती हुई वारि-धारा के समान दीखने लगी ।

दोहा

पाइ दाइ धरवर धरै, सद मद रोसतु जंग ।
दुअन दिखाऐ दिख्खियैं[१], जनु विस भरे भुअंग[२] ॥ २७ ॥

ग्रा. पा. १ दे. । २ का. ।

शब्दार्थः—पाइ=पैर । दाइ=दाव । सद=शीघ्रता से । रोसतु=क्रोध करते हुए । दुअन=विपक्षी शत्रु । भुअंग=भुजंग, सर्प ।

अर्थः—युद्ध के लिये क्रुद्ध सेना के मदमस्त हाथी इस प्रकार चलने लगे मानों दाबने के लिये चले हों। महावतों के संकेतानुसार शत्रु-सेना की ओर देखते हुए वे ऐसे प्रतीत हुए, मानों विषधर भुजंग देख रहे हों ।

निसि पद्धरी नरिन्द तौं, सज्जिसेन चहुआंन ।
मिले पुव्व पच्छिम हुतें, चाहुआन सुरतांन ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—पद्धरि=अच्छी । पुव्व=पूर्व ।

अर्थः—कवि कहता है :— हे चहुआन नरेश्वर। तेरे लिये यह रात्रि अच्छी है; जिसमें तुमने यह सेना सजाई है। उसी समय पूर्व से चहुआन और पश्चिम से सुलतान ससैन्य युद्ध के लिये आकर मिले।

हय गय दल बद्दल सु बन, नर भर मिलि चतुरंग ।
चाहुवान सुरतान[1] सों[2], वढिय रारि रन जंग ॥ २६ ॥

ग्रा. पा. १, २ पा. ।

शब्दार्थः—बद्दल सु बन=बद्दल के समान बनी ठनी थी। क्रित=करने को ।

अर्थः—हाथी घोड़ों से युक्त सेना बादलों के समान मालूम होती थी और सैनिकों के साथ सामन्तों के मिलने पर चतुरंगिनि की भांति दिखाई पड़ती थी, दोनों सेनाओं के मिलने पर चहुआन और सुलतान क्रुद्ध हो युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गये ।

घरी इक्क[1] पल-विपल-हुअ, लोह खोलि खुरसांन ।
उररि परै दुव दलनि वल, चाहुआंन तुरकांन ॥ ३० ॥

ग्रा. पा. १ पा. ।

शब्दार्थः—पल-विपल-हुअ=एक दूसरे की पलकें विपल (स्थिर) हो गई, नजर से नजर मिली । उररि-पड़े=उमड़ पड़े, तीव्र गति से बढ़े ।

अर्थः—एक पल के लिये एक दूसरे की नजर मिली और मुसलमानी सेना ने शस्त्र खोले (उठाये)। चाहुवान तथा मुसलमान दोनों अपने २ दल के बल पर तीव्र गति से बढ़ चले ।

लै संभरि पति सगुन वर, पुट्ठि पवन प्रथिराज ।
जुग्गिनि चक्र अचक्क[1] वर, सा[2] सम्ही[3] अरिकाज ॥ ३१ ॥

ग्रा. पा. १ दे. । २, ३ दे. का. ।

शब्दार्थः—सगुन=शकुन । पुट्ठि पवन=पीछे की हवा नौकादि को बढ़ाने में जिस प्रकार सहायक होती है, उसी प्रकार स्वपक्षी वीरों का बल पाकर। जुग्गिनि चक्र=योगिनी पुर (दिल्ली) का चक्रवर्ती । अचक्क=कु चक्र कु चक स्वरूपा खड्ग । सा=उसे । सम्ही=सम्हाई, पकड़ी ।

अर्थः—शुभ शकुन लेकर पृष्ठ भाग पर पवन तुल्य बढ़ने वाले स्वपक्षी वीरों का बल पाकर दिल्ली के चक्रवर्ती सम्राट संभरेश्वर पृथ्वीराज ने अपनी कुचक्र स्वरूपा श्रेष्ठ खड्ग को शत्रुओं के नाश के लिए गृहण की।

लै जुग्गिनि प्रथिराज बल, संमुह दे पतिसाहि[1]।
घरी चारि घरियार लौं[2], चच्चर सी समराहि[3] ॥ ३२ ॥

ग्रा. पा. १ से, ३, दे.।

शब्दार्थः–जुग्गिनि=योगिनी। संमुह दे=सामना किया। चच्चर=शिर की कपाली। सी=उन। समराहि=समर कर्ता, युद्ध कर्ता।

अर्थः—पृथ्वीराज ने योगिनी का बल लेकर बादशाह का सामना किया और चार घड़ी तक युद्ध कर्ता शत्रुओं के सिर की कपाली को शस्त्रों के आघात से घड़ियाल के समान बना दिया।

उनंगे सुरतान दल, सारुँडे चतुरंग।
देह दुघट्टी रण मिलै, सोभ रणंकिय जंग ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ–उनंगे=उमड़ पड़े। दुघट्टी=दो घड़ी तक। मिलै=मिलाये, भिड़ाये। सोभ=शोभा। रणंकिय= रणित, ध्वनित, शस्त्र ध्वनि।

अर्थ—शाह की चतुरंगिनी सेना के सारुँडे नामक स्थान की ओर बढ़ने पर वीरों ने दो घड़ी तक अपने दृढ़ शरीर को शत्रुओं से भिड़ा दिया और शस्त्र-ध्वनि द्वारा युद्ध की शोभा बढ़ादी।

कवित्त

ढंढीरीजै ढ़ाल,[1] मुरहि[2] गौरी दल अविहर।
अविहर दल विहरंत, परे सिल्लार ति असिझर ॥
असिझर भर भग्गेहि,[3] मलिक दावानलु[4] लग्यौ।
दावानलु[5] प्रभझरर्‌यौ,[6] पिट्ठि[7] सुसमान विलग्यौ ॥
सूरिमा हाक संभरी समिक[8] त्रिगुन सद्द दल प्रलय[9] हुअ।
दल प्रलय होतको अंगवइ[10], पक्खर इक्क[11] सलख्ख तुअ ॥ ३४ ॥

ग्रा० पा० १ पा० २ दे०। ३, ४, ५, दे०। ६ भी०। ७ पा०। ८ भी०। ९ पा०। १०,११ दे०।

शब्दार्थः—ढंढोरी=टटोल ली, परखी। जैढाल=विजयी ढाल स्वरूपी वीर। अविहर=विहर कर नहीं हटने वाला, अटल। विहरंत=विहर पड़ने पर, चल पड़ने पर, मुड़ पड़ने पर। परे=पड़ने लगी। सिल्लार=सालार, सेना पति। ति=वह। असिभ्भर=खड्गझड़ी। मलिक=शाह। पिट्ठि=पृष्ट, सहारा। सुसमान=सुस्मान, कोई मुस्लिम योद्धा। विलग्यौ=लगा लिया। सूरिमा=बहादुर। समिक=श्रमिक, श्रमित। अंग वइ=मुकाबला, सामना। पक्खर=परवरेत, अश्वारोही।

अर्थः— उसी समय वीरवर सलख, ढाल के समान विजयी वीरों को परखने लगा। जिससे शाह की सेना मुड़ पड़ी। शाही सेना के मुड़ने पर सलख के खड्ग प्रहार सेनापतियों पर होने लगे और विपक्षी वीर भागने लगे। शाह को वीर सलख का शस्त्र-प्रहार दावानल के समान दिखाई देने लगा। दावाग्नि के समान शस्त्रों की चमक को देखकर शाह ने सुस्मानखां का सहारा लिया। वीर सलख की ललकार सुन कर विपक्षी वीर थक से गये; इससे उसकी ललकार त्रिगुणरूप में (पृथ्वी, आकाश और पाताल तक) प्रतिध्वनित होने लगी और विपक्षी दल में प्रलय मच गया। ऐसा होने पर उस वीर का कौन सामना कर सकता था? कवि कहता है:- हे सलख! तू ही एक सच्चा अश्वारोही है, क्योंकि तेरे ही आक्रमण से शत्रु-सेना में उथल-पुथल मच गई।

त्रिगुन त्रासि पंमार[1], भिरिग चौकिय चक्काहिय।
चक्राव्यूह[2] अभिमंन[3], मनहु जैद्रथ[4] सौं दाइय॥
धरि[5]धारह धारार, धार धारह आवट्टिय।
आवट्टिय[6] मनु[7] स्यंघ[8], स्यंघ[9] एका मनु[10] पट्टिय॥
जज्जरिय[11] गात आघात उठि, प्रभु अव्वुअ ठट्ठह-अठिलु[12]।
घरि इक्क[13] सार सव्वह[14] सुभर, रण[15] त्रिघात नंचिय नठिलु[16]॥३५॥

ग्रा. पा. १ भीं.। २ का.। ३ दे.। ४ दे. पा.। ५ से १२ दे.। १३ पा.। १४ से १६ दे.।

शब्दार्थः—चौकिय=चौकी, अरदली, अंगरक्षक सेना। चक्काहिय=चक्राकृति, चारों ओर। चकाव्यूह=चक्रव्यूह। अभिमंन=अभिमन्यु। जैद्रथ=जयद्रथ। सौं=से। दाइय=दाव लगाकर धारह=धारा, खड्ग। धारार=रक्त रंजित, घायल। धार धारह=खड्ग धारा से खड्ग धारा। आवट्टिय=आहुट्टिय, जुट पड़ा। स्यंघ=सिंह। स्यंघ एका=अकेला सिंह। पट्टिय=पटाधारी, केशरी। जज्जरिय गात=काल स्वरूप। आघात उठि=शस्त्रा घात होना। प्रभु अव्वुअ=आबू राजवंशी। ठट्ठह-अठिलु=अठिल ठाट, नजदीक

नहीं आने देने जैसा भयंकर स्वरूप । सव्वह=स्रवित हुआ, बरसता रहा । त्रिघात=भयानक वार, बुरी तरह से प्रहार । नठिलु=नहीं ठेलने देने जैसा, नहीं धकेला जाने जैसा ।

अर्थः—इस प्रकार विपक्षियों को त्रिगुण रुप से त्रस्त कर देने पर शाह के अंग रक्षकों ने वीर सलख को चक्राकृति व्यूह में घेर लिया और युद्ध करने लगे । व्यूह में घिरा हुआ वह वीर ऐसा दीख रहा था मानों वीर अभिमन्यु चक्र व्यूह के अन्दर जयद्रथ से दांव-पेंच कर रहा हो । घायल होने पर भी वह तलवार की धार मिलाता हुआ इस प्रकार जूझ पड़ा मानों सिंह समूह से अकेला पटाधारी (केशरी) सिंह लड़ रहा हो । उस समय उसकी शरीराकृति और शस्त्र-प्रहार काल के समान था । उस यौद्धा के हाथ से एक घड़ी तक युद्ध स्थल में लोहा बजता रहा और उसका घायल शरीर किसी से धकेला नहीं गया और युद्ध नृत्य करता रहा ।

लौहानौ आजान वाहु[1], वाहन वहि-लग्ग्यौ[2] ।
त्रिगुन त्रास त्रासीय[3], भारु[4] भारी भरु[5] भग्ग्यौ[6] ॥
तव जग्ग्यौ सुरितानु[7], खान खग्गह खंधारिय ।
वाहु वाहु आलम अभंग, आलम कहि सारिय ।
विस्तरिग[8] वहसि हिन्दुव तुरिक, किरकि कंक मंजन करिय ।
संभरिय धरिय संमर तनिय[9], कव्वि मुख्ख अस्तुति धरिय ॥ ३६ ॥

ग्रा० पा० १, २ दे० । ३ पा० घ० । ४ से ७ दे० । ८ दे० पा० । ९ दे० ।

शब्दार्थः—वहि-लग्यौ=बढ़ाने लगा । भरु=भट, योद्धा । वाहु-वाहु=वाह वाह । आलम=संसार । आलम=बादशाह । सारिय=सब । वहसि=वहस (युद्धवाद) । किरकि=चूर्ण होगया । मंजन=मज्जन । संमर तनिय=युद्ध की डोर । कव्वि=कवि ।

अर्थः—वीर सलख की घायल स्थिति देख कर लोहाना आजान बाहु ने अपने घोड़े को आगे बढ़ाया और तीन गुणा आतंक फैलाकर विपक्षियों को भयभीत कर दिया एवं सलख पर आई विपत्ति को दूर किया । तव सुलतान ने तलवार के धनी खंधार निवासी मुसलमानों को युद्ध के लिये और उत्तजित किया । यह देख कर कभी न झुकने वाले बादशाह की सब ने तारीफ़ की । इस प्रकार हिन्दू और मुसलमानों में युद्ध छिड़ गया । धारा तीर्थ में मंजन करते हुए कंकालों का चूर्ण हो गया । उसी समय स्वयं पृथ्वीराज ने युद्ध की डोर हाथ में ली और मैं (कवि) उसकी प्रशंसा जीभ पर लाया ।

दोहा

जहँ जहँ रण अँकुरि[1] परिय, तहाँ तहाँ चलिराज[2] ।
मिच्छ सयनु[3] इक्कत करिय, मनो कुलिंगन बाज ॥ ३७ ॥

ग्रा. पा. १, ३ दे । २ दे. पा. ।

शब्दार्थः—अंकुरि परिय=छिड़ पड़ा । राज=पृथ्वीराज । मिच्छ-सयनु=मुस्लिम सेना । इक्कत=एकत्रित । कुलिंगन=कलंगी वाले तीतर आदि पक्षी ।

अर्थः—जिस जिस स्थल पर भयंकर युद्ध होता हुआ दिखाई देता, उस ओर स्वयं पृथ्वीराज जा पहुँचता । उसने मुसलमानी सेना को भयभीत करते हुए इस प्रकार एक जगह घेर लिया, जिस तरह बाज पक्षी कुलिंग पक्षियों (तीतर आदि) को एक स्थान पर घेर लेता है ।

कवित्त

ढंढोरी जै – ढ़ाल, झटकि नक्खतु धर मीरणि ।
किते केस गहि कढ़ि, चंपि जम दड्ढ सरीरणि ॥
कौन मुक्ख मुहं–मिलै, सलख उब्भौ मीरणि ग्रसि ।
गिरत नाग हलि नाग, तेक कढ्ढै वड्ढै हसि ॥
दनु, देव, नाग, जय २ करै, अभुत जुद्ध वित्तै अदय ।
ब्रह्मान जग्य जै उप्पनैं, करतु सोई त्रिव्वीर मय ॥ ३८ ॥

ग्राह्य पाठ :– यह पूरा पद्य देवलिया प्रति से लिया गया है ।

शब्दार्थः—झटकि=झटाके से, झपाटे से । नक्खतु=नाखने लगा, धराशाई करने लगा । कढ्ढि=निकाल दी, आर-पार करदी । जम दड्ढ=कटार । सरीरणि=शरीर के । कौन मुक्ख=किसका मुख है । मुह-भिलै=सामना करे । मीरणि=मीरों का । नाग=हाथी । हलि-नाग=नाग (शेष नाग) हिलने लगा । तेक=तेग तलवार । दनु=दानव । अभुत=अद्भुत । अदय=निर्दय । ब्रह्मान=ब्रह्मा के । जग्य=यज्ञ । जै=जो । त्रिव्वीर=निर्बीज ।

अर्थः— ढाल के समान युद्ध में अड़े हुए वीरों को परखता हुआ पृथ्वीराज तेजी से शाह के मीरों को जमीन पर धराशायी करने लगा । उसने कितने ही वीरों के सिर के बालों को एक हाथसे पकड़कर दूसरे हाथ की कटारी शरीर में घुसेड़ दी । उस समय

ऐसी किसकी सामर्थ्य थी, जो पृथ्वीराज का सामना कर सकता; क्योंकि उसके साथ ही वीर सलख, मीरों को नष्ट कर रहा था। उसकी शक्ति के आधार पर पृथ्वीराज हँसता हुआ तलवार लेकर आगे बढ़ा। उसकी तलवार से हाथी कट कट कर गिरने लगे और शेष नाग भी डगमगाने लगा। इस दृश्य को देख कर दानव, देवता और नाग गण पृथ्वीराज की जय-जयकार करने लगे। पृथ्वीराज ने उस समय निर्दयी बनकर अद्भुत युद्ध किया और ब्रह्मयज्ञ संभूत वीर होते हुए भी उसने मानव प्राणियों को निर्जीव करना शुरु किया। (ब्रह्मा-सृष्टि बनाता है, किन्तु उसी के द्वारा उत्पन्न किये हुए चहुआन ने सृष्टि-संहार-कर्ता का रूप धारण किया)।

बड़ गुज्जर वलिवंड-राम[१], तत्तार मँडिय[२] रन।
सार धार उभझरिय, श्रोन झंझरिय गगन तन॥
लोह हड्ड उड्डंत, हंस छुड्डंत[३] श्रीर सर।
फिरत रुड विन मुंड, दंति[४] विन सुंड सार झर॥
अद्भुत भयान समहर[५] मचिय, रचिय-रक्तु[६] कालिय[७] कहर।
इक लरत गिरत घुंमट घटनि[८], भटकि नट्ट मंडिय वहर॥ ३६॥

ग्रा. पा. १ से ३ दे; । ४ पा. । ५ भीं. पा. दे. । ६ का. । ७, ८ दे.।

शब्दार्थः—राम=रामराय। मँडिय=छेड़ा। उभझरिय=झड़ने लगी। श्रोन-झंझरिय=शोणित झरने लगा। गगन-तन=गगनवत उन्नत शरीरों से। हंस=मराल तुल्य, प्राणात्मा। श्रीर-सर=शरीर रूपी सरोवर। समहर=समर, युद्ध (या युद्ध कर्ताओं ने)। रचिय-रक्तु=रक्त रंजित। वहर=इन्द्रजालिक दृश्य, कृत्रिम हाथ, पैर, सिर आदि कटे हुए बतलाना।

अर्थः—उसी समय शक्तिशाली रामराय बड़गूजर और तत्तारखां में युद्ध छिड़ गया। शस्त्रों की धारें झड़ने लगी ऊँचे शरीरों से खून बहने लगा। खड्ग-प्रहार से हड्डियाँ कट कट कर उड़ने लगी और शरीर रूपी सरोवर को प्राण रूपी हँस छोड़ने लगे। मस्तक रहित धड़ और खड्ग प्रहार से सूंड रहित हाथी दौड़ने लगे। उस स्थान पर उस समय अद्भुत और भयानक मार-काट मच गई। इससे विघ्न स्वरुपा काली भी रक्त रंजित हो गई। कोई वहाँ लड़ रहा था तो कोई गिर रहा था और अनेकों शरीर झूम रहे थे। इससे रणांगण का दृश्य ऐसा हो गया मानों नट ने इन्द्रजाल का खेल रच दिया हो।

भांन दिक्खि धुम्मलौ[1], रेण[2] उड्डिय[3] धर धुंमर ।
चकित[4] देव गंधर्व, ईस चक्रित गुन[5] अंमर ।
भं नयंन सुधि[6] विद्ध, अग्गि उड्डिवि असि टोपं ।
मनु त्रिनेत तियनेत, उघरि दिख्खत त्रय कोपं ॥
घरि एक एक इक[7] मिक्क हुअ, महनरंभ मच्यौ कि विय[8] ।
इक गिरहि परहि तुट्टहि[9] तननि[10], इमि छत्रिय छितिपर सुभिय ॥ ४० ॥

ग्रा० पा० १ पा० दे० । २ से ४ दे० । ५ पा० । ६ दे० । ७ भीं० घ० । ८ से ११ दे० ।

शब्दार्थ:—भान=भानु, सूर्य । रेण=रज, धूलि । ईस=शिव । गन=शिवगण । अंमर=आकाश । भं–नयंन=नेत्रों को हुआ । सुध=सुधि, ज्ञान, (भ्रम) । विद्ध=विधि, तरह । अग्गि=आग । उड्डिवि=उड़ी, झड़ी । असि= खड्ग । टोपं=टोप, शिरस्त्राण । त्रिनेत=तृतीय नैत्र । तिय नेन=तृतीय नेत्र, तीसरा नैत्र । त्रय=तीनों को, त्रिलोकों को । इक मिक्क=एक मेक, गुत्थम गुत्था । महन रंभ=महान रंभ, आरंभ महायुद्ध, महाभारत युद्ध । विय=दूसरा, द्वितीय । तननि=शरीर को, शरीर से । सुभिय=सुशोभित हुए शोभा प्राप्त की ।

अर्थ:—उस समय पृथ्वी पर से धूम्रवर्ण की धूलि के उड़ने से सूर्य धुँधला होगया । आकाश-स्थित देवता, गंधर्व, शंकर तथा शंकर के गण चकित मालूम पड़े । शिर-स्त्राणों पर खड्ग के आघात से आग झड़ने लगी, उसे देख कर ऐसा ज्ञात होता था मानो शिव ने अपना तीसरा नैत्र खोला हो और उससे तीनों लोकों पर–कोप-दृष्टि की हो । वे वीर एक दूसरे से एक घड़ी तक इस प्रकार उलझ गये, जैसे दूसरा महा भारत युद्धही छिड़ गया हो । उस समय कोई गिरता हुआ और कोई कट कर टुकड़े२ होता हुआ दिखाई देता था । ऐसा भयानक युद्ध करते हुए क्षत्रिय-गण युद्ध-स्थल में सुशोभित हो रहे थे ।

दोहा

कन्ह हते घर अप्पने, सुधीन पाई रारि[1] ।
तनक भनक सी सुनत ही, जानि करक्को[2] धारि ॥ ४१ ॥

ग्रा. पा. १, २ दे. ।

शब्दार्थ:—हते=थे, था । जानि=मानों । करक्को=कड़का हो, गर्जना की हो । धारि=धारा, बारिधर, मेघ ।

अर्थः—नरनाह कन्ह, भोलाराय से युद्ध कर सीधा घर (जागीर) चला गया था, इसलिए उसे सारुंडे के युद्ध की सूचना नहीं मिली, किन्तु जब युद्ध छिड़ने की थोड़ी सी बात कान में पड़ी तो वह युद्ध स्थल में आकर ऐसा गर्जा जैसे मेघ घुमड़ कर अचानक गर्ज उठा हों।

कवित्त

धारि धाप धपि कन्ह, आनि अनच्यंत[1] परिय रण।
हवस[2] हसम संघरण[3], जानु दव[4] दंग सुक्क वन॥
आषाढी - डंडूर, तोरि तर-मूल उखारिय।
कै व्याई व्याघिनि सुपत्त, उकति आखेट उछारिय॥
रुट्ठौ कि रिंछु[5] रच्छस[6] दलणि[7], समर सेनु[8] धक्कह धरिय।
नंरवंतु[9] जानि सरवर सुभर, कडि सरोज मत्तौ करिय॥४२॥

ग्रा. पा. १ से ६ दे.।

शब्दार्थः—अनच्यंत=अचानक। हवस हसम=मुस्लिम सेना। दव=दावाग्नि। सुक्क=सुखा दिया या सूखे वन में। डंडूर=वात चक्र। सुपत्त=सोती हुई। उछारिय=उछली; झपटी। रिंछु=जामवंत। नंरवंतु=डूबाते हुए।

अर्थः—कन्ह लम्बी मंजिल पार कर छलांगे मारता हुआ अचानक आकर युद्ध करने लगा, जिससे मुस्लिम-सेना का इस प्रकार संहार हुआ मानो युद्ध-स्थल रुपी अरण्य को दावाग्नि ने जला दिया हो। या आषाढ़ के वात चक्र ने वृक्षों को जड़ से उखाड़ दिया हो अथवा सोती हुई प्रसूता सिंहनी शिकारी द्वारा घिर जाने पर झपट पड़ी हो। या यों कहिये, राक्षसों को नष्ट करने के लिये रिच्छराज जामवंत क्रुद्ध हुआ हो। क्रोध में आकर उसने शत्रु-सेना को भगा दिया (आगे कर दिया)। युद्ध रुपी वारिधि में उसने सरोज रुपी सामन्तों को डूबते हुए जान कर निकालने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

करिय परि सोभंत, रुधिर जल रज्जि सज्जि[1] सर।
केस भेस[2] सैवाल, मकर कर जंघ मीन नर॥
खुप्परि कच्छ सु अच्छ, वसहि[3] तहँ सिद्ध गिद्धवर।
रंभ अंब तहँ भरैं, फुल्लि पोयंन्नि मुख्खनर॥

जलु दैंहि ताहि त्रै रिण[४] छुटैं, मात पित्त[५] गुर मंनि ध्रुअ ।
नन करिय देव दानव दुवनि[६], करत जोइ सामंत भुअ ।। ४३ ।।

ग्रा. पा. १ से ६ दे. ।

शब्दार्थः—करिय=हाथी । पारि=पाज, पाल । केस-भेस=केशों का रूप । सैवाल=काई । खुप्परि=खोपड़ी । कुच्छ=कच्छप । रंभ=रंभा [अप्सरा] । अंत्र तहँ-भरे=वहाँ पानी भरती है, पनिहारिन है । पोयंन्नि=पद्म, कमल । जलु=जल । पित्त=पिता, पित्र । गुर=गुरु । ध्रुअ=ध्रू निश्चय । नन करिय=नहीं किया । दुवनि=दोनों ने । भुअ=भू, पृथ्वी पर ।

अर्थः—जहां पाल-रूप में हाथी, जल-रूप में रुधिर, काई रूप में केश, हाथ और जंघाएँ, मकर और मीन, कच्चप रूप में खोपड़ियाँ, सिद्ध रूप में गिद्ध, पनिहारी रूप में रंभा, और कमल-रूप में मुख शोभित हैं- ऐसे युद्ध-सरोवर में रक्त रूपी जल देने से मातृ-ऋण, पितृ-ऋण और गुरु-ऋण से निश्चय ही मुक्ति मिल जाती है । जैसा सु कृत्य पृथ्वीराज के सामंत करते हैं वैसा देव दानवों ने भी कभी नहीं किया ।

दोहा

पुनित गुनित गुर मंत्र गुर, धुर बद्दल दल गाजि ।
सूर अमर संचरि समर, दिखनराम गज साजि ।। ४४ ।।

शब्दार्थः—पुनित=पुनीत, पवित्र । गुनित=गुना हुआ; पढ़ा हुआ, प्राप्त किया हुआ । धुर=धुरवा, या निश्चय रूपसे । सूर=बहादुर । अमर=देवता । संचरि=संचार कर, चलकर । दिखन=देखने को । गज साजि=हाथी पर सजा हुआ, हाथी पर चढ़ा हुआ ।

अर्थः—गुरु द्वारा प्राप्त किये हुए पवित्र मंत्र को पढ़ कर हाथी पर चढ़े हुए गुरुराम (पुरोहित) ने गर्जना कर मेघ का स्वरूप धारण किया । उसके युद्ध को देखने के लिए बहादुर योद्धा तथा देवता-गण भी युद्ध स्थल में आउपस्थित हुए ।

कवित्त

जंग[१] अग्गि[२] जनु जग्गि, पवन वसि, मंत्र वीर वर ।
धर अंमर धमधमिय, क्रमिय सह सेन हयनि-हर ।
तीर तुपक[३] तरवारि, कुंत[४] किरवान कटारिय ।
दुरहिं[५] ढाल गज-माल, जानु जल जोर अटारिय ।।

हुअ धुंधि[६] धरणि[७] सुभिभ्भन नयन, श्रवन वयंन न संभरहि ।
अच्छरि[८] अकास आनंद मय, विट्ठि[९] विवाननि वर[१०] वरहिं ॥ ४५ ॥

ग्रा० पा० १ से ३ दे० । ४ भीं० दे० । ५ पा० । ६ से १० दे० ।

शब्दार्थः– हयनि-हर=हयधर, अश्वारोही । ढुरहि=छूट पड़े, लुढ़क पड़े । गज-माल=गजपंक्ति । जानु=जनु, मानो । विवाननि=विमान ।

अर्थः—उस समय ऐसा दिखाई पड़ा, मानों पवन के सहारे युद्ध–भूमि में आग प्रज्वलित हो गई हो, अथवा मंत्रोच्चारण के कारण बावन ही वीर प्रगट होगये हो। गुरुराम के आक्रमण से पृथ्वी और आकाश संतप्त हो गया, समस्त अश्वारोही सेना विचलित होगई और विपत्तियों के हाथों से तीर, तुपक, तलवार, बर्छा, कटारी, ढालें आदि छूट पड़ीं। गज पंक्ति इस तरह लुढकती हुई दिखाई देने लगी. मानों जल के प्रवाह से अटारियाँ गिर रही हो। पृथ्वीपर धूँधल के छा जाने से न नैत्रों को कुछ दिखाई देता था, न कानों से ही कोई आवाज सुनाई देती थी। आकाश–स्थित अप्सराऐं भी विमानों में बैठकर आनन्दित हो वरों का वरण कर रही थीं।

दोहा

राम मंत्र इक जंत्र लिखि, कग्गद सर मुख रक्खि ।
खंचि कठिन कंमान कर, मेछि[१] सयन पर णंक्खि[२] ॥ ४६ ॥

ग्रा० पा० १, २ दे० ।

शब्दार्थः—सरमुख=तीर के मुंह पर । मेछि-सेन=मुस्लिम सेना णंक्खि=डाला, छोड़ा ।

अर्थः—गुरुराम ने एक जंत्र पर मंत्र लिखकर, तीर के मुख पर रक्खा और कठिन कमांन को खींच कर मुसलमानी सेना की ओर चलाया।

पुनि[१] विभूति पढि हथ्थधरि, संमुह समर उड़ाइ ।
अचल चित्त जिन जिन तनह, धीरज तिनही छुड़ाइ ॥ ४७ ॥

ग्रा० पा० १ दे० ।

शब्दार्थः—विभूति=मंत्रित छार । संमुह समर=युद्ध के सामने । तनह=तने, के । छुड़ाइ= छुड़ादी ।

अर्थः—उसके बाद हाथ में विभूति ले, मंत्रोच्चारण कर युद्ध के मंत्रित विभूति सामने उड़ाई, जिससे अचल चित्तवाले वीरों का धैर्य भी जाता रहा।

सुनि सहाब – साहाब दीं, है छंडिव गज-तक्कि ।
मिले सामि-कर भर-सुभर, चल चहुवांन सुरूक्कि ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—सहाब- सहाब दीं=शाह शहाबुद्दीन । है=हय, घोड़ा । छंडिव=छोड़कर । गज तक्की= हाथी को देखा, हाथी पर सवार हुआ । मिले= एत्रित हुए । सामि-कर=साम नीति को काम में लेकर । भर-सुभर=श्रेष्ठ वीर ।

अर्थः—जब शहाबुद्दीन ने सुना कि गुरुराम ने मंत्रोपचार किया है तब, वह अपनी सेना को ढाढस बँधाने के लिये घोड़े को छोड़ कर हाथी पर सवार हुआ और साम-नीति को काम में ले अपने विचलित हुए श्रेष्ठ वीरों को एकत्रित किया, जिससे चाहुवान की सेना रुक गई ।

कहै मीर मारूफखाँ, परीभीर सुलितांन[1] ।
तिन तसवी नंरवी करह, जिन कंठनि खुरसांन ॥ ४६ ॥

ग्रा. पा. १ दे. ।

शब्दार्थः—भीर=आपत्ति । तसवी=तसबी, माला । नंखी=डाल दी ।

अर्थः—मीर मारुफ खां हतोत्साह हो बोला-हे बादशाह ! बड़ी आपत्ति का समय है क्योंकि जिनके कंठ में खुरासांन मुल्क बँधा हुआ है, उन्होंने भी (विपत्तियों के संमुख) हाथ से तसबी डाल दी । (खुदा में अविश्वास कर लिया) ।

कवित्त

तोन खग्ग वर खंत, टोप उप्पर चहुवानी ।
जैत खंभ पर रत्त, वीर पावस वुट्ठानी ॥
घरी एक दुव दलनि, खित्त वरखंति खग्ग भर ।
तब प्रथिराज नरयंद, सार वह्यौ अपार कर ॥
अहमद खांन इक अयत पति, मुख चढ्यौ वढ्यौ कहर ।
पक्खर समेति पट्टन सुवर, धर टुट्यौ लग्यौ सुधर ॥ ५० ॥

ग्रा० पा०-विशेषकर देवलिया प्रतिक ।पाठ हैं । प्रकाशित प्रति में भिन्न पाठ हैं ।

शब्दार्थः—तोन=उसने । वरखंन=वर्षाने लगा, चलाने लगा । वुट्ठानी=बरसाई । अयन पति= अयुत पति, दस हजार सेना का स्वामी । पट्टन=पतन हुआ ।

अर्थः— यह कह कर उस ने चाहुवांन (पृथ्वीराज) के शिर स्त्राण पर इस प्रकार खड्ग की वर्षा की, मानो जैन स्तंभ पर रक्त वर्ण की वर्षा हुई हो। दोनों दलों में एक घड़ी तक खड्गाघात होता रहा। उस समय राजा पृथ्वीराज ने भी अपने हाथों से अपार शस्त्र-प्रहार किये। उधर से दस हजार सेना का स्वामी अहमदखां पृथ्वीराज से सामना कर उत्पात वृद्धि करने लगा किन्तु घोड़े सहित उस श्रेष्ठ योद्धा का पतन हो गया और उसका धड़ नष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

पक्खर लक्ख सलक्ख, भयउ खुरसान खान दल।
इक्क[१]-इक्क भुज अमित, सेन रूक्कए अकल खल॥
धार धार वज्जै प्रहार, गुरज वज्जैं तन रज्जै।
मनहु घंट घरियार, पहर[२] पूरण[३] प्रति वज्जै॥
यौं वजिय सार आतुर इतिय, ज्यों डंडूरी बुंद धर।
पंमार सार धारह धनी, ईस अनंदिय माल गर॥५१॥

प्रा. पा. १ से ३ दे.।

शब्दार्थः—पक्खर=पखरेत, अश्वारोही। अकल=अगणित, असंख्य। गुरज=गदा, शस्त्र विशेष। गर = गले में।

अर्थः—उसी समय अकेला अश्वारोही वीर सलख, खुरासांनखां के दल के लिये एक लाख वीरों के समान हो गया और उसकी एक एक भुजा अनेक भुजाओं की भांति काम करने लगी। उसने असंख्य शत्रु-सेना को रोक दिया। उस समय शस्त्र-प्रहार के कारण धार से धार टकरा कर बजने लगी और गदा-प्रहार शत्रु-शरीर पर इस प्रकार ध्वनित होने लगा मानो घड़ी बजाने वाला प्रहर के समाप्त होने पर घड़ी बजा रहा हो। शस्त्रों के आघात इतनी तेजी से होने लगे जैसे प्रबल हवा के कारण वर्षा की बूंदे तेजी से पृथ्वी पर गिर रही हों।

इस तरह उस धार-राजवंशी प्रमार ने अपने शस्त्र-प्रहार से शिव के गले में मुंड माला पहना कर उन्हें प्रसन्न कर दिया।

दोहा

गरल धरण[1] गर माल धरि, टपकति बुंदनि रत्त ।
भिक्ख[2] भयानक भंति तिहि, कंपति दिखि गिरिजत्त ॥ ५२ ॥

ग्रा. पा. १, २ दे. ।

शब्दार्थः—गरल धरण=गरल धरन, शिव । रत्त=रक्त । भिख्ख=भेष, स्वरूप । भंति=भाँति । गिरिजत्त = गिरिजा ।

अर्थः—शिव के गले में धारण की हुई मुंड-माला से रक्त की बूंदे टपक रही थीं, जिससे उनकी वेश-भूषा भयानक हो गई जिसे देखकर गिरिजा कांपने लगी ।

कोइ कमलु कह-कह हसतु[1], कोइक हंकतु[2] हंक ।
मार - मार कोई कहतु[3], मुदित माल सिव अंक ॥ ५३ ॥

ग्रा. पा. १, २, ३ दे. ।

शब्दार्थः—कमलु=शिर । हसतु=हँसना । हंकतु=हंकार । हंक=चल कर, उछल कर । मुदित=प्रसन्न ।

अर्थः—शिव के गले में पड़ी हुई माला से कोई मुंड कहकहा (ठहाका) मारकर हँस रहा था । कोई हुंकार करता हुआ उछल रहा था और कोई मार मार उच्चारण करता हुआ प्रसन्न हो रहा था ।

कवित्त

खुरासान तत्तार, खांन रुस्तम अधिकारिय ।
एक स्वामि रन अग्ग, बांह-ध्ध[1] - वध्धारिय[2] ॥
पुठ्ठि पवन विल्लोच, साहि रक्खे सुरतानं ।
मावसि राह नरिंद, आइ चढ्यौ मुख भानं ॥
मध्यान टरिय निसि मुँदित भय, कमल विमल, छक्किय विछुटि ।
सारस सुरंग कोतरनि-तर, उडि पंखि अंखी निजरि ॥ ५४ ॥

ग्रा. पा. १ पा. । २ का. पा. घ. ।

शब्दार्थः—वाह=बाँहें, हाथ । बध्धारिय=बधाये, बढ़ाये । मावसि=अमावस्या । राह=राहु । नरिन्द=राजा पृथ्वीराज । चढ़यौ-मुख=सामने डटा । भा=भानु (सूर्य तुल्य शहाबुद्दीन) । मुँदित मय=मूँद

गये। विमल=पवित्र। छक्किय=चक्किय, चक्रवाक दंपत्ति। सुरंग=प्रसन्न। कोत रनितर=कोटरों में। अंखी निजरि=आंखों देखे गये।

अर्थः—शाह के अधिकारी खुरासानखाँ, तत्तारखाँ और रुस्तमखाँ एक एक व्यक्ति ही थे फिर भी युद्ध के समय अपने स्वामी के सम्मुख दोनों हाथों को युद्ध के लिये बढ़ाया। नौका के पीछे की हवा जिस प्रकार उसको आगे बढ़ाने में सहायक होती है, उसी प्रकार बादशाह ने सहायता के लिये विलोची वीरों को पीछे रखा। उसी समय सूर्य के समान शाह को ग्रसने के लिये अमावस्या के राहु के समान पृथ्वीराज उसके सामने आ खड़ा हुआ। उस समय मध्याह्न समाप्त होगया था और रात्रि होने पर पवित्र कमल खिले हुए बन्द हो गये थे। चक्रवाक-दम्पत्ति का विछोह होगया और सारस प्रसन्न होगये। (रात्रि में सारस-पक्षी तालाबों के पास आनन्द पूर्वक बोलने लगे) पक्षी-गण घोंसलों की ओर उड़ कर जाते हुए दिखाई देने लगे।

साटक

मोदं-मोद हसंत कंमुद-कला, चक्कीय चक्की चितं।
चंदं[1] चंद-वढंत-तत्त कलयो, भानं कला छीनयं[2]॥
मत्तं संमथ[3]-झान[4]-वानति-वरं-अंगुष्ट ते उच्छहं।
सा सतपत्रय तत्र काइर मुखं, वीरा-रसं सूरयं॥५५॥

ग्रा० पा० १, ३, ४ दे०। २ भीं०।

शब्दार्थः—मोदं-मोद=अत्यधिक प्रसन्नता। हसंत=हँसने लगी, खिलपड़ी। कंमुद=कुमोदिनी। चक्कीय=चकई। चक्की=चकित। चंदं=कविचंद। तत्त=उस समय, तहाँ। कलयो=कला। भानं=भानु-सूर्य। मतं=मतवाले, उनमत्त (युवक)। झांनं=ज्ञान, ज्ञात। उच्छं= उच्छेदित, वेधे गये। सा=वे। सत पत्रय=सतपत्र, शतपत्र, कमल।

अर्थः—अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त कर कुमोदिनी खिल पड़ी। उस की कला को देख कर चकवी का चित्त चकित हो गया (पति-विछोह के डर से चौक पड़ी)। कवि कहता है-कि उस समय चन्द्रमाँ की कला में वृद्धि हो रही थी और सूर्य की प्रभा-क्षीण हो चुकी थी। उन्मत्त युवकों को ऐसा ज्ञान हो रहा था-मानों कामदेव अपने उत्तम बाण को अंगुली के सहारे अंगुष्ट से बल पूर्वक खीच कर छोड़ता

हुआ बेध रहा हो। जिस प्रकार उस समय कलख मुरझा रहे थे। उसी प्रकार कायरों के मुख भी मुरझा गये थे किन्तु जो वीर रस के उपासक थे वे रात्रि में भी युद्ध-स्थल के बीच सूर्य के समान प्रतीत हो रहे थे।

दोहा

जहँ मसंद गोरिय गिरत, लटत सुभट चहुवान।
कैं भारत्थ कैं लंक विनु, यह न भंति कहु आन ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ:—मसंद=मसन दधारी वीर। लटन=निपटारा कर दिया।

अर्थ:—जिस स्थान पर गौरी शाह के मसनद धारी वीर धराशायी हुए थे वहीं पर सामन्तों ने उनका निपटारा कर दिया था (समाप्त कर दिया था)। यह तरीका या तो महाभारत के युद्ध में या लंका के रावण युद्ध में ही हुआ था। ऐसा अन्य कहीं पर नहीं देखा गया (अर्थात् ऐसा युद्ध अन्य कहीं नहीं हुआ)।

कवित्त

चलन मेर नन चलहि, चलन सब सत्थ हथ्थ चलि।
चलन भांन नन चलहिं, चित्त नन चलै मोह खुलि ॥
अश्व चलन नन चलहि, चलन रहियो असु-असुमय।
सो ओपम कविचंद, कहिय आनंद हत्त सय ॥
निं-धनिय नारि, अकुला सत्तिय, अग्यानी जी-मुहई।
इम अश्व खान तत्तार को, सार-धार बर तुट्टई ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ—चलन=चलनेपर, डिगने पर। नन=नहीं। चलहिं=डिगा, हटता। चलन=आगे बढ़ता। चलन=गति। भान=भानु, सूर्य। मोह-खुलि=ममता से खिला, ममता से प्रसन्न। चलन-रहियो=चलने लगा, मृत्यु को प्राप्त करने लगा। असु=प्राण। असुमय=प्राणों के समान। ओपम=उपमा, तुलना। हत्त-सय=उसके मरने पर। नि-धनिय=बिना पति के। अकुला=अकुलीन। जीं-मुट्टई=जी-मुटाव; अभिमान।

अर्थ:—सुमेरु पर्वत के चलने की सम्भावना की जा सकती है किन्तु तत्तारखां के घोड़े की युद्ध स्थल से हटने की सम्भावना नहीं की जा सकती। युद्ध में एक साथ जिधर वीरों के कर-प्रहार (शस्त्राघात) होते थे, उधर ही वह बढ़ जाता था।

सूर्य की गति (सूर्य-रथ की) भी उसके बराबर नहीं थी। ममता से प्रसन्न (चंचल) मन भी उसके समान नहीं चल पाता था और अन्य चंचल घोड़े भी उसे नहीं पहुँच पाते थे (समता नहीं कर सकते थे)। ऐसे उस सवार के प्राणों से भी प्रिय घोड़े के प्राण युद्ध-भूमि से चले गये। घोड़े के मारे जाने से उस पर मुग्ध होकर, कवि चन्द तुलना कर कहता है कि जिस प्रकार पति हंता स्त्री सती होते समय, अकुलीन स्त्री-प्रेम के कारण और अज्ञानी मन-मुटाव (अभिमान) वश, हठ करके मारा जाता है; उसी तरह तत्तारखां का घोड़ा हठ पूर्वक आगे बढ़ता हुआ श्रेष्ठ शस्त्र की धार से मारा गया।

दोहा

भै भग्गा सुरतान दल, लै लग्गा चहुवान।
ताप तेज तुंगी भिरण, प्रथीराज फिरि आन ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ:—भै-भग्गा=भय पाकर, भागने लगा। लै=लय, लीन, अनुरक्त। लग्गा=लग गया, पीछा किया। ताप=संतप्त। तेज-तुंगी=तेज घोड़े, तेज अश्वारोही। भिरन=भिड़ने पर। आन=दुहाई।

अर्थ:—तत्तार के घोड़े के मारे जाने से शाही दल भयभीत होकर भागने लगा। यह देखकर युद्ध में अनुरक्त हुए चहुवान (पृथ्वीराज) ने उसका पीछा किया। तेज घोड़े पर चढ़े हुए उसके सेनिकों के भिड़ जाने पर विपक्षी संतप्त हो गये और युद्ध स्थल में पृथ्वीराज की दुहाई फिरने लगी।

कवित्त

हय हथ्थी[1] किननंकि, वाजि[2] झननं कि[3] झनक्कहि[4]।
दंति दंत उड़ि[5] परहि खंड खंड़ेनि[6] ठनक्कहि ॥
घट घट्टह[7] लगि संगि[8], फुट्टि[9] पित्ती[10] पितवानं[11]।
जनु खंचै बलराम, हथ्थ हथिनापुर जानं ॥
खंचै कि द्रोन हनवंत कपि, (कै) कंन्ह खंचि गोवर्धनह।
कर करिणि[12] संगि[13] सलखह धरत[14], यौं सुभ्भैं हथ्थी रणह[15] ॥ ५९ ॥

ग्रा० पा० १ से ८ दे०। ९ पा०। १० से १५ दे०।

शब्दार्थः—किननंकि=आवाज । वाजि=बाजे, वाद्य । खंड=खंडित करते हुए । खंडेनि=खांडे, खड्ग । ठनक्कहि=आवाज, खन खनाहट । घट=घट्टह=प्रत्येक अंग पर । लगि—संगि=सांग (लोह कुंत) का प्रहार । पित्ति=पंक्ति (गज पंक्ति) । पितवानं=पंक्ति वाले (गजारोही) । हथ्थ=हाथों से । हथिनापुर=हस्तिनापुर । हनवंत=हनुमान । कन्ह=कृष्ण । करिग्गि=हाथियों ।

अर्थः—हाथी, घोड़ों की आवाज और वाद्यों की झनझनाहट होने लगी । हाथियों के दाँत टुकड़े २ होकर गिरने लगे । गजपंक्ति के प्रत्येक अंगों पर (सलख जैन द्वारा) साँग (लोहकुंत) के दिये गये वार से गजारोहियों सहित गज बिंध गये और साँग के साथ ही वे हाथी इस प्रकार खींच लिये गये, मानों हलायुद्ध (बलराम) ने अपने हाथों के बल पर हल द्वारा हस्तिनापुर को खींच लिया, अथवा हनुमान ने द्रोणाचल को या कृष्ण ने गोवर्धन को उठा लिया हो, इस प्रकार उसके हाथ में साँग ग्रहण करने और उसके द्वारा खींचे जाने पर युद्ध स्थल में हाथियों की ऐसी ही छटा (दृश्य) दिखाई दी ।

खिज्जि राज पृथिराज, गहिय करिवान चंपि कर ।
रोस मुट्ठि[1] निरोधरिय, दंति[2] वाही सुकुंभथर ॥
धार मुत्ति आहुरिय, पंति लग्गिय रसुवीरं[3] ।
रोल चंपि खग्गु[4] चुवे, धरह[5] धाराहर रगीरं[6] ॥
कै दुतिय चन्द वद्दल विचह, पंति लग्गि उडगन रहिय ।
धर धुकत मंत इमि पिक्खियहि, इन्द्र वज्र पर्वत ढहिय ॥ ६० ॥

ग्रा० पा० १ पा० । २ दे० । ३ भी० पा० । ४, ५, ६ दे० ।

शब्दार्थः—करिवान=कृपाण, तलवार । निब्बरिय=निपट गई (कुम्भस्थल को विद्रीर्ण कर दिया) कुंभ—थर=कुंभस्थल । मुत्ति=मोती । आहुरिय=अड़ गई, लग गई । पंति=पंक्ति, लड़ी, धार । रसु=रस । रोस—चंपि=क्रोध पूर्वक दबाई हुई । खग्गु=खड्ग । धारा हर=धाराधर, खड्ग और वारिधर, (बादल) । रगीरं=नीर । दुतिय=द्वितीया का, दूज का । धर धुकत=पृथ्वी पर झुकता हुआ, धराशाई होता हुआ । मंत=मतवाला हाथी ।

अर्थः—क्रोध में आकर राजा पृथ्वीराज ने तलवार को दृढ़ता से पकड़ा । क्रोध पूर्वक मुष्टिका में दबी हुई खड्ग ने हाथी के कुम्भस्थल पर पड़कर उसका निपटारा (विदीर्ण) कर दिया । उस खड्ग से बहती हुई (बरसती हुई) शोणित धारा के साथ २ विदीर्ण

गज कुम्भ से झरती हुई मुक्ताओं की लड़ी से ऐसा दृश्य दिखाई दिया मानों खड्ग से वीर-रस चू रहा हो या क्रोध पूर्वक पकड़ी हुई वह खड्ग, वारिधर (मेघ) रूप हो पृथ्वी पर जल वृष्टि कर रही हो, अथवा द्वितीया का चन्द्रमा बादल में प्रवेश कर रहा हो और उससे नक्षत्र माला लगी (चिपटी) हुई हो। उस समय मतवाले हाथी के धराशायी होने पर ऐसा ज्ञात हुआ मानो इन्द्र ने वज्रास्त्र चला कर पर्वत को ढहा दिया हो।

दोहा

जिन लग्गे तिनि[1] ब्रंन[2] क्रिय, धर धर धुक्किय धार।
पहर इक्क पर हथ्थरैं, सिर सिर वुट्ठिय[3] सार ॥ ६१ ॥
प्रा. पा. १, २, ३ दे।

शब्दार्थः—ब्रंनकिय=वर्णन किया, कहा। धर-धर=धड़ाधड़। धुक्किय=पड़ी। धार=शस्त्र धारा। पर हथ्थरैं=दूसरे के हाथों से। वुट्ठिय=बरसा।

अर्थः—जिन पर शस्त्राघात हुआ था उन वीरों ने वर्णन किया (कहा) कि एक दूसरे के हाथों से प्रत्येक व्यक्ति के मुंड पर लोहास्त्र की धार एक प्रहर तक धड़ाधड़ बरसती रही।

सस्त्र अस्त्र सिर-सिर परहि, डरहि न जनुकि मदंग।
भीर स्वामी संकट लखत, परत कि दीप पतंग ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—जनुकि=जनु, मानों। मदंग=मृदंग। भीर=भीड़।

अर्थः—प्रत्येक वीर के सिर पर शस्त्राघात होते हुए भी मृदंग के समान निर्भय (आघात सहते) थे और उस युद्ध की भीड़ में स्वामी पर आपत्ति दिखाई देते ही जिस प्रकार दीपक पर पतंग गिरते हैं उसी प्रकार वे शत्रुओं की ओर झपट पड़ते थे।

गाथा—

पतत पतंग रूपं, धूपं धरा जानि विषमाई[1]।
हरए[2] स्वामि भय चित्तं, हितं वियन जम्म मरनाई ॥ ६३ ॥
प्रा० पा० १ पा०। २ दे।

शब्दार्थः—धूपंधरा=खड्गधारी । त्रिषमाई=विषम, भयानक । वियन=अन्य नहीं ।

अर्थः—वे खड्गधारी वीर भयानक रूप से युद्ध में पतंगे के समान झपट पड़ते थे । उनके मन में जन्म-मरण का हेतु, अन्य न होकर, केवल स्वामी के चित्त से भय को हटाने का ही था (युद्ध शंका दूर करना ही था) ।

ठाम ठाम स्यंधू[१] वजहि, वजहि सार, मुख मार ।
तन तर वर जहँ तहँ ढरहि, जे जुझार मुच्छार ॥ ६४ ॥

ग्रा. पा. १ दे. ।

शब्दार्थः—ठाम २=स्थान २ पर । स्यंधू=सिन्धु राग । जुझार=योद्धा । मुच्छार=मुछाले ।

अर्थः—स्थान २ पर सिन्धु राग में रणवाद्य वजते थे और शस्त्रों के आघात की ध्वनि के साथ २ युद्ध में वीरों के मुख से मार २ शब्द उच्चारण होता था । उन में से जो मूँछ वाले वीर थे, उनके शरीर वृक्ष के समान कट २ कर यत्र तत्र गिर पड़ते थे ।

स्वामि सलख लखिवय[१] लरत, भंजि मीर चहुँआंन ।
हुँकार्यौ[२] नां जांहि मिछ, तो सम को पहुआंन ॥ ६५ ॥

ग्रा. पा. १, २ दे. ।

शब्दार्थः—हुंकारयौ=हुंकार की, ललकारा, उत्तेजित किया । मिछ=म्लेच्छ । पहु=राजा, राजवंशी । आंन = अन्य ।

अर्थः—उस समय जब पृथ्वीराज ने वीर सलख को लड़ता हुआ देखा तब पृथ्वीराज ने भी मीरों का नाश करते हुए सलख को ललकारा कि तेरे समान राजवंशी अन्य कौन हो सकता है ? देखना ? सामने से मुसलमान (शाह) जाने न पावे ।

कवित्त

तूं अब्बूधर[१] लज्ज[२], रज्ज[३] रखवन दिल्ली धर ।
तूं चालुक्क चंपनो, भार भंजन गुज्जर धर ॥
अडर अकल अज्जान-पान, भंजन मिच्छाइन[४] ।
अपु[५] मुख आयौ साहि, ताहि साहिन[६] इच्छाइन ॥

प्रथिराज प्रवुद्धिय धार – धर, हंकि साह उप्पर परिय ।
जाने कि अग्गि उद्यान वन, वंस थूर दव प्रज्जरिय ॥ ६६ ॥
ग्रा. पा. १ से ५ दे. । ६ पा. घ. ।

शब्दार्थ:—रज्ज=राज, राज्य । चंपनो=दबाने वाला । अकल=अज्ञात, अलक्ष । अपु मुख=तेरे सामने । इच्छाइन=इच्छा युक्त । अज्जान पान=लम्बे हाथ । मिच्छाइन=म्लेच्छ । वंस थूर=बांसों के झुंड । दव=दावाग्नि ।

अर्थ:—पृथ्वीराज ने कहा– हे सलख ! तू आबू–धरा की लाज स्वरुप, दिल्ली राज्य का रक्षक, गुर्जर धरा के भार स्वरुपी चालुक्यों को दबाने वाला और उन्हें नष्ट करने वाला तथा निर्भय (दीखने में सीधा किन्तु बांका वीर) है । तेरी लम्बी भुजायें यवनों को नष्ट करने वाली हैं । हे वीर ! देख, तेरे सामने बादशाह पड़ गया (आ-गया) है । उसे पकड़ने का इच्छुक होकर भी क्यों नहीं पकड़ता ? इस प्रकार पृथ्वीराज के सचेत करने पर उस खड्गधारी वीर सलख ने घोड़े को आगे बढ़ाया और शाह के ऊपर इस तरह झपटा (आक्रमण किया) मानों घने जंगल में बाँसों के झुंड में आग प्रज्वलित हो गई हो ।

फुनि प्रथिराज नर्यंद[1], करिय उप्पर जैतह रण[2] ।
भरणि[3] भार भंभरिय, हंकि हुंकरिय स्यंघ जन ॥
मद गज ढहनकि तरणि[4], तरणि[5] लुप्पन जनु जल धर ।
अकह कथ्थ करिवार, कालु[6] कुप्पिय जीवनि पर ॥
सोमेस सुअन विरचंत रण, चट पट घट भट्टह लुटहि ।
इय अजुत वत्त पिख्खत रणह, भुँजत भार अंन कि फुटहि ॥ ६७ ॥
ग्रा. पा. १ से ६ दे. ।

शब्दार्थ:—फुनि=पुनि, पुनः । नर्यंद=नरेन्द्र । करिय-उप्पर=सहायता की, साथ दिया । जैतह=सलख वंशज जैत्र प्रमार । भरणि=भिड़ने वाले विपक्षी । भंभरिय=भांमना, हाहाकार करना । स्यंघ=सिंघ, सिंह । तरणि=नौका । तरणि=सूर्य । अकह कथ्थ=अकथक, अवर्णनीय ख्याति । कालु=काल, यम । विरचंत=विरचने पर, छेड़ने पर, क्रोध करने पर, बिफुरने पर । चटपट=शीघ्रता पूर्वक । घट=शरीर । भट्टह= वीर । लुट्टहि=लोटने लगे, तड फाड़ाने लगे । इय=यह । अजुत=अयुक्ति, संगत । भुँजत=भूँजे जाकर, भूने जाकर, तपाये जाकर । अंन=अंन्न-कण । फुटहि=फूटते, फूलते ।

अर्थः—तब राजा पृथ्वीराज ने भी युद्ध में सलख-जैत्र का साथ दिया जिससे युद्ध करने वाले विपत्ती वीरों पर दबाव पड़ने लगा और कायर हाहाकार करने लग गये। उस समय पृथ्वीराज इस प्रकार बढ़ा- जिस प्रकार हुंकार करता हुआ सिंह, नौकाओं को डुबाने के लिए मस्त हाथी, सूर्य को लुप्त करने के लिये बादल या प्राणी मात्र पर वार करता हुआ यमराज कुपित हुआ हो। वह सोमेश्वर का पुत्र (पृथ्वीराज) युद्ध में क्रोधित हुआ तब विपत्ती वीरों के शरीर पृथ्वी पर शीघ्रता पूर्वक इस प्रकार छट-पटाने (तड़फने) लगे और युद्ध स्थल में बात ऐसी अयुक्ति संगत (दयनीय) दिखाई दी मानों भाड़ में भूने (तपाये) हुए अन्न के दाणें फोड़े (फुलाये) जा रहे हों।

भरणि[१] भीर खल भलति[२], रेण[३] चल मलति पमन करि।
लुथ्थि[४] लुथ्थी[५] पर परति, अर्क नहिं सकत गवन करि॥
श्रोन छिंछि उच्छरति[६], सुभट सुम्भित जनु किं सुव।
गजनि ढाल कं ढुरति, मार संघरत कमध भुव॥
विरचंत विफुरि सोमेस सुअ, सहस करन वर कर बढ़िय।
वन-व्यूंद पियन वडवानल कि, कृस्न जानु संमुह कढिय॥ ६८॥

ग्रा० पा० १ से ३, ६, ७ दे०। ४, ५, दे० पा०।

शब्दार्थः—भरणि भीर=विपत्ती वीर समूह। खल भलतिं=खलबली मच गई। रेण=रेणु, रजकण। चलमलति=चलकर मिल गई, चल पड़ी, छा गई। पमन-करि=पमन से करके, पमंग से करके, घोड़े के कारण, घोड़े के चलने से। छिंछि=धारा, पिचकारी। उच्छरति=उछलती, छूटती। किंसुव=पलास। गजनि ढाल=गज-पंक्ति। कं=कहीं पर, कू पृथ्वी। ढरति=लुढकती। मार=मार करते हुए, वार करते हुए। कमध=कमंध, मुंड विहीन रुण्ड। विरचंत=छेड़ा जाकर। सहस-करन=सूर्य। कर=किरणे। बढिय=फैलाई। वन-व्यूंद=वृंदावन। संमुह-कढिय=संमुख, प्रत्यत्त हुए।

अर्थः—जब सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज उन्मत्त हुआ, तब युद्ध-भूमि में विपत्ती-वीर-समूह में खल बली मच गई। घोड़ों की तीव्र गति से रजकण उड़ने लगे। लोथों पर लोथें पड़ गई; जिससे सूर्य की गति रुक गई। लहू की पिचकारियों के चलने से बहादुर रक्त रंजित होगये, जिससे वे कुसुमित-पलाश के समान दिखाई देने लगे। गज-पंक्ति धरा पर लुड़कने लगी और मस्तक विहीन धड़ वार करते हुए

संहार करने लगे। उस समय पृथ्वीराज ऐसा मालूम पड़ रहा था मानो सूर्य ने प्रखर किरणे फैलाई हो या वृन्दावन में रहते हुए श्री कृष्ण वाड़वाग्नि का पान करने के लिये सम्मुख खड़े हुए हों।

दोहा

हालाहल हुअ पिथ्थ जहँ, झाला हल झंकाल।
उतरण कुप्पौ सलख लखि, काला हल कंकाल ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ:—पिथ्थ=पृथ्वीराज। झालाहल=ज्वाला। झंकाल=झोंक देने वाली। उतरण=उतर पड़ा, युद्ध करने लगा।

अर्थ:—इस प्रकार इधर पृथ्वीराज हलाहल या भयंकर ज्वाला के समान दिखाई देता था, उधर वीर सलख को क्रोधित हो कर आक्रमण करते हुए देख देहधारियों में कोलाहल मच गया।

मिच्छ[1]-सयन[2] बहुझरि परिय, कै विड्डुरि गय डग्गि।
फिर्‌यौ मुक्ख सुलतान को, हथ्थि छंडि हय मग्गि[3] ॥ ७० ॥

ग्रा० पा० १ पा०। २ दे०। ३ का०।

शब्दार्थ:—मिच्छ-सयन=मुसलमानी सेना। झरि परिय=कट पड़ी। विड्डुरि=भयभीत होकर। गय डग्गि=हट गये। मग्गि=मांगा।

अर्थ:—इस प्रकार पृथ्वीराज और सलख के आक्रमण से बहुत सी मुस्लिम सेना कट गई। कितने ही भयभीत होकर वहाँ से हट गये और बादशाह का मुख भी युद्धस्थल से फिर गया। बादशाह ने हाथी छोड़ घोड़ा मांगा (भागने का इरादा किया)।

कवित्त

चामर छत्र रखत्त, तरवत लुट्टै सब कोई।
जस लभ्यौ पामार, सेन – सागर मथि जोई ॥
रतन कीत्ति संग्रही, रज्ज अब्बू तन धोई।
हय-गय दल-बल मथति, कित्ति फल लभ्भिय सोई ॥

वंध्यौ सु चंपि खुरसान पति, रति वाहै चालुक जितिय ।
जै जै सु देव जंपत जसह, तवसु चन्द कित्ती सजिय ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ —रखत्त=रसद, खाद्य वस्तुएँ । जस=यश । लभ्यौं=प्राप्त किया । कित्ति=कीर्ति । रज्ज=रज, कालिमा । अव्बू=आबू (या उस आबू राजवंशी ने) । सोई=वैसा ही । रति वाहै=रात को छापा मार कर । सजिय=सँवारी, सुन्दर ढंग से वर्णन की ।

अर्थः—सब ने मिल कर शाही–छत्र, रसद–सामान (खाद्यवस्तुएँ) और तख्त लूट लिया । वीर प्रमार ने इस युद्ध में जो यश प्राप्त किया है; वह सिन्धु के समान शत्रु–सेना के मंथन से ही प्राप्त हुआ है । उसने रत्न के समान कीर्ति का संग्रह किया और आबू पर लगी हुई रज–रूपी कालिमा को धो दिया । पृथ्वीराज ने भी शक्ति द्वारा मंथन किये गये सैन्य–सिन्धु से हाथी, घोड़े और उन्हीं के समान कीर्ति–रूपी फल प्राप्त किया ।

इस प्रकार बादशाह को दबाकर बंधन में ले लिया और साथ ही रात में सामंतों द्वारा चालुक्यों पर हमला करवा कर विजय प्राप्त की । इन दोनों विजयों से देवता गण पृथ्वीराज की जय २ कार के साथ यश–गान करने लगे और तभी मैंने (कवि चन्द ने) इस कीर्ति का सुन्दर वर्णन किया ।

दोहा

जीति लियो[1] जय–पत्त रिन[2], बर चतुरंगी मोरि ।
पक्खर लक्ख सलक्ख हुअ, गौरी ढाल ढंढोरि ॥ ७२ ॥

ग्रा. पा. १, २, घ. ।

शब्दार्थः–जय-पत्त=जय पत्र । रिन=रण, युद्ध में । मोरि=मोड़ कर । पक्खर=पखरेत, अश्वारोही । लक्ख=लक्ष । ढाल=ढाल स्वरूपी (अंग रक्षक) । ढंढोरि=खोज कर, टटोल कर, परख कर ।

अर्थः—इस प्रकार युद्ध में शत्रु की श्रेष्ठ चतुरंगिनी सेना को पराजित कर पृथ्वीराज ने जय–पत्र प्राप्त किया । इस युद्ध में शाह गौरी के ढाल–स्वरूपी वीरों को परखता हुआ अकेला अश्वारोही वीर सलख ही लक्ष वीरों के तुल्य बन गया ।

कवित्त

जीति लियौ जै - पत्त, चारु चतुरंग सु मोरी ।
इक्क लक्ख पक्खर प्रमान, ढाल गौरी ढंढोरी ॥
खा-निसुरति[१] परि खेत[२], खेत गौरी उप्पारी ।
रिन ढुंढ्यौ चहुआंन, साह झोरी करि डारी ॥
वज्जे सु बीर बज्जन नृपति, बहु लुट्टे सुरतान गै ।
निस्सान खांन खुरसान पति, चामर छत्र रखत्त मै[३] ॥७३॥

ग्रा. पा. १ भीं. । २ पा. घ. । ३ का. ।

शब्दार्थः—जै पत्त=जय पत्र । प्रमान=अनुमानतः । खेत=रण क्षेत्र । उप्पारी=उठाया गया । रिन-ढुंढ्यौ=युद्ध क्षेत्र की खोज की । झोरी=झोली । बीर-बज्जन=वीर वाद्य । खुरसान-पति=खुरासानियों का स्वामी, मुसलमानों का स्वामी । रखत्त-मै=छोड़ने पड़े ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने चतुरंगिनी सेना को भगाकर जय-पत्र प्राप्त किया । उसने गौरीशाह के लगभग एक लक्ष अंग रक्षक अश्वारोहियों को परख लिया । समराङ्गण में ढूंढने पर निसुरतखां धराशाई हुआ मिला और शहाबुद्दीन को भी घायल अवस्था में उठा कर झोली में डाल कर लाया गया । फिर राजा पृथ्वीराज ने वीर-वाद्य बजवाये और शाही सेना को लूटा, मुसलमानों के स्वामी (शहाबुद्दीन) को उस युद्ध में नक्कारे चमर-छत्रादि राज चिन्ह वहीं छोड़ने पड़े ।

कहि जित्यौ चहुवान, गरुव गोरी दलु[१] भंज्यौ ।
कहि जित्यौ चहुवान, ईस सीसह धरि[२] रंज्यौ ॥
कहि जित्यौ चहुवान, चंद नागौर सुनंगे ।
कहि जित्यौ चहुवान, सत्त सामंत अभंगे ॥
जित्यौ सु सोम-नंदनु[३] कहिय, सहिय सद सुरलोक हुअ ।
पामार परख्ख सलक्खनह, धरणि काज धर कंप धुअ ॥७४॥

ग्रा. पा. १ से ३ दे. ।

शब्दार्थः—कहि=कहा गया । ईस=शिव । सुनंगे=सुना गया । सद्द=विजय नाद । ध्रुअ=ध्रुव, निश्चय ।

अर्थः—लोग कहने लगे- पृथ्वीराज की विजय हुई और शाह की भारी सेना नष्ट हो गई। शिव मुण्ड माला धारण कर प्रसन्न हुए। चंद के कारण नागौर के युद्ध में भी उसकी विजय हुई। पृथ्वीराज के १०० सामन्त सही-सलामत रह पाये और उसका विजय-नाद स्वर्ग में हुआ। यह युद्ध सलख प्रमार की परीक्षा के लिये और अपने भू-भाग के लिए हुआ। उस समय (उसके आंतक के कारण) पृथ्वी भी कंपायमान हो गई।

छत्र धारि सुविहान, खत्रधारी[1] लौहानौ।
पत्र धारि जुग्गिनिय[2], कुक्कि लग्गिय आसानौ॥
लोहधार[3] पामार, सलख भंज्यौ मिच्छानौ[4]।
ज्यौं गुवाल गो डंड, सेनु हंक्यौ सुलितानौ[5]॥
जित्यौ जुवान चहुवान रिण[6], मुरिग बयर बलि वंडबल।
धर गवरि नाह नंचिय रहसि, गह्यौ साहि[7] भंज्यौ सु खल॥ ७५॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति। २ पा० दे०। ३ से ७ दे०।

शब्दार्थः—सुविहान=सुबहान, धर्म का धारण करने वाला शाह। खत्र धारी=क्षात्र धर्म धारक। आसानो=आसमान। गो=गायें। डंड=डंडा, लकड़ी। मुरिग=मुड़ गये। बयर=वैरी, शत्रु। गवरि नाह=शिव। रहसि=रहस्य, या रस पूर्वक।

अर्थः—इस युद्ध में शाही-छत्र को छीन कर क्षात्र-धर्म धारी लोहाने ने धारण कर लिया और किलकारियों से आकाश को गुंजायमान करती हुई योगिनियों ने भी शोणित-पात्र गृहण किया। सलख प्रमार ने लोहा (शस्त्र) गृहण कर मुसलमानी दल को नष्ट प्रायः कर दिया। जिस तरह ग्वाल डंडे के बल पर गायों को आगे कर लेता है उसी तरह बादशाह की सेना को भी उसने आगे कर लिया (भगा दिया)। युवक पृथ्वीराज चौहान ने रण में विजय प्राप्त की और उस (बलवान पृथ्वीराज) के बल से शत्रु लौट गये। पृथ्वीपर इस रहस्य पूर्ण युद्ध-घटना को देख कर शिव ने ताण्डव नृत्य किया और उसी क्षण मार काट के साथ बादशाह को पकड़ लिया गया।

साहि डंड डंडियो, मेहु[1] मंड्यौ नागौरी।
भट्टिरा भटनैरि[2], राव सिंघा तन तौरी॥

जाराणी[3] जगहथ्थ, मंडि मंडोवर पासह ।
जै जै जै प्रथिराज, देव सद्देति अयासह[4] ।।
आरज्ज लज्ज सुलतान गहि[5], फिरि मिलानु द्यंनो[6] पुरां ।
वज्जंत जेत वज्जा विविध, पृथीराज पत्तो घरां ।। ७६ ।।

ग्रा० पा० १ से ३, ५, ६, दे० । ४ का० पा० ।

शब्दार्थः—मेहु=मेह, मेघ, लोह वृष्टि । भटनैरी=भटनेर, राज वंशज । जाराणी=जालानी, जालोन । सद्दे=कहा । अयासह=आकाश से । आरज्ज-लज्ज=आर्यों की लज्जा स्वरूपी । मिलानु=कूंच । द्यन्नौ=दिया, किया । पुरां=पुरकी ओर, राजधानी की ओर । जेत-वज्जा=विजय वाद्य । पत्तो=पहुँचा ।

अर्थः—शाह पकड़ा जाकर दंडित किया गया । नागोर-युद्ध में लोह वृष्टि हुई । भटनैर राजवंशी भट्टी-राज सिंहा मारा गया, जालोन और मंड़ोवर के निकट प्रमार ने जागृत होकर चालुक्यों से लोहा लिया । इन सभी विजयों का श्रेय पृथ्वीराज को है । देवताओं ने आकाश से उसका जय जय कार किया । आर्यों की लज्जा को रखने वाले वीर-(पृथ्वीराज) ने शाह को पकड़ कर पुनः अपनी राजधानी की ओर कूंच किया तथा विविध वाद्य बजवाता हुआ अपने घर पहुँचा ।

दोहा

सुकि सरिसु[1] सुक उच्चर्यौ, प्रेम सहित आनंद ।
चालुक्कां सोभत्ति सध्यौ, सारोंडे[2] मेंछंद ।। ७७ ।।

ग्रा. पा. १, पा. दे. । २, दे. ।

शब्दार्थः—सुकी=स्वकीय (चन्द अपनी स्त्री से), । सुक=स्वकीय (अनुकूल नायक कवि चन्द) ।

अर्थ—मैंने (चन्द ने) अपनी स्त्री से प्रसन्न होकर प्रेम पूर्वक कहा, हे प्रिये ! चालुक्यों से सोजत्री में और बादशाह से सारुंड़े में, उपर्युक्त कथनानुसार युद्ध हुआ ।



धन कथा

(समय २२)

दोहा

खट्टू आखेटक रमैं, महा मुरस्थल[1] थांन ।
नागौरे गौरी ग्रहन, मति त्रिमल परधान ।। १ ।।

ग्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—महा=महान । मुरस्थल=मरु भूमि, मारवाड़ । त्रिमल=निर्मल, पवित्र । परधान=प्रधान ।

अर्थः—(कवि कहता है कि) महान् मरु भूमि में स्थित खट्टू नामक स्थान पर पृथ्वीराज का शिकार खेलना एवं मुख्य मन्त्री कयमास की पवित्र बुद्धि का परिचय देना इस समय में वर्णन किया जाता है ।

कवित्त

मंत्र जोग कयमास, मंत्र प्रथिराज सु पुच्छन ।
तू मन्त्री मंत्रग, मंत्र जानहि सुभ लच्छन ।।
सांम दांम[1] अरू भेद, डंड निरनै करि लक्खै ।
बहु मंत्रह उप्पाइ, राज मंत्रह करि रक्खै ।।
मंत्रह सुमंत्र मन अनुसरै, (अरु) मंत्र भेद जानै सकल ।
अद्भुत चरित्त पाखान लिखि, वंचि न किन आवै अकल ।। २ ।।

ग्रा० पा० १ का० भीं० ।

शब्दार्थः—मंत्र जोग=योग्य मन्त्री । मंत्रंग=मंत्रणा के अंग । डंड=दंड । निरनै=निर्णय । मंत्रह-उप्पाइ=प्रयत्न करके । पाखान=पाषाण । वंचिन किन आवै=क्यों नहीं पढ़ता, क्यों नहीं स्पष्ट करता । अकल=अज्ञात, अस्पष्ट ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने कयमास की प्रशंसा करके उससे पूछा कि हे मन्त्री-कयमास ! तुम योग्य मन्त्री हो । मंत्रणा और उसके अंगों के शुभ लक्षणों को जानते हो । तुमने साम, दाम दण्ड और भेद को निर्णय करके देखा है । अपने प्रयत्नों से ही राज मंत्रणा को (मर्यादा को) तुमने स्थापित कर रक्खी है । तुम अपनी

श्रेष्ठ मंत्रणा से ही सबके मन को वश में कर लेते हो और मंत्रणा के सब भेदों को जानते हो। अतः किसी की बुद्धि में नहीं आने लायक, इस पाषाण में लिखे हुए अद्भुत चरित्र (लेख) को तुम पढ़ कर क्यों नहीं स्पष्ट करते।

तू मंत्री कैमास, मंत्र पय पय उप्पावहि।
तूं मंत्री मंत्रंग, मंत्र मंत्रीन दिखावहि॥
तूं मंत्री सामंत, स्वाम ध्रम्मं विच्चारै।
धर समूह संग्रहै, मंत्र करि अरिन विडारै॥
तुम जोग मंत्र, मंत्री न कोइ, सह बत्तन उच्चारकै।
संसार सार मंत्रह प्रबल, कहो सुमंत्र[1] विचारिकै॥ ३॥

ग्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थ—पय पय=पद पद पर, कदम कदम पर। ध्रम्मं=धर्म। विडारै=विदारने वाला। जोग=योग्य, लायक।

अर्थ—हे मंत्री कैमास! तुम पद पद पर मंत्रणा उत्पन्न (सुझाने) वाले, मंत्रणा और उसके अंगों को अन्य मंत्रीगणों को दिखाने वाले, सामन्त होकर स्वामी धर्म को सोचने वाले, भूभाग की वृद्धि करने वाले और मंत्रणा द्वारा शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले हो। तुम्हारे समान न तो किसी अन्य की मंत्रणा होती है और न तुम्हारे समान ही सब बातों को कहने वाला दूसरा कोई मंत्री ही है। संसार के तत्व और प्रबलता का कारण मंत्रणा ही है। इसीलिए (इस पाषाण लिपि को पढ़ कर, इसमें जो कुछ लिखा है उस पर) विचार कर श्रेष्ठ मंत्रणा कह सुनाओ।

सलिल सुबर पाखांन, मध्य पूतली अचंभं।
सलिल मत्त तनजा विसाल, उररि उप्पर-रिस[1] रंभं॥
ता उप्पर बिय नाम, प्रगट आकार उचारै।
भूलि भूलि भ्रम लोइ, मुद्ध मनसा करि डारै॥
वंचौ सु वीर कैमास तुम, बियौ बंच नाही बनिय।
भूतह भविक्ख अरुव्रत्त मन, इह अपुब्ब कथ मैं सुनिय॥ ४॥

ग्रा० पा० १ सर्व प्रति।

शब्दार्थः—सलील=जल । सलील=जल देव, वरुण । तनजा=तनुजा । उररि-उप्पर-रिस=ऊपर उठ रही है । रंभ=रम्भा । विय-नाम=बीजक के अंक (विवरण) । लोइ=लोग । मुद्ध मनसा=मन मुग्ध । वियो=अन्य । भविक्ख=भविष्य । व्रत्तमन=वर्तमान । इह=यह । अपुव्व=अपूर्व । कथ=कथा ।

अर्थः—जल में एक श्रेष्ठ एवं आश्चर्य दायक पाषाण पुत्तलिका है। वह स्वयं जलदेव (वरुण) की मस्त पुत्री (लक्ष्मी) के समान विशाल है। वह जल से उठी हुई (निकली हुई) रम्भा के समान सुन्दर प्रतीत होती है। उसके निकटस्थ स्थित दीवाल पर अंकित विवरण भी इसी कथन का द्योतक है। उक्त विवरण को पढ़ कर लोग भ्रमित हो जाते हैं, तब वह पुत्तलिका भी उनको मन से मुग्ध कर लेती है। हे कैमास ! इसे केवल तुम ही पढ़ सकते हो—अन्य नहीं पढ़ सकता । इसके बारे में भूत, भविष्य और वर्तमान में अनेक अपूर्व कथाएं कही जाती हैं (जिन्हें तुम ही स्पष्ट कर सकते हो) ।

दोहा

सिर कट्टै धन संग्रहै, सिर सट्टै[1] धन जाइ।
सो मंत्री कैमास तूं, मंत्रहि करै उपाइ ॥ ५ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ—सट्टै=सटारहने पर । धन जाइ=धन प्राप्त नहीं होता [हाथ से धन चला जाता] । मंत्रहि=मंत्रणा से । उपाइ=उपाय, प्रयत्न ।

अर्थः—उस पर लिखा है कि सिर कटने से धन की प्राप्ति हो सकती है और सिर के बचे रहने पर धन हाथ से चला जाता है (प्राप्ति नहीं होती)। अतः हे मंत्री कयमास ! तुमही अपनी मंत्रणा द्वारा उस धन की प्राप्ति का प्रयत्न कर सकते हो।

कवित्त

श्रवन राज दृग रत्त, श्रवन जानहि परि मान न।
वेद दिष्ट देखै सु भेद, अभ्भेद सु ग्यान न॥
पसुअ नयन आचरहि, धनह परिमांन सु लक्खइ।
विपति लोइ संसार, सार दृग इक्कय दिक्खइ॥

मंत्रीन दिष्ट मंत्रं तनी, मंत्र भेद अनुसर स—रति ।
त्रिमांन बीर जांने सकल, मूढ ग्यांन प्रौढह सुमति ।। ६ ।।

शब्दार्थः—श्रवन=श्रवण । राज=राजाओं के । श्रवन=सुनते । रत्त=लीन । परिमान न=प्रमाण नहीं मानते [सत्यासत्य नहीं सोचते] । वेद दिष्ट देखे सु=वेद तुल्य मानते । धनह=वित्त, धन । विपति=दुखी । लोई=लोग । सरति=उसीसे रति, लीन । त्रिमान=निर्माण ।

अर्थः—कैमास कहने लगा कि राजाओं के कर्ण ही दृग होते हैं और वे उसी में लीन रहते हैं (सुनी हुई बात पर विश्वास कर लेते हैं) वे केवल सुन जानते हैं किन्तु उसका प्रमाण (सत्यासत्य का विचार) नहीं जानते । वे सुनी हुई बातों को अपनी दृष्टि से वेद के समान देखते हैं । (वेद वाक्य मानते हैं) । उनको भेदाभेद का ज्ञान नहीं होता, उनके नैत्र पशुओं के नैत्रों के समान आचरण करने वाले होते हैं (जिस प्रकार पशुओं के नैत्र केवल आहार खोज पाते हैं) । उसी प्रकार राजाओं के नैत्र धन के परिणाम को ही देख पाते हैं (लक्ष्मी का ही दर्शन कर पाते हैं) । लेकिन दुःखी पुरुष संसार के तत्व को केवल एक दृष्टि (सत्यता पूर्वक) से ही देखता है । मंत्रियों की दृष्टि मंत्रणा की ओर ही होती है और वे मंत्रणा के भेद (संधि विग्रह) का प्रचार करते और उसी में लीन रहते हैं । वीरों की मति प्रौढ़ होते हुए भी वे मूढ़ ज्ञान का ही (उद्दण्डता का ही) निर्माण कर पाते हैं ।

तिष्ण तरंगनि पर्‌यौ[१], मंत्र तारक हरि सुद्धरि ।
बदरि अंध कल्हार[२], राज दंडह लिय उद्धरि ।।
सार खंख जक्कजीव, नयन त्रिघ्वात घात जुरि ।
अखिल अखेटक भुल्लि, डुल्लि जव चित्त मित्त परि ।।
भुल्लहि सु दान त्रिम्मान गति, मरन मन्न[३] नहँ लिक्खवै ।
मंत्रीन-मंत्र भुल्लै तबै, विधि विचार-विधि दिक्खवै ।। ७ ।।

ग्रा० पा० १, पा० का० भीं० । २. ३ पा० ।

शब्दार्थः—तिष्ण=तृष्णा । सुद्धरि=उसे धरा रक्खा, नहीं रटता । बदरि=बद्दुरि, बड्डई, बढ़ई । कल्हार=कुल्हार, कुल्हाड़ा । उद्धरि=उसने धर लिया, उसने ग्रहण कर लिया । सार=सारना, उठाना । खंख=खाख, क्षार । जक्क=विश्राम, सन्तोष । नय-न=न्याय नहीं, न्याय का अभाव । त्रिध्वात-घात=

बुरेवार। जुरि=जुटता, झगड़ता। अखिल-अखेटक=संसार की शिकार में लगा हुआ। डुल्लि=डुल जाता। लिखवै=लखता, देखता। विधि=ब्रह्मा। विचार-विधि=विचार का तरीका।

अर्थः—तृष्णा की तरंगों में पड़ा हुआ प्राणी संसार सागर से पार कर देने वाले हरि-नाम के मंत्र का स्मरण नहीं करता है। जिस प्रकार अंधे बढ़ई (सूत्रधार) के हाथ में कुल्हाड़ा दे दिया गया हो उसी प्रकार वह (राजा) राज दण्ड को गृहण करता है और जब उसकी चिता की ज्वार उठाली जाती है तब ही उसको संतोष होता है अन्यथा वहाँ तक तो उसके पास न्याय नहीं फटकता। वह बुरी तरह वार करता हुआ अन्य से भूझता (झगड़ता) ही रहता है और संसार की शिकार में लगा हुआ स्वयं बेसुध हो जाता है। उसका चित्त तृष्णा से तभी हटता है। जब वह मृत्यु शय्या पर सो जाता है। उस समय तक वह दान और निर्माता की गति की स्मृति नहीं करता और न मन से मृत्यु को ही वह देख सकता है। मंत्रियों और उनकी सुमंत्रणाओं को भी वह ध्यान में नहीं लाता। वह तो अपने विचारों की पूर्ति के तरीके (प्रयत्न) में स्वयं ब्रह्मा बना हुआ दिखाई देता है।

दोहा

हरखि राज प्रथिराज कहि, मति के वास दे नाम।
मति के वास के मास तुम, सकल सुमति के धाम॥ ८॥

शब्दार्थः—मति के-वास=बुद्धि के आगार, ब्रह्मा। मति-के-वास=(कैमास शब्द का विकृत रूप) बुद्धि के घर।

अर्थः—इन उपदेश वाक्यों को सुन कर राजा पृथ्वीराज ने प्रसन्न होकर कहा हे कैमास? बुद्धि के आगार ब्रह्मा ने तुम्हें मति-के-वास (बुद्धि के घर) नाम वास्तव में विचार पूर्वक ही दिया है; क्योंकि तुम सब प्रकार से सुबुद्धि के आगार हो।

जामंत्रह प्रव्वत[1] नृपति, साँई अंग सु काज[2]।
समर सिंघ रावर मिले, तब धन कढ्ढिय[3] राज॥ ९॥

प्रा० पा० १ का०। २, ३ पा०।

शब्दार्थः—जामंत्रह=जामात, जँवाई। प्रव्वत–नृपति=पहाड़ी प्रदेश का स्वामी। सांई–अंग=हे स्वामिन आपका अंगस्वरूही। कढ्ढिय=निकाले।

अर्थः— तब कैमास ने पुनः कहा-हे स्वामिन् ! श्रेष्ठ कार्यों में आपके अंगस्वरूपी जामात्र रावल समर केशरी, जो पहाड़ी प्रदेश (मेवाड़) का स्वामी है, उसके सम्मिलित होने पर ही धन निकालना अच्छा है। (यही मेरी सम्मति है)।

मानि मंत्र चहुआंन इह, बोलिय चंद पुँडीर।
समर सिंघ रावल दिसा, दै. कग्गद मति धीर ॥ १० ॥

शब्दार्थः—दिसा=को, ओर। कग्गद=कागज़।

अर्थः—इस सम्मति को मानकर पृथ्वीराज ने चन्द पुँडीर को बुलाया और कहा-हे मति धीर ! तुम इस पत्र को लेजाकर रावल समर केशरी को देना।

दस हैवर वर खग्ग[1] इक, अरु दिय सिंगिनि पांनि।
कहि जुहार विधि जंपियौ, नृप पुच्छिय कुसलांनि ॥ ११ ॥

[1] ग्रा० पा० १ पा०, घ०।

शब्दार्थः—हैबर=हयवर, श्रेष्ठ, अश्व। खग्गवर=श्रेष्ठ तलवार। सिंगिनी=सिंगी। पांनि=पाणी, हाथ। जंपियौ=कहियो। कुसलांनि=कुशलता।

अर्थः—उसने रावलजी की भेंट के लिये दस घोड़े, एक श्रेष्ठ खड्ग और एक सिंगी (शृंगी) दी और कहा कि यथा विधि जुहार (अभिवादन) कह कर निवेदन करना कि राजा ने आपकी कुशल पूछी है।

कवित्त

लै कग्गद पृथिराज, बीर पुंडीर संपन्नौ।
सुबर जोर साहाब, मंडी गोरी घर थन्नौ।
वर भोरा भीमंग, चंपि चालुक्क विलग्गा।
नाहर राउ नरिंद, सेन, लक्खां असि दग्गा॥
आखंड द्रव्य दिल्ली धरां, सुनि चहूँ द्रिगपाल सजि।
कढ्ढियै मंत्र मंत्री अपुन, वर विभूति लच्छी सुरजि॥ १२ ॥

शब्दार्थः—संपन्नो=पहुंचा। सुवर-जोर=सरजोर, बलवान। विलग्गा=अलग ही। दग्गा=दागी, नष्ट की। आखंड=अखंड।

अर्थः—पृथ्वीराज का पत्र लेकर वीर सामंत चंद पुंडीर रावल (मेवाड़ेश्वर) के पास पहुँचा। उसमें लिखा था कि एक ओर बलवान शहाबुद्दीन गोरी ने हिन्दुओं के भू-भाग पर चौकी स्थापित की है। दूसरी ओर श्रेष्ठ भोला भीम और उसके साथी चालुक्य अलग दबा रहे हैं और साथ ही नाहर राय से बिगाड़ (झगड़ा) भी हो गया है जिसके फलस्वरूप तलवार से अपार सेना नष्ट हो ही चुकी है। अतः अब अपार द्रव्य प्राप्ति होने की सुनकर दिल्ली के भूभाग पर बड़े २ शत्रु वीर सजकर चढाई करेंगे। इसलिए आप यहाँ आकर मंत्रियों व अपनी सम्मति से उस श्रेष्ठ विभूति स्वरूप लक्ष्मी को निकालें।

समर सिंघ रावर नरिंद, समर-साहस[1] भर जित्तान।
अरु जोगिंद नरिंद, चित्त जोगिन्द स मत्तान।
कमल माल सो भत्ति, चंद लिल्लाट बीय दुति।
नयन रंग[2] आभंग[3], जोग पारंभ सिंभ मति।
मुंजीब ढाल जिप्पन[4] विरद, नाग मुखी सिल्लार बनि।
सा चित्र कोट ओटह नृपति, महन रंभ मंडहि सु मनि ॥१३॥

ग्रा० पा० १, सर्वप्रति। २, ३, ४ पा०।

शब्दार्थः—रावर-नरिंद=रावलों के राजा। स मत्तन=बुद्धि सहित, बुद्धि युक्त। लिल्लाट=ललाट। बीय=बीज, दूज, द्वितीया। दुति=द्युति। रंग=अरुण। आभंग=अभंग। पारंभ=प्रारंभ। सिंभ=शंभु। मुजीव=मूँजियों, मुंज प्रमार या उसके वंशजों। ढाल=ढुलका देने वाले, नाश कर्ता। जिप्पन=जिनका प्रण, जीतने वाले। सिल्लार=सेली। बनी=बने हुए, सजेहुए सुशोभित। चित्रकोट=चित्तौड़। ओटह=आड़, अर्गला। सु=श्रेष्ठ। मनि=मानिये, स्वीकार कीजिये।

अर्थः—हे रावलों के राजा समर-साहस, (समर-विक्रम) आप वीरों परों पर विजय पाने वाले और योगीन्द्र उपाधिधारी नरेश्वर हैं। चित्त और बुद्धि से आप साक्षात शिव स्वरूप हैं क्योंकि उनके (गले में) मुण्डमाल शोभित है। तो आपके (गले में) कमल माल शोभित है, उनके ललाट पर बाल चन्द्रमा की प्रभा सुशोभित है तो आपका ललाट द्वितीया के चन्द्रमा की द्युति को लिये हुए है उनके और आपके नेत्रों में अभंग रंग (अरुणिमा) छाया हुआ है। योगारंभ के समय उनके समान ही आपकी मति है। उनका प्रण मूँजियों (नीचों) का नाश करना

है तो आप मुंज (मालवेश प्रमार मुंज) या मुंज वंशजों पर विजय प्राप्त कर उनके नाश करता हैं। ऐसे आपके विरुद हैं। शिव और आप दोनों नाग मुखी और सैली से सुशोभित रहते हैं। आप और वे दोनों चित्तौड़ के अर्गला स्वरूप हैं (दोनों का भेद भाव बाह्य है; वास्तव में आप दोनों एक ही हैं। अस्तु-हम महान् आरंभ (धन निकालने के बहाने युद्ध) का मडन कर (छेड़) रहे हैं। इसीलिये इसे श्रेष्ठ मानकर इसमें सम्मिलित होना स्वीकार कीजिये।

वंचि वीर कग्गद नृपति, हसिय चित्त बर बंक।
कछु लज्जा सगपन सुहित, रख पुंडीराँ संक ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—बांचं=बांचकर, पढ़कर। कग्गद=कागद, पत्र। बर—बंक=श्रेष्ठ बांका। हसिय=हँसा।

अर्थः—चन्द पुंडीर के चित्तौड़ पहुँचने पर वीर नृपति समर विक्रम ने उस पत्र को पढ़ा और वह चित्त में पुंडीर की शंका रखता हुआ पृथ्वीराज से अपने सम्बन्ध और प्रेमका विचार करके कुछ कुछ लज्जाशील होकर मन ही मन हँसा।

कवित्त

हँसि जोगिन्द नरिन्द, वत्त सेंमुख उच्चारी।
एक ग्रध्ध संमूह, मंस लद्धौ पल हारी॥
श्रब्ब ग्रिद्ध विंटयो, मंस चंप्पौ जैकारिय।
तब सु मन्त उप्पनौ, मंस लद्धौ गहि ड़ारिय।
भुगवैति कोइ गड्डैति कोइ, कोइक पढ कोइ लब्भवै।
दैवान दुसंकह दैव गति, जो त्रिम्मान सू त्रिम्मवै ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—सेंमुख=सम्मुख। श्रब्ब=सब। त्रिंटयौ=घेरलिया। मन्त=मतवाला। उप्पनौ=उत्पन्न हुआ। भुगवैति=भोगता है। गड्डैति=गाड़ता है। दुसंकह=दुःसह। सुत्रिम्मवै=वैसाही होता हैं।

अर्थः—उस योगीन्द्र नरेन्द्र ने हँसकर पुंडीर के सम्मुख यह बात कही एक पल भक्षी गृद्ध समूह ने मांस प्राप्त किया, और सबने उस मांस पिंड को घेर लिया। उनमें से जो सब पर विजय करने वाला (बलवान) था, उसने उस मांस के लोथ को दबा लिया (प्राप्त किया)। जब उससे भी कोई बलवान पैदा हुआ तब उसने प्राप्त किये हुए उस मांस को छोड़ दिया (अपने अधिकार में कर लिया)। सत्य है इसी तरह कोई लक्ष्मी को भोगता है; कोई गाड़ता है, कोई पढ़ता है-और कोई प्राप्त

करता है। दैवगति देवताओं के लिए भी दुःस्सह है। ईश्वर ने जैसा रच दिया है, वैसा ही होता है।

सुनिरू वत्त पुंडीर, बत्त जंपी सु तत्त जोइ।
तुम जोगिन्द्र नरिंद्र, मत्त जंपौ सु तत्त होइ॥
सुअ सोमेस नरिंद, वत्त सगपन मिस पुच्छिय।
तुम लहुआना गरुअ, मुक्ख कड्ढौ किम उच्छिय॥
सामन्तनाथ सामन्त बल, मेर ठेलि दच्छिन धरहि।
प्रथीराज आज राजिन्द गुर, इन्द फनिन्द न सों डरहिं॥ १६॥

शब्दार्थः—तत्त=तत्व। जोइ=देखकर, समझ कर। तत्त–होइ=तत्व युक्त हो। लहुआना=लोह के। गरुअ=गर्व में। इन्द=इन्द्र। फनिन्द=सर्पों के स्वामी, शेषनाग।

अर्थः—समर विक्रम की बात को सुन कर और उसके तत्व को समझ कर चन्द पुंडीर बोला-हे योगीन्द्र नरेश्वर! आप इस समय अन्य बातों को जाने दीजिये। और केवल तत्व युक्त मंत्रणा ही कहिये। राजा सोमेश्वर के पुत्र ने आपसे सम्बन्ध होने के कारण ही यह बात पूछी है। आप लोह (शस्त्र) के अभिमान में आकर अपने मुँह से ऐसी तुच्छ बात क्यों निकालते हैं? वह सामन्तों का स्वामी पृथ्वीराज सामन्तों के बल पर सुमेरु पर्वत को धकेल कर दक्षिण दिशा में रख सकता है। हे राजेन्द्र गुरु! वह इस समय ऐसा वीर है जो इन्द्र और नागों के स्वामी (शेषनाग) से भी नहीं डरता है।

अगौइ रावर समर, करन साहस चहुवानिय।
हालाहल अग प्रचँड, सम्भ सौभै गरबानिय॥
अग्गौं अग्गि जुगिन्द, अग्गि लग्गै विरुझानिय।
अग्गै के हरि निडर, दड्ढ चम्पै पर-वानिय॥
अगोव काल सुनियै दु सहु, सह पिच्छै फिरि ठड्डयौ।
चित्रंग राव रावर समर, सम्भरिवै दिसि चड्ढयौ॥ १७॥

शब्दार्थः—अगौइ=पहले से ही। करन=करने वाला। हालाहल=हलाहल। अग=आगे से, पहले से ही। प्रचंड=तेज। सम्भ=शम्भु, शिव। गरबानिय=ग्रीवा। अग्गौं=पहले से ही। अग्गि=आग, क्रोधी। जुगिन्द=योगीन्द्र, शिव। अग्गि लग्गै=आग प्रज्ज्वलित, तृतीय नेत्र से आग प्रगट।

विरुझानिय=उलझ पड़ने पर। अग्गे=पहले से हो। केहरि=केशरी, सिंह। दड्ढ-चम्पे=दाढ चबाता हो। पर बानिय=अन्य द्वारा ललकारने पर। अग्गैव-पहले से ही। दुसहु=दुस्सह। सह=सहगामी होकर। पिच्छै=पीछे होने वाली बात, होनहार, भविष्य। फिरि=फिर। ठड्ढयौ=ठाढा खड़ा। चित्रंगराव=चित्तौड़ेश्वर। सम्भरि वै=सम्भरेश्वर। दिसि=ओर, मदत पर।

अर्थ:—हे चित्तौड़ेश्वर रावल समर (समर विक्रम)। चहुवान राजा (पृथ्वीराज) पहले से ही पराक्रमी है फिर आपके संपर्क से वह इस प्रकार बलशाली हो जायगा जैसे पहले से ही तेज ज़हर हो और फिर वह शङ्कर की ग्रीवा में शोभित हो गया हो। अथवा योगेश्वर शिव पहले से ही आग स्वरूपी (क्रोधी) हैं फिर उनसे उलझ पड़ने पर उनके तृतीय नैत्र से आग सुलग पड़ी हो अथवा पहले से ही सिंह निड़र होता है फिर वह अन्य के ललकारने पर दाढे चबाने लग जाता है अथवा पहले ही काल (यम) दुस्सह होता है फिर बाद में होने वाली बात (भविष्य) उसकी सह गामिनी होकर खड़ी हो गई हो। अतः आप संभरी नरेश (पृथ्वीराज) की मदद पर चढ़ कर सहायता कीजिये।

रिंग्यौ सबर नरिंद, सज्जि है गै चतुरंगिय।
है गै दल चतुरंग, जम्पि माहाभर जंगिय॥
महामत्त गज्जंत, खूंदि खुर धर आहुट्टिय।
सेस सहस फन फट्टि, सकिलि सलमलि सा हुट्टिय॥
फट्यौ सु सेस फन चंद कहि, तब फूंकर करि जग्गयौ।
फन किन्न उद्ध कुंडल करिय, तब सु सेस बल भग्गयौ॥ १८॥

शब्दार्थ—रिंग्यौ=खानगी की। सबर=सबल, सर विक्रम, विक्रम केशरी। है=हय, घोड़े। गै=गय, हाथी। माहाभर=बड़े २ वीर। जंगिय=युद्ध वीर, रणदक्ष। मत्त=मतवाले, हाथी। गज्जंत=गर्जना करने लगे। खूंदि=कुचली गई खुर=अश्व टाप। आहुट्टिय=आघात। सकिलि=सिकुड़ कर। सलमलि=हिलता हुआ। सा=वह। हुंटिय=बट खाने लगा। बलभग्गयौ=सैन्य बल को बेकार किया सैन्य बल को बरदाश्त कर सका।

अर्थ:—यह सुनकर राजा विक्रम (विक्रम केशरी रावल) ने अपने हाथी घोड़े और चतुरंगिनी सेना को सजाया, अपने बड़े २ रण दक्ष वीरों को साथ चलने की आज्ञा दी बड़े २ मतवाले हाथी गर्जना करने लगे और घोड़ों की टापों के आघात से

पृथ्वी कुचली जाने लगी। शेष नाग के हजार फन फटने लगे। (विशेष कष्ट पहुँचा) जिससे वह सिकुड़कर हिलता हुआ बँट खाने लगा। कवि चंद कहता है कि जब उसके सहस्र फन फटने लगे। तब वह फुंकार करके सावधान हुआ और कुंडलाकृति होकर उसने अपने फन को उठाया तब ही वह (शेष नाग) सैन्य बल को सहन कर सका।

जाइ सपत्तो समर, चंपि ढिल्ली धरवानं।
चहुवाना रै हथ्थ, दूत धन्नो फुरमानं॥
असम विषम साहसी, रत्त माया अनु-रत्तं।
मनौ कमल जल पत्त, मध्धि, अरु न्यारो नित्तं।
छिप्पै न कलँक, कट्टन कलँक, राज बंध बंध्यौ नहीं।
दस कोसे कोस ढिल्लीय तैं, राज मुक्कि राजन तहीं॥ १६॥

शब्दार्थः—जाइ–सपत्ते=जा पहुंचा। चंपि=दबाये जानेपर। ढिल्ली-धर-वानं=दिल्ली के भूभाग वाला, दिल्लीश्वर। चहुवानां-रै=चहुवांन के पृथ्वीराज के। हत्थ=हाथ। धन्नौ=दिया। फुरमानं=फरमान, परवाना, खलीता। असम=जिसके कोई समान नहीं। विषम–साहसी=अतुल्य पराक्रमी। रत्त=लीन। अनु=अन, नहीं। जल–पत्त=पानी में रहता हुआ। मध्धि=मध्य में, अंतर में। न्यारो=अलग। नित्तं=नित्य, हमेशा। छिप्पै–न कलँक=जो कलँक छिप नहीं पाता। कट्टन–कलँक=कलंक नाशक। राज-बंध=राज्य बंधन। दस-कोस-कोस=ग्यारह कोस। राज मुक्की=राजा (रावल) को छोड़कर। तहीं=उसे, वहाँ।

अर्थः—दिल्लीश्वर को धन निकालने के कारण शत्रुओं द्वारा दबाये जाने की सूचना पाकर रावल समर वहाँ जा पहुँचा। उसके आने की सूचना लेकर दूत दिल्ली पहुँचा, और पृथ्वीराज के हाथ में पत्र देकर कहने लगा–उस (रावल समर विक्रम) के समान विषम साहसी (अतुल्य पराक्रमी) दूसरा कोई भी नहीं है। वह माया में लीन होता हुआ भी इस प्रकार विरक्त है, जैसे कमल पानी में रहता हुआ भी हमेंशा अलग प्रतीत होता है (जल से उसका सम्पर्क नहीं होता, डूबता नहीं)। जो कलंक छिपाये छिप नहीं सकता (प्रकाश में आगया है) उसे वह नष्ट कर देने वाला है। राज्य के बन्धन में होते हुए भी वह निर्बन्ध है। हे राजन्! ऐसे राजा (रावल समर विक्रम) को दिल्ली से ग्यारह कोस दूर छोड़कर मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

राज्यंदै दरवार, सुबर आनंद उपन्नौ[1] ।
पुव्व पाप कट्टनह, समर जित समर सपन्नौ ॥
सुबर वीर जोगिन्द, चंद बिरदावलि दिन्नौ ।
दिल्ली ते अधकोस, राज अग्गै ह्वै ल्यंन्नौ[2] ॥
डंमरिय सेन आडंब रह, आडम्बर चहुवांन मिलि[3] ।
जंगल अहूठ जब मिलिय दुव, सुखिन्न अडंबर बहुत[4] इलि ॥ २० ॥

ग्रा० पा० १ से ४ दे० ।

शब्दार्थः—राज्यं दै=दरबार=राज सभा । सुबर=उसी समय । उपन्नौ=पैदा हुआ, छा गया । पुव्व=पूर्व । कट्टनह=काटने वाला, नाश करने वाला, मेटने वाला । समर=जित=युद्ध विजयी । सपन्नौ=आया, आ रहा है । सुबर=सबल, सह विक्रम, विक्रम नरेश । विरदावलि—दिन्नौ=विरदाया । राजा—राज पृथ्वीराज । अग्गै ल्है=सामने जाकर, प्रस्थाग करके । ल्यन्नौ=लिया, लाया । डंमरिय=उमड़ पड़ी । जंगल=जंगल नरेश, पृथ्वीराज । आहुट्ट=आहड़ा नरेश । दुव=दोनों । सुक्खि=सुख । अडम्बर=आडम्बर । इलि=पृथ्वी ।

अर्थः—जिस समय दूत द्वारा पूर्वकृत पापों का नाश करने वाले युद्ध विजयी रावल समर के आने की सूचना मिली, उसी समय राज सभा में हर्ष छा गया । राजा (पृथ्वीराज) ने दिल्ली से आध कोस प्रस्थान करके उसकी (रावल की) अगवानी की । कविचन्द ने उसे विक्रम नरेश और वीर योगीन्द्र कह कर विरुदा या । उधर से रावल की सेना आडम्बर युक्त उमड़ पड़ी और इधर से चाहुवान की सेना भी आडम्बर युक्त आगे बढ़ कर उससे मिली । जब जंगलेश्वर (पृथ्वीराज) और आहड़ा नरेश्वर (रावल) दोनों परस्पर मिले तब प्रृथ्वी पर सुख के आडम्बर ने बहुत विस्तार पाया (सुख का विस्तार होगया) ।

अनंग पाल ग्रह जो[1] विसाल, तत्थ[2] उत्तरिय प्रिथापति ।
विधि अनेक भोजन सु अन्न[3], राज उद्दार[4] सार भति ॥
उभय दिवस बित्तिय प्रमान[5], सव्व सामंत सु पुच्छिय ।
साम दाम[6] अरु भेद, कंक भजि कट्टय[7] लच्छिय ॥
कं कहन वंक तुम अनुसरहु, समर स्यंघ[8] रावल सुमन ।
उप्पाइ मिटै सो मंत करि, सुबर वीर कट्टौ सु धन ॥ २१ ॥

ग्रा० पा० १ से ५ दे० । ६ भीं० । ७, ८, दे० ।

शब्दार्थः—तथ्थ=तहां। उत्तरिय=ठहराये गये। प्रिथा-पति=पृथा कुमारी के पति। सार=साल, शाला, ग्रह। भति=माँति, योग्य। प्रमान=सोच, विचार। सव्व=सब। कंक-भजि=शत्रु कंकालों को नष्ट कर, दण्ड देकर, युद्ध करके। कं=क्या। कहन=कहें, निवेदन करें। समर स्यंघ=समर केशरी। उप्पाइ मिटै=प्रयत्न न करना पड़े। मंत=मंत्रणा। सुव्र=सबल, विक्रम।

अर्थः—अनंगपाल के विशाल महल में पृथाकुमारी के पति रावल समर को ठहराया गया, और उदार राजा पृथ्वीराज के गृह योग्य श्रेष्ठ अन्न से बने हुए विविध व्यंजन बनवाकर उनका स्वागत किया। आतिथ्य सत्कार करते हुए दो दिन बीतने पर सब सामंत रावलजी से कहने लगे, शत्रुओं के शरीर को दण्ड द्वारा नष्ट करके हमें किसी भी प्रकार साम दाम या भेद द्वारा लक्ष्मी को प्राप्त करना चाहिये। हे श्रेष्ठ मनवाले रावल समर केशरी? हम आपसे क्या निवेदन करें? आप स्वयं बांकेपन (वीरता) का अनुसरण करते हैं। हे वीर विक्रम नरेश! ऐसी मंत्रणा दीजिये जिससे बिना ही प्रयत्न किये ही धन निकाला जा सके।

मति सु चारु कयमास, द्रव्य कढ्ढन उच्चारिय।
सेन मुख्ख सुरतांन, राज दिज्जै प्रथुभारिय॥
चालुक्कां चंपै न सीम, रावल मुख दिज्जै।
अप्प अप्प मुख रक्खि, कढ्ढि लच्छी बर लिज्जै॥
आलाभ जुच्छ पय लाभ तुछ, सु कछु काम किज्जै नही।
गोइन्दराज खीची सुमति, मिलि विभूति कढ्ढ़ै मही[1] ॥ २२॥

ग्रा० पा० १ भीं०।

शब्दार्थः—मुख=मुहाना। रक्खि=रक्षा करे। लच्छी=लक्ष्मी, द्रव्य। आलाम=अलाभ, हानि। जुच्छ=जुत्थ, युत्थ। पय=पै, के लिये। तुछ=तुच्छ। सु=ऐसा। विभूति=लक्ष्मी, द्रव्य।

अर्थः—चन्द पुण्डीर ने कहा-श्रेष्ठ बुद्धि सम्पन्न मन्त्री कैमास द्रव्य निकालने में लगे। विशिष्ट बलवान राजा पृथ्वीराज स्वयं शाही सेना के मुहाने पर डट जाँय और मुहाना रोकने के लिए चालुक्यों की सीमा पर रावलजी को नियुक्त किया जाय, ताकि वे (चालुक्य) सीमा को न दबा सकें। इस प्रकार सभी अपने २ मुहानों पर रह कर रक्षा करते रहें, तभी द्रव्य निकाला जाय, ऐसा काम नहीं किया जाय जिससे

तुच्छ लाभ के लिए व्यर्थ में सेना की विशेष हानि हो। कैमास मन्त्री, गोविन्दराय (चौहान) और अचलेश खींची की सहायता से ही द्रव्य निकाले।

तब चित्रंग नरिंद, चंद पुंडीर बरज्जिय।
तुव कुमंत बलमंत, मंत जांनौ न सरज्जिय॥
ते मंत्री मंत्रंग, निगम आगम सब बुझ्झै।
अंगन कै छुट्टंत, घरह सुझ्झै मन बुझ्झै॥
अरि अरिन मुख्ख रुक्कहि सुभर, तब सु द्रव्य मिलि कढ्ढियै।
सुरतांन भीर भंजै समर, सु मन अंत करि चढ्ढियै॥ २३ ॥

शब्दार्थ—चित्रंग–नरिंद = चित्तौड़ेश्वर। बरज्जिय = बरजा, रोका, निषेध किया, टोंका। कुमंत = कुमंत्रणा। बलमंत = बलवंत, बलवान। मंत=मंत्रणा। सरज्जिय=पैदा करना, देना। बुझ्झै= जानता, समझता। अरि=अड़कर, डटकर। सुभर=सामंत। भीर=भीड़, सैन्य समूह। मन–मंत=मन का मतवाला। करि=करके।

अर्थ:—तब चित्तौड़ेश्वर ने चंद पुण्डीर को टोंका और कहा—तुम बलवान होते हुए भी ऐसी कुमंत्रणा देते हो। अतः यह प्रतीत होता है कि तुम अच्छी मंत्रणा नहीं दे सकते। वास्तव में मंत्री वही है, जो मंत्रणा के सभी अंगों (भेदों) और सब प्रकार से निगमागमों को जानने वाला हो, तुम्हारी मंत्रणा वैसी ही है जैसे कीसीको अपने आँगन के छूट जाने पर घर ही घर सूझता है। मेरी सम्मति तो यही है कि सामन्त अन्य शत्रुओं के मुहाने पर डटकर उन्हें रोकें, प्रबन्धकर्त्ता पीछे से मिलकर द्रव्य निकाले, और मैं-रावल समर स्वयं-शाह के सैन्य समूह का नाश करूँ। इस प्रकार हम सब मन से मतवाले होकर चढ़ाई करें।

जाइ संपत्तौ समर, मध्य नागौर प्रमानह।
सुरताना रै मुक्ख, कोट अड्डौ चहुआनह॥
धन असंख्र कढ तहाँ, साह चर वर पगधाइय।
चरचि चित्त सब चरित[1], वित्त करि हथ्थ दिखाइय।
साहाब सुकर फुरमान दिय, गांमी छलबल लग्गया।
कढ्ढी सुलच्छि आहुट्ट पति, मुख चहुआन विलग्गया॥ २४ ॥

१ मा० पा० १ का० घ०।

शब्दार्थ:—रै=के । मुक्ख=मुहाने पर । कोट=दिवाल, अर्गला । अड्डौ=आड़, रक्षा । असंख= असंख्य, अपार । कढ़=काढ़ा निकाला । चर=दूत । पग-धाइय=पैदल ही, चल पड़े । चरचि-चित्त= चित्त में रखली । वित्त-करि=द्रव्य के लिये । हथ्थ दिखाइय=हाथ दिखाना, हाथ चलाना, युद्ध करना । गामी=ग्रामीण । कड्ढी=निकालली । आहुट्ठ=आहड़े राजा, गुहिलोत राजा, (रावल समर विक्रम) । विलग्गया=अलगही ।

अर्थ:— इसके पश्चात् रावल समर ने ससैन्य नागौर की ओर प्रस्थान किया और वहाँ वह शाही मुहाने पर चाहुआन राजा (पृथ्वीराज) की रक्षा के लिये अर्गला स्वरूप होकर डट गया । जिस स्थान से अपार द्रव्य निकाला जा रहा था उस ओर शाह के श्रेष्ठ दूत पैदल ही चल पड़े और उन्होंने धन के लिये हाथ बतलाने (युद्ध छिड़ने) की सारी बात को चित्त में रख ली (गुप्त रूप में आकर भेद को प्रगट नहीं होने दिया) । शाही फरमान के प्राप्त होने पर (शाह की आज्ञा से) आये हुए वे जंगली दूत छलबल से भेद लेने में लग गये । उन्होंने यह भेद जान लिया कि आहड़े का राजा (रावल समर विक्रम) द्रव्य निकलवा रहा है और चाहुआन राजा (पृथ्वीराज) अलग ही सेना लेकर डटा हुआ है ।

उभइ दूत नागौर, दूत-चहुआंन पास दुअ ।
सव चरित्त धरि चित्त, लखन लख्यौ सु सैन सुअ ।
चिक्कोंसा चहुवान, कोस चित्रंग राइ दुइ ।
अवन गवन जानहि सुवत्त, मत्त अनुसरहि पंथसुइ ।
मन मध्य अर्थ कौअर्थ धरि, महावीर तसकर अभइ ।
तमि चले साहि गज्जन समह, सर्व तंत जानन समइ ॥ २५ ॥

ग्रा० पा० । विशेष देवलिया प्रति से लिये गये हैं ।

शब्दार्थ—लखन=लक्ष्मण पुण्डीर [नाम विशेष] । सेन-सुअ=सैन पुण्डीर का पुत्र । चिक्कोंसा= चार कोस । दुइ=दो । अवन गवन=आवागमन, अथवा आने जाने । मत्त=मंत्रणा । सुइ=वे । अर्थ को अर्थ=हिताहित । अभइ=अभय, निर्भिक । तमी-चले=तत्र लौटे । साहि-गज्जन=गज्जनेश्वर शहाबुद्दीन । समह=सम्मुख, पास । तंत=वास्तविक भेद ।

अर्थ:—उनमें से दो दूतों ने तो नागौर-जहाँ रावल समर था वहाँ और दो दूतों ने जहाँ चाहुवान नरेश डटा हुआ था, वहाँ पहुँचकर सारे चरित्र को चित्त में धर

लिया। (सब वृत्तान्त जान लिया और उन्होंने वहाँ सेन पुंडीर के पुत्र लक्ष्मण पुण्डीर के बलको भी भाँप लिया। उन्होंने देखा कि नागौर से चार कोस पर चाहुवान और दो कोस पर चित्तौड़ पति है। वे दूत आवागमन (आने जाने के रास्ते) की सारी बातों को जानने वाले, अपनी २ मंत्रणा के पथ का अनुसरण करने वाले, मन में हिताहित को सोचने वाले, बड़े बहादुर और निर्भीक तस्कर तुल्य थे। उन्होंने जब सब प्रकार से वास्तविक भेद को जान लिया, तब वे गज्जनेश्वर (शहाबुद्दीन) के पास लौट गये।

दोहा

कलि-चरित्त नागोर-पहु, दूत सपत्ते आइ।
ढिल्ली[1] वै कढ्ढै सु धन, वज्जा वज्जन वाइ॥ २६॥

प्रा० पा० १ पा० घ० का०।

शब्दार्थः—कलि-चरित्त=निश्चित वृत्तान्त। नागोर-पहु=नागौर से। सपत्ते आइ=आ पहूँचे। ढिल्ली वै=दिल्लीश्वर। वज्जा=बाजे, वाद्य। बज्जन वाइ=वजवा कर।

अर्थः—नागौर की निश्चित खबर लेकर शाही दूत शाह के पास पहुँचे और कहा कि दिल्लीश्वर बाजे बजवाकर (डंके की चोट) पृथ्वी से द्रव्य निकलवा रहा है।

कवित्त

वज्जा वज्जनवाइ, दिख्खि[1] दैवान दुसंकह।
चित्र कोट रावर नर्‌यन्द[2], भार झिल्लन[3] भुज-अंकह॥
संभरवै आहूट, लच्छि कढ्ढन बत्ती सह।
गज्जन वै सुलितांन[4], दूत लै आइ चरित्तह॥
सुनि सद्द[5] नद्द[6] नीसांन किय, वोलि उँम्मराँ खांन सह।
सज्जौ सु सेन[7] संभरि दिसह[8], चाहुआंन किज्जै वसह॥ २७॥

प्रा० पा० १ पा०। २, ३, ७, ८ दे०। ४ दे० पा०। ५ दे० पा० घ० का०। ६ का० पा० घ०।

शब्दार्थः—दिख्खि=देखकर। दुसंकह=सशंकित। भार झिल्लन=भार झेलने वाला, उठाने वाला। भुज-अंकह=बाहुपाश में, भुजाओं पर। संभरिवै=सँभरेश्वर (पृथ्वीराज)। आहूट=आहड़ा, गुहिलवंशी। कढ्ढन=निकालने में। बत्ती-सह=सहमत। गज्जनवै=गजनेश्वर। सुलितांन=सुलतान।

आइ=आये। चरित्तह=चरित्र, वृत्तान्त। सद्द=सद्य, उसी समय, शीघ्र। नद्द-नीसांन किय=नक्कारे बजवाये। उँम्मरां=उमराव। संभरि=चाहुवान राजा, पृथ्वीराज। दिसह=दिशा। किज्जै=करें। वसह=वश में, काबू में।

अर्थः—दूत कहने लगे-जिसके रण वाद्यों के रव को सुनकर देवता भी सशंकित हो जाते हैं, ऐसा वह चित्तौड़ का रावल वंशी राजा (समर) अपनी भुजाओं पर युद्ध-भार को झेलने वाला है। संभरेश्वर (पृथ्वीराज) और आहड़ा (रावल समर) दोनों ही द्रव्य निकालने में सहमत हैं। हे गज्जनेश्वर सुलतान! हम इसकी सही सूचना प्राप्त करके आये हैं। यह सुनते ही शाह ने शीघ्र ही अपने उमरावों (वीरों) और मुसलमान सैनिकों को बुलाकर नक्कारे बजवाये और आज्ञा दी कि चौहान राजा (पृथ्वीराज) की ओर सेना सजा कर उसे वश में किया जाय।

सज्जि[1] सेन[2] सुलतान, चकाव्यूहं रचि चल्लिय।
इक्क इक्क[3] असवार, बीच पाइक तिन[4] हल्लिय[5]॥
ता पच्छे गजपंति, पत्ति असवार समूहं।
जबर—जंग औराक, गोर जंबूर ति जूहं॥
ता पच्छ पंति खुरसानखां, ता पच्छे गज्जन[6] अनिय।
तत्तार खांन निसुरत्तिखां, पछ्[7] हासम खोखर पनिय॥ २८॥

ग्रा० पा० १, २, ४ से ७ दे०। ३ दे० पा०।

शब्दार्थः—चकाव्यूहं=चक्रव्यूह। पाइक=पैदल। हल्लिय=चलते थे। जबरजंग=ऊँचे कद के, बड़े। औराक=ऐराकी घोड़े। गोर जंबूर ति जूहं=गोले और जमूरे चलाने वालों का यूथ। अनिय=अनि, सेना। पनिय=पलिय, चलते थे।

अर्थः—सुलतान चक्रव्यूहाकार सेना सजा कर चला। एक २ सवार के पीछे एक-एक पैदल चल रहा था। उसने पीछे क्रमशः गज पंक्ति, बड़े २ एराकी अश्वारोहियों का समूह, गोले और जंबूरों (छोटी तोपों) का प्रयोग करने वालों का यूथ, खुरासानखाँ की सैन्य पंक्ति, गजनी की सेना तथा तत्तार खाँ, निसुरत्तिखाँ, हासिम और खोखर चल रहे थे।

वाम कोद पृथिराज[1], मुक्कि[2] सुलतांन सु चल्लय।
सज्जि सेन चतुरंग, समर दिसि समर सु हल्लय॥

भूंमि धसिय, धस-मसिय सेस-कस-मसिय[3] उसस्सिय[4] ।
कमठ विमठ हुव पिट्ठ, दड्ढ कोलंम[5] करस्सिय ॥
रिंगयौ सबल सुलितान दल, करि मुकाम सक्क्यो न कुइ[6] ।
मुर[7] अद्ध कोस नागौर तैं, सुनि अवाज वडह्यौस सुइ ॥ २६ ॥

ग्रा० पा० १, ३, ४, पा० । २ पा० भीं० । ५, ६ दे० । ७ पा० भीं० दे० ।

शब्दार्थः—वामकोद=बाँई ओर । धसिय=घुसने लगी । धस मसिय=कुचली जाकर । कस मसिय=सिकुड़ कर । उसस्सिय=उठा । कोलंम=कौल, कवल, वाराह । करस्सिय=खिचपड़ी, हिलपड़ी । रिंगयौ=चला । कुइ=कोई । मुर=मुड़कर कूंच कर । सुइ=वह भी ।

अर्थः—पृथ्वीराज जिस मुहाने पर डटा हुआ था, उसे बाँई ओर छोड़ कर बादशाह चतुरंगिनी सेना सजाये हुए रावल से युद्ध करने के लिये सीधा चल पड़ा। सेना के चलने से पृथ्वी कुचली जाकर नीचे को घुसने लगी, जिससे शेष नाग सिकुड़ कर उकस पड़ा, (उपर उठ गया)। कच्छप की पीठ दबकर समतल हो गई और बाराह की दाढ़ भी हिलने लगी। इस प्रकार बलवान् बादशाह अपने दल के साथ चल पड़ा, और रास्ते में कोई भी सैनिक मुकाम (विश्राम) न कर सका। उधर नागौर से आधे कोस की दूरी पर रावल समरसिंह मुकाम किये हुए (पड़ाव डाले हुए) था, शाह के आने की आवाज सुनकर वह भी सामने की ओर बढ़ा।

समरस्यंघ सुनि समर[1], वीर निस्सांन दियंदे[2] ।
सच्चि सेन चतुरंग, तक्खि[3] तुख्खार[4] चढ्ढंदे ॥
थिर थप्प्यौ[5] कयमास, लच्छि ऊप्परि[6] गहि रक्खिय ।
तरकि तोंन सजि द्रोंन, वलिय पारथ सम दिक्खिय ॥
भारथ्थ कथ्थ कवि चंद कहि, समर सार बर चल्लवै ।
उच्छारि सेन सुलितान कौऊ, हय अट्ठिनि करि हल्लवै ॥ ३० ॥

ग्रा० पा० १, ३, ४, ५ दे० । २ गीं । ६ पा० ।

शब्दार्थः—निस्सांन दियंदे=नक्कारे बजवाये । तक्खि=तेज, तीखे । तुख्खार=घोड़े । तरकि=क्रोधित हो । तोंन=त्रोण । वर=बल, साहस, विक्रम । उच्छारि=उछांलना, पछाड़ना । अट्ठिनि=ऐंठकर ।

अर्थः—युद्ध की खबर सुनकर समर-केशरी ने भी नक्कारे बजवाये। वह अपनी चतुरंगिनी सेना को एकत्रित कर तीव्रगामी घोड़े पर चढ़ा। उसने द्रव्य प्राप्त होने वाले स्थान को सुरक्षित रखने के लिये वहाँ पर कैमास को स्थायी रूप से नियुक्त कर दिया। उस समय रावल समर-विक्रम इस प्रकार दिखाई दिया मानों तूणीर से सज्जित द्रोणाचार्य हो, या बलवान पार्थ हो। कवि (चंद) कहता है कि समर-विक्रम ने श्रेष्ठ शस्त्र प्रहार किया जिसकी (युद्ध) ख्याति महाभारत युद्ध की कथा की समता करने लगी। उसने सुलतान की सेना को नष्ट करने के लिये रास खींचकर घोड़े को बढ़ाया।

दोहा

साहस कर पत्तिय समुद, कमुद प्रफुल्लिय रंग।
उतरि सेन सुरतान तँह, सह आई समरंग ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—साहस–कर=समर साहस (विक्रम रावल) के हाथ, सहस्र कर सूर्य। पत्तिय–समुद= उत्साह पूर्वक चलने लगे, समुद्र में उतर पड़ा, अस्त हो गया। कमुद=उत्साह हीन, कुमोदिनी। उतरि–सेन=उतर पड़ी, डेरा डाल दिया। आई–समरंग=युद्धार्थ आई हुई।

अर्थः—इधर समर साहस (विक्रम रावल) के हाथ उत्साह पूर्वक चलने लगे, जिससे उत्साह हीन वीर भी युद्ध करने के लिये उत्साहित हो गये और उनमें युद्ध–रंग छागया। उधर सहस्रकर (सूर्य) समुद्र में प्रवेश करगया (अस्त हो गया) और कुमोदिनी प्रफुल्लित होगई। यह देखकर (रात्रि हो जाने से) युद्धार्थ आई हुई समस्त शाही सेना ने डेरा डाल दिया (युद्ध बन्द कर दिया)

प्रात उदित रवि रत्त रंग, समर समर दिसि जग्गि।
तव लगि दल सुलतान के, खेह सु उड्डन लग्गि ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—खेह=धूल।

अर्थः— प्रातःकाल होनेपर सूर्य रक्त वर्ण धारण करके उदय हुआ। उस समय वीर रावल समर युद्ध करने के लिये उद्यत हो गया। इतने में शाही सेना भी सजकर आगे बढ़ी जिससे पद-रज उड़ने लगी।

खहति[1] खेह डंमरिय, दिसा अंबरिय[2] सुराजै ।
अग्ग मग्ग उच्छरै, चित्त उच्छरै पराजै ॥
पवन वेग संचरै, श्रवन लग्गा असि मंतं ।
रथकु मेरु[3] चढ्ढए, बान वढ्ढए सुमंतं ॥
दऊ दीन करण[4] वल[5] दुन्द दल, लरण[6] लोह सज्जै सुब्रर ।
चंप्यौ[7] नर्यंद[8] आहुट्ट पति, अगिनि सार उड्डिय दुभ्भर ॥ ३३ ॥

ग्रा० पा० १, २, ६ से ८ दे० । ३ पा० । ४, ५ दे० पा० ।

शब्दार्थ:—खहति=आकाश में विशेष रूप से । डंमरिय=फैल गई, छागई । अग्ग–मग्ग=स्वर्ग-मार्ग । पराजै=पराजय । श्रवन=स्रवने, बरसाने । मंतं=मतवाले । रथकु=सूर्य । मेरू=सुमेरु । वढ्ढए=बढ़ाये, चलाये । करण=करने को । दुन्द=द्वन्द । लरण=लड़ने को । दुभ्भर=भयंकर ।

अर्थ:—आकाश में विशेष रूप रूप से रज के छाजाने से ऐसा प्रतीत हुआ मानों दिशाओं ने उस रजकण का ही वस्त्र धारण किया हो । उस समय वीरों के चित्त अपने प्रति पक्षियों को पराजय देने एवं स्वयं स्वर्ग-को (मोक्ष) प्राप्त करने के लिए उछलने लगे । वे मतवाले वीर तीव्रगति (पवन गति) से बढ़ते हुए खड्गाघात करने लगे । उन उन्मत्त वीरों ने सुमेरु पर्वत से सूर्य-रथ के उपर उठते ही बाण-वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया । जिस समय दोनों धर्मों के श्रेष्ठ योद्धाओं (हिन्दू और मुसलमान) ने द्वन्द्व युद्ध करने को शस्त्र उठाये, उसी समय एक ओर से पृथ्वीराज ने और दूसरी ओर से आहड़े नरेश (समर विक्रम) ने शत्रुसेना को धर दबाया, जिसमें भयंकर लोहाग्नि उड़ने लगी (फैलने लगी) ।

धनि[1] नर्यंद[2] सुलितांन[3], पान दुव[4] वीच समाहिय ।
उभय[5] मुक्ख अरि रुक्कि, स्यंघ[6] वन की गति साहिय ॥
धार धार वज्जै प्रहार, नद्द गज्जै[7] निस्सांनं ।
भभरि[8] सेन सुलितांन[9], मीर उट्ठे झुकि खानं ॥
दोउ दीन भीन घन धुम्मि, घर उसरि[10] सेन लग्गे लरण[11] ।
वरि च्यारि लग्गि तरवारि झरि, अगिनि[12]-झार लग्गी[13] झरण[14] ॥ ३४ ॥

ग्रा० पा० १, ७ पा० । २ से ६, ८ से १४ दे० ।

शब्दार्थः—धनि=धन्य हैं। भभरि=भयभीत हो गई। उट्ठौ=खड़े हुए, उमड़ पड़े। झुकि=टेढ़े होकर। भीन=तर हो गये। धुम्मि=झूमने लगे। घट=शरीर। लरण=लड़ने लगे। झरण=झड़ने।

अर्थः—धन्य है, उन दोनों राजाओं (पृथ्वीराज और समर विक्रम) को जिन्होंने दोनों ओर से शाह को उसी प्रकार दबाया जिस प्रकार किसी वस्तु को दोनों हाथों से दबाया जाता है, या जैसे किसी प्राणी को एक ओर से सिंह और दूसरी ओर से वन (की भयानकता) दुःखी कर देता है। परस्पर प्रहार के कारण तलवार से तलवार टकराने लगी और नक्कारों का स्वर मेघ गर्जना के समान होने लगा। जिससे शाही सेना भयभीत हो गई। यह देख कर मीर और खान (मुसलमान योद्धा) टेढ़े होकर तलवारें निकाल कर आगे बढ़े। उस समय दोनों धर्मों के योद्धाओं के शरीर रक्त से तर होकर झूमने और सेना को उत्साहित कर भिड़ने लगे। जिसके कारण चार घड़ी तक तलवारों के परस्पर प्रहार से अग्नि-ज्वाला बरसने लगी।

वलिय पुंज[१] पाहार द्रुतिय भारथ्थ जिन मंडयौ।
अरि अच्छरि वर ल्यंन धार धारह तन खंड्यौ॥
ईश सीस संग्रह्यौ हथ्थते[२] हथ्थन मुक्यौ॥
सूर[३] सुरस[४] कह जानि गवनु अम्मरते[५] चूक्यौ॥
जानयौ गवरि कह मानु[६] किय, कहा जानि नन्दी हस्यौ।
जानयौ चन्द यह काव्व करि. चन्द लिलाटह ते खस्यौ॥ ३५॥

ग्रा० पा० १ सं०। २, सर्वप्रति। ३, ४ पा०। ५, ६ दे०। ७ दे० पा०।

शब्दार्थः—भारथ्थ=महाभारत के समान। सुर=देव योनि। धारह=प्रहारों। सूर=सूर्य। सुरस=सरस। चूक्यौ=भूल गया (रूक गया)। काव्व=काव्य।

अर्थः—पुंज पहाड़ नामक बलवान योद्धा ने द्वितीय महाभारत के समान ही युद्ध छेड़ दिया। उसने शत्रुओं से भिड़कर एवं अपने शरीर को तलवारों के प्रहारों से खण्ड-खण्ड करवा कर अप्सराओं को वरण किया। शिव ने उसके मस्तक को (अपनी मुंडमाला के लिए) हस्तगत करके नहीं छोड़ा। सूर्य भी उस युद्ध की सरसता पर विचार करते हुए आकाश में गमन करना भूलसा गया। न जाने गौरी ने भी (शिव से) मान क्यों किया? नन्दी भी क्या समझ कर हँस पड़ा। कवि चन्द

कहता है कि काव्य रचना द्वारा केवल मैं ही उस रहस्य को समझ पाया हूँ कि शिव के मस्तक से चन्द्रमाँ के खिसक पड़ने से ही यह सब कुछ हुआ। पार्वती इतने दिनों तक शिवको चन्द्रमाँ का प्राकृतिक चिह्न ही समझ रही थी किन्तु युद्ध की हलचल में जब चन्द्रमाँ अपने स्थान से हट गया तब उसको यह आभास होगया कि वह सिर का भूषण कृत्रिम है। उसने यह भी विचार किया कि शिव ने इसे मुझे न देकर अपने ही सिर पर धारण क्यों किया? इसी कारण उसने मान किया। नन्दीगण के हँसने का कारण पार्वती का अज्ञान है, क्योंकि चन्द्रमाँ वास्तव में भूषण नहीं है।

मुत्ति लहत सामंत, सिद्ध मन डोलन लग्गा।
चुकि समाधि जगि सिंभ, बंभ आराधन भग्गा॥
आपु तुचा तजि सूर, तुचा मृग्ग न आराधी।
तन तुट्टिग असिधार, मग्ग नहिं अच्छरि वाधी॥
अचिरज्ज एक आतम गमन, देह–मटी मुक्की निमुख।
खंखेरि खाल मुक्किय जगत, सुकर कित्ति चल्लिय सु रुख॥ ३६॥

शब्दार्थ–मुत्ति=मुक्ति, मोक्ष। लहत=प्राप्त करने पर। सिंभ=शंभू। बंभ=ब्रह्म। भग्गा=मिट गई, वाधा पड़ गई। आपु-तुचा=अपनी त्वचा। सूर=शूर, बहादुर। आराधी=सेवन की, काम में ली। वाधी=बाधक। आतम=आत्मा। देह–मटी=मिट्टी की बनी हुई काया। मुक्की=छोड़दी। निमुख=निमेष मात्र में। खंखेरि=ऊपर तले करके जला दी। खाल-मुक्किय=छोड़ी हुई त्वचामयी देह को। जगत=संसार, लोगों ने। कित्ति=कीर्ति। रुख=रूह, आत्मा अक्षुण स्वरूप।

अर्थः—उस वीर ने मोक्ष प्राप्ति के लिए कभी भी मृग त्वचा को काम में नहीं लिया (अर्थात् जिस आसन पर बैठकर व्यक्ति ईश्वरोपासना करते हैं उसे उसने काम में नहीं लिया) और केवल मात्र अपने त्वचामय शरीर को खड्ग द्वारा कटवाकर ही मोक्ष प्राप्त कर लिया। उसकी मोक्ष प्राप्ति में अप्सराओं ने भी बाधा नहीं दी (अर्थात् उसे वरण करने का साहस नहीं किया) और उसकी आत्मा ने मृत्तिका निर्मित देह को क्षण मात्र में ही छोड़कर आश्चर्य उत्पन्न कर दिया। लोगों ने यद्यपि उसकी देह को जला दिया किन्तु उसकी आत्मा अपना यश फैलाती हुई स्वर्गस्थ होगई (अर्थात् उसने बिना ईश्वरोपासना के ही युद्ध करके परमगति को प्राप्तकर सबको आश्यचर्यान्वित कर दिया) उस सामन्त के इस प्रकार मोक्ष प्राप्त करने को देखकर सिद्धों के

मन भूलने लग गये और शिव की समाधि भी भंग होगई, जिससे उनकी ब्रह्मोपासना में बाधा पड़गई।

दोहा

खां ततार रुस्तम सुभर, अरु जे मीर मसंद।
सोइ तत्तो गहि तेग खरि, बर वीरां-रस[1] मंद ॥ ३७॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—सोइ=उन्होंने। तत्तो=तेजी से। खरि=खड़कर, बढ़कर। बर-वीरां=श्रेष्ठ वीरों। रस= प्रेम, युद्धेच्छा। मंद=हीन, तुच्छ।

अर्थः—उस (पुंज पहाड़) के समक्ष यद्यपि अच्छे २ योद्धाओं ने जैसे तत्तार खां, रुस्तमखां, और भी कितने ही मसनद-धारी मीरों ने, बढ़कर तीव्र वेग से खड्ग ग्रहण किये किन्तु उन श्रेष्ठ वीरों का युद्ध-प्रेम उस समय हीन रूप में ही दिखाई दिया।

चंद बंध पुंडीर बर, लक्खन लक्खां-सार।
मिले मीर मरदान मुख, धरि कर खग्ग करार[1] ॥ ३८॥

शब्दार्थ—बंध=बंधु। लक्खां-सार=लाखों में श्रेष्ठ। मिले=मिला, भिड़ा। मुख=संमुख।

ग्रा० पा० १ पा०।

अर्थः—पुंज पहाड़ के मारे जाने पर, लाखों वीरों में श्रेष्ठ लक्खन नामक चन्द पुंडीर का भाई हाथ में भीषण खड्ग ग्रहण कर मीर योद्धाओं से जा भिड़ा।

कवित्त

खां ततार रुस्तम हुजाब, खान[1] मुस्तफा महंमद।
है सज्जै बरसार, तत्थ आये मीरं वद।
मार मार कहि धीर, मिले लक्खन लक्खे सर।
सार धार वज्जत[2] पहार, भिरे मुख मुखह मीर गुर[3] ॥
पुंडीर सबर[4] साहस बरह, करिव हक्क[5] खद्दे सु[6]खल।
कौतिग्ग देव देखंत सिर, अरिय भूत नंचे अकल ॥ ३९॥

ग्रा० पा० १, २ सर्व प्रति। ३ का० घ० भीं०। ४ पा०। ५, ६ पा० भीं०।

शब्दार्थ:—है-सज्जै=घोड़ों पर चढ़े हुए। तत्थ=तहाँ पर। मीरं=मीर। बद=बदते हुए, ललकार करते हुए। लक्खे-सर=लाखों के सिर पर, लाखों से। पहार=प्रहार। मुख मुखह=प्रत्येक के मुँह से, चारों ओर से। गुर=गुरु, बड़े,। स-त्तर=उस समय। करिव=करके। हक्क=हुंकार। खद्द=खा गया, नष्ट कर दिये, खदेड़दिये। अरिय=अड़ने वाले। भूत=प्राणी। नंचे=नृत्य करने लगे। अकल= कल रहित=बैचेन, पीड़ित।

अर्थ:—अश्वों पर चढ़े हुए तत्तारखां, हुजाबखां, मुस्ताफखां, और मुहम्मद आदि मीरों ने श्रेष्ठ शस्त्रों को गृहण किया, एवं ललकारते हुए उस (लक्ष्मण) के समक्ष आ-पहुँचे। तब वह धीर वीर (लक्ष्मण पुंडीर) भी मार २ शब्दोच्चारण करता हुआ उन लाखों शत्रुओं से जा भिड़ा। उधर से बड़े २ मीर भी प्रहार द्वारा शस्त्रों को ध्वनित करते हुए चारों ओर से आ जुटे। उस समय वह श्रेष्ठ पराक्रम धारी वीर पुंडीर भी हुँकार करते हुए शत्रुओं को नष्ट करने लगा। उससे भिड़ने वाले वे प्राणी (घायल होकर) पीड़ित अवस्था में रणाङ्गण में नृत्य करने लगे। देवतागण इस दृश्य को गगन मण्डल से देख रहे थे।

कवित्त

चन्द बँध पुण्डीर नाम, लख्खन लख्ये सुर।
दुंद देवि पच्चारि[1] दीन, हुंकार हंकि गुर॥
ईस सीस आनन्द, प्यंडु[2], गिध्धिनि मन भाइय।
हूर सूर अच्छरि विमान, चढ्ढि दिख्खन[3] नभ आइय॥
आतम्म सोइ उत पति, चल्यौ देव थान विश्राम भय।
जम लोक लोपि वसि ब्रह्म पुर, जंपि सेन दुव[4] सद्द जय॥ ४०॥

ग्रा० पा० १ पा० का०। २ से ४ दे०।

शब्दार्थ:—बंध=बंधु, भाई। दुंद=द्वन्द, युद्ध। पच्चारि=प्रचार कर, ललकार कर। प्यंड=पिंड, शरीर। उतपति=वहाँ से चलकर।

अर्थ:—चन्द पुण्डीर के लख्खन नामक भाई को देवताओं ने युद्ध करते हुए देखा। उस समय हुँकार करती हुई स्वयं देवी भी वहाँ आकर शत्रुओं को ललकारती हुई बड़े २ वीरों को विचलित करने लगी! उस वीर के मस्तक (को प्राप्त करने)

के लिए शंकर प्रसन्न हुए और उसका शरीर गिद्धनियों के मन को अच्छा लगने लगा। हूरें, अप्सराएँ और सूर्य-सभी अपने-अपने विमानों और रथों पर आरूढ़ होकर उस कौतुक को देखने के लिए नभ में आगये। उसकी आत्मा वहाँ से चलकर देवलोक में पहुँची और वहाँ विश्राम कर, बाद में यमलोक का लोप करती हुई ब्रह्म लोक में जा बसी। यह देखकर दोनों ओर की सेनाएँ जय जय कार करने लगीं।

दोहा

स त्रन सखन उब्वरिय, मन-बर छुट्टिय नांहि।
ज्यों मध्या-प्रिय तुच्छ-निसि, सेंरो सहर समांहि ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—सत्र=शत्रु। छुट्टिय-नाहि=नहीं छूटा, लगा रहा। मध्या प्रिय=मध्या स्त्री का पति। तुच्छ निसि=छोटी रात्रि। सेंरो=सोड़ा सबका सो जाना। सहर स=शहर के। मांहि=अंदर।

अर्थः—उस वीर के शस्त्राघात द्वारा कोई भी शत्रु नहीं बच पाया (सभी रणशय्या पर सोगये) फिर भी उसके श्रेष्ठ मन की इच्छा उसी प्रकार तृप्त नहीं हुई जिस प्रकार मध्या स्त्री के पति की इच्छा, शहर में सबके सोजाने पर भी छोटी रात्रि होने के कारण प्रेयसी के साथ सुरति सुख की प्राप्ति में अधिक आतुर बनी रहती है।

दोहा

कित्ति-जोग-करनह समथ, मिले सक्क सा सेन।
आये मीर सु कूह करि, परिय सिंह सिर जेन ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—कित्ति-जोग-करनह=कीर्ति करने योग्य, कीर्ति फैलाने योग्य। समथ=सामर्थ्यवान। सक्क=शाह। शाह। सा=उसकी। सेन=सेना। कूहकरि=किलकारी की, किलकारी करके। परिय=आक्रमण किया। सिंह=केशरी रावल (समर केशरी रावल)। सिर जेन= उन पर।

अर्थः—[लख्खन पुण्डीर के मारे जाने पर] कीर्ति फैलाने योग्य सामर्थ्यवान शाह और उसकी सेना तथा मीर किलकारी (हर्ष-ध्वनि) करके आगे बढ़े। उन पर "सिंह रावल" (समर केशरी) ने आक्रमण किया।

कवित्त

घरी अद्ध दिनु रहयौ, साहि साहब "बल" भग्गिय ।
गात-खंभ नृघात हाथ सामंतन लग्गिय ॥
परयौ खान आकूब जेन सेना ढंढोरिय ।
केलीखाँ कुंजर कुलाह तुट्टि तन तुंग[1] विछोरिय ॥
चहुवान सेन चवदंत च तनुढ़ि तत्तिन[2] वरि[3] नंखयौ ।
सुरतान मींच पंचौ परत सूर सूर[4] दिन[5] अंथयौ[6] ॥ ४३ ॥

ग्रा० पा० १, २, ४ से ६ दे० । ३ पा० ।

शब्दार्थः—वल=बल, विक्रम (रावल) । भागीय=भगा दिया । नृघात=बुरे आघात । जेन=जिसने । तुंग=उत्तंग । चवदंत=अति समीप । तनु-नत्तिन=तत्तार खां के शरीर को । वरि=फिर । नंखयौ=पटक दिया, धराशायी कर दिया ।

अर्थः—अर्ध घड़ी दिन के शेष रहने पर रावल समर विक्रम ने शाहबुद्दीन को भगा दिया। उस समय चाहुवानी सामन्तों ने भी अपने हाथों से स्तम्भ-काय शत्रु वीरों पर बुरी तरह से आघात किया जिससे याकूब खां, जो कि सेना को टटोल (परख) चुका था, धराशायी हो गया। उसी प्रकार उन्होंने केलीखां, कुंजर खां, और कुलाह खां आदि वीरों के उत्तंग शरीरों को भी नष्ट प्रायः (घायल) कर उन्हें युद्धस्थल से भगा दिया। चाहुवान की सेना ने अत्यन्त समीप पहुँच कर तत्तारी के शरीर को भी धराशायी कर दिया। इस प्रकार सुलतान के उक्त पांचों भयंकर वीरों के धराशाई होने पर, कितने ही बहादुरों के साथ २ उस दिन का सूर्य भी अस्त हुआ।

गाथा

अध वत दीह सुधीरं, साहिब सेरंन हंति निड्डुरयं ।
करि प्राक्रंम अपारं, जल निधि भद्धि गत्त पतंग ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—सुधीरं=श्रेष्ठ धैर्यवान । साहिब-सेरंन=शेरंन=शेरन शाह । हंति=आहत किया । गत्त=गया, डूबा, प्रवेश किया । पतंगं=पतंग, सूर्य ।

अर्थः—सूर्यास्त होते होते श्रेष्ठ एवं धैर्यवान निड्डुरराय ने अपार पराक्रम प्रदर्शित कर शेरनशाह को भी आहत कर दिया। इतने में सूर्य भी समुद्र में प्रवेश कर (गया अस्त हो गया)।

कवित्त

जल निधि मध्य पतंग, पतत[1] दिक्खिय तम ग्रासिय।
कायर पंकज मुदिग, कुमुद उघ्घरि अलि वासिय॥
कोतर चितव विहंग, वाम विरहनि दुख बढिड्य।
संजोगिनि श्रृंगार, चित्त कामह — रथ चढिड्य॥
चक्रवाक चित्त चकित्त हुअ, चोर बिटी[2] मन उल्लसिय।
ऊसरी[3] सेन विय उत्तरिय, स्वामि धर्म मन मह वसिय॥ ४५॥

ग्रा० पा० १ भीं०। २, ३ पा०।

शब्दार्थः—पतत=गिरता हुआ, डूबता हुआ। उघ्घरि=खिल पड़ी। बासिय=बसगये, विराम किया। कोतर=घोंसले। बिटी=बिट (सखा विशेष) उल्लसिय=उल्लास युक्त, सोल्लास। ऊसरी=उमड़ी हुई। विय=दोनों। उत्तरिय=उतर पड़ी, विश्राम किया।

अर्थः—तम-ग्रसित सूर्य समुद्र में डूबता हुआ दृष्टि गोचर हुआ। कायरों के साथ-साथ कमल भी मुँद गये। कुमोदिनी प्रफुल्लित हुई। भ्रमरों ने विश्राम लिया। पक्षियों ने घोंसलों का विचार किया (घोंसलों की ओर चल पड़े)। वियोगिनी स्त्रियों की वियोग व्यथा में वृद्धि हुई। संयोगिनी स्त्रियों ने श्रृंगार किया और उनके चित्त स्मर स्यंदन (कामदेव के रथ) पर सवार हो गये। चक्रवाक दम्पति के चित्त (वियोग का स्मरण कर) चकित होगये। तस्करों और विटों (स्त्री पुरुष को परस्पर मिला देने वाले सखाओं) के मन उल्लास युक्त दिखाई पड़े। इस प्रकार निशाका आगमन होने पर उमड़ती हुई दोनों सेनाओं ने भी, स्वामी धर्म को मन में स्थान देते हुए (वितानों में), विश्राम किया।

दोहा

निस—चर वर चर चित्तं, चित्तं जाग्रत उभय सयनेयं।
जामं सर—सरि हितं, वामायं काम सयनायं॥ ४६॥

शब्दार्थः—निस-चर=रात्रि व्यतीत होती है। वर=श्रेष्ठ। चरचितं=चलचित, चंचल चित्त। चित्तं=देखे गये। जागृत=जागृत काम द्वारा उत्तेजित। उभय=दोनों, दम्पति।

अर्थः—ज्यों ज्यों रात्रि व्यतीत होती थी, त्यों त्यों प्रेमी और प्रेमिका दोनों के श्रेष्ठ चित्त चंचल और जागृत (काम से उत्तेजित) दिखाई देते थे। काम शैया

पर कामिनियों और उनके पतियों का एक दूसरे के प्रति प्रेम इस प्रकार प्रदर्शित हो रहा था जिस प्रकार समुद्र और सरिता दोनों का परस्पर रसास्वादन (जल द्वारा सहयोग) होता है।

जबहि राज प्रथिराज, सेन उत्तरिय रयन गत।
तबहि सु राजन कज्ज, रहे सामंत सु जग्गत॥
रा—चामँड निड्डुर कमंध, अत्तताईय, ईस बर।
सु गुरु जैत पामार, अरिय भंजन अलक्खभर॥
अवरे सु सब्ब सामंत भर, चढे राज चौकी समथ।
गुर—लज्ज अवरभर सज्जि रहि, है—पक्खर चवरार हथ॥ ४७॥

शब्दार्थः—उत्तरिय=उतर पड़ी, पड़ाव डाला। रयन—गत=रात पहुंचने पर, रात्रि होने पर। राजन-कज्ज=राजा की रक्षा की। जग्गत=जागृत। ईस=ईश्वरदास (चाहुवान)। गुरु=बड़ा, भारी वीर। पामार=प्रमार। अवरें=अवर, अन्य। राज—चौकी=राजा के पहरे पर। है—घोड़े सजाये हुवे। चवरार हथ=हाथों से चमर चलाये जाने जैसे। या चरवादारों (सइसो) द्वारा।

अर्थः— रात्रि हो जाने पर पृथ्वीराज ने युद्ध बन्द करके जब सेना का पड़ाव डाला, तब राजा की रक्षा के लिये चामंडराय, कमधज—निड्डुरराय, अत्ताताई, श्रेष्ठवीर ईश्वरदास (चाहुवान) और शत्रु नाशक अलक्ष वीर जैत्र प्रमार और अन्य सामर्थ्य-वान सामंतादि जगते हुए चौकी (पहरा) देते रहे। अपने गुरु की लज्जा रखने वाले अन्य वीरों ने भी अपने २ प्रमुख अश्वों को, जिन पर चँवर डुलाये जाते थे, सजाये रखा (अर्थात् वे सजधज कर सावधान रहे अथवा सईसों द्वारा अपने घोड़ों को सजाकर सावधान रहे)।

दोहा

रामरेन पावार भर, अरु सु कंन्ह भत्तीज।
फुनि रघुवंशी, राजगुर[1] सब चौकी सज्जि नींज॥ ४८॥

शब्दार्थः—पावार=प्रमार। भत्तीज=भतीज, भतीजा, भ्रातृ पुत्र। फुनि=पुनि, फिर। राजगुर= राजाओं के गुरु स्वरूपी रावल समर। सजि—नींज=स्वयम् सजकर।

अर्थः—प्रमार रामरेन, नरनाह कन्ह का भतीजा और स्वयं वीर रघुवंशी तीनों सजकर राजगुरु रावल समर के प्रहरी (रक्षक) नियुक्त हुए।

कवित्त

खां-रुस्तम तत्तार-खांन, चौकी वे लग्गा ।
खां-नूरी हुज्जाब-खांन, महमद असि जग्गा ॥
केली-खां भक्खरी, रोम खोखर-खांपन्नी ।
बर भट्टी महनग, स्वामि मँड्यौ साअन्नी ॥
वीरंग वीर वज्जर वि-रज, बर चरित्त चिहुँ दिसि लगे ।
सुरतांन काम अरि भंजनो, सुबर बीर बीरह जगे[1] ॥ ४६ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—चौकी=पहरे पर । वे=दोनों । लग्गा=लगे, नियुक्त हुए । असि जग्गां=तलवारें जगमगाई । (चमचमाई), नगी तलवारें लिये हुए फिरने लगे । भक्खरी=पहाड़ी । खांपन्नी=खांप के, खान दान के । स्वामि=स्वामी ने, राजा पृथ्वीराज ने । सा-अन्नी=उस ओर को ससैन्य । वज्जर=वज्र तुल्य । वि-रज=वह सुशोभित हुआ । बर चरित्त=श्रेष्ठ चरित्रवान । चिंहु दिसि=चारों ओर । लगे=नियुक्त हुए । काम=कार्य, उद्देश्य, कर्तव्य । अरि-भंजनों=शत्रुओं का नाश करना । सु-बर=उस समय । बीर-बीरह=वीर शिरोमणि, श्रेष्ठ वीर ।

अर्थः — उधर शाह की चौकी (रक्षा) पर रुस्तम खां और तत्तार खां दोनों नियुक्त हुए । पहाड़ी, रोमी और खोखर खानदान (वंश) के नूर खां, हुजाब खां, महमूद (मुहम्मद) खां, और केली खां, भी सावधान रहते हुए चमकती तलवारें लिये हुए फिरने लगे । पृथ्वीराज ने उस ओर श्रेष्ट वीर महनसी भट्टी को सेना सहित नियुक्त किया । उसी ओर नियुक्त होकर वज्र काय वीरंग वीर भी सुशोभित होने लगा । इस प्रकार चारों ओर ऐसे वीर नियुक्त हुए, जो चरित्रवान थे । सुल्तान का मुख्य कर्तव्य (उद्देश्य) शत्रुओं का नाश करना ही हैं इस बात को सोचते हुए श्रेष्ठ वीर उस समय जागते हुए सावधान रहने लगे । ॥ ४६ ॥

अग्गिवान उजवक्क, धाइ धावड़ सुलतानी ।
ता पच्छै[1] साहाब, खांन बंध्यौ तुल सानी ॥
ता पाछे नूरी हुजाब, काली[2] संचारी ।
केली खां कुंजर कुलाह, किन्नी कुटवारी ॥

बानिक बिराह दुल्लाह बर, भाई खा भट्टी सु सिर ।
प्रिथिराज राज आहुट्ठते, बर निसांन बज्जै दुसर ॥ ५० ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—अग्गिवान=अगुआ । धाइ=बढ़ा । धात्रड़=धात्रृ बंधु । सुरतांनी=सुलतान का, शाह का । ता=उसके । पच्छै=पीछे । काली =कालेखां । संचारी=चलाया । किन्नी=की, किया । कुटवारी=कोट वालों, नेतृत्व । बानिक=तुल्य । बिराह=दोनों (श्रृंगार और वीर) रास्तों पर । दुल्लाह=दुलहा । भाई=भाता, अच्छा लगता । खांभट्टी=खांप में रहने वाला. म्यान में रहने वाला खड्ग, (खड्गाघात) । राज-आहुट्ठ=आहड़े नरेश (रावल समर विक्रम) । दुसर=दुस्सह ।

अर्थः—बादशाह की आज्ञा से उसका धात्रृ बंधु उजबक उन प्रहरी वीरों का अग्रणी होकर आगे बढ़ा । उसके पीछे शहाबुद्दीन ने उसके ही समान वीर मान कर खांन को, एवं उसके पीछे नूरखां, हुजाबखां और कालेखां को बढ़ाया । इस क्रम से नियुक्त किये हुए वीरों का नेतृत्व श्रृंगार और वीर दोनों रसों के रसिक केलीखाँ, कुजरखाँ और कुलाहखां ने किया । उन वीरोंने, जिन्हें सिरपर खडगाघात अच्छा लगता था, प्रातः काल होता देखकर पृथ्वीराज और आहड़े नरेश्वर (रावल समर विक्रम) से युद्ध प्रारम्भ करने के लिए दुस्सह नक्कारे बजवाये ।

सुलतानां रै मुक्ख, समर उत्तरयौ नरिंदं ।
मनौ विद्धि[1] विद्धान, मांड म्रजाद समुदं ॥
दोउ सेन उत्तरिय, ध्रंम अप-अपन उचारिय ।
अरि समूह करि प्रान, जुद्ध बर मंडि उछारिय ॥
पहु फट्टि निसा पह फट्टिकर, घरिय बज्जि घरियार घन ।
प्राचीसुमंत दिसि वर भिलिय, अमर कित्ति चिंते सुमन ॥ ५१ ॥

प्रा० पा० १ भीं० का० घ० ।

शब्दार्थः—सुलताना=शाह । रै=कै । मुक्ख=संमुख । विद्धि-विंद्धान=विधि विधान । मांड-म्रज्जाद=मर्यादा का मण्डन कर्ता, मर्यादान्वित । अप-अपन=अपने अपने । उचारिय=उचारा, घोषित किया । अरि-समूह-करि=शत्रू समूह की ओर । उछारिय=उछाले, उछलने लगे । पहु-फट्टी=राजा फट गये, राजा पृथ्वीराज और समर-विक्रम स सैन्य अलग अलग चल पड़े । निसा-पह-फट्टि-

करि=अरुण वेला ने रात्रि को चीर दिया (समाप्त कर दी)। प्राची=पूर्व। मंत=मित्र, सूर्य। दिसिवर=श्रेष्ठ दिशाओं को। झिलिय=झिलमिलादी, चम चमादी। अमर=कीत्ति=अक्षुण कीर्ति।

अर्थः—उस समय अमिट विधि विधान स्वरूप और समुद्र के समान मर्यादित समर नरेश्वर युद्ध करने के लिए शाह के सम्मुख आगया। श्रेष्ठ युद्ध का प्रारम्भ करते हुए वीरों के प्राण शत्रु समूह का नाश करने के लिए उछलने लगे। जब अरूण वेला होने पर रात्रि समाप्त हो चली, घड़ी बजाने वाले ने प्रातःकाल सूचक घड़ी को जोर से बजायी और पूर्व दिशा में सूर्योदय होने से समस्त दिशाएँ भली प्रकार प्रकाशित होगई तब अपने अपने धर्म की दुहाई देती हुई दोनों (हिन्दू और मुस्लिम) सेनाएँ परस्पर युद्ध करने के लिए एक दूसरे के सामने बढ़ीं। उस समय वीरों ने अपने मन में अक्षुण्ण कीर्ति का चिंतन किया।

कवित

अद्ध सूर उग्गंत, ढाल ढुक्की सुरतानिय।
ठांम ठांम मदगंध[1], सज्जि चल्लै अगवानिय॥
धर तर गिरधावत समूह, जूह चतुरंग जगाइय।
ढिल्ली वै सुरतांन, धुक्कि नीसान बजाइय॥
जा हत्थ हत्थ कवि चंद कहि, अल्लह देइसु पाइयै।
तत्तार खांन निसुरत्तिखां, सुबर सेन रिंगाइयै[2]॥ ५२॥

ग्रा० पा० १ पा० का० घ०। २ पा० भीं०।

शब्दार्थः—अद्ध=अर्ध, आधा। सूर=सूर्य। उग्गंत=उगते, उदय होते, निकलते। ढाल=ढाल स्वरूपी, अंगरक्षक सेना। ढुक्की=लग गई, तत्पर हुई। सुरतानिय=शाह की। ठांम ठांम=जगह जगह, यत्र तत्र। मदगंध=मद सौरभ युक्त, मतवाले हाथी। अगवानिय=आगे। धर-तर=धरातल पर। गिर=गिरि। धावत=विचरण करते। जूह=युत्थ समूह। जगाइय=जागृत हो गये, उत्तेजित हो गये। ढिल्ली वै=दिल्लीश्वर [पृथ्वीराज]। धुक्कि=धोंकते हुए, जोर से। जा=जिसके। हत्थ हत्थ=हाथों हाथ। अल्लह=अल्ला, खुदा, ईश्वर। सुबर=सबल। रिंगाइये=चलावो,।

अर्थः—जब आधा सूर्य निकल गया, तब शाह की अंग रक्षक सेना युद्ध करने के लिए तत्पर होगई। अग्रगामी मतवाले हाथी इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानों

पृथ्वी पर गिरि समूह विचरण कर रहे हों। चतुरंगिनी सेनाओं के यूथ के यूथ युद्ध करने के लिए उत्तेजित हो गये। तब दिल्लीश्वर पृथ्वीराज और सुलतान ने नक्कारे बजवाये। यह देखकर कविचंद, तत्तार खाँ और निसुपत्ति खाँ को सम्बोधित कर कहता है कि तुम चाहे जितनी सबल सेनाएं बढ़ाओ, किन्तु खुदा (ईश्वर) जिसके हाथों में जो कुछ (जय पराजय) देता है; वही उसे प्राप्त होता है।

प्रात समर रावर नरिंद, साहस गत पुच्छिय।
कहै सब्ब सामन्त, मत्ति जंपौ गति अच्छिय[1] ॥
कौन वीर को धीर, कौन साहस को कातर।
कवन्दूत अवधूत, जोग को वंध समातर ॥
बंधनह कौन कौ बंधियै, किन बंधन तन छुट्टयै[2]।
चित्रंग राज राजंग गुर, रहसि मंत बर जुट्टयै[3] ॥ ५३ ॥

ग्रा० पा० १ पा०। २, ३ संशोधित।

शब्दार्थः—साहस–गत=पराक्रम की गति, पराक्रम के हालात, पराक्रम का विषय। मति=मंत्रणा, संमति। जंपौ=कहो। गति–अच्छिय=श्रेष्ठ गति। को=कौन। कातर=कायर। अवधूत योगी (शिवस्वरूप)। जोग=योग्य। वंध=बंधु, भाई। समातर=समान, तुल्य। चित्रंग राज=चित्तौड़ेश्वर। राजंग गुर=राजगुरु। रहसि=रहस्य मय। मंत्त=मंत्रणा। जुट्टयै=जुटाइये, कहिये।

अर्थः—प्रातः काल युद्धार्थ विदा होते समय सामन्तों ने समर रावल नरेश्वर से पराक्रम के विषय में पूछा कि श्रेष्ठ गति किसे कहते हैं? कौन पुरुष धीर और वीर कहलाने योग्य हैं? किसे साहसी और किसे कायर समझना चाहिये? हे अवधूत योगी (शिवस्वरूप)! कौन भाई तुल्य योद्धा माना जा सकता है? बंधन किसे कहते हैं, उस बंधन से बंधा हुआ कौन है और कौनसे बंधन में पड़कर शरीर को छोड़ना चाहिये? हे चितोड़ेश्वर! हे राज गुरु? यह रहस्यमय श्रेष्ठ मंत्रणा हमको कहिये।

इहै वीर अवजोग, प्रानपति सत्थन छुट्टै।
चुके न वीर अवसर प्रमान, जोग[1] जिहिं जोग अहुट्टै ॥
इक बंधन बंधियै, यहत तन बंधन अग्गै।
स्वामि संकरे छंडि[2], स्वामि हक्कारति भग्गै ॥

सोइ वीर धीर साहस सुई, सुइ रनवीर सु बीर हुइ ।
चित्रंग राव रा-बल चवै, जल डूबत रन कीर सुइ[3] ।। ५४ ।।

ग्रा० पा० १ से ३ पा०

शब्दार्थः—इहै=ऐसा, वह । अवजोग=अयोग्य । पति=स्वामि । चुकेन=नहीं चूकते, हाथ से नहीं जाने देते । प्रमान=सोचते, विचारते हुए । जोग-जिहि-जोग=अपने ही समान से । अहुट्टैं=भिड़पड़ता । इक बंधन=एकता के बंधन में । यहत=यह तो, ऐसे को तो । अग्गे=आगे को, भविष्य में । संकरें=आपत्ति समय । छंडि=छोड़ देता । हक्कारति=ललकारने पर भी । भग्गै=भाग जाता । वीर-धीर=धैर्य-वीर साहसी, पराक्रमी । सुई=वही । रन-बीर=युद्ध वीर । सु-बीर=श्रेष्ठ वीर, वीर शिरोमणि । हुइ=होता, हो सकता । चित्रंगरावं=चित्तौड़ेश्वर । रा-बल=बलराय राजा विक्रम । चवे=कहता । कीर=मल्लाह ।

अर्थः— तब चित्तौड़ेश्वर रावल समर विक्रम कहने लगे—हे वीरों ! सुनो ! वह वीर अयोग्य है, जो स्वामी के साथ (आपत्ति पड़ने पर) अपने प्राणों को नहीं छोड़ देता। वीर पुरूष उपयुक्त अवसर प्राप्त कर उसे हाथ से नहीं जाने देता, किन्तु अपने ही समान वीरों से भिड़कर एकता के बन्धन में बँध जाता है। जो व्यक्ति स्वामी को आपत्ति में छोड़कर, ललकारने पर भी स्वामी का साथ नहीं देते हुए, शत्रु को पीठ दिखाकर भाग जाता है, उसके लिए भविष्य में भी यह शारीरिक बंधन (आवागमन) तैयार रहता है; किन्तु स्वामी के युद्ध सलिल में (युद्ध-सिन्धु में डूबने पर जो व्यक्ति मल्लाह स्वरूप हो जाता है, वही धीरवीर, युद्धवीर और वीर शिरोमणि तथा पराक्रमी कहा जाता है।

दोहा

उदित अर्क दिसि पुव्व पहु, जगे सेन दोउ[1] जंग ।
अस्व अप्प बल बढ्ढए, बल वज्रंगी अंग ।। ५५ ।।

ग्रा० पा० १ दे० ।

शब्दार्थः—पहु=प्रातः समय । जगे=छेड़ा । अप्प=अपने । बल=बलपर । बल=विक्रम रावल । बज्रंगी-अंग=वज्रकाय ।

अर्थः—(प्रातःकाल) पूर्व दिशा में सूर्य के उदित होने पर दोनों सेनाओं ने युद्ध छेड़ दिया। उसी समय वज्रकाय महावीर रावल विक्रम ने अपने ही बल पर घोड़ों को आगे बढाया।

कवित्त

तब पृथिराज नरयंद समर उत्तरिय चढ़ाइय।
सज्जि सेन चतुरंग वाम को दह[1] बल साहिय[2] ॥
स्याम सेत धज बद्धि नेत निक्करि निक्याइय।
वंदि वीर विभ्भूति, लुलिय लिल्लाट लगाइय॥
नारद नद तुंवर सुचिर सिव समाधि जग्गाइवसि।
अद्भूत जुद्ध दोउ दीन कौ, अप्पु आन दिख्खे रहसि॥ ५६॥

ग्रा० पा० १, २, दे०।

शब्दार्थ:—उत्तरिय=उत्तर को। वाम कोदह=वाम पार्श्व पर। बल=विक्रम। साहिय=डट गया। युद्ध के लिये उद्यत हुआ। स्याम=स्वामी, राजा। निक्काइय=अच्छापन। रहसि=रहस्यमय। लुलिय=झुककर। जग्गाइवसि=जगादी।

अर्थ:—तब राजा पृथ्वीराज ने रावल समर को उत्तर की ओर बढ़ने के लिये निवेदन किया। इस बात को मानकर विक्रम रावल ने अपनी चतुरंगिनी सेना को सजाया और मुख्य चाहुआनी सेना के वाम पार्श्व पर युद्ध करने को उद्यत हुआ। जिस समय उसने ईश्वर की श्वेत रंग की ध्वजाएँ फहराती हुई आगे बढ़ चलीं उस समय प्रमुख वीरों की रण दक्षता प्रगट हो गयी। उस (नरेश्वर) ने शिव से वन्दना करते हुए झुककर ललाट (भाल) पर विभूति (भस्म) लगाई। उसी समय नारद के तानपूरे का नाद होने लगा और शिव भी समाधि से जाग गये। स्वयं शिव, दोनों धर्मावलम्बियों के उस अद्भुत रहस्य मय युद्ध को रणांगण में आकर देखने लगे।

दोहा

सुनि रु वत्त सुरतान चढि, सजि नख सिख अप सिद्ध।
अरु भर सकल सनाह कसि, चढ़ि अवधूत्त सनद्ध॥ ५७॥

शब्दार्थ:—अप=आप, स्वयम्। सिद्ध=सिधाया, चलपड़ा। सनाह=कवच। अवधूत=शिव स्वरूप रावल। सनद्ध=सन्नद्ध।

अर्थ:—अवधूत (शिव स्वरूप) रावल (मेवाड़ेश्वर) को सन्नद्ध हुआ (चढ़ा)। सुनकर बादशाह ने अपने को नख से शिखा तक सजाकर और समस्त योद्धाओं ने कवच कसकर उस पर चढ़ाई की।

जब हिन्दू दल जोर हुअ, छुट्टि मीर धर ध्रंम ॥
असम समै साहस्स करि, आरब खां प्राक्रम्म ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—जोर=शक्ति । छुट्टि=छूटे, झपटे । धर ध्रंम=धर्म धारके । असम=विषम । प्राक्रंम=पराक्रम, रावल ।

अर्थः—इधर जिस समय हिन्दुओं ने सैन्य शक्ति में वृद्धि की उधर से उसी समय अपने धर्म को दृढ़ धारण करने वाले मीर झपट पड़े । ऐसे विषम (आपत्ति प्रद) समय में साहस करने वाले आरबखां और रावल पराक्रम (मेवाड़ेश्वर) ही दिखाई दिये ।

इत राजन उत समर बर, दुअ दल सज्जि असंख ।
तन तुरंग तिन बर करन, नमिय तेज हय नंख ॥ ५९ ॥

शब्दार्थः—राजन=राजा [पृथ्वीराज] । समर-बर=समर-बल, समर-विक्रम । असंख=असंख्य, अपार । तन=ताना रास ऐंची । बर-करन=बल करने को । नमिय=टेढ़ा हुआ । नंख=बढ़ाया ।

अर्थः—इधर से पृथ्वीराज और उधर से रावल समर-विक्रम ने शत्रुओं से युद्ध करने के लिए अपने अपार सैन्य समूह को सज्जित किया । जब एक ओर पृथ्वीराज ने बल-प्रदर्शित करने के लिए घोड़े की रास को खींचा तो दूसरी ओर रावल समर ने भी झुक कर घोड़े को तीव्र गति से आगे बढ़ाया ।

कवित्त

धरी[१]-चारि दिन चढयौ, उमड़ि[२] आराव खांन खरि ।
ह्यंदु[४] सेन संगूह मोह-छंड्यौ सु कंक करि ॥
असि पहार चढिधार, मनुन[५] तुस्यौ तनु[६] तुट्टिय ।
अस्त वस्त वज्री कपाट दध्धीचन जुट्टिय ॥
पग पगति संभ[७] पग पग मुकति, भुगति भुम्मि कित्ती चलिय ।
धनि सुभट[८] सेन[९] सुलितांन, दल दरिय वीर मुत्ती खुलिय ॥ ६० ॥

प्रा० पा०, १ से ६ दे० ।

शब्दार्थः—उमड़ि=उमड़ कर। खरि=खड़ा, बढ़ा। ह्यन्दू=हिन्दू। कंक=युद्ध। मनु=मन। तनु=तन। पग पगति=कदम कदम पर। संभ=शंभू। दरिय=दल-कर। मुक्ति खुलिय=मोक्ष मार्ग को खोल दिया।

अर्थः—जब चार घड़ी दिन चढ़ गया, तब आरब खाँ सेना सहित आगे बढ़ा। हिन्दुओं का दल भी शारीरिक मोह को छोड़ कर युद्ध करने लगा। वीर गण एक दूसरे पर तलवार का प्रहार करते हुए करने-मरने लगे। युद्ध करते २ उनके शरीर टूट गये (खण्ड २ हो गये) किन्तु मन नहीं टूटे (युद्ध से विरक्त नहीं हुए) दधीचि ऋषि की हड्डियों से बने हुए वज्र के समान वक्षःस्थल वाले वे वीर युद्ध में एक दूसरे से भिड़ गये। उस समय उन वीरों को पग पग पर शिव और मोक्ष मिलने लगा। उन पृथ्वी के भोग करने वाले वीरों की कीर्ति चारों ओर फैल गई। धन्य है उन वीर सामन्तों को जिन्होंने सुलतान की सेना का दलन कर उनके लिए मोक्ष के द्वार खोल दिये।

एका दसि दिन जुद्ध उमड़ि आराबखाँन जुरि।
वल घट्यौ पतिसाहि[1] खिभिर[2] खुम्मान वान[3] तुरि[4] ॥
परि अरिष्ट सुविहान, भयै सब सत्थ उतारै।
अप्प अप्प मुख छंडि मंडि करि वार करारै ॥
घरियार सम सु[5] घन धाइ[6] बजि, लरत लोह भये लल्लरिय।
दोउ दीन दद दारूण[7] दुरदु[8] करहि[9] कहर[10] गुर गल्हरिय ॥ ६१ ॥

प्रा० पा० १, ५, १०, दे० । २, ३, ४ पा० ।

शब्दार्थः—खिभिरि=खदेड़े। वान तुरि=बाण वर्षा करके। परि अरिष्ट=अरिष्ट दृष्टि पड़ी। सु विहान=सुबहान, सुमान, स्वरूपी शाह। उतारै=उतर पड़े, (लड़ने को तैयार हुए)। मुख=मुहाना, नियुक्त स्थान। धाइ=वाद्य, आघात। लल्लरिय=लाल रंग के, रक्त रंजित। दुरदु=द्विरद, हाथी। गर गुल्हरिय=भारी गल्ह, विशेष ख्याति।

अर्थः—अरब खां ने एकादशी के दिन भीषण युद्ध किया। वीर खुम्मान (रावल समर विक्रम) ने भी बाण वर्षा कर शत्रुओं को खदेड़ दिया, जिससे बादशाह की ताकत (सैन्य शक्ति) कम होती चली गई और उस सुबहान (स्वरूपी शाह) की पराजय निश्चित हो गई। यह देख कर सब मुसलमान एक साथ उतर पड़े (लड़ने

को तैयार हो गये)। सबने अपने २ मुहाने (निश्चित स्थान) को छोड़कर, शाह की रक्षा के लिये कटिबद्ध होकर भीषण वार करने शुरू किये। एक दूसरे पर होने वाले तलवार के आघात घड़ियाल के समान बजने लगे और लड़ते हुए उन सबके शरीर रक्त रंजित हो गये। दोनों धर्मावलम्बी (हिन्दू और मुसलमान) योद्धा विध्नकारी दारूण हाथियों के समान थे। वे युद्ध में शत्रु के लिए आपत्ति उत्पन्न करते हुए प्रचुर ख्याति प्राप्त करने लगे।

खां खुरसांन ढहाइ, खांन खुरसांन गहन पति ।
सत्त इन भर समर, समर आहुंति मंडि छिति ॥
सैन नवत भ्रत नवत नवत गजराज साज नव ।
ते समस्त नव मंत, जंत्र तंत्रंन नवत सव ॥
दित अदित हंस इक सथ उड़त, रण[2] आहुट्टिय वीरवर ।
दिख्खहिति जख्य गंधर्व गन[3], जपत जीह कित्ती सभर ॥ ६२ ॥

प्रा० पा० १ पा०। २, ३, दे०।

शब्दार्थः—ढहाइ=ढहाकर, धराशायी करके। गहन=गृहण। सत्त-दून=दोसौ। आहुंति=आहुति। मंडि=दी। नवत=झुकपड़े, टूट पड़े, नष्ट हो गये। नवमंत=नमने पर, झुक पड़ने पर। जंत्र=यंत्र, [आग्नेयास्त्र आदि]। तंत्रंन=तंत्र [मंत्रे हुए तावीज आदि]। दित=दिति से उत्पन्न, देवता स्वरूपी हिन्दू। अदित=अदिती से उत्पन्न, दानव स्वरूपी मुसलमान। हंस=प्राणपखेरु। जख्य=यक्ष। जीह=जिव्हा। कित्ती=कीर्ति।

अर्थः—खुरासांन खां को धराशायी करके रावल चित्तौड़ेश्वर खुरासानी खानों और उनके स्वामी (बादशाह) को ग्रसने के लिए गृहण के समान हो गया। उस युद्ध में स्वयं रावल समर के दो सौ योद्धाओं ने भी अपने प्राणों की आहुति दे दी। उस समय सेना सेवक, नवीन साज सहित हाथी और यंत्र (आग्नेयास्त्र) तंत्र आदि नष्ट होगये। देवता और दानव स्वरूपी हिन्दू और मुस्लिम वीरों के प्राण पखेरू एक साथ उड़ने लगे। उस युद्ध में श्रेष्ठ वीर परस्पर भिड़ गये, जिसे देखते हुए यक्ष और गंधर्व उन वीरों का यशगान करने लगे।

परयो समर खावास समर, जित्यौ[1] सुलितांनी[2] ।
जुटि भट्टी महनंग छत्र[3] नंख्यौ[4] सुविहानी ॥

परयौ गौर केहरी, रेह अजमेरां रक्खी[५] ।
स्वामि ध्रम्म रस रक्त, किति भारथ भर भक्खी ।
रघुवंश पंच पंचह मिले, वर पञ्चानन नाँउ[६] कवि[७] ।
चित्रंग भींच[८] पंचौ परत, भय[९] भयान[१०] मध्यान्ह रवि[११] ।। ६३ ।।
ग्रा० पा० १ से ११ दे० ।

शब्दार्थ:—खावास=पास में रहने वाले, अंग रक्षक । जुटि=जुटकर । नंख्यौ=पटक दिया । सुबहांन=शाह का । गौर=गौड़, क्षत्रीय । भींच=भयानक । भयान=भयानक ।

अर्थ:—उस युद्ध में समर विक्रम के अंग रक्षक योद्धाओं के धराशायी हो जाने पर भी ऐसा प्रतीत हुआ कि उस (रावत समर) की ही विजय होगी । महनसी भट्टी ने भी युद्ध करके शाह के छत्र को गिरा दिया । अपने पूर्वजों के "अजमेर पति" (नामक) विरुद (मर्यादा) को निभाता हुआ तथा स्वामी-धर्म और वीर रस में लीन रहता हुआ केहरी गौड़ भी धराशायी होगया । जिसका कीर्तिगान समस्त भारत ने किया । श्रेष्ठ पंचानन (सिंह) के समान पाँच रघुवंशी वीर भी अपना नाम अमर कर पंचतत्व में मिल गये । चित्तौड़ पति के कुलवाले वे भयानक यौद्धा जिस समय धराशायी हुए, उस समय मध्यान्ह के सूर्य ने भी भयानक रूप धारण कर लिया ।

चढत भांन मध्यान, विरचि गख्खर उघरि[१] खर ।
सिमटि[२] सेन सामन्त, उमड़ि[३] तत्तार खांन पर[४] ।।
वज्र घात आरिष्ट, वीर वालिष्ट[५] गरिष्टिय ।
हत्त[६] वत्त[७] विस्तरिय, लुथ्थि लुथ्थिन[८] पर लिट्टिय[१०] ।।
धारंग लुट्टियन[११] छंडि[१२] है इड[१३], हक्क[१४] वज्जी खलक[१५] ।
कल[१६] कूह मंचि[१७] मानहु[१८] महन[१९], उघरि स्यंभ[२०] दिख्खिय[२१] पलक[२२] ।।६४।।
ग्रा० पा० १ पा० का० घ० । २ से २२ दे० ।

शब्दार्थ:—चढ़त भांन=सूर्य के ऊपर उठने पर । विरचि=ललकारते हुए । उघरिखर=ऊपर बढे, आक्रमण किया । सिमटि=एकत्रित होकर । वालिष्ट=बलवान । गरिष्टिय=प्रसना शुरू किया । हत्त=हाथ, कर प्रहार । वत्त=बात । ख्याति । धारंग=घायल वीर । छंडि है=घोड़े छोड़कर । डक्क=कूदते हुए । हक्क=हुंकार । वज्जी=की । कलकूह=अँधेरी रात्रि [अमावस्या] । मंचि=हो गया, हो गई । स्यम्भ=शम्भू ।

अर्थः—मध्यान्ह के समय गक्खरी वीर ललकारते हुए आगे बढ़े, यह देखकर सब सामन्त ससैन्य एकत्रित होकर तत्तार खाँ पर उमड़ पड़े। उन बलवान वीरों ने अनिष्टकारी वज्राघात करते हुए शत्रुओं को ग्रसना (नष्ट करना) शुरु कर दिया, जिससे उनके कर प्रहार की ख्याति फैलने लगी। लोथों से लोथे अड़ गईं, किन्तु वीर घायल होकर भी युद्ध से नहीं हटे। वे घोड़े छोड़कर पृथ्वी पर कूदते हुए हुंकार करने लगे। उस समय ऐसा दिखाई दिया, मानों घनघोर अँधेरी रात्रि (अमावस्या) होगई हो, अथवा शिव ने पलक (तृतीय नैत्र) खोल कर देखा हो।

पल उध्घरि दिखि स्यम्भ[1], ब्रह्म दिक्खिय[2] ब्रह्मासन।
प्रकृति पुरुष दिक्खियन, [3]प्रकृति दिख्यौ पुरखातन[4] ॥
थान थान जम पुच्छि,रम्भ पुच्छ्यौ[5]नभ[6] फिरि[7]फिरि।
भौ अचंभ कवि चंद लोक मग्गै[8] सु देवसरि[9]।
लम्भी सु मुकति छिन खग्ग मग, जोग मग्गु जिन[10] ढुक्कयौ।
सामन्त सूर मिलि सूर ग्रह, फिरिन तिनन तनु मुक्कयौ[11] ॥ ६५॥
ग्रा० पा० १ से ३, ५ से ११ दे०। ४ पा०।

शब्दार्थः—स्यंभ=शंभू। प्रकृति पुरुष=विष्णु। दिक्खियन=देखा। पुरखातन=पुरुषातन, पौरुष, शौर्य। पुच्छियौ=तलाश की। लोक-मग्गै=लोगों के आवागमन के रास्ते पर। देव सरि=गंगा, आकाश गंगा। लम्भी=प्राप्त की। ढुक्कयौ=ढूकदिया, ठेल दिया, धकेल दिया। सूर-ग्रह=सूर्य गृह, सूर्य मण्डल। तिन न=तिन ने, नहीं, उन्होंने नहीं। तनु-मुक्कयौ=शरीर त्याग दिया।

अर्थः—पलक (नैत्र) खोलते हुए शिवने, ब्रह्मासन स्थित ब्रह्माने, प्रकृति पुरुष (विष्णु) ने और प्रकृति ने युद्ध में मारे गये वीरों के शौर्य को ही देखा किन्तु उनकी लुप्त आत्मा जो मोक्ष प्राप्त कर चुकी थी, वे भी नहीं देख सके। यम ने भी यत्र तत्र खोज की, रंभा ने आकाश मार्ग में भ्रमण कर बहुत तलाश की, किन्तु किसी ने उन्हें नहीं पाया। कवि चंद कहता है कि लोकों में आवागमन के मार्ग पर स्थित गंगा (आकाश गंगा) को भी उनके यकायक अदृश्य होने पर आश्चर्य हुआ। उन मृत वीरों ने योग-मार्ग को छोड़ कर खड्ग मार्ग से ही मोक्ष को प्राप्त कर लिया। सूर्य-मण्डल में मिलकर उन्होंने फिर से अपने शरीर (ग्रहण और) त्याग का अवसर नहीं आने दिया।

दोहा

उभय सहस गख्खर परिग, थल व्यंस्यौ सुविहान[1] ।
समर स्यंघ[2] रावल समुख-परिग, बीर विय खांन ॥ ६६ ॥

ग्रा० पा० १ दे० घ०, २, दे० ।

शब्दार्थः—उभय सहस=दो सहस्र । परिग=धराशाई हुए । थल=रणस्थल में । व्यंस्यौ=घेर लिया । समुख-परिग=सामने पड़े, सामना किया ।

अर्थः— दो हजार गख्खर वीरों के धराशाई हो जाने पर सुलतान को रणस्थल में घेर लिया गया यह देख कर दो मुस्लिम वीरों ने रावल समर-केशरी का सामना किया ।

रहिग जांम तन अद्ध घटि, टरिन बीर जुधवार ।
खां-निसुरत्ति तत्तारखां, लयौ सैन सिर भार ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—रहिग=रहगया । जांम=जब । तन=तिन, वह दिन । टरिन=नहीं टले, नहीं हटे । जुधवार=जुझवार, युद्ध कर्ता ।

अर्थ—युद्ध करते २ दिन आधी घड़ी शेष रह गया, फिर भी युद्ध कर्ता वीर युद्ध से नहीं हटे । तब निसुरत्तखां और तत्तारखां ने सेना का भार ग्रहण किया (रावल समर केशरी से युद्ध छेड़ा) ।

अति प्राक्रम-रावर सुभर, कूरँभ नरसिंघ जग्गि ।
रघुवंशी अति क्रम्म गुर, कत्थ करन कलि लग्गि ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—अति=इधर से । प्राक्रम-रावल=पराक्रम रावल, विक्रम रावल, समर-विक्रम । सुभर=योद्धा । जग्गि=जग पड़ा, उत्तेजित हो गया । अतिक्रम=विशेष । गुर=भारी, गौरव मई । कत्थ=ख्याति । करन=करने, बनाने । लग्गि=लगा ।

अर्थः—(दोनों मुस्लिम वीरों के आक्रमण करने पर) श्रेष्ठ वीर रावल समर-विक्रम भी कच्छप और नृसिंहावतार के समान जग पड़ा (उत्तेजित हो गया) । (युद्ध करते हुए) उस रघुवंशी राजा ने कलियुग में अपनी ख्याति को विशेष गौरवमयी बना लिया ।

कवित्त

जबहि सेन चतुरंग, साहि अरि जंग आइ जुहि[1],
तबहि राज रघुवंस, झुकित बर खड्ग अप्प गहि ॥
हनिय मत्त गजराज, सिंघ कर मत्थ सिंघ[2] वहि ।
मनो वास[3] रँगरेज, मट्ट फुट्टयो सुरंग ढहि ॥
दौरे मसंद किलकार करि, धुअ समान साहस धरै ।
वज्जै बहून असिवर सबर, सुकवि चंद कीरति करै ॥ ६९ ॥

ग्रा० पा० १ घ०, का०, भीं० । २, ३, पा०, घ, का० ।

शब्दार्थः—साहि=शाह । अरि=अड़ा, जुटा । आई=आकर । जुहि=जो कर, देखकर । झुकित=झुक कर, टेढ़े होकर (या लटकती हुई) । सिंघ=सिंह । सिंघ=सिंघली जाति का हाथी । मट्ट=मटका, पात्र । किलकार=किलकारी । धुअ=ध्रुव । बज्जैव=बजाई, चलाई । सबर=सहबल, विक्रम (रावलो) ।

अर्थः—जब चतुरंगिनी सेना सहित बादशाह ने आकर युद्ध करना प्रारम्भ किया, तब रघुवंशियों के राजा (रावल) ने टेढ़े होकर अपनी श्रेष्ठ तलवार से शाह के मतवाले हाथी पर इस प्रकार प्रहार किया, मानों सिंह ने सिंघली हाथी के मस्तक पर कराघात किया हो । इस आघात से खण्ड न होकर वह हाथी इस प्रकार लुढ़क पड़ा, मानों रंगरेज के घर (हाट) पर रंग से भरा हुआ पात्र फूट कर लुढ़क गया हो । शाह के हाथी को इस तरह लुढ़कता देखकर, शाह के मसनद धारी योद्धा किलकारी करते हुए रावल की ओर दौड़ पड़े । फिर भी विक्रम रावल ने, ध्रुव के समान अटल रहते हुए धैर्य धारण किया और द्विगुण वेग से तलवार चलाई । यह देखकर मैंने (कविचंद ने) भी उसका कीर्ति गान किया ।

हुइ[1] तत्तौ रघुवंस भीर भंजन चहुवानी,
भौ[2] दुल्लह तिहिवेर वरण वरणी सुलितानी[3] ।
वीर मंत्र उच्चार लोह अच्छित उच्छारै ।
मिलि अच्छरि करि गांन लौन गिद्धनी सु उत्तारै ॥
पूजंतु कलस धपि धवल सिर कलह केलि भाँवरि[4] फिरहि ॥
मंडप्प खेत मानिनि युगल[5] सस्त्र कटाच्छसि झुकि करहि ॥ ७० ॥

ग्रा० पा० १ से ३ दे० । ४ पा० भीं० । ५ संशोधित ।

शब्दार्थः—हुइतत्तौ=तेज हुआ, तेश में आया। भीर=आपत्ति। भौ=भयो, हुआ, बना। बरणी=वरण की हुई, अधिकार में रहने वाली। सुलितानी=शाह की। अच्छित=अक्षत। उच्छारै=अप्सराएँ। ध्रपि= तृप्त। धवल=वृषभ।

अर्थः— चाहुवान पर आई हुई आपत्ति को दूर करने के लिये रघुवंशी रावल-समर विक्रम उत्तेजित हो गया। वह एक सेना (रूपी नायिका) का पति होते भी (दूसरी-मुस्लिम सेना के लिए) दुलहा स्वरूप बनकर शाह की वरण की हुई (शाह के अधिकार में रहने वाली) सेना (रूपी नायिका) को भी वरण (अधिकार में) करने के लिए तैयार हो गया। वहाँ पर वैवाहिक मंत्र के स्थान पर वीर मंत्र का उच्चारण होने लगा। अक्षत के स्थान पर शस्त्र उछाले जाने लगे। अप्सराओं द्वारा मंगल गान होने लगा। गिद्धनियाँ राई-लोन वारने लगीं (दृष्टि नहीं लगने के लिये वीरों पर पंख फैलाकर चक्कर देने लगी)। युद्ध रस से तृप्त (छके हुए) वीरों के सिर कलश के बजाय पूजे जाने लगे। कलह-क्रीड़ा (युद्ध क्रीड़ा) के रूप में भांवरी होने लगी। रणक्षेत्र विवाह मंडप बन गया। तब दोनों (हिन्दू, मुस्लिम) विपक्षियों की सेनाएँ मानवती नायिका के रूप में झुक-झुक कर, शस्त्र प्रहार के रूप में एक दूसरी पर कटाक्ष करने लगीं।

दस हिंमर[१] कटि समर, छोरि गज-गाह-हथ्थ लिय।
श्रोन छिंछि सब अंग, पुहप जनू वृष्टि देव किय॥
किल-किंचित रसु भयौ[२], लुत्थि पर लुत्थि अहुट्टिय।
सीस टुट्टि धर टुट्टि[३], जुट्टि[४] अरियन फिरि जुट्टिय॥
विडर्यौ देख सुलतांन मन, सेन सब्ब मन विड्डुरिय।
अटिहार कोइ पूज्जै नहीं, वल अभूत आतम करिय॥ ७१॥

ग्रा० पा० १, ३, ४, दे०। २ का० भीं० पा०।

शब्दार्थः—हिंमर=हैवर, घोड़े। छोरि=छोड़े, चलाये, प्रहार किया। गज गाह=हाथियों को कुचल देने वाला सिंह। हथ्थ लिय=हाथल, हाथ। छिंछ=धारा, पिचकारी। पुहप=पुष्प। किल किंचित रस=किल किंचित हाव में त्रास, हास, रस और क्रोध एक साथ क्षणिक उत्पन्न होते हैं। अहुट्टिय=अड़ गई, जुट गई। धर=धड़, रुण्ड। जुट्टि=जुटाकर, कसकर। जुट्टिय=जुट पड़े। विड्डुर्यौ=डरा भयातुर हुआ। अटिहार=अटल करने वाले, युद्ध में बढ़ २ कर आक्रमण करने वाले। पुज्जै नहीं=नहीं पहुँच सके। आतम=आत्मा।

अर्थः— उस युद्ध में समर विक्रम के दस घोड़े मारे गये। लगातार एक के बाद दूसरे पर सवार होता हुआ, वह क्रोध में आकर शत्रुओं पर सिंह तुल्य कर-प्रहार करने लग। उसका सारा शरीर खून की पिचकारियों से तर होकर ऐसा दिखाई पड़ा, मानों देवताओं ने उसके शरीर पर विविध रंग की पुष्प वृष्टि की हो। वहाँ पर किल किंचित हाव (समर विक्रम के आतंक से शत्रुओं में त्रास, मित्रों में प्रसन्नता, अप्सराओं में रस, (प्रेम) स्वयं समर विक्रम में या विपक्षियों में क्रोध) छा गया। लोथों पर लोथें अड़ गई, वीरों के सिर फूट गये, रुंड टूट गये, फिर भी वे, उन्हें बाँधकर, शत्रुओं से बराबर युद्ध करते रहे। इस प्रकार समर-विक्रम और उसके साथियों के युद्ध में जुट पड़ने पर शाही दल का और शाह के साथियों की सेना का मन भयातुर हो गया। रावल ने जिस अद्भुत आत्म बल का प्रदर्शन किया। उसकी समानता, युद्ध में बढ़ बढ़ कर आक्रमण करने वाले वीरों में से उसे कोई भी नहीं कर सका।

तब पृथिराज नरयद[1] साहि सम्मुह[2] असि[3] साहिय ॥
पंचवान कम्मान साहि गौरी झुकि वाहिय ॥
सरकि सेन सव धरकि पच्छ जंगल भए ठढ्ढे।
प्रथ्थ जेम भारथ्थ कृष्ण सारथ सम गढ्ढे ॥
कर करकि करकि कम्मान कर, पंख तेज छुट्यौ सवल।
नट डोरि जांनि पट्टह चढ्यौ, रूधिर धारि मंडी सुकल[4] ॥ ७२ ॥

ग्रा० पा० १, २, ३ दे०। ४ दे० का० घ०।

शब्दार्थः—साहि=शाह। असि=तलवार। साहिय=पकड़ी। साहि=ग्रहण कर, पकड़ कर। धरकि=कंपित होकर। पच्छ=पक्ष। जंगल=जंगलेश्वर [पृथ्वीराज]। भए ठढ्ढे=डटगया। पथ्थ=पार्थ, अर्जुन। जैम=जेसे। सारथ=सारथी। गड्ढे=दढ़वीर। करकि=कड़क कर, ललकारकर। करकि-कंमान=टंकार करती हुई कम्मान। पंख=पत्र, पत्री, बाण। तेज= तेजी से, शीघ्रता से। छुट्यौ=छोड़ा, चलाया। पट्टह=पट्टा [एक प्रकार की तलवार]।

अर्थः—इधर राजा पृथ्वीराज ने भी शाह के सामने होकर तलवार पकड़ी, उधर गौरी शाह ने हाथ में लेकर पांच बाण चलाये, जिससे समस्त चाहुवानी सेना कम्पित होकर पीछे की ओर हट गई। यह देखकर जंगलेश्वर (पृथ्वीराज) महाभारत कालीन

पार्थ के समान उस सेना की सहायता के लिए डट गया; और दृढ़ वीर रावल समर भी पृथ्वीराज के पक्ष में कृष्ण के समान ही सारथी बन गया। उस समय बलवान पृथ्वीराज ने शत्रुओं को ललकारते हुए टंकार करती हुई कमान को उठाकर, इस प्रकार शीघ्रता पूर्वक बाण वृष्टि की मानों नट, डोरी पर चढ़कर शीघ्रता पूर्वक तलवार चला रहा हो। इसके कारण सब ओर रक्तधारा प्रवाहित हो गई।

गाथा

इत असुराण नर्यंदं (उत) हिंदं इंद चम्पि चहुवानम् ॥
तकि तिरछे पंच मसंदं, हंके हंक वंक विखमाही ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ:—असुराण नर्यंदं=तुरुष्क पति, असुरपति, बादशाह। हिन्दं इंद=हिन्दू राजा। चम्पि=दबाया। तकि=ताक कर, देखकर। तिरछे=टेढ़े। मसंदं=मसनद धारी, जिनको गादी मोड़े पर बैठने का सम्मान था। हंके=बढ़े। हंक=बढ़ाये, आगे किये। वंक=बांके। विषमाही=विषम।

अर्थ:—इधर से ज्योंही बादशाह आगे बढ़ा त्योंही उधर से हिन्दू राजा चाहुवान पृथ्वीराज ने उसे धर दबाया। यह देख कर पाँच मसनद धारी मुसलमान सैनिक अपने बाँके और विषम वीरों को आगे करते हुए बढ़े।

दोहा

अलीखाँन आलम असद, सूर सरीफ सलेम।
वज्र वान वज्जै वलिय तक्यौ राज जंगलेम ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ:—सूर=शूरवीर। सलेम=सलीम। वज्र वान=वज्र के समान बाण। वज्जै=वज्रकाय। तक्यौ=देखा। राज जंगलेम=जंगलेश्वर, नरेश।

अर्थ:—उन पाँचों वीरों को जिनके नाम अलिखाँ, आलमखाँ, असद्खाँ, शरीफखाँ, और सलीमखाँ थे, और जिनके बाण तथा अंग दोनों वज्र तुल्य थे, (ऐसे उन वीरों को) बढ़ते हुए जंगलेश्वर (पृथ्वीराज) ने देखा।

कवित्त

तक्किराज तन हक्कि वक्कि वीरुदैत वीर जनु।
चाहुवान कम्मान, वान वज्जीय मेघ जनु ॥

अलीखांन, इकवान, संगि आलम उद्धारिय ।
असिवर असद असंध उधरि सारीफ कटारिय ॥
सल्लेम सीस कर चम्पि विय, रूधिर भेजि इक्कत उडिय ।
जयजया सद दुव-दीन, विन प्रांन पंच करि कर छुडिय ॥ ७५ ॥

शब्दार्थः—तक्कि=देखकर । तन=तनकर, क्रोधकर, खिंचकर । हक्कि=बढ़ा । वक्कि=बांका । विरुदैत=विरुदाया हुआ, उत्तेजित हुआ । वान वज्जिय=वज्र बाण । संगि=साथी । उद्धारिय=उद्धार किया, नष्ट किया, मोक्ष किया । असि=तलवार । असद=असदखां । असंध=संध रहित, जोड़ रहित । सारीफ=शरीफखां । सल्लेम=सलीम खां । विय=दोनों । भेजि=मज्जा, गूदा । इक्कर्त=एक साथ । उडिय=निकल पड़ी । दुवदीन=दोनों दीन । पंच=पांचों की । करिकर=करके । छुडिय=छोड़े ।

अर्थः—यह देखते ही पृथ्वीराज क्रोधित होता हुआ उत्तेजित किये गये वीर के समान उनकी ओर बढ़ा और कमान से वज्र-बाणों को मेघ के सदृश बरसाने लगा । उसके एक ही बाण ने अलीखां और उसके साथी आलमखां का उद्धार कर दिया [मोक्ष कर दिया] । उसकी श्रेष्ठ तलवार ने असदखां के जोड़ खोल दिये (अंग-काट दिये) उसकी कटारी से शरीफखां का मोक्ष हो गया । उसने सलीम के शीश को हाथों से धर दबाया, जिससे रुधिर और मज्जा, एक साथ निकल पड़ा ।

पंच पहुंमि परि पिक्खि, भँवरि तुरकान सेन दुरि ।
अहुटि प्यंड पंचास, त्रास भयभीत पिक्खि करि ॥
हक्कारिय चंहुवान, जान पावहि कँह गौरिय ।
अतंक वर वर कहर, कहर खिल्लिय जनु होरिय ॥
सोमेस सूर सुवनह सरह, वाज विद्धि पक्खर सहित ।
विय वाज सज्जि गज्जिय गजन, इमि सुहिंद पिक्खिय अहित ॥ ७६ ॥

शब्दार्थः—पंच=पांचो । पहुंमि परि=पृथ्वी पर पड़े, धराशायी हुए । भँवरि=भमरि, डरकर, भहरा कर । अहुटि=भिड़पड़े । प्यंड पंचास=पचास पिंड, शरीर, वीरकाय । हंकारिय=घोड़े को बढ़ाया । अतंक=काल । वरवर=लगातार, बारबार । कहर=विघ्न । कहर=आपत्ति । होरिय=फाग । सरह=शर, बाण । वाज=बाजि, घोड़ा । पक्खर=पाखर । विय वाज=दूसरा घोड़ा । गजन=गजनेश्वर, शाहबुद्दीन गौरी ।

अर्थः—उपर्युक्त पांचों मुसलमानों को धराशायी होते देखकर मुस्लिम सेना डरकर छिप गई (सामने से हट गई)। उसे भयभीत और त्रसित देखकर पचास मुसलमान योद्धा पृथ्वीराज से भिड़ गये। तब चाहुवान (पृथ्वीराज) ने भी गौरी शाह की ओर अपने घोड़े को बढ़ाया। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानों यमराज और विघ्न लगातार आपत्ति की होली खेल रहे हों। उसी समय सोमेश्वर के पुत्र (पृथ्वीराज) ने एक ही बाँण से गौरीशाह के घोड़े को पाखर सहित बेध दिया। तब गजनी पति (गोरीशाह) दूसरे घोड़े पर चढ़कर गर्जना करने लगा। जिसको सुनकर हिन्दुओं को अपने अहित की ही संभावना दिखाई पड़ी।

सुवर वीर गज्जन[1] नरयंद[2], खान[3] तत्तार बत्त सुनि।
राज रक्खिव[4] कीजै[5] विचार, रीति[6] नर नाग देव दुनि[7] ॥
सुणि[8] गज्जनवै साहि[9], दाउ[10] दिज्जै नहिं दुज्जन।
जस अपजस हुई[11] मरन, भोग भुगवइ धर[12] कुज्जन ॥
सुक्ख दुक्ख लाभ[13] अदसा दसा, ऐ शरीर लग्गा रहैं।
उँच नीच चत्रंपत चक्रगति, पति-पवित्र जिय सब सहैं ॥ ७७ ॥

ग्रा० पा० १ से ५, ७ से १३ दे०। ६ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—राज रक्खिव=राज रक्षा का। दुनि=दुनियाँ, संसार। कुज्जन=कौन मनुष्य। अदसा=दशा बुरी, भली दशा। ऊँचनीच=उच्च, नीच। चत्रंपत=चांपता है, दबाता है। पति-पवित्र=पवित्र स्वामी।

अर्थः—तब शहाबुद्दीन बोला—हे तत्तार खां मेरी बात सुनो, नर, नाग, देवता और दुनियाँ की यह रीति है कि राज्य रक्षा के लिए विचार करते रहना चाहिये। तब तत्तार खाँ बोला—हे गज्जनेश्वर। इस समय शत्रु पर घात करने का अवसर नहीं है। यश अपयश तो होता ही रहता है, मृत्यु होने पर पृथ्वी को न जाने कौन भोगेगा? सुख-दुख, लाभ-हानि अच्छी और खराब दशा तो शरीर के साथ लगी ही रहती है संसार चक्र ऊँच-नीच होता हुआ हमें सदैव दबाता रहता है। अतः हे पवित्र स्वामी! जीवन बचाये रखने के लिये सब सहना पड़ता है (अतः आप अपनी रक्षा करने लिए युद्ध से हट जाइये)।

दोहा

का काया मायातिका, का ग्रहनी ग्रह कौन ।
अप्पौं अंख्यौं मिहचतें, जो देखियै सुलौन ।। ७८ ।।

शब्दार्थ—का=क्या। अप्पौं=अपनी। मिहचतें=मीचते, बंद होते, मृत्यु से पूर्व। सुलोन=सलोने, सुन्दर।

अर्थः—काया, माया, गृहिणी और घर किसी के नहीं होते। अपने नैत्रों के बंद होने के पहले २ ही ये सब सुन्दर दिखाई पड़ते हैं (वास्तव में मृत्यु हो जाने पर ये सब निस्सार सिद्ध हो जाते हैं)।

कवित्त

सुनहि खांन तत्तार, अप्प स्वारथ सह लग्गै ।
पसु पंखि बर जित्ते, तत्त सोई तन मग्गै ।।
त्रिय वधव[1] सेवक सुमित[2], अप्प तन पै तन चाहैं ।
सुर णर[3] गन गधर्व[4], जग्य जापहि अवगाहै ।।
आचेत अत्तर परवस परै, भोयन विन मरदंग कह ।
जम्म हथ्थ जीव पंजर परै, पंच सलाकह तुच्छ सह ।। ७९ ।।

ग्रा० पा० १, २, पा० ! ३ दे० । ४ पा० दे० ।

शब्दार्थ—सह=सब। पसु=पशु। तत्त=तत्व। बंधन=बंधु। सुमित्त=मित्र। णर=नर। अग्गाहे=अवगाहन करते, खोज करते। आचेत=अचेता। भोयन=भुवन, पृथ्वी। मरदंग=मरदानगी, पौरुष। पंच=पंच तत्व मय।

अर्थः—शाह बोला=हे तत्तार खाँ ? मेरी बात सुनों, सभी अपनी २ स्वार्थ-सिद्धि में लगे हैं। पशु-पक्षी आदि जितने श्रेष्ठ जीव हैं, वे भी इसी तत्व को (स्वार्थ को) मुख्य तत्व समझते हैं (और इसी मार्ग पर चलते रहते हैं)। स्त्री, बन्धु, सेवक और मित्र भी अपने ही शरीर सुख लिये एक दूसरे को चाहते हैं। सुर, नर और गंधर्व गण आदि भी अपने स्वार्थ के लिये ही जप यज्ञादि करते हैं। पराधीन होने से ही वे सब अचेतन अवस्था में पड़े हुए समझे जाते हैं। किन्तु पृथ्वी के स्वामित्व बिना पौरुषत्व कैसा ? एक न एक दिन यह पिंजड़ा (शरीर) जिसमें रहता है; यम के हाथ में पड़

जाता है और तब यह पंच तत्व मय शरीर (पंजर) ज्योति रहित होने पर तुच्छ (हीन) हो जाता है ।

दोहा

जम्मर काल सु व्याल भ्रम, पंजर तुट्टत तेम ।
खां तत्तार अरदासि सुनि, मो आलम-मति एम ॥ ८० ॥

शब्दार्थः—जम्मर=जबर, भारी । पंजर=शरीर । तुट्टत=टूटता, नष्ट होता । तेम=तैसे ही, योंही, स्वतः । आलम-मति=संसार की बुद्धि में । ऐम=ऐसा ।

अर्थः—तत्तार खां ने कहा मेरी प्रार्थना सुनिये, सांसारिक बुद्धि में काल रूपी भयंकर सर्प द्वारा नाश को प्राप्त होना केवल भ्रम मात्र ही है । शरीर तो स्वतः नाशवान है ।

कवित्त

सोइ सेवक सुनि साहि,[१] स्वामि संकरै[२] छुड़ावै ।
सोइ सुमित्त[३] अप्पनौ, चित्त मित्तें न दुरावै ॥
सोइ सुबंध[४] अप्पनौ, दसा अवदसा न कथ्थै ।
साइ सुतीय अप्पनी[५], असु[६] मुक्कै असु सथ्थै ॥
मति सोइ जोइ[७] पय उप्पजै, तत्त[८] सोइ तत्तहि मिलै ।
हम भिरत[९] परत सुलतांन सुनि, गज्जन वै गज्जन चलै ॥ ८१ ॥
म्रा० पा० १ से ४, ८ दे० । ५, ६, दे० पा० । ७, ६, पा० ।

शब्दार्थः—साहि=बादशाह । संकरै=आपत्ति से । मित्त=मित्र । चित्त मित्तें=चित्त की बात मित्र से । नदुरावे=नहीं छिपाता है । बंध=बंधू, भाई । दसा अवदसा=भली बुरी बात । कथ्थै=कहता है । असु=अशु, शरीर । मुक्कै=छोड़ देती । पय=पद, पद पर शीघ्र । तत्त=तत्व । गज्जन वै=गजनेश्वर । गज्जन=गजनी को ।

अर्थ—हे बादशाह ! सुनिये श्रेष्ठ सेवक वही है जो स्वामि को आपत्ति से छुडावे; श्रेष्ठ वहीं है जो मित्र से कोई बात नहीं छिपावे, श्रेष्ठ बन्धु वही है जो अपनी भली बुरी बात को प्रगट नहीं करे, श्रेष्ठ स्त्री वही है जो पति के शरीर के साथ ही अपने शरीर को छोड़ दे, श्रेष्ठ मति (बुद्धि) वही है । जो शीघ्र उत्पन्न हो जावे और तत्व में

मिल जाना ही सच्चा तत्व है। अस्तु हम आपके लिये शत्रु से भिड़ जाने को तैयार हैं। अतः हे गजनेश्वर! आप गजनी को लौट जाइये।

तमकि तेज गौरी नरयंद[1], चित्त डोलै वलु[2] साह्यौ।
अध्रम भत्त विनु अम्ब, पुट्ठि गौरीण समायौ॥
सुवर वीर सुलितांन, सेन चहुवान ढँढोरी।
पगी जानि पारख्खि, जेम दरिया हिल्लोरी॥
पछिलौ वल न सुलितांन लखि[3], स्यंध-वलोकन लख्खयौ[4]।
मुरि गयौ सेन सुलितांन कौ, छत्र सीस तब रणंरक्खयौ[5]॥८२॥

ग्रा० पा० १, से ३, ५, दे०। ४ पा०।

शब्दार्थ—चित डोले=विचलित चित्त को स्थिर करके। बलु-साह्यौ=बलको ग्रहण किया। अध्रम=नीच। भ्रत्त=नौकर। अम्ब=जल, नूर, कांति। पुट्ठि=पीठ पक्ष। गौरी खांन दांन के योद्धा। समाह्यौ=डटे रहे। पगी=थाह लेने वाला। पारख्खि=परीक्षक, चतुर। जेम=जैसे। पछिलौ=पीछेका। स्यंध-वलोकन=सिंहावलोकन, शेर की तरह पीछे। सेन=सेना। रणंरक्खयौ=नंखयौ, डालदिया, हटादिया।

अर्थ—गौरीशाह ने जोश में आकर अपने विचलित होते हुए चित्त को स्थिर कर बल ग्रहण किया। इस पर कान्ति रहित नीच सेवक चलते बने; केवल गौरी खान दान के योद्धा ही उसके पक्ष में डटे रहे। उस बहादुर सुलतान ने अपने ही बल पर चाहुवानी सेना को इस तरह टटोल (परख) लिया, जैसे कोई थाह लेने में चतुर मल्लाह समुद्र को झकझोर कर थाह लेलेता है। शेर जिस प्रकार पीछे देखता है, उस प्रकार पीछे फिर कर देखने पर उसे पार्श्व सेना नहीं दिखाई दी। उसके (पार्श्व सेना के) पीठ दिखाकर भाग जाने पर, उसने पहचान में नहीं आने के उद्देश्य से, अपने मस्तक पर से शाही छत्र को हटवा दिया।

छत्र सीस धर परत, फिरिय तत्तार खाँन रणु।
वडवानल वलिवंड, समुद्र चहुवान दहन जनु॥
हूह हक्क उच्छरिय, तेक तच्छरिय सु रज्जिय।
समर भ्रमर परि सूर, हूर अच्छारी सुरज्जिय॥

पल पुज्जि सद्द जम्बुक गिधिय, रुद्धि चवस्सठि रज्जई।
घन घुम्मि घाइ तत्तार धुकि, जुद्ध वत्त जग वज्जई॥ ८३॥

शब्दार्थः—समुद=समुद्र। हूह हक्क=हुंकार करता हुआ। उच्छरिय=उछला। तेक=तलवार। तच्छरिय=तराशती हुई, काटती हुई। समर-भ्रमर=युद्ध के चक्कर में। पल-पुज्जि=पल प्राप्त करके। सद्द=आवाज करने लगी। गिधिय=गिद्धनियाँ। रुद्धि=रुधिर। चवस्सठी=चौंसठ योगिनियां। रज्जई=रंजई, तृप्त हो गई। घुम्मि=झूमता हुआ। धुकि=झुका। जग वज्जई=संसार में फैल गई।

अर्थः—शाही छत्र के जमीन पर पड़ते ही तत्तार खां युद्ध करने के लिए मुड़ गया। उस समय समुद्र रूपी चाहुवान को जलाने के लिये वह वीर बडवानल के समान हो गया। हूं-हूं—हुँकार करता हुआ वह उछल पड़ा, और उसकी तलवार शत्रुओं को काटती हुई (नष्ट करती हुई) सुशोभित होने लगी। उस युद्ध-चक्र में कई वीर पड़ गये (पड़ कर नष्ट होने लगे) अतः वहाँ हूरें और अप्सराएँ सुशोभित होने लगीं, गीदड़ और गिद्धनियां माँस प्राप्त कर आवाज करने लगीं और चौसठ ही योगिनियाँ रुधिर से तृप्त हो गईं। उसी समय घने घावों से छककर (घायल होकर) झूमता हुआ तत्तारखाँ पृथ्वी की ओर झुका, जिससे उसकी युद्ध ख्याति संसार में फैल गई।

पंच खांन सुलितांन, पंच खावास सु चढ्ढिय।
पास वान सुलितांन, पास बिय बिय दस ठढ्ढिय॥
रण रुद्धिय सुलितांन, सेन बिय तन वल भज्जिय।
मन पलट्यौ नट्ट भेख, वीर करुणा रस सज्जिय॥
भर भीर तीर छुट्टिय दिखिय, तवसु ओट आलम गहिय।
तत्तार खांन खुरसांन खां, मन्त मण्डि सब दिखि कहिय॥ ८४॥

शब्दार्थः—सुलितांन=शाह उपाधिधारी। खावास=अंगरक्षक। पासवांन=अंगरक्षक। पास बिय=दोनों ओर। बियदस=बीस। रुद्धिय=रोक लिया गया। सेन बिय=शाह और उसके साथियों की सेना, दोनों। नट्ट=नट। भेख=भेष। भर-भीर=सामन्त समूह। ओट=आड़। आलम=सब मंत मंडिय=युद्ध स्थिति पर विचार करने को। सब दिखि=सब की ओर देखते हुए।

अर्थः—यद्यपि पाँचखांन, पांच शाह-उपाधिधारी वीर और उनके पांच अंग रक्षक तथा शाह के बीस प्रमुख अंग रक्षक उसकी और (बादशाह के पक्ष में) डट गये,

फिर भी वह (सुलतान) रण स्थल में रोक लिया गया जिससे उसकी और उसके साथियों की सेना की ताकत नष्ट हो गई। वीर रस से हटकर करुण रस को धारण करता हुआ शाह का मन इसी प्रकार पलट गया, जिस प्रकार नट भेष पलट देता है। सामन्त समूह ने बाणों की वर्षा करना प्रारम्भ किया। उन्हें देख कर सब शत्रुओं ने आड़ लेली। तब तत्तार खां और खुरासांन खां ने उनकी ओर देखते हुए युद्ध स्थिति पर विचार करने को कहा।

जब सु खान खावास, भरर लग्गिय भय तप्पन।
बहिय सार मुख मार, छंडि गोरिय बल अप्पन ॥
लाल डंड सिर छत्र, दिक्खि[1] सुरतान साहि पर।
तब दोरे भर सुभर, हले हल हल्ल धराधर ॥
बिच्चलिय फोज सुरतान लखि, तब छुट्टिय धर धीर सचि।
खानह सु पंच खावास भिरि, सिर[2] परि आवध रीठ मचि ॥ ८५ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—भरर=उमड़कर। भय तप्पन=तृप्त होकर, तमतमाकर। साहि-पर=अन्य ने गृहण करके तन दिया। भर-सुभर=श्रेष्ठ योद्धा। हले-हल=हल्ला करते हुए। हल्ल=हिल पड़े। धराधर= पर्वत। सचि=संचय की हुई। सिर-परि=सिर पर। आवध=आयुध, शस्त्र। रीठ=झड़ी। मचि=हुई।

अर्थः—यद्यपि उस समय खवास खां ने क्रोध में तम तमाकर मार-मार उच्चारण करते हुए हिन्दू सेना पर शस्त्र प्रहार करना प्रारम्भ किया, फिर भी गौरीशाह ने अपनी शक्ति छोड़ ही दी। तब सुलतान के मस्तक पर उसके अन्य वीरों ने लाल दंड़े वाले छत्र को जो पहले हटा दिया गया था, पुनः तान दिया। यह देखते ही हिन्दू सेना के श्रेष्ठ याद्धा उस (शाह) की ओर हल्ला (शोर गुल) करते हुए दौडे जिससे पहाड़ हिल पड़े और शाही सेना विचलित हो गई। यह देख कर शाह द्वारा संचित किया हुआ अवशिष्ट धैर्य भी जाता रहा। उसी समय पाँच खांन योद्धाओं के बल पर खवास खाँ ने आगे बढ़कर युद्ध करते हुए वीरों के सिर पर शस्त्र प्रहार करना प्रारम्भ किया।

इत सुखान खावास, उतह "सामंत" सिंघ भर।
रिस रिन मत्ती रीठ, तुट्टि ताइय मसंद धर ॥

गह गहंत उच्चार, कही राजेन्द्र राज-गुर ।
तबह खांन रिस प्रब्ब, हथ्थ बाहंत हंस धर ॥
जै जै सुसद्द जुग्गिनि करहि, कर खथर उनमंत मत ।
दुअ लरै दीन बल खांम कें, घुरत त्रंब त्रंबान घत ॥ ८६ ॥

शब्दार्थः—सामंत=सामंत सिंह नामका । सिंघ-भर=सिंह रावल (चित्तौड़ेश्वर विक्रम केसरी) का रिन=रण, युद्ध । मत्ती=मची, की । रीठ=शस्त्रास्त्र की झड़ी । तुट्टि=टूट पड़े, कट पड़े । ताइय=तप्त, तेज । गह-गहंत=उच्च स्वर । राजेन्द्र=राज राजेश्वर, पृथ्वीराज । राजगुर=राजगुरु [रावल समर विक्रम] । खांन=खवास खां । प्रब्ब=गर्व । हंस-धर=चंद्रहास' खड्ग । सद्द=शब्द । उन-मंत-मत=उन्मत्तवत, उन्मत्त की तरह । स्याम=स्वामी । घुरत=बजवाते हुए । त्रंब-त्रंबान=तासे आदि रणवाद्य । घत=घात, चोट ।

अर्थः—इधर से खवास खाँ और उधर से सिंह रावल चित्तौड़ेश्वर (विक्रम केसरी) का योद्धा सामंत (सिंह) नामक वीर आगे बढ़ा। उस सामंत ने क्रोध में आकर युद्ध भूमि में शस्त्र प्रहार की झड़ी लगादी जिससे कितने ही मसनद धारी मुस्लिम वीर कट पड़े। यह देखकर राज राजेश्वर (पृथ्वीराज) और राजगुरु (रावल समर-विक्रम) ने उच्च स्वर से प्रशंसा करते हुए उसे और भी अधिक उत्तेजित किया। तब खवास खां भी गर्व और क्रोध से भरकर खड्ग चलाने लगा। यह देखकर हाथ में खप्पर लिये हुए योगिनियाँ उन्मत्त होती हुई दोनो के लिये जय २ शब्दोच्चारण करने लगीं ! इस प्रकार दोनों ही वीर (खवास खां और सामंत सिंह) रणवाद्य बजवाते हुए अपने धर्म और स्वामी के बल पर भिड़ पड़े।

दोहा

परे खित्त[१] खुरसांन खां, ढहि घन घाय अचेत ।
फिरि दल हिंदू जोर हुअ, बजि बरताई खेत[२] ॥ ८७ ॥

पा० पा० १ पा० । २ पा० भीं० ।

शब्दार्थः—खित्त=क्षेत्र । जोर हुअ=सरजोर हुआ । बजि=बजाई, तलवार चलाई । बरताई=भरदी ।

अर्थः—गहरे घावों से बेसुध होकर खुरासानखां रण क्षेत्र में धराशायी होगया। इस पर हिन्दू सेना के बल (साहस) में और भी वृद्धि हो गई और उसने अपने शस्त्राघातों द्वारा रणक्षेत्र को (शत्रु-शवों से) पाट दिया (भर दिया)।

अति-संकर वर जुद्ध हुअ, इत राजन उत साहि।
दोऊ नैंन अंकुरि परै, बजि बीरा रस ताहि ॥ ८८ ॥

शब्दार्थः—अति-संकर=विशेष कष्ट प्रद [भयानक]। अंकुरि परे=उठे, मिले। बजि=कहे जाने योग्य। बीरारस=वीर रस।

अर्थः—तब राजा पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन में भयानक युद्ध छिड़ गया। एक दूसरे की दृष्टि मिलते ही वे दोनों, वीर रस की साक्षात् मूर्ति कहे जाने योग्य दिखाई पड़े।

उअ रुख आइ सहाबदी, इय रुख आइय राज।
इय कर खोले खग्ग बर, उअ कामान कर साज ॥ ८६ ॥

शब्दार्थः—उअ रुख=उधर से। सहाबदी=शहाबुद्दीन। इय रुख=इधर से। राज=राजा पृथ्वीराज। इय=इसने, पृथ्वीराज ने। कर खोले=तलवार निकाली। उअ=उसने, शहाबुद्दीन, बादशाह ने।

अर्थः—इधर से शहाबुद्दीन और उधर से पृथ्वीराज आगे बढा। बादशाह ने हाथ में कमान ली और पृथ्वीराज ने श्रेष्ठ खड्ग निकाला।

कवित्त

जबहि साह आलम्म, झुक्कि कम्मान अप्प गहि।
तबहि राज प्रथिराज, तेग पक्करिय अप्प रहि ॥
वह वरखत वर तीर, रवंचि वरखत सार ढहि।
इहै तेज खग झमहि, करी तुट्टे कमंध बहि ॥
आलम्भ राज दुअ जुद्ध हुअ, नह दिख्यौ दानव रू सुर।
बर दाय चंद इम उच्चरैं, करत कित्ति गैनह अमर ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—शाह-आलम=संसार का बादशाह, शहाबुद्दीन। बरखंत सार=लोहा चलाने वाले। इह= इधर से, पृथ्वीराज। खग=खड्ग। झमहि=चम चमाती, झन झनाने लगी। कबंध=मुंड रहित रुंड। बहि=वहन करने लगे। आलंम=बादशाह। राज=राजा, पृथ्वीराज। गैनह=आकाश।

अर्थः—जब बादशाह ने टेढ़े होकर कमान पकड़ी, तब पृथ्वीराज ने भी तलवार ग्रहण की। उधर से बादशाह ने कमान को खींचकर तीर चलाना शुरु किया, जिससे

शस्त्रधारी वीर धराशायी हुए। इधर से पृथ्वीराज ने भी खड्गाघात प्रारम्भ किया। जिससे कितने ही हाथी कट पड़े और युद्ध स्थल में रुंड फिरने लगे। इस प्रकार बादशाह और पृथ्वीराज में युद्ध हुआ। ऐसा युद्ध देवताओं और दानवों में भी होता हुआ कभी नहीं देखा गया। चंद बरदाई कहता है कि इस समय आकाश मंडल से देवतागण भी उन दोनों का कीर्तिगान करने लगे।

दोहा

भगी अनी सुरसांन खां, छुट्टि मीर धर ध्रंम।
गह्यौ[1]साह आलंम कर, विचलि सुभर तजि श्रंम ॥ ६१ ॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—अनी=सेना। ध्रम्म=धर्म। श्रम्म=शरम।

अर्थः—इस प्रकार भयानक युद्ध होने पर, जब शाही सेना भाग गई, खुरासांनखां जैसे धर्म पर दृढ़ रहने वाले अच्छे२ मीर भी धर्म से पतित हो गये और अन्य मुस्लिम वीर भी लज्जा का परित्याग कर पलायन कर गये, उसी समय शाह पकड़ा गया।

कवित्त

गहि लीनौ सुरतान, समर लिन्नौ जसु भारी।
चामर छत्र तखत[1], रखत[2] लुट्टै रन रारी ॥
चित्र कोट चव रंग, साहि दिन्नौ चहुआन।
चतुर दसी रवीवार, वीर बज्जे परवानं ॥
बुल्लयौ वीर कैमास तब, धन कढ्ढन चल्लो समुह।
आरब्ब राव भोंरा[3] सुभर, चंपि जु रक्खौ गंजि उह ॥ ६२ ॥

ग्रा० पा० १, २, पा०। ३, पा०, का०, भीं०, घ०।

शब्दार्थः—रखत=रसद, सामान। चवरंग=चौगुना रंग है, चौगुना धन्य है। परवानं=प्रमाण युक्त, सत्य। आरब्ब राव=अर्बुदराजवंशी प्रमार। सुभर=योद्धा। उह=उसे, या वह।

अर्थः—बादशाह को पकड़ लेने पर रावल समर विक्रम को विशेष ख्याति प्राप्त हुई। उसने युद्ध कर शाह से उसका चमर, छत्र, तख्त और रसद का सामान छीन

लिया। उस चित्तौड़ेश्वर को चौगुना धन्य है-जिसने बादशाह को पकड़ कर चाहुवान पृथ्वीराज को सौंप दिया। इस विजय की तिथि चतुर्दशी रविवार थी। उस दिन वीर वाद्य बजवाये गये। उसी समय वीर कयमास ने सम्मति दी कि द्रव्य तो निकाल ही लिया है, अतः अब हमें वर्त्तमान आबू नरेश (धारावर्ष) को, जो भोला भीम का योद्धा (साथी) कहलाता है, दबाकर नष्ट कर देना चाहिए।

दोहा

परे सेन गोरी गरु, गहि लिन्नौ' सुरतान।
सोमेसर नंदन सुकर, जै लिन्नौ जय पान॥ ६३॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ:—परे=धराशायी हुआ। गरुव=भारी वीर। जै=जय, विजय। जय-पान=जय पत्र।

अर्थ:—इस प्रकार वीरवर गौरीशाह के घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ने पर, उसे पकड़ लिया गया, जिससे सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज के हाथों में जयलक्ष्मी के साथ ही जय-पत्र भी प्राप्त हुआ।

कवित्त

गह्यौ साहि आलम्म, सुजस लिन्नौ चहुआनं।
खलक खांन भग्गिय विहाल, परै है गै धर थानं॥
मीर मसंद मसंद, कटे सामंत हथ्थ भर।
दुअ राजन भर जुरे, सुबर लिन्नौ सु अप्प कर॥
जै जै सबद जुग्गिनि करै, सीस गहे ईसनि समथ।
कवि कहै चंद भारथ्थ बर, करिय राज प्रारंभ कथ॥ ६४॥

शब्दार्थ:—खलक खांन=सब मुस्लिम वीर। विहाल=घबरा कर। है-गै=हाथी घोड़े। भर=भट। जुरे=जुटे। सुबर=सबल, विक्रम रावल। ईसनि=ईश ने, शिव ने। कथ=कथा, ख्याति।

अर्थ:—बादशाह के पकड़े जाने के कारण चाहुवान राजा ने यश प्राप्त किया। जितने भी मुस्लिम योद्धा थे, वे सब घबरा कर भाग गये। युद्ध भूमि में बहुत से हाथी-घोड़े कट पड़े। सामंतों के हाथों से बहुत से मसनद धारी वीर नष्ट हो गये। दोनों राजाओं (पृथ्वीराज और रावल समर विक्रम) के योद्धाओं

द्वारा विपत्तियों से भिड़ पड़ने पर ही विक्रम रावल (समर विक्रम) अपने हाथों से बादशाह को पकड़ने में समर्थ हुआ। उस समय रणस्थल में योगनियाँ जय जय शब्दोच्चारण करने लगीं, शिव ने बलवान वीरों के सिरों को अपनी मुण्ड माला के लिये ग्रहण किया। कवि चन्द कहता है कि राजा ने श्रेष्ठ युद्ध कर यश ख्याति का प्रारम्भ कर दिया (वृद्धि करदी)।

वज्जि नरयंद[1] जय पत्त, बीय वज्जा घन वज्जै।
ताइय[2] धर[3] गज राज राज, दरबारणि[4] गज्जै॥
चामर छत्र रखत्त, तखत लिन्नौ सुलितानी[5]।
उत्तर वइ उत्तंग[6] गयौ, मुलतानंह पानी।
छन्ड्यौ छत्र सुलितांन सिर, राज-छत्र सिर मन्ड्यौ॥
वाजंत नद निस्सांन घन, वंधि साहि दँडि छंड्यौ॥ ६५॥

ग्रा० पा० १, ३ से ६ दे०। २ पा० भीं० घ०।

शब्दार्थः—बजि=कहलाकर। जय पत्त=जय पति, विजय वधू का पति। बीय=दोनों (पृथ्वीराज और समर विक्रम)। बज्जा=बाजे। घन बज्जै=जोर से बजवाये, उच्च स्वर से बजवाये। ताइय=तपादी, त्रसित की। धर=भू भाग। गज=गजनी। दरबारणि=सभा में। सुलितानी=शाही। उत्तर-वइ=उत्तर भारत के स्वामी, (पृथ्वीराज और समर विक्रम) पानी=नूर, कांति। दँडि=दंडित करके।

अर्थः— विजय वधू के स्वामी कहला कर दोनों राजाओं (पृथ्वीराज और समर विक्रम ने उच्च स्वर से विजय वाद्य बजवाये। गजनी के भूभाग को त्रस्त करते हुए हिन्दू वीर राज सभा में गर्जना करने लगे। शाह के चँवर, छत्र, सिंहासन और रसद सामग्री को लूट लिया गया। उत्तर भारत के स्वामी पृथ्वीराज और समर विक्रम के गौरव में वृद्धि हुई और मुलतान प्रदेश वाले शाहबुद्दीन की कान्ति नष्ट हो गई। सुलतान के सिर से छत्र को हटाकर राजा पृथ्वीराज के मस्तक पर सुशोभित किया गया। इस प्रकार नक्कारों की आवाज के साथ ही शाह को बन्दी बनाकर दंडित कर छोड़ दिया गया।

गाथा

जित्ते वज्जन, वज्जम, जै जै नद नभ्भ सुर[1] करई।
सुद्धे खेत सु सूरम उप्पारयं, किक्के सुभटाई॥ ६६॥

ग्रा० पा० १ दे०।

शब्दार्थ—जित्तै=जीत के। वज्जन=बाजे। वज्जम=बजवाये। करई=करने लगे। सुद्धै=सोधे, खोजे। किक्क=कईक, कितने की।

अर्थः—विजय वाद्य बजवाये गये, आकाश से देवता भी जय २ की ध्वनि करने लगे। रणक्षेत्र से कितने ही बहादुर सामन्तों को, जो घायल हो गये थे, खोजकर उठाया गया।

सित्त[1] कलस त्रंबक्किय, सत्त अध मंडि रजक्किय।
हेम कलस सत पंच, कलस पाखान सतक्किय ॥
सत्त अद्ध बाजित्र, सहस अध खग्ग प्रमानं।
हेम हीर हिंडोल, एक आचंभ सु थानं ॥
जान्यो न देव देवाधि गति, दैव जोग सिंहासनह।
चित्रंग राव रावर समर, सम सु राज प्रथु आसनह ॥ ६७ ॥

प्रा० पा० १, का०।

शब्दार्थ—सित्त=सौ। त्रंबक्किय=तांबे के। सत्त अध=पच्चास। रज्जाकय=रूपे के। हेम=हर्म, सोना। सत्त-पंच=पांच सौ। सतक्किय=सौ। वाजित्र=वाद्य। सहस-आध=सहस के आधे, पांचसौ। हीर=हीरे। हिंडोल=हिंडोला, झूला, हिंगुलाट। आचंभ=आश्चर्य। सम,सु=समान ही, एक ही।

अर्थः—जिस वितान में राजा पृथ्वीराज और समर विक्रम एक ही आसन पर बैठे हुए थे, वहाँ पर निकाला हुआ द्रव्य लाया गया। उसमें सौ घड़े तांबे के, सौ चांदी के, पांच सौ सुवर्ण के और सौ पाषाण के, द्रव्य से भरे हुए थे। इसके अतिरिक्त उसमें ५० वाद्य यंत्र, ५०० तलवारें और स्वर्णिम शृंखला वाला, हीरोंसे मंडित एक हिंडोला (झूला) भी था। इन सबसे आश्चर्य दायक एक सिंहासन था। जिसकी रचना देवाधिदेव भी नहीं जान सकते थे।

मंगि सिंघासन राज, लच्छि चतुरंग सु अप्पिय।
समर सिंघ रावर नरिंद, अग्गैं धरि जप्पिय ॥
रंजि ाज आहुट्ठ, राज दिल्लीय दिस आइय।
वर पट्टन जहाँ नरिंद, लिखि दूत पठाइय।
श्रोतान-राग चहुआन हुअ, कथा जंपि ससि वृत्त किय।
पावस प्रमान कट्टिय बिकट, सुबर राज यों मत्तकिय ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—मँगि=मंगवाकर। लच्छि=लक्ष्मी। चतुरंग=चार प्रकार की। अप्पिय=अर्पित की। जप्पिय=कहा, विनम्र वाक्य कहे। रंजि=रंजन कर, प्रसन्नकर। राज-आहुट्ट=आहड़े नरेश के। जद्दों=यादव। कथा-जंपि=सुन्दरता की ख्याति। ससिवृत्त=शशिवृता कुमारी। किय=की। मत्तकिय=मतवाला।

अर्थः—पृथ्वीराज ने उस सिंहासन सहित चार प्रकार की लक्ष्मी को रावल समर केशरी के समक्ष सविनय रखदी। इस प्रकार आहड़े-नरेश्वर को प्रसन्न कर (बिदाकर) वह दिल्ली की ओर चल पड़ा। उसी समय पट्टन पति यादव राज ने पत्र लिखकर पृथ्वीराज के पास दूत भेजा। उस दूत द्वारा शशिवृता की प्रशंसा सुन-कर पृथ्वीराज को श्रोतानुराग हो गया, जिससे उस मतवाले राजा की प्रेम विह्वल दशा पावस ऋतु के तुल्य होगई।

वंचि राज कैमास, सोई अंतर सिल लीनह।
द्रव्य ताम उद्घरिय[1], भरिय करहासे—तीनह॥
एकादस गज पूर, पंथ संभरि पुर थानह।
वासुर सत संक्रमे, भरिय भंडार विधानह॥
संचरिय राज मृगया बहुरि, पुर खट्टू पारस रवन।
कर पत्र रूढ जट जूट पह[2], आइ राज भेज्यो[3] सु जन॥ ६६॥

ग्रा० पा० १ का० घ० भीं०। २, ३ का० घ०।

शब्दार्थः—सोई=सो, जो। सिल=शिला। लीनह=लिया। ताम=तब, उसमें से। उद्घरिय=उघाड़ा, निकाला। करहा=उष्ट्र, ऊँट। से-तीनह=तीन सौ। पूर=परिपूर्ण, भरे। सत=सात (या सौ)। संक्रमे=चले। भंडार=भांडागार, कोष। विधानह=तरीके से। संचरिय=गया। राज=राजा पृथ्वीराज। पारस=पास। रवन=रमने को, खेलने को। रूढ=आरुढ। जटजूट=उष्ट्र। पह=पर।

अर्थः— कैमास ने पाषाण लेख को पढ़ने के बाद शिला को उखाड़ कर जो द्रव्य निकाला, वह ३०० ऊँटों और ११ हाथियों पर लादा जाकर सात (या सौ) दिन चलने पर दिल्ली पहुँचा और कोष में सुरक्षित कर दिया गया। उस समय पृथ्वीराज रास्ते में ही खट्टू पुर के पास शिकार खेलने रुक गया। (कैमास द्वारा भेजे गया) राजा का एक विश्वास पात्र व्यक्ति, हाथ में पत्र

(द्रव्य की सूची) लिये हुए और ऊँट पर चढ़ा हुआ पृथ्वीराज के पास आया। उसने आकर राजा की वन्दना की।

बंटि-दियौ प्रथिराज, भाग किन्नै सह अब्बर।
एक भाग कैमास, तीय अप्पे नर सिंघ नर॥
पंच भाग चावंड, भाग अद्धौ बर कन्हं।
द्वादस भाग नरिंद दियौ परिगह सब थंनं॥
प्रथिराज दिष्ट आये नहीं, चिकट कुंभ ज्यों जल अभिद।
लग्गै न नीर पत्रह कमल, भिदै न मति-छीवै उछिद॥ १००॥

शब्दार्थ:—बंटि-दियौ=वितीर्ण कर दिया। अब्बर=बराबर, समान, यथायोग्य। तीय=तीन। अप्पे=अर्पित किया, दिया। परिगह=कुटुम्बी, या पास में रहने वालों को। थंनं=स्थान। दिष्ट=दृष्टि। चिकट=चिकने। मति-छीवै=बुद्धि ने जिसे स्पर्श कर लिया, बुद्धिमान। उछिद=बुरे छिद्र अन्य की निन्दा।

अर्थ:—पृथ्वीराज ने उस द्रव्य को समान भाग में बाँटकर वितरण कर दिया। उस द्रव्य में से १ भाग कैमास को, ३ भाग नृसिंह को, ५ भाग चामुंड को, ½ भाग कन्ह को और १२ भाग अपने कुटुम्बियों तथा आश्रितों को दिया। पृथ्वीराज ने स्वयं उस द्रव्य पर अपने मन को चलित नहीं किया। स्वार्थ ने उसे उसी प्रकार नहीं छुआ जैसे चिकने घड़े पर जल नहीं ठहरता या कमल पत्र को जल नहीं छूता, था बुद्धिमान व्यक्ति की दूसरों की निन्दा करने की प्रवृत्ति नहीं होती।

दोहा

एक भाग दिय विप्रकर, करै राज सुख कंद।
धन लब्भिय प्रथिराज धन, कथी कथ्थ कवि चंद॥ १०१॥

शब्दार्थ:—धन=द्रव्य। लब्भिय=प्राप्त किया। धन=धन्य। कथी-कथ्थ=वर्णन किया।

अर्थ:—धन्य है राजा पृथ्वीराज को जिसने इस प्रकार धन को प्राप्त किया। उसमें से एक भाग ब्राह्मणों को भी देकर वह सुख पूर्वक शासन करने लगा। उसी का वर्णन मैंने (कविचंद ने) किया है।

कवित्त

अ तितोरन-उच्छ्छवह, आइ ढिल्लीय निकट वर ।
रेंन कुमार सु आइ, सुबर सामंत मधुत्तर ।।
सत्त दूअ असवार, कहन नामी अग्गै भर ।
छंडि तुरिय पय लग्गि, दीय मा चढन सीख गुर ।।
बंदैव चढ़ै तुरियं समथ, आए नंद उछाह घर ।
जित्ते मलेच्छ लभ्यौ सु धन, अति तोरन उच्छव नयर ।। १०२ ।।

शब्दार्थ–तोरन-उछ्छाह=विशेष हर्ष जैसे अवसर पर राज द्वार पर तोरण लटका कर उत्साह मनाया जाना । ढिल्लीय=दिल्ली के । मधुत्तर=मधुशाह । सत्त-दूअ=दो सौ । कहन-नामी=कहने में नामी, वर्णन करने योग्य । छंडि-तुरिय=घोड़े को छोड़ा, घोड़े से उत्तरा । पय-पग्गि=पैर लगा, चरण छुये । सीख=आज्ञा । गुर=गुरु ने । नंद-उछाह=राजकुमार (छोटे राजकुमार गोविन्दराय) के उत्पन्न होने का उत्साह । जित्ते-मलेछ=बादशाह पर विजय प्राप्त की ।

अर्थः—जिस समय राजा तोरणोत्सव मनाने के लिये दिल्ली के निकट पहुँचा, उसी समय राजकुमार रयनसिंह को साथ लेकर श्रेष्ठ सामंत और मधुशाह अगवानी के लिए आये । राजा की सेना के हरावल भाग में प्रशंसा करने योग्य और प्रसिद्ध दो सौ अश्वारोही योद्धा थे । राजा राज गुरु को आता देखकर पृथ्वीराज घोड़े से उतर पड़ा और उसने गुरु के चरण छुए । इसके पश्चात् जब गुरु की आज्ञा से राजा घोड़े पर चढ़ा तब उसके सामर्थ्यवान साथी भी गुरु की वन्दना करके घोड़े पर चढ़े और राज महलों में प्रवेश किया । सारे शहर में राजकुमार (छोटे राजकुमार गोविन्दराय) के जन्म होने, बादशाह को जीतने और धन की प्राप्ति होने के उपलक्ष में तोरणोत्सव मनाया जाने लगा ।

गाथा

अति तोरन उच्छाहं, आए जेठ सुदि त्रयोदसियं ।
सुभ जोगं रविवारं, गहनं साह बढ्ढि जस भारं ।। १०३ ।।

शब्दार्थः–गहनं साह=बादशाह को पकड़ने से । बढ्ढि=बढ़ा, फैला । भारं=भारी, विशेष ।

अर्थः—ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी रविवार के शुभ योग में राजा ने दिल्ली में प्रवेश किया और तोरणोत्सव मनाया। बादशाह को पकड़ने के कारण उसका यश विशेष रूप से चारों ओर फैल गया।

दोहा

ग्रहन साहि जस बढिय धर, आइ धवल मधि साल।
त्रिया सकल मुजरा करन, आइय [1] तत्थ सहाल॥ १०४॥

ग्रा० पा० १ पा० का० घ०।

शब्दार्थः—धवल=वृषभ तुल्य बलवान। मधि=अन्दर। साल=शाला, महल। मुजरा करन= वंदना करने, अभिवादन करने। तत्थ=तहाँ। सहाल=शाल, शाला, महल।

अर्थः—बादशाह को पकड़ लेने के कारण पृथ्वीराज का यश पृथ्वीपर फैल गया, जब उस वृषभ तुल्य बलवान पृथ्वीराज ने राजमहलों में प्रवेश किया, तब सब रानियाँ राजा से अभिवादन करने के लिए महलों में आई।

गाथा

दाहिम्मी पृथु भट्टी, पुण्डीरी आइ नृप ढिग्गं।
करि न्यौछावरि सकलं, नृप दी सीख गइय ग्रह अप्पं॥ १०५॥

शब्दार्थः—सीख=विदा। अप्पं=अपने।

अर्थः—दाहिमी, भटियानी और पुण्डीरनी रानियाँ, पृथ्वीराज की बहिन पृथा-कुमारी के साथ राजा के पास आयीं और उसकी बलैयाँ ली। उसके बाद राजाज्ञा से वे सब महलों में लौट गयी।

राजा धवल संपत्तं, गये ग्रह रत्ति तथ्थ पुण्डीरं।
करि रस अनंग क्रीड़ा, बढ़िय सुबेलि सुमन मनमत्थी॥१०६॥

शब्दार्थः—धवल=महल। संपत्तं=गया। पुण्डीरं=पुण्डीरनी रानी।

अर्थः—रात्रि होने पर राजा अन्तःपुर में गया और वहाँ पुण्डीरनी रानी के साथ सुरति-सुख में लिप्त हो गया। उस काम क्रीड़ा से वह कामलता (रानी) विस्तार प्राप्त

कर पुष्पवती हो गई अथवा उसकी काम-क्रीड़ा में अनुरक्त मनरूपी वेली ने वृद्धि प्राप्त की। (अत्यधिक प्रसन्न हुई)।

सुमन बेलि मनमथ्थी, करि क्रीड़ा हूअ बर प्रातं ।
अंतर साल वयट्ठं, मन विच्चार साहयं दंडं ॥१०७॥

शब्दार्थ:—अंतर साल=एकान्त भवन। ववट्ठं=बैठा।

अर्थ:—उस काम लता से क्रीड़ा करते हुए प्रातः काल हो जाने पर राजा बाहर आकर एकान्त महल में बैठा और बादशाह से दंड़ में लिये हुए घोड़े, हाथी आदि पर विचार किया।

कवित्त

दंड सुबर पतिसाह, दोय हय बंटि राज बर ।
बीस सुभर हय कंन्ह, बीस हय ऊंचह निड्डुर[1] ।
बीस दूअ रघुवंस, बीस उभभय दाहिम्मं ।
अत्तताइ अल्हन पहाड़, वीस हय जैत गुरंमं ॥
औरह सु सकल भर बीस अध, बंटि बंटि दिय सबर नर ।
रख्खन सु गल्ह राजंद गुर, जस रक्ख्यौ निज बर सुकर ॥ १०८ ॥

[1] आ० पा० १, घरु०।

शब्दार्थ:—ऊँचह=उच्च, ऊँचे, उन्नत काय। गुरंमं=गुरुराम। बीस-अध=बीस के आधे, दस। गल्लह=ख्याति।

अर्थ:—बादशाह से दण्ड में प्राप्त घोड़ों का उसने अपने सामन्तों में वितरण कर दिया। उसने रघुवंशीराय और कैमास को बाईस-बाईस (या चालीस-चालीस); श्रेष्ठ यौद्धा कन्ह, निड्डुराय, अत्ताताई, अल्हन, पहाड़राय, जैत्र प्रमार और गुरुराम पुरोहित को बीस-बीस और अन्य सभी सामन्तों को दस दस घोड़े दिये। पृथ्वीराज ने तो अपनी महान् ख्याति अक्षुण्ण रखने के लिए केवल यश ही अपने पास रखा।

गाथा

जस रक्ख्यौ कर अप्पं, मुत्तिय माल लालयं द्रब्बं ।
आरोही पुर दत्तं, कवि दीनौ सु अवर कर साहं ॥१०९॥

शब्दार्थ–दत्तं=दान में । कर साहं=शाह से लिया हुआ दण्ड ।

अर्थः—केवल यश को ही अपने हिस्से में रखने वाले उस राजा पृथ्वीराज ने मुक्ता और लालों की मालायें, बहुतसा द्रव्य तथा शाह से लिया हुआ शेष दंड और आरोही नामक पुर मुझे (कवि चंद को) दान में दिया ।

दोहा

सकल दंड पतिसाह कौ, बंटि दियौ सब सूर ।
तपत राज अति खित्ति वर, ग्रीखम वित्तिय पूर ॥११०॥

शब्दार्थः–खित्ति–वर=श्रेष्ठ क्षत्रिय । पूर=सम्पूर्ण ।

अर्थ—जब पृथ्वीराज ने बादशाह से दण्ड स्वरूप लिये हुए समस्त द्रव्य को सामन्तों में बाँट दिया तब उस श्रेष्ठ क्षत्रिय नरेश ने प्रताप युक्त शासन करते हुए ग्रीष्म ऋतु व्यतीत की ।



शशिवृता-समय

(समय-२३)

दोहा

आदि कथा शशिवृत्त की, कहत अब्ब संमूल ।
दिल्ली वै पतिसाहि ग्रहि, कढ़ि लच्छि उनमूल ॥ १ ॥

शब्दार्थः—आदि=प्रारंभ से । अब्ब=अब । संमूल=समूची, सम्पूर्ण रूप से । दिल्ली वै=ल्लीश्वर । ग्रहि=पकड़ा । लच्छि=लक्ष्मी । उनमूलन=उखाड़ना, खोदना ।

अर्थः—दिल्लीश्वर ने बादशाह को पकड़ लिया और खोदकर लक्ष्मी निकाल ली अब प्रारंभ से अन्त तक शशिवृता की कथा सम्पूर्ण रूप से वर्णन की जाती है ।

कवित्त

लगिग सीत कल मंद, नीर निकटं सुरजत घट ।
अमित सुरंग सुगंध[1], तनह उवटंत रजत[2] पट ॥
मलय चंद मल्लिका, धाम-धारा-ग्रह सुब्बर ।
रंजि बिपन बाटिका, सीत[3]द्रुम छांह रजति तर ॥
कुम कुमा अंग उवटंत अधि, मधि केसरि[4] धनसार घति ।
क्रीलंत राज ग्रीखम सुरिति, आगम पावस भइय भति ॥ २ ॥

ग्रा० पा०, १, पा० का० घ० । २, पा० । ३, सर्वप्रति । ४ पा० दे० सं० ।

शब्दार्थः—कल=कला, तेज, प्रताप, [या चन्द्रमा की शीतल कला] । रजत=रौप्य । मलय=चंदन । रजत=शोभित होते । मल्लिका=मौक्तिक नामक पुष्प विशेष । धारा ग्रह=फोहारों युक्त गृह, एक प्रकार का कुंज जिसमें यंत्र द्वारा जल ऊपर पहुंचाया जाकर ऊपर से टपकता रहता है (ऐसे पुंज को श्रावण, भाद्रपद नाम से भी कहा करते थे) सुब्बर=अति श्रेष्ठ । तर=तले । अधि=ऊपर । मधि=में । केसरि=केशर । घति=डाली हुई, मिश्रित । क्रीलंत=क्रीडंत, विनोद करने लगा । रिति=ऋतु । भति=भांति ।

अर्थः—ग्रीष्मागमन से सर्दी का प्रभाव कम होगया । जल से परिपूर्ण चांदी के घड़े सदा पास में रखे जाने लगे । सुगंधित पदार्थों का शरीर पर लेप किया जाने

लगा और अच्छे रंग के वस्त्र पहने जाने लगे। चन्दन, चन्द्र, चन्द्रिका, मल्लिका और जल के फव्वारों से युक्त घर बहुत सुन्दर लगने लगे। वृक्षों की छाया से वन-उपवन आनन्द प्रद हो होगये। राजा पृथ्वीराज गरमी में केसर और कपूर मिश्रित कुंकुम का शरीर पर लेप कर आनन्द करने लगा। इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु के बीतते ही मन-भावन पावस ऋतु आगई।

गाथा

ग्रीषम वित्तिय कालं, आगम पावस दीह मभ्भेनं।
दिसि दख्खिन बर देशं, नाइक आइ चंद्रोदयं तामं[1] ॥ ३ ॥

ग्रा० पा०, १, का०।

शब्दार्थः—मभ्भेनं=में। नाइक=नायक, प्रमुख नर्तक।

अर्थः—गीष्म के बीतने और पावस के आने पर (दिल्ली से) दक्षिण दिशा की ओर से चंद्रोदय नामक नर्तक आया।

सभा विराजित राजं, तहां नट आइ पत्त-संगीतं।
मिलत मान दिय राजं, पुच्छिय बिगति देस रह मभ्भं ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—नर=नर्तकी। पत्त-संगीतं=गाना शुरु किया। बिगति=बिगत, ब्यौरेवार, वृत्तान्त। देस-रह-मभ्भं=मध्य प्रदेश में रहता था (अतः उससे वहाँ का वृत्तान्त पूछा गया)।

अर्थः—जब राजा (पृथ्वीराज) सभा में बैठा हुआ था, तब वहाँ पर वह नर्तक आकर गाने लगा। राजा ने उसका यथोचित सम्मान किया। वह मध्य प्रदेश का रहने वाला था, इसलिये उससे वहाँ का वृत्तान्त पूछा।

तब नट नमि करि उच्चरिय, सुनहु राज दिल्लीस।
सोम वंश जद्दव नृपति, देव गिरि वसि जीस ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—सोम वंस=चंद्रवंशी। जद्दव=यादव। देवगिरी=देवास [देवास भी देवगिरि कहलाता था]। वसि=वसही, बस्ती। जीस=जिसकी।

अर्थः— नर्तक ने सिर नवाकर निवेदन कियाः—हे दिल्लीश्वर ? जिसकी बस्ती देवगिरि (देवास) है वहाँ का राजा चंद्रवंशी यादव क्षत्रिय है।

कवित्त

देवगिरी जद्दव नरेश, अति प्रबल तपत तय।
संगीतरु बर कला, लहन शुभ ग्यान सुभत वय॥
तान सु गुन्न लहन, भेद सुभ ग्यान विचारं।
तास राज संमीप, रहों नट—विद्य उचारं॥
ता ग्रह सु पात्र अन्नेक गुन, रहे सु तहँ निशि दीह पर।
राजंत राज जद्दव नृपति, ज्यों सु देव-पति नाक गुर॥ ६॥

ग्रा० पा० १, का०।

शब्दार्थः—तय=वह। सुभत=सुशोभित। वय=वह। तान=तवन पाल। सुगुन्न=श्रेष्ठ गुण। लहन्न=लेकर, प्राप्त करके। भेद=भेदनीति। तास=उस। नट-विद्य=नृत्य विद्या। उचारं=उच्चारण करता, प्रकाश में लाता। नाक=स्वर्ग। गुर=गुरुता।

अर्थः—देवगिरि (देवास) का वह यादव राजा प्रभाव शाली ढंग से शासन करता है। संगीत आदि कला का अच्छा ज्ञान होने से वह विशेष रूप से सुशोभित है। यादव नरेश तवन पाल ने श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त कर लिया है। भेद नीति तथा उत्तम ज्ञान को वह विचारने वाला है। ऐसे उस राजा के पास में नृत्य (संगीत) विद्या को विकसित करता हुआ रहता हूं। उसके यहाँ हमेंशा अन्य भी अनेक पात्र (पुरुष) रहते हैं। इस समय वह यादव-राज स्वर्ग स्थित इन्द्र के तुल्य प्रभुता लिये हुए सुशोभित है।

गाथा

तिहि ग्रह नटवर रूपं, आए मंगेव सीख कुरखेतं।
तुम गुन अति संभरियं, आवन[1] हुअ एम दिल्ली मभ्भेनं॥ ७॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति।

शब्दार्थ—मंगेव=मांगकर, आज्ञा लेकर। सीख=बिदा। संभरियं=सुनकर। आवन हुअ=आना हुआ। एम=इस तरह। मभ्भेनं=मैं।

अर्थः—मैं उस राजा के यहाँ श्रेष्ठ नर्तक के रूप में रहता हूँ। उससे कुरुक्षेत्र-यात्रा की विदा लेकर निकला हूं और आपके विशेष गुणों को सुनकर ही मैं दिल्ली आया हूं।

कहि संभरि नृप राजं, हो नट राइ सुनहु बर बचनं।
किहि व्याहन बर संगं, को राजैन-कवन धर-मभ्भं ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—नटराइ=नर्तकेश्वर, प्रमुख नर्तक। किहि-व्याहन=किसके यहां विवाह करने पर। बर संगं=श्रेष्ठ समानता हो सके, हमारे योग्य हों। को=कहो। राजैन=राजा। कवन=कौन। धर-मभ्भं=मध्य प्रदेश में।

अर्थः— नृपराज संभरी (पृथ्वीराज) ने तब कहा:—हे प्रमुख नर्तक! मध्य प्रदेश में कौन ऐसा राजा है जो हमारे योग्य हो और जिसके यहाँ हमारा विवाह होना ठीक माना जा सके।

दोहा

सुनि राजन क्योंकरि कहौं, जो शशिवृत्ता रूप।
जीह एक ब्रन्न न बने[1], तिन गुन ब्रन्न अनूप ॥ ९ ॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—जीह=जिह्वा। ब्रन्न=वर्णन करना। न बने=नहीं बनता, नहीं हो सकता। ब्रन्न=वर्णन। अनूप=अनुपम।

अर्थः—नर्तक ने कहा हे नरेश्वर (पृथ्वीराज)! मैं राजकुमारी शशिव्रता के सौन्दर्य की प्रशंसा कहाँ तक करूँ, उसमें अनेक अनुपम गुण हैं। मैं अपनी एक जिह्वा से उनका वर्णन नहीं कर सकता।

तब राजन ऊठी सभा, फिरि दिन्नी[1] सब सीख।
अन्दर नट्ट बुलाइकैं, पुच्छिय त्रिगति विसिख्ख[2] ॥ १० ॥

ग्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—तब=तब। ऊठी-सभा=सभा बरखास्त की, समाप्त की। दिन्नी=दी। सब=सबको। सीख=विदा। विसिक्ख=विशेष।

अर्थः—राजा (पृथ्वीराज) ने यह सुन कर उपस्थित सब सामन्त आदि को विदा कर सभा को समाप्त कर दिया और नर्तक को एकान्त महल में बुला कर शशिवृता के विषय में विशेष पूछताछ की।

कवित्त

कहै सु नट राजेंद[1], ब्रह्म आमोद इक्क[2] दिन।
चंद कला मुख कंज, लच्छि सहजह[3] सरूप तन ॥

नैन सु मृग शुक नास, अधर वर बिंब पक्क भति[४] ।
कँठ कपोत भुज वर[५] मृनाल, युगल[६] नारंगि[७] उरज सति ॥
कटि लंक सिंघ जंघ रँभ, चलत हंस-गति गयंद लजि ।
सा नृपति काज त्र्रंमिय तरुनि, मनो मेनिका रूप सजि ॥ ११ ॥

ग्रा० पा० १, ३, ८, पा० २, सर्वप्रति । ४ पा० का० घ, । ५, पा०, घ० । ६, ७ का० भीं घ० ।

शब्दार्थ–ग्रामोद=प्रसन्न होकर । लच्छि=लक्ष्मी । पक्क=परिपक्व । भति=तरह । सति=सत्य ही या सटे हुए, जोड़पर । रँभ=कदली । सा=वह । त्र्रंमिय=निर्मित की ।

अर्थः—नर्तक ने कहाः—हे नरेश्वर ! चन्द्र-कला के समान जिसकी कान्ति है; कमल के समान जिसका मुख है और लक्ष्मी के समान जिसका प्राकृतिक सौन्दर्य है; ऐसी इस शशिवृत्ता के, नैत्र मृगी के समान, नासिका शुक के समान और ओष्ठ पके हुए बिंब के समान तथा कंठ कपोत के सदृश, भुजायें मृनाल डंडिका-सदृश श्रेष्ठ और दोनों कुच नारंगी के सदृश हैं । सिंह के समान जिसकी कटि है, कदली के समान जिसकी जंघायें हैं, और हाथियों को लज्जित करने वाली हँस के समान जिसकी चाल है । ऐसी उस तरुणी को ब्रह्मा ने मानो स्वयं अपने हाथों से एक दिन प्रसन्न होकर आपके लिये ही मेनका अप्सरा के रूप में निर्मित किया हो ।

दोहा

कह गुन बरनौं राज कहि, कुँअरी जद्दव नाथ ।
विधना रचि पचि कर करि, मनु मेनिका समाथ ॥ १२ ॥

शब्दार्थ–कह=कहाँ तक । पचि=श्रम करके । समाथ=मस्तक पर रहने योग्य, शिरोमणि ।

अर्थः—हे नरेश्वर (पृथ्वीराज) ! मैं उस यादव राजकुमारी के गुणों का कहाँ तक वर्णन सुनाऊँ । उसे तो स्वयं विधाता ने मानों श्रम पूर्वक रचकर मेनका अप्सरा की भी शिरोमणि बना दिया है ।

दोहा

पुनि नटवर यौं उच्चरिय, फिरि कहि हों राजिंद ।
जो मुझ कीयौ होइ है, तो करिहौं नृपइंद ॥ १३ ॥

शब्दार्थ:—मुझ कीयौ होइ है=मेरे से हो सका ।

अर्थ:— फिर उस श्रेष्ठ नर्तक ने कहा—हे नरेश्वर ! मैं इस विषय में फिर कभी निवेदन करूँगा और मुझ से होसका तो आपकी अभिलाषा को पूर्ण करने का भी प्रयत्न करूँगा ।

तब राजन नट सीख दिय, गज सु इक्क[1] है पंच ।
चल्यौ दिसा[2] कुरखेत प्रति, परसन हरि चरनंच ।। १४ ।।
ग्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थ:—है=हय, घोड़े । परसन=स्पर्श करने को । चरनंच=चरण ।।

अर्थ:—तब राजा ने एक हाथी तथा पांच घोड़े देकर नर्तक को विदा किया । नर्तक कुरु क्षेत्र की ओर हरि के चरण स्पर्श (तीर्थ) करने के लिये विदा हुआ ।

हर सेवा राजन करत, क्रमिय मास जब संग ।
अद्ध निसा शिव आइ कै, दिय सु वचन मन रंग ।। १५ ।।

शब्दार्थ—क्रमिय=समाप्त हुआ । संग=सिंघ, सिंह-संक्राति । अद्ध=अर्ध । मन-रंग=मन को प्रसन्न करने वाला, मन इच्छित, मनोरथ ।

अर्थ:— राजा (पृथ्वीराज) ने शशिवृता की प्राप्ति के लिये शिव की उपासना की, जिस मास में सिंह-संक्रान्ति आती है, उस (भाद्र पद) मास के समाप्त होने पर अर्धरात्रि के समय शिव ने (स्वप्न में) आकर (मनोरथ) इच्छा पूर्ण होने का वर दिया ।

जो कामन मन सद्धई, सो पूरे हर ईस ।
नन चिंता करि राज गुर, आयो गुन तुछ दीस ।। १६ ।।

शब्दार्थ:—कामन=कामिनी, सुन्दरी । मन-सद्धई=मन से साधना करता है, मन में चाहता है । पूरे=पूर्ण करेगा । हर-ईस=शिव का स्वामी, विष्णु भगवान । नन=नहीं । गुन=फल । दीस=दिखाई ।

अर्थ:—शिव ने (स्वप्न में) कहा—हे राजाओं के गुरु (पृथ्वीराज) ! तुमने जिस सुन्दरी को मन से चाहा है । तेरी उस इच्छा को भगवान पूर्ण करेगा । इस विषय

में तुझे चिंता नहीं करनी चाहिये-क्योंकि इसका कुछ सफल परिणाम मुझे दिखाई दिया है।

कवित्त

हुअ प्रभात जब राज, सुपन मन मद्धि राज रस।
प्रसन होइ शिव शिवा, काम सिद्धै[1] सु इंद जस॥
मन जाने बर अप्प, लग्गिओ तान राज उर।
चित्र महावत[2] गयँद, बहुरि उतरैन अवर पर॥
ननधीर करय पावस सु रिति, छिन-छिन जुग-जुग जात जिय।
बर मोर सोर दद्दुर वचन, लग्गि तपति[3] तन असम किय॥१७॥

ग्रा० पा० १ पा०। २, सर्वपति। ३ पा० घ०।

शब्दार्थःसुपन=स्वप्न। मद्धि=मध्य में। रस=रसित, प्रसन्न। प्रसन=प्रसन्न। सिद्धै=सिद्ध। इन्द=राजा। जस=जो, जैसा भी। लग्गिओ=लग गया, चटपटी लग गई। राज=राज्य। रिति=ऋतु। दद्दुर=दादुर। तपति=तप्त, ज्वाला। असम=विषम।

अर्थ—रात्रि के स्वप्न से राजा (पृथ्वीराज) को प्रातःकाल प्रसन्नता हुई। शिव पार्वती के प्रसन्न होने से उस कार्य के सिद्ध होने की आशा हो आई। इस बात को उसका मन ही जानता था। (अन्य पर यह प्रेम कथा प्रगट नहीं हो पाई थी)। उसके हृदय में तवनपाल के राज्य में जाने की आतुरता बढ़ गई। वह इस प्रकार नहीं मिटती, जैसे भित्ति पर चित्रित किये हुए हाथी पर महावत को चित्रित कर देने पर वह उससे नीचे नहीं उतरता और न वह दूसरे पर सवार किया जा सकता है। पावस ऋतु में राजा धैर्य नहीं रख पाता था और उसका एक २ क्षण युग के समान बीतता था। मयूरों के शोर गुल और दादुरों के बोलने से उसके शरीर में विषम (विरह) ज्वाला प्रज्जवलित हो गई।

मोर सोर चिहुँ ओर, घटा आसाढ बंधि नभ।
बच दादुर झिंगुरन, रटत[1] चातिग रंजत सुभ॥
नील बरन वसुमतिय, पहरि[2] आभ्रंन अलंकिय।
इंद्र-वधू[3] सिर व्यंद[4], धरे वसुमती सु रज्जिय॥
वरखंत बूंद घन मेघ सर, तब सुमरै जद्दव कुँअरि।
नन हंस धीर धीरज सु तन, इख फुट्टै मन मथ्थ करि॥ १८॥

ग्रा० पा० १, भीं०। २, पा०। ३ संशोधित। ४ पा० का० घ०।

शब्दार्थ—चिहुं=चारों ओर। नील बरन=हरितवर्ण। आभ्रं न=आभरण, वस्त्र। अलंकिय=अलंकृत। इंद्रवधू=इन्द्रवधूटी, एक प्रकार का लाल वर्ण का जीव जो वर्षा के साथ ही प्रगट होता है, जिसे राजस्थान में सावन की डोकरी भी कहते हैं। व्यंद=बिन्दुका। सर=शर, बाण। हंस=आत्मा, प्राण। इख=इषु, आशुग, बाण। मनमत्थ-करि=कामदेव द्वारा, कामदेव के हाथों।

अर्थः—चारों ओर मयूरों का शोरगुल होने लगा, आकाश में आषाढ़ के बादलों की घटा छागई, दादुर और झिंगुर बोलने लगे, चातक बोलकर चित्त को प्रसन्न करने लगे, पृथ्वी हरित वर्ण के आभरणों (वस्त्रों) से अलंकृत हो गई और उसने इन्द्रवधूटी को भाल पर बिन्दु के समान स्थान देकर शोभा प्राप्त की, ऐसी पावस ऋतु में जब बाण तुल्य मेघ की बूंदें बरसने लगती थी, तब राजा को यादव-कुमारी का स्मरण हो आता था। उसके प्राण और शरीर को रंच मात्र भी धैर्य नहीं होता था। कामदेव के बाणों ने मानो उसे वेध दिया।

दोहा

गत पावस आगम शरद, गई गुडल नभ मान।
(ज्यौं) सद गुरु मिलि[1] अंदर दरस, मिलि प्रगट्ट[2] गुरु ज्ञान[3] ॥ १६॥

प्रा० पा०, १, घ०। २, पा०। ३, का० भीं० घ०।

शब्दार्थः—गत=जानेपर। गुडल=गुदलापन, मैलापन, श्यामता।

अर्थः— पावस ऋतु के जाने पर शरद ऋतु आई और आकाश इस प्रकार स्वच्छ हो गया, जैसे सद्गुरु के द्वारा अंतर में दर्शन प्राप्त होते (सत्य विभू को जानलेते) ही विशेषज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

सुक्कि पंक उत्तरि सरित, गय बल्ली[1] कुमिलाय[2]।
जलधर बिनयौं मेदिनी, ज्यौं पति हीन त्रियाय[3] ॥ २०॥

प्रा० पा, १, २, ३ पा०।

शब्दार्थः—सुक्कि=सूख गया। उत्तरि=उतर गई, प्रवाह कम हो गया। गय=गई। बल्ली=बेली, लता। मेदिनी=पृथ्वी। त्रियाय=त्रिया; स्त्री।

अर्थः—पंक (कीचड़) सूख गया, सरिताओं का प्रवाह कम हो गया, लतायें मुरझा गईं, और पृथ्वी बिना बादल के इस प्रकार (कुरूप) दिखाई दी जैसे कोई पतिहीन स्त्री हो।

कवित्त

सम सिकार कजि राज, सबर चतुरंग सु सज्जिय ।
सघन सूर सामंत, अप्प अप्पन भर गज्जिय ॥
रंजि राज पृथिराज, राज क्रीलन मन भाइय[१] ।
बर पट्टन जद्दौंन[२], दूत राज पै पठाइय ॥
श्रोतान राग चहुआन हुअ, कथा जंपि ससिवृत्त किय ।
अब कहौं[३] कथा[४] विस्तार करि[५], ज्यों राजन[६] दूतन करिय ॥ २१ ॥

ग्रा० पा० १, घ० । २ पा० घ० का० । ३, से ६, पा०, का०, घ० ।

शब्दार्थः—सम=समुहाकर, तत्पर होकर । कजि=के, लिये । सबर=उस समय । सघन=गहरे, बहुत से । भर=भट साथी, योद्धा । क्रीलन=क्रीड़ा । पट्टन-जद्दौंन=बड़ी यादव रानी (पृथ्वीराज के शशिवृता और हंसावती दो यादव रानियाँ थीं उनमें शशिवृता बड़ी थी)। श्रोतान राग=श्रोत्रानुराग ।

अर्थः—उस समय पृथ्वीराज ने शिकार के लिये अपनी चतुरंगिनी सेना सजाई । बहुत से बहादुर सामंत भी साथियों सहित गर्जना करते हुए, राजा के साथ चल पड़े । प्रसन्न होकर राजा पृथ्वीराज शिकार की क्रीड़ा (विनोद) में लग गया, उसी समय बड़ी यादव रानी (कुमारी शशिव्रता) ने भी राजा (पृथ्वीराज) के पास दूत भेजा । उसने शशिव्रता का परिचय दिया, जिससे उस चाहुवान नरेश को श्रोत्रा-नुराग हो गया । उसी कथा का अब मैं विस्तार से वर्णन करता हूँ । दूतों ने आकर जैसा कुमारी का परिचय दिया और राजा ने कुमारी पर मोहित होकर उसे लाने में जैसा पुरुषार्थ प्रदर्शित किया उसे मैं कहता हूँ ।

गाथा

तुछ-दिन अन्तर क्रमियं, राजन[१] क्रीलंत अप्प धर मभ्भं ।
एक सु दिन राजानं, क्रीलन आखेट अप्प चढ़ि चलियं ॥ २२ ॥

ग्रा० पा० १, सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—तुछ-दिन-अन्तर=कुछ ही दिनों में । अप=स्वयं । धर-मभ्भं=मध्यप्रदेश में ।

अर्थः—कुछ ही दिनों में शिकार करता हुआ पृथ्वीराज स्वयं मध्यप्रदेश पहुंचा, वहाँ एक दिन पृथ्वीराज घोड़े पर सवार होकर शिकार के लिये निकला ।

दोहा

क्रील राज आखेट चढ़ि, अन्तर दिन हुअ-आदि।
मिलिन जोग विधि लिखियबर, करि सनद्ध चढ़ि-सादि ॥ २३ ॥

शब्दार्थ:—क्रील=क्रीड़ा। अन्तर-दिन=दिन में, दिनको ही। हुअ-आदि=स्मृति हो आती। सनद्ध=सावधान। चढ़ि-सादि=चढ़ाई की आवाज, चढ़ाई के वाद्यों की ध्वनि।

अर्थ:— [मन बहलाने को] राजा घोड़े पर सवार होकर शिकार के लिये चल पड़ा परन्तु उसका मन नहीं लगता था। उसे दिन में भी (शशिवृता की) स्मृति हो आती थी; किन्तु उसकी चढ़ाई (के रण वाद्यों) की आवाज उसे सावधान किये देती थी कि—हे राजन्! विधाता ने उस (शशिवृता) का मिलन-योग आपकी भाल-स्थली पर ही लिखा है।

कवित्त

चढ़िय राज प्रथिराज, साज आखेट लिये सजि।
सज्ज सुभट सामंत, संग सेना सु तुच्छ रजि ॥
जाम देव का-कन्ह, अत्तताई निडुर गुर।
मति मंत्रि कैमास, राव चामंड जुभ्भ-भर ॥
परमार सिंघ सूरन समथ, रघुबंसी राजन सु बर।
इत्तने सहित भर सेंन चलि, उड़ी रेनु आयास भर ॥ २४ ॥

शब्दार्थ:—तुच्छ=थोड़ी संख्या में। गुर=भारी, विशेष वीर। मति=बुद्धि। जुभ्भ-भर=युद्ध में भिड़ने वाला। इत्तने सहित=इतने सामंतों युक्त। आयास=आकाश।

अर्थ:—पृथ्वीराज ने शिकारी साज सजा चढ़ाई की। बहादुर सामंत और थोड़ी संख्या में सेना भी साथ चली। सामन्तों में से जामराय यादव, काका कन्ह, अत्तात्ताई, निड्डुरराय, बुद्धिमान मंत्री कयमास, युद्ध में लड़ने वाला चामुण्डराय, सामर्थ्यवान योद्धा सिंह प्रमार तथा उत्तम वीर रघुवंशराय आदि साथ में थे। इतने सामन्तों सहित सेना के चलने से धूल उड़कर आकाश में आच्छादित होगई।

बग्गुरि[1] जाल बयल्ल, हिरन चीते सु स्वांन गन।
काल बूत म्रग बिहँग, विविह तट्टीय चलत बन ॥
सर नावक बंदूक, हरित जन बसन विरज्जिय।

गै जिमि गिरि करि अग्ग अप्प बन संपति छज्जिय[२]॥
है भार भरिय[३] कांनन सकल, मग अमग्ग दल संचरिय ।
खिल्लन सिकार चढ्ढिय नृपति, प्रथियराज महि संभरिय ॥ २५ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० का० भीं० । ३ पा० घ० ।

शब्दार्थ:—बग्गुरि=बागरिये, (जाति विशेष जो अब खजूर के बुहारे व चटाइयां बनाते हैं और पक्षियों को फांसने के फंदे भी बनाते हैं और आज भी वे पक्षियों को फांस कर शिकार करते हैं) फंदा डालने वाले । बग्गल=बहलियें, छोटी गाड़ियें । हिरन=हेर रहे थे देख रहे थे । काल-बूत=काल । ब्योंत, अंतक तुल्य । विवह=विविध । तट्टीय=तट, किनारे, समीप । सर-नावक=तीर, बाण । बन्दूक=तुपक । गै=हाथी । छज्जिय=शोभा बढ़ा दी । संचरिय==चली । खिल्लन=शिकार खेलने के लिये, शिकार करने के लिये । महि-संभरिय=पृथ्वी ने सुना, पृथ्वी पर शोर गुल हो गया ।

अर्थ:—जाल सहित जाल फेंकने वाले और छोटी गाड़ियाँ आगे आगे चल रही थीं । पालतू मृग, चीते और श्वान शिकार की खाज में यत्रतत्र मृग और पक्षियों को फुसला और घेर कर लाने में अंतक स्वरूप थे, वे वन के किनारे २ विहर रहे थे । बाण और तुपक धारी शिकारी-समूह हरे रंग के कपड़े (जिससे जानवर उन्हें भॉप न सके) पहने हुए सुशोभित थे । गिरि-तुल्य उन्नत हाथियों को आगे बढ़ाया जा रहा था, जिससे वन वैभव की शोभा ओर भी बढ़ गई थी । सारे वन में बड़े २ अश्वारोहियों की भीड़ सी लग गई । सेना राह-बेराह चलने लगी, इस प्रकार चाहुवान राजा पृथ्वीराज ने शिकार के लिये चढ़ाई की । जिसका शोर गुल पृथ्वी पर मच गया ।

इन सु साज मृगया सु, बाज उत्तंग अंग बर ।
निमख निमख संचरहि,निमिख जोजन-जोजन सर ॥
छित्त लिये जित[१] पवन, वेग जग्गै जिम अग्गिय ।
घट छुट्टै जिम सद्द, उरह चक्रवाक विसग्गिय[२] ॥
यों बंधि राज आखेट बर, वपु सु वसुअ दिक्खे सुचख ।
थह[३] मंगि अंखि मंगल पवन, सबै होइ जोवन[४] समख ॥ २६ ॥

ग्रा० पा० १, २, ४, घ० । ३, पा०, भीं०, घ० ।

शब्दार्थ—इन=इस, ऐसे । बाज=बाजि, घोड़े । निमख-निमख=क्षण भर में । संचरहि=संचार करते, उड़ते । निमिख=निमेष मात्र में । जोजन सर=कई योजन को । छित्त=पृथ्वी (पृथ्वीपर)

लिए-जित=जीत लिया। जग्गै=जग उठे, भभक पड़े। घट-छुट्टै=मुख से निकल कर फैला हो। सद्द=शब्द। उरह=हृदय, वक्षस्थल। त्रि-सग्गिय=दो साथ में हों, दो जुड़े हुए हों। बंधि=ढंग रचा, व्यवस्था की। वसुअ=वसु, आठों दिग्गज। धर=पृथ्वी। मंगि=याचना की। पव्वन=पाने को, देखने को। जोव्वन=देखने को। समख=संमुख, टक टकी लगाये।

अर्थः -इस साज बाज के साथ शिकारार्थ चढ़ने पर उन्नत काय घोड़े क्षण २ में उड़ने वाले तीर की तरह कई योजन भूमि को इस प्रकार पार करने लगे, मानों पृथ्वीपर वे पवन गति प्राप्त किये हुए हों तथा अग्नि के समान भभक उठे हों, या मुख से शब्द निकल कर फैल गया हो।

ऐसे उन वेगवान घोड़ों के वक्षस्थल, दो जुड़े हुए चक्रवाकों के तुल्य थे। इस प्रकार राजा पृथ्वीराज ने शिकार की उत्तम व्यवस्था की, उस दृश्य को देखने के लिये अच्छे शरीर वाले दिग्गज भी अपनी दृष्टि प्रसारने लगे, पृथ्वी ने भी इस मांगलिक दृश्य को देखने के लिये चक्षु की याचना की, और सब कोई उसे देखने के लिये समक्ष हो गया (टक टकी लगाली)।

घुर घुरंत घन स्वान, अप्प पंजर तीतर बर।
मच्छ जाल बग्गुरिहि, फंद फंदैत[1] सुबर धर॥
धनकवान हक्कां सुरान[2], सिंघ पंजर जर[3] लक्खन[4]।
खांट खैरविस भिल्ल[5], तार तारक्क चित्र पन॥
सर हद्द चोट[6] लगै रमत, भुलै साथ श्री नाथ पति।
कविचंद विरद व्रंनन[7] करै, श्रवन सुनै दिल्लिय न्रपति॥ २७॥

ग्रा०पा० १, २, का०पा०भीं०। ३, ४, पा०घ० ५, घ पा.मीं.। ६, घ.। ७ पा.।

शब्दार्थः—अप्प=दिये, छोड़े। पंजर=पिंजड़ा। हक्कां=हाक, हुंकार। सुरांन=वीरों की। जर=जड़कर पकड़कर। खांट-खेरविस-भिल्ल=खांट, खेरवी, भील आदि जंगली जाति के। तार=ताड़कर, भाँपकर। तारक्क=भाँपने वाले, बताने वाले। चित्र-पन=हाथों में चीतों को गृहण किये हुए। सरहद्द-चोट=तीर द्वारा निशाना मारने का। लग्गे रमत=खेल करने लगे। भुलै=भूल गये। साथ=साथियों को। श्रीनाथ=लक्ष्मीपति, ईश्वर। व्रन्नन=वर्णन।

अर्थः—शिकार में गुर्राते हुए बहुत से शिकारी कुत्ते और पिंजड़ों से बन्द किये हुए पालतू तीतर (जो छोड़ देने पर अन्य जंगली तीतरों को फुसला कर पिंजड़ों या फंदों

में डाल देते थे) छोड़े गये । मच्छियों को पकड़ने के लिये जालें डाली गई । तथा पृथ्वी पर विचरण करने वाले जानवरों को फांसने के फंदे-(बग्गुरी आदि) फंदा डालने वालों के द्वारा डाले गये । धनुष-बाण धारी वीरों की हुँकारें होने लगी-सिंहों को पकड़ कर पिंजड़ों में रक्खा जाने लगा—

खांट, खेरवी, भील आदि शिकारी लोग शिकार किये जाने वाले जानवरों को भांप कर हाथ में गृहण किये हुए पालतू चीतों को बताने लगे, इस प्रकार अन्य जीवों को तीरों का निशाना बनाने के खेल में लीन होकर शिकारी अपने साथियों को ही नहीं ईश्वर को (ईश्वर के डर को) भी भूल गये । इस शिकार में मैं (कविचंद) राजा के विरुदों का वर्णन कर रहा था, और दिल्लीश्वर उन्हें सुन रहा था ।

गाथा

जित तित छुट्टै-पंखी[१], थावर जलह जंगमं जोती ।
ससि पालं हरि पालं[२], भूपालं काल प्रति पालं ॥ २८ ॥

ग्रा० पा० १, २, सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—छुट्टै-पंखी=उड़ते हुए पक्षी । थावर=स्थावर । जलह=जलचर । जंगमं=जंगम । जोती=देखते हुए । ससिपालं=शशपाल, शशांक, चंद्रमा, कन्नोजेश्वर, जयचंद और कवि चंद । हरिपालं=सिंह की पालना करने वाली, सिंहवाहिनी, गौरी, शहाबुद्दीन गौरी, और सिंह तुल्य वीर । प्रति पालं=प्रति-पालन करिये, रक्षा करिये ।

अर्थः—शिकार के भयानक दृश्य को देखकर यत्रतत्र उड़ते हुए पक्षी और स्थावर जंगम तथा जलाश्रित जीव कहने लगे, जयचन्द और गौरी जैसे राजाओं के अतंक-स्वरूपी हे राजा (पृथ्वीराज) ! हमारी रक्षा करियेः—

श्लेषार्थ

उड़ते हुए पक्षी स्थावर जंगम और जलचर कहने लगे-चंद (कवि) और सिंह स्वरूपी वीरों के प्रति पालक एवं शत्रु राजाओं के अतंक स्वरूपी हे राजा (पृथ्वीराज) ! हमारी रक्षा करिये ।

दोहा

दिल्ली वै है गै गहन, रवन आखेटक राज ।
चावद्दिसि सुर जंपई, धन[१] चहुआन समाज ॥ २९ ॥

ग्रा० पा० १, भीं० ।

शब्दार्थः—दिल्ली वै=दिल्लीश्वर । है-गै=घोड़े, हाथी । गहन=गहरे, बहु संख्यक । रवन-आखेटक=शिकार खेला, शिकार की । सुर=स्वर ।

अर्थः—बहुत से हाथी घोड़ों को साथ में लेकर दिल्लीश्वर ने शिकार की, जिसे देख-कर चारों ओर से दर्शक गण उच्च स्वर से कहने लगे:—चाहुवान नरेश्वर के इस वीर समुदाय को धन्य है।

कवित्त

उभय सत्त मृग मुदित, बंधि फंदैत[1] इहति[2] बर।
यों बधै मृगबीय, कहै उप्पमां[3] चन्द बर॥
मन बंधै कुलटा विटय[4], ग्यान बंधि मुकतिसु[5] आवै।
दिन बंधि आवै कुमति, काल नर बुद्धि डुलावै॥
आनई लज्ज गुन जस पकरि, आनि[6] संचि आवै अजस।
आनई क्रोध वर कलह को, यौं आने म्रगब्रीय गस॥ ३०॥

म्रा. पा. १ पा. का. भीं. घ.। २ का. भीं.। ३ पा. घ.। ४,६ पा.। ५ पा. का. घ.।

शब्दार्थः—उभय सत्त=दो सौ। इहति-बर=उसी समय। मृगबीय=मृगादि को फंदे में डालने वाले, या पालतू मृगों को रखने वाले, उन पालतु मृगों द्वारा फुसला कर जंगली मृगों को फांसने वाले। विटय=विट, स्त्री पुरुष को प्रेम बंधन में लाने वाला एक सखा दिन=बुरे दिन। आनि=आन, अभिमान। संचि=संचय करने पर। आवई=लाता है। गस=ग्रसकर, फांसकर।

अर्थः—उस समय शिकार में फंदा डालने वालों ने प्रसन्नता पूर्वक दो सौ मृगों को इस प्रकार बंधन में लिया, जिस प्रकार कुलटा स्त्री का मन विट के, मोक्ष-ज्ञान के, कुमति दिन (समय) के, बुद्धि काल के, यश-लज्जा के, अयश अभिमान के और कलह क्रोध के काबू में हो जाता है।

दोहा

संझ सपत्तौ न्रपति पै, दूत सु जद्दवराइ।
बर कग्गद न्रप हथ्थ दै, कहि श्रोत्रान बधाइ॥ ३१॥

शब्दार्थः—संझ=सांझ, सायंकाल। सपत्तौ=पहुंचा। कहि=कहते हुए, शशीवृत्ता की प्रशंसा करते हुए। श्रोतान=श्रोतानुराग। बधाइ=वृद्धि।

अर्थः—सायंकाल हो जाने पर (देवास के) यादवराज का भेजा हुआ दूत, राजा (पृथ्वीराज) के पास पहुँचा उसने राजा के हाथ में पत्र देकर शशिव्रता की प्रशंसा की और श्रोतानुराग में वृद्धि की।

कह्यो दूत मन अप्पनै, जो न्रंनो विधि जोइ ।
दोषु जानि नन न्रंनवहि, न्रप श्रोतान न होइ ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—विधि जोइ=ढंग से । दोषु=दोष ।

अर्थ:—दूत ने अपने मन में विचार किया कि कुमारी के सौन्दर्य को ठीक ढंग से वर्णन करना दोष है, किन्तु यह सोचकर यदि रूप वर्णन न किया जाय तो राजा पर श्रोतानुराग का ठीक असर न होगा ।

इह कहि बत्त ठठुक्कि रहि, उत्तर एक न आइ ।
मानों उरग छछून्दरी, कंठ लगावन धाइ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ:—उरग=सर्प, सांप । छछून्दरी=छछून्दर ।

अर्थ:—ऐसा सोच वह (चुप) खड़ा रहा कुछ भी न बोल सका । उस समय उसकी ऐसी दशा थी, मानों सांप ने मुंह से छछून्दर को पकड़ लिया हो (सांप छछून्दर को पकड़ लेता है फिर उसे छोड़ता है तो वह फूंक मारकर उसे अंधा कर देती है और वह खा जाता है तो मर जाता है) वही दशा दूत की थी । (कहता है तो कुमारी के अंगों का वर्णन करना दोष है और सौन्दर्य पर प्रकाश नहीं डालता है तो राजा का चित्त कुमारी की ओर आकर्षित करने में वह सफल नहीं होता है) ।

गाथा

मुख जंपी नन[१] बत्तं, दूतं[२] जे नवाइ सिर[3] पुच्छं ।
बर चहुआन कमानं, किम जद्दों नमों नमनाऊं ॥ ३४ ॥

ग्रा० पा० १, ३, का०, पा०, घ०, । २, का० ।

शब्दार्थ:—किम=कैसे । जद्दों=यादव कुमारी, शशिव्रता । नमों=नमाया जाय । नमनाऊं=नमने वाला ।

अर्थ:—दूत ने मुख से कुछ न कहा, और कुमारी की स्मृति करके मन ही मन उससे सिर नँवा अपराध की क्षमा मांगकर मन में ही बोला, हे यादव ! (राज कुमारी जो चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) कमान तुल्य (प्रेम संदेश पर) नमने वाला है । उसे तेरी ओर कैसे झुकाया जाय । (अर्थात् अंग वर्णन आवश्यक है और ऐसा करना दोष है । जिसके लिये मैं क्षमा चाहता हूँ) ।

दोहा

इह अख्खी चहुआंन सों, नतो मार कहि आइ ।
सुनिवे को ससिवृत्त गुन, सारदऊ ललचाइ ।। ३५ ।।

शब्दार्थः—अख्खी=कहा, निवेदन किया । नतो=नहीं । मार=मेरे से । कहि आइ=कहा जा सकता ।

अर्थः—इसके पश्चात् वह दूत चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) से निवेदन करने लगाः— कुमारी शशिव्रता का वर्णन करना मुझसे नहीं बन सकता । उसके गुणों को सुनने के लिये सरस्वती भी लालायित रहती है ।

राका अरु सूरिज्ज[1] विचि,[2] उदै अस्त दुअ वेर[3] ।
वर शशिवृत्ता सोभई, मनों शृङ्गार सुमेर ।। ३६ ।।

म्रा० पा० १, ३, पा० घ० । २ घ० ।

शब्दार्थः—विचि=बीच । दुअ=दोनों । सुमेर=सुमेरु पर्वत ।

अर्थः—जितने भूभाग पर चन्द्रमा और सूर्य क्रमशः दोनों उदय और अस्त होते हैं उतने भूभाग में कुमारी शशिव्रत्ता शृंगार किये हुए देदीप्यमान सुमेरु पर्वत (स्वर्णिम) के समान शोभायमान है ।

विशेषार्थ

चन्द्रमा और सूर्य उदय और अस्त होते हैं उनके बीच वह शृंगार माला की सुमेरु (मध्य के बड़े अक्षत मणि) के तुल्य है । माला फेरने वाला मेरु तक पहुँच कर लौट जाता है । इसी प्रकार चंद्रमाँ और सूर्य उस तक पहुँच कर लौट जाते हैं लेकिन स्पर्श नहीं कर पाते [अर्थात वह कुमारी अन्य की तो बात ही क्या, चंद्रमा और सूर्य द्वारा भी अस्पर्श की हुई है] ।

इन वै इन रूपह तरुनि, इन गुन आवै मान ।
सौ बरबर कविचंद कहि, सुनहु तो कहूँ प्रमान ।। ३७ ।।

शब्दार्थः—इन=ऐसी । वै=वय । आवै-मान=मानने में आ सकता है, अनुमान लगाया जा सकता है । सो=उसने, दूतने । बर २=बार २ । प्रमान=प्रमाण करके, द्रष्टान्त देकर ।

अर्थः—कवि चंद कहता हैः—कि दूतने राजा से बार २ कहाः—हे राजन ! उस कुमारी के रूप और गुण का इस प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है । यदि आप सुने तो मैं सप्रमाण (द्रष्टान्त देकर) निवेदन करूँ ।

कवित्त

ससिर अंत आवन वसंत, अंत[1] बालह सैसव गम ।
अलिन पंख कोकिल सुकंठ सज्जि पौगुंड[2] मिलत भ्रम ।।
मुर मारुत मुरि वेलि[3], मुरे मुरि वैस प्रमानं ।
तुछ कौंपर सिस फुट्टि, आंन किस्सौर रँगानं ।।
लीनो न अमी नक-स्याम मन[4], मधुप मधुर धुनि धुनि करिय ।
जानी न वयन आवन वसँत, अग्याता जोवन अरिय ।। ३८ ।।

ग्रा० पा० १, २, सर्वप्रति । ३, ४, पा० ।

शब्दार्थ—गम=गमन कर, विदा होकर । पोगुंड=प्रौढ़ता, प्रौढत्व । मुर-मारुत=पवन के मुड़ने (झोके) से । मुर-वेलि=लचकीली लता । मुरे=नमने लगी । मुरि बेस=प्रथम अवस्था के मुड़ जाने (चले जाने) पर । कौंपर=कोपलें, पल्लव । सिस=ऊपर । फुट्टि=निकली । किस्सौर=किशोरावस्था । अमी=अमिय, रस । नक-स्याम=नक्र श्याम (स्वामी), मकरध्वज, कामदेव । वयन=वय, अवस्था ।

अर्थः—जिस प्रकार वसन्त के आगमन पर शिशिरऋतु का अन्त हो जाता है उसी प्रकार उस बाला से शैशवावस्था विदा होकर अन्त को प्राप्त हो गई । जिस प्रकार कीट पंख प्राप्त करके भ्रमर रूप में हो जाता है, उसी प्रकार उस कोकिल कंठी ने प्रौढ़त्व को प्राप्त कर लोगों को आश्चर्यान्वित कर दिया, अपनी शैशवावस्था के चले जाने पर वह लचकीली लता तुल्य कुमारी वय की हवा के झोके से नमने लगी और वह पल्लवित हो गई, जिसपर किशोरावस्था का रंग छागया, उसकी अंगवास (सुगंध) पर भ्रमर सिर धुन २ कर मधुर गुन्जार करते हैं लेकिन रस (अधर रस) का पान इस लिये नहीं करते कि उसके मन में कामदेव ने निवास कर लिया है । (भ्रमरों को डर है कि इसके मन में स्थित कामदेव जिसने भ्रमर पंक्ति की चांप कर रक्खी है । जो पुरानी हो जाने से कहीं हमें पकड़ कर पुनः यह नई प्रत्यंचा न बनाने लग जाय) वसन्त के तुल्य युवावस्था उसमें प्रवेश कर गई फिर भी उसे वह न जान सकी ।

कवित्त

पत्त पुरातन झरिग, पत्त अंकुरिय उट्ठ तुछ ।
ज्यौं सैसव उत्तरिय, चढिय सैसव किसोर कुछ ।।

शीतल मंद सुगंध[1], आइ रितिराज अचानं ।
रोम राइ अंकुचि नितंब, तुच्छ[2] तुच्छं सरसानं ।।
बढ्ढै न सीत कटि छीन व्है, लज्ज मान ठंकनि[3] फिरै ।
ढंकै न पत्त ढंकै कहै, बन बसंत मंत जु करै ।। ३६ ।।

ग्रा० पा० १, २, ३ सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—पत्त=पत्ते, लज्जा । उत्तरिय=उतर गई, दूर होगई । रितिराज=ऋतुराज । अचानं=अचानक । रोम राइ=रोम राजी । अं=उसी तरह । लज्ज मान=लजवंती के समान । ठंकनि=ठुठुकति, संकुचित । न-पत्त=पत्ते रहित । ढंकै-न=नहीं ढकती, नहीं छिपाती, संकोच नहीं करती । ढंकै=ढाक, पलाश । कहै=कहीजाती मंत-जु-करै=मतपर चलती, समता करती ।

अर्थः—जिस प्रकार पुराने पत्ते झड़कर नये पत्ते थोड़े २ अंकुरित होते हैं उसी प्रकार उस बाला की शैशवावस्था दूर होकर उस पर कुछ २ युवापन के साथ-साथ लज्जा झलकने लगी है । जिस प्रकार ऋतुराज के अचानक आगमन पर शीतल, मंद, सुगंधित पवन चलता है; उसी प्रकार उसके रोमराजि, कुच, और नितंबों में कुछ २ सरसता बढ़ चली है । जिस प्रकार शीत की वृद्धि में कमी हो जाती है उसी प्रकार उसकी कमर क्षीण होती गई है । जिस प्रकार लजवंती (एक पौधा जिसको छूने से उसके पत्ते सिकुड़ जाते हैं) सिकुड़ जाती है उसी प्रकार वह कभी २ संकुचित हो जाती है, जिस प्रकार ढाक पत्ते रहित होते हैं उसी प्रकार वह अनभिज्ञ कभी कभी निःसंकोच कही जाती है, इस प्रकार वह वनाच्छादित वसन्त के मत पर चलती है (समानता करती है) ।

दोहा

श्रवनन भो[1] श्रोतान नृप, मन बंछै चहुआन ।
मनु ससिवृत्त कुंआरि कौ, पर्यौ उरद्धर बान ।। ४० ।।

ग्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—श्रोतान=श्रोतानुराग । बंछै=चाहने लगा । उर द्धर=उरस्थर, हीतल, हृदय ।

अर्थः—राजा यह सुनकर श्रोतानुरागी होगया और वह शशिव्रता को मन से चाहने लगा । उसकी सौन्दर्य-चर्चा कानों में क्या पड़ी मानों राजा के हृदय में (कामदेव का) बाण लग गया ।

कवित्त

निसि नरिंद चहुआन, चित्त मनुरत्थ विचारै।
भई दीह सब निशा, निशा सपनंतर[1] धारै॥
सपनंतर[2] ससिवृत्त, चाटु चटु बैन उचारै।
चारु चारू बर बचन[3], मान माननि संभारै॥
दैवान मनोरथ चित्त बर, भव भवच्छ-नन-कह-करै[4]।
भौ प्रात दूत पुच्छै नृपति, जद्दौंवै[5] चित्तै धरै॥ ४१॥

ग्रा० पा० १, २, पा० का० भीं० घ०। ३ का०। ४, घ०। ५, का० घ०।

शब्दार्थ—मनुरत्थ=मनोरथ। सपनंतर=स्वप्न में। धारै=देखता रहा। चाटु=जादू। चटु=चट, शीघ्र। मान=तुल्य। संभारै=सुने। देवान=दैविक, देव तुल्य। भव=संसार। भवच्छ=भविष्य। न न-कह-करै=कुछ नहीं कर सकता, वश नहीं चलता। जद्दौंवै=यादव राजकुमारी को।

अर्थः—चाहुवान नरेश्वर रात भर मन में अपनी इच्छा का चिन्तन करता रहा। निशा उसके लिये दिन हो गई। अर्धजागृत अवस्था में वह रात्रि भर स्वप्न देखता रहा। उसे स्वप्न में कुमारी शशिव्रत्ता जादू करती हुई मालूम पड़ी और ऐसे ही सम्मोहक शब्द कहती हुई जान पड़ी। उसके वे वचन मानवती के मान-वाक्य के समान राजा को सुनाई पड़े। कवि कहता है जिनका श्रेष्ठ चित्त है। उनके मनोरथ देवतुल्य होते हैं। संसार में भविष्य का वश उन पर नहीं चलता। प्रातः होने पर यादव कुमारी को चित्त में बसाता हुआ राजा पृथ्वीराज दूत से उस शशिव्रता के विषय में पुनः पूछने लगा।

दोहा

वीर चंद जैचंद बँधु, दें-वरु पुंज कुंआरि[1]।
न्रप पठये चहुआन पै, दै शशिव्रत्ता नारि॥ ४२॥

ग्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थः—दें-वरु=वरदेगा, विवाह करेगा। पुंज=यादव-राज का भाई, शशिव्रता का पिता पुंज।

अर्थः—दूत कहने लगाः-हे चाहुवान नरेश्वर! जय चंद के भाइयों में एक वीरचंद है उससे यादव राजा के भाई "पुंज" ने अपनी कुमारी शशिव्रत्ता का विवाह करना निश्चित किया है। इसीलिये यादव-राज ने मुझे आपके पास कुमारी शशिव्रत्ता को समर्पित करने के लिये भेजा है।

आगम बीर वंसत कौ, शिशिर संपत्ते अंत।
प्रीतम पतन सु प्रीति कौ, दै न-ठांह सो कंत ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—संपत्ते=जाँय, मिट सकती अंत=अन्तर। दै–न–ठांह=स्थान नहीं देती। कंत=कांता।

अर्थः—हे वीर (पृथ्वीराज)! आपके वसन्त तुल्य आगमन पर ही उस बाला के अन्तर से वह शिशिर तुल्य कंपन (अन्य के साथ विवाह करने का भय) मिट सकता है। हे प्यारे! वह कान्ता (कुमारी) पवित्र प्रेम को अपने पास से दूसरों को देना नहीं चाहती, (आपके प्रति जो उसका पवित्र प्रेम है। उसे वह नहीं छोड़ना चाहती)।

कवित्त

शशिर सु विथुरत बन वियोग, विथुरत[1] बन कते।
दुहन आस रहि सांस, कंत आयौं न वसंते ॥
उपवन पत्त झंझरिय, विरह पंजर सं झंझरि।
आस अंनहिन हुलसि, विपन हुलसै सुसमंझरि ॥
अनमेछ[2] जपत इच्छा सघन आनद उर भूषण तजै ॥
दोऊ न होइ कवि चन्द कहि, असु रख्खिरु धज सम सजै ॥ ४४ ॥

ग्रा० पा० १, सं०। २ पा०।

शब्दार्थः—विथुरत=विस्तृत। बन-कंते=विना स्वामी के बिना आपके। दुहन=दुरुह, मुश्किल। पत=पत्ते। झंझरिय=जर्जरित कर देता। पंजर=शरीर रूपी पिंजड़ा। सं=उसका। झंझरि=झंझेड़ दिया। आस–अंन हिन=आशा हो आती। हुलसे=खिल पड़ता। सुसनं–झरि=सूक्ष्म झड़ी (वर्षा) से। अनमेछ=अनिमेष, निरन्तर। असु=प्राण। धज–सम–सजै=ध्वजा के समान प्रकंपित रहे।

अर्थः—जिस प्रकार शिशिर वन में विस्तार पाता है, उसी प्रकार हे प्यारे, आपके बिना, वियोग ने उसमें विस्तार पा रक्खा है। आपकी आशा में ही उसके श्वास इतने दिन मुश्किल से रह सके हैं। वह सोचती है कि वसन्त तुल्य कंत (आप) अब तक क्यों नहीं आये। उपवन के द्रुमों की पत्रावलि को जिस प्रकार शिशिर जर्जरित कर देता है, उसी प्रकार उसके शरीर रूपी पिंजड़े को विरह ने झँझेड़ दिया है। जब आपके आने की आशा होती है तब वह कुछ २ इस प्रकार प्रसन्न हो जाती है; जिस प्रकार वन, तनिक झड़ी (वर्षा) से खिल उठता है। आन्तरिक

भाव से वह आपका नाम निरंतर जपती रहती है। उसने हृदय से हर्ष को और अंग से भूषणों को दूर कर रक्खा है। अब उससे दो बातें (१) प्राण रखना और (२) परभय से ध्वजा तुल्य कांपते रहना नहीं बनता (अस्तु दोनों से छुटकारा पाने के लिये अब वह प्राण देने को तत्पर है)।

कवित्त

चित्र रेख बाला विचित्र, कंति-चंद्री[1] चंद्रानन।
स्वर्ग मग्ग उत्तरी, चित्त-पुत्तरि[2] परिमानन[3] ॥
कान वान संजुरी[4], बाल अंजुरी सु लच्छिय।
मार कलह वित्तरी[5], पुव्ब[6] अच्छरी सु अच्छिय[7] ॥
लच्छिन बतीस लच्छी सहज, रति पति चित्त समुद्धरै[8]।
संग्रहै वृत्त चहुआन को, गवरि पुज्ज दिन प्रति करै ॥ ४५ ॥

ग्रा० पा० १, ३, ५, ६ ७, ८ दे०। २ का० पा० घ०। ४ दे० घ० पा०।

शब्दार्थ:—कंत-चंद्री=जिसकी कांति चन्द्रमाँ तुल्य। चित्त-पुत्तरि=चित्र पुत्तलिका। परमानन=प्रमान, समान। वान-संजुरि=साधे हुए बाण सी। अं=अह, या, ऐसी। जुरी-सु-लच्छिय=शुभ लक्षण जुटाये हुए हों। वित्तरी=विस्तार देने वाली। पुव्व=पूर्व, पहले) लच्छी=लक्ष्मी। रति=प्रीति। समु=से। धरे=धरने वाली, करने वाली। सं=सो, उसने। वृत्त=प्रतिज्ञा। पुज्ज=पूजा।

अर्थ:—वह चन्द्राननि बाला जिसकी कांति वास्तव में चन्द्रमा के तुल्य है, चित्र रेखा का अवतार है। वह चित्र-पुत्तलिका के समान स्वर्ग के मार्ग से उतर पड़ी है। साधे हुए कामदेव के बाण के समान वह बाला ऐसी है मानों सर्वश्रेष्ठ लक्षण जुटा दिये हों। कामदेव और कलह की क्रीड़ा को विस्तार देने वाली पहले जो श्रेष्ठ अप्सरा थी, वही संसार में आई है। बत्तीस ही शुभ लक्षणों से युक्त और स्वाभाविक ही लक्ष्मी स्वरूपा है और चित्त में जो पति से प्रीति करने वाली है;वह कुमारी हे चाहुवान ! (आप) को वरण करने की प्रतिज्ञा लेकर सदा गौरी (पार्वती) की पूजा करती है।

दोहा

बरनी जोग बरण्ण 'इ[1]', वर[2] भुल्यौ[3] करतार।
तिहि कारन ढुढतु[4] फिरै, सत्त समुद्दह[5] पार ॥ ४६ ॥

ग्रा० १ ५, दे०।

शब्दार्थः—बरनी=जिसका वरण होने वाला है, दुलहन, कुमारी। वररण-कुइं=बरने को। भुल्लौ=विस्मित हो गये। करतार=करता, सृजता, ब्रह्मा। ढुंढतु=खोजते। समुद्दह=समुद्र।

अर्थ—: उस कुमारी के वरण योग्य वर की रचना करने में स्वयम् विधाता भी विस्मित होगया है। उसके योग्य वर की खोज सातों समुद्र के पार तक की गई (फिर भी नहीं मिला)।

जा कारण ढुंढत फिरत, सो पायो ढिल्लीस[१]।
अब जद्दों वृत्त-सिर चढ़िय[२], दीनी ईस जगीस ॥ ४७ ॥
ग्रा० पा० १, २ पा० का०।

शब्दार्थः—ढिल्लीस=दिल्लीश्वर। जद्दों=यादव राजकुमारी। वृत्त-सिर-चढ़िय=प्रतिज्ञा सिर पर सवार होगई, दृढ़ प्रतिज्ञा ग्रहण करली। दीनी=आज्ञा दी, आशीर्वाद दिया। ईश=शिव। जगीस=पृथ्वीपति।

अर्थः—जिसको खोजते फिरते थे, वही उसके योग्य वर दिल्लीश्वर (आप) प्राप्त हो गये हैं। अब वह यादव-कुमारी आपको ही वरण करने की प्रतिज्ञा कर चुकी है। हे पृथ्वीपति (पृथ्वीराज)! उसकी ऐसी प्रतिज्ञा देखकर भगवान शिव ने (पति रूप में आपके प्राप्त होने का) आशीर्वाद दिया है।

शिवा बानि शिव वचन करि, हौं[१] पठयो प्रति तुभ्भ।
कारन कुंअरी वृत्त कौ, मन-कामन भय मुभ्भ ॥ ४८ ॥
ग्रा० पा० १, पा० भीं० घ०।

शब्दार्थः—तुभ्भ=तुम्हारे, आपके। मन-कामन=मनेच्छा। भय=हुई। मुभ्भ=मेरी।

अर्थः—शिव द्वारा दिया हुआ वरदान शिवा (पार्वती) ने कह सुनाया। उसे सुनकर उस कुमारी ने मुझे आपके समीप भेजा है और आपको संदेश देने की मेरी मन-इच्छा भी कुमारी की दृढ़ प्रतिज्ञा के कारण ही हुई है।

सुभ लच्छन जद्दव प्रिया, कहिये[१] का सु विवेक।
हंस कहै राजान[२] सुनि, उत्तिम लच्छिन केक ॥ ४९ ॥
ग्रा० पा० १ सर्वप्रति। २ घ०।

शब्दार्थः—उत्तिम=उत्तम, शुभ। लच्छिन=लक्षण। केक=कितनें ही, अनेकों।

अर्थः—हंस नामक दूत कहने लगा— हे नरेश्वर! विवेक पूर्वक उस यादव कुमारी का कहाँ तक वर्णन किया जाय? आपकी उस प्रियतमां में अनेकों शुभ लक्षण हैं।

श्लोक (काव्य)

पीनो-रु-पीन उरजा शशि सम वदना[1], पद्म पत्रायताक्षी[2]।
ब्यंबोष्टी तुंग नासा, गज पति गमना, दक्षना वृत्त नाभी।
सुस्निग्धा[3] चारु केशी मृदु पृथु जघना,[4] वाम मध्या सुवेसी।
हेमांगी कंति हेला वर रुचि[5] दसना, काम बाना कटाक्षी॥ ५०॥

ग्रा० पा० १, पा०। २ से ४, सर्वप्रति।

शब्दार्थः—पीनो-रु-पीने=पेने से भी पेने। उरजा=उरोज, कुच। सम=समान। पद्मपत्रायताक्षी= कमल पत्र से चक्षु। तुंग=उत्तंग, उठी हुई। दक्षनावृत्त=दाहिनी ओर से चक्राकृति। सु-स्निग्धा= श्रेष्ठ प्रेम युक्त। मृदु=कोमल। प्रथु=प्रस्थूल, स्थूल। वेसी=वेस, अवस्था। कंति=कान्ता। हेला=एक प्रकार का हाव, (विनोद सूचक विलास मुद्रा)।

अर्थः—उस बाला के कुच विशेष पेने, मुख चंद्रमां के समान, चक्षु कमल-पत्र के समान, ओष्ठ बिम्ब फल की भांति, नासिका उठी चाल हथिनी की तरह, नाभि दक्षिणावृत्त (दाहिनी ओर से चक्राकृति), प्रेम श्रेष्ठ, केश मंजुल, स्थूल और कोमल जंघाय, वय मध्या, काया सर्वाङ्ग स्वर्णिम, हाव भाव (विलास क्रीड़ा) युक्त, रद पंक्ति रुचिकर और कटाक्ष कामदेव के बाणों के तुल्य हैं।

दोहा

कही हंस जद्दोंन[1] कथ, लगि श्रोतान सु राज।
छिनन हंस धीरज धरै, लगै बान सम साज॥ ५१॥

ग्रा० पा० १ पा० का०।

शब्दार्थः—हंस=दूत विशेष। जद्दोंन कथ=यादव कुमारी का वर्णन। हंस=प्राण। साज=सधे हुए।

अर्थः—इस प्रकार हंस नामक दूत ने यादव-कुमारी का वर्णन कह सुनाया, जिससे राजा (पृथ्वीराज) को ओर भी श्रोतानुराग होगया। उसके (पृथ्वीराज)

प्राणों को क्षण मात्र भी धैर्य नहीं हुआ। दूत द्वारा शशिवृत्ताकी प्रशंसा में कहे हुए वचन सधे हुए कामदेव के बाणों के समान काम कर गये।

कहै हंस बर राज सुनि, तिअ[1] अनेक है जाति।
पदमनि है जद्दव कुंअरि, आन तरुनि अनि भांति॥ ५२॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—तिअ=तिय, स्त्रियें। अनि=अन्य।

अर्थः—फिर हंस (दूत) कहने लगाः— हे नरेश्वर सुनो! स्त्रियों की अनेक जातियाँ हैं, जिनमें अन्य स्त्रियाँ अन्य जाति की हो सकती हैं, किन्तु यादव-कुमारी (शशिव्रता) वास्तव में पद्मिनी जाति की ही है।

राज कहै दुजराज सुनि, करि बरनन कथि सोइ।
को लच्छिन उत्तिम त्रिया, कहियै सो सब जोइ॥ ५३॥

शब्दार्थः—दुजराज=द्विजराज। कथि=कहो। को=कौन २, क्या२। जोइ=जोकर, सोचकर।

अर्थः—तब राजा ने कहा, हे द्विजवर (विप्रवर)! स्त्रियों के लक्षणों को सोचकर हमें उनका वर्णन सुनाओ। उत्तम स्त्रियों के क्या२ लक्षण होते हैं?

चारि जाति हैं त्रीय तन, पदमिनि हस्तिनि चित्र।
फुनि संखिनिय प्रमान इह[1], मन नह रंजिय मित्र[2]॥ ५४॥

ग्रा० पा० १, २, पा० का० घ० भीं।

चारि=चार। तन=शारीरिक रचना, स्वरूप। चित्र=चित्रनी। फुनि=पुनि. और। प्रमानइह=प्रमाने गये, माने गये। रंजिय=रंजित, प्रसन्न।

अर्थः—दूत कहने लगाः-स्त्रियों के शारीरिक स्वरूप चार प्रकार के हैं। उसी के अनुसार क्रमशः पद्मिनी, हस्तिनी, चित्रनी, और शंखिनी भेद माने गये हैं। हे मित्र! उनमें शंखिनी से मन रंजित नहीं होता।

गाथा

कहै विवेक सु हंसं, त्रीय प्रकार चारि[1] लहि इंदं।
सुनि राजन सुभ वांनी, आनंदे श्रवन मभभेनं॥ ५५॥

ग्रा० पा० १ घ० ।

शब्दार्थ—इंदं=राजा । मभ्भेनं=में, से ।

अर्थ:—फिर (दूत) हंस विवेक पूर्वक यह कहने लगा, हे राजन ! स्त्रियाँ चार प्रकार की पाई जाती हैं । तब उसके वचनों को सुनने के लिये राजा के कान लालायित होगये ।

दोहा

तब दुजराज सु उच्चरिय, रे संभरि पुर इंद ।
पद्मिनि हस्तिनि चित्रनी, संखिनि संखन नंद ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ:—नंद=निंद्य, निन्दनीय ।

अर्थ:—फिर द्विजराज (विप्र) बोला:- हे संभरी नरेश (पृथ्वीराज) ! पद्मिनी, हस्तिनी, चित्रनी, और शंखिनी ये चार प्रकार की स्त्रियाँ होती हैं, जिसमें शंखिनी निन्दनीय हैं ।

कवित्त

कुटिल केस पदमिनी, चक्र हस्तिन[1] तन सोभा ।
स्निग्ध दंत सोभा विसाल, गध पद्म[2] आलोभा ॥
सुरस मूह[3] हंसी प्रमान, अलप[4] निद्रा तुछ जंपै ।
अलप वाद मित काम, रत्ति[5] अभया भै कंपै ॥
धीरज्ज छिमा लच्छिन सहज, असन बसन चतुरंग गति ।
आवंक लोइ लग्गै सहज, कांम वान भूलंत रति ॥ ५७ ॥

ग्रा० पा० १, पा० । २, पा० घ० । ३, घ० । ४, सर्वप्रति । ५ दे० ।

शब्दार्थ:—कुटिल=टेढ़े मेढ़े, स्वाभाविक बने हुए । हस्तिन=हाथ । तन-सोभा=शरीर शोभा युक्त, सुन्दर । स्निग्ध=चिकने, चमकीले । दंत=दांत । गंध=सुवास पद्म=पद्म, कमल । आलोभा=लुभाने वाली, मुदित करने वाली, या—अलभ्य । सुरस=सरस । मूह=मुँह, मुख । अलप=अल्प । तुछ जंपै= मितभाषी । मितकाम=सूक्ष्म कामेच्छा । रत्ति=रति समय, सूरति समय । भै=भय, छिमा=क्षमा । लच्छिन=लक्षण । चतुरंग=चतुर । आ-वंक-लोइ-लग्गं=उसकी बांकी चितवन लगने पर, कटाक्ष होने पर ।

अर्थः—जिसके केश टेढ़े मेढ़े (स्वाभाविक बने हुए), हाथ चक्र चिन्हों से सुशोभित, सुन्दर शरीर, विशेष शोभा युक्त चमकीली रदपंक्ति, मोहित करने वाली कमल के समान अंगवास, मुँह पर सरस हँसी, तुच्छ निद्रा, मितभाषी, अल्पवाद, सूक्ष्म कामेच्छा, सूरति समय निर्भय और सकंप सभय, धैर्यवान, सहज ही क्षमावान, स्वाभाविक सुलक्षणावती, भोजन बनाने और वस्त्र पहनने में चतुर एवं उसके स्वाभाविक ही कटाक्ष करने पर स्वयम् कामदेव भी अपने शरासन और अपनी प्रियतमा रति को भूलसा जाता है। ऐसे लक्षणों वाली स्त्री पद्मिनी है।

उर्द्ध केस हस्तिनी, वक्र अस्तन दसननि[1] दुति।
मधुत[2] गंध गरुणाट, भुल्लि-भ्रम कांम बाम रति॥
गूढ़ सबद मन-जा विखान, रंग रंगन[3] छामोदरि।
चित्र नयन चंचल विसाल, श्याम[4] बरनी जामोदरि[5]॥
छिनु[6] रुदय हसय विहसय लसय, वसि चित्तह चित-पुत्तलिय।
नीवीय मान जानई बहुत, कंत चित्त जाइ न कलिय॥ ५८॥

ग्रा० पा० १ दे०। २, ३, ४, सर्व प्रति। ५ घ०।

शब्दार्थः—अस्तन=स्तन, कुच। दसननि=दांत, दन्त। दुति=दोनों। मधुत=मधु (रस) तुल्य। गरुणाट=गहरी। भुल्लि-भ्रम=भूलकर भ्रमित। गूढ़-सबद=व्यंग्य वाक्य। मन-जा=जिसका मन। विखान=विषयों में। छामोदरी=क्षीण कटि, कृशोदरी। चित्र=चित्रक हिरण से। जामोदरि=यामिनी से दलित, यामिनी से मोह, रात्रि में अभिसार करती रहने वाली।

अर्थः—जिसके केश उठे हुए हों, कुच और दंत पंक्ति जिसके दोनों ही वक्र हो, मधु (रस) तुल्य गहरी जिसकी अंगवास हो, काम में लीन हो, सुधबुध भूलकर भ्रमित हो, जो व्यंग बोलने वाली हो, मन जिसका विषयानुरक्त रहता हो, विविध रंगों में जो रगी हुई हो, जिसका उदर सम हो, पतली जिसकी कमर हो, चित्रक हिरण के समान जिसके विशाल चंचल नैत्र हों, जिसका श्याम वर्ण हो, यामिनी से जिसका प्रेम हो (कृष्णाऽभिसारिका हो), जिसका रोना, प्रसन्न होना, तथा विलास क्षणिक हो, जो चित्त में चित्र-पुत्तलिका के तुल्य बसने वाली हो। अन्य कुछ नहीं केवल मान करना जानती हो, ऐसी स्त्री हस्तिनी जाति की है। उसके पति के चित्त में उससे क्रीड़ा-विषयक तृप्ति नहीं होती।

दीर्घ[1] केस चित्रिनी, चित्त हरणी[2] चन्द्राननि[3] ।
गंध म्रगंमद[4] विदे,[5] कोक शब्दनि उच्चारणि[6] ॥
सील नील लज्जा प्रमांन, रत्तिभै भय घन मारै ।
अलस-नयन रस वलित, कलित कल बोल उचारै ॥
धीरज्ज छिमा छव[7] लोक करि[8], अवलोकन गुन औसरे ।
विस्तीर्ण मंत्र मोहन पढै, चित्त वित्त कथ्थां[9] हरै ॥ ५९ ॥
ग्रा० पा० १ से ३, ६, ९ दे० । ४, ५, ७, ८ सर्व प्रति ।

शब्दार्थ:—दीर्घ=बड़े, लम्बे । म्रगंमद=मृगमद, कस्तुरी । विदे=वदे, कहीजाती । नील=सौ अरब संख्या का एक नील । रत्ति-भै=रात्रि होने पर । मारै=मार, काम [क्रीड़ा] । अलस नयन= अलसित नैत्र । रस-बलित=रस से ओत प्रोत, सरसता युक्त । कलित=खिली, प्रसन्न । कल= मधुर, सुन्दर । छिमा=क्षमा । छव=छबि, शोभा । लोक-करि=लोक की, संसार की । अवलोकन=देखने पर । औसरे=टपके, बरसे । मोहन=मोहनी । कथ्थां=कंत, पति । हरै=चुराती ।

अर्थ:—लम्बे केशों वाली, चित्त को हरने वाली, चन्द्रमाँ के समान मुख वाली, कस्तूरी के समान अंग-वास वाली, कोक शास्त्र के अनुसार शब्द बोलने वाली, शील और लज्जाअपरिमित रखने वाली, रात्रि में भय और काम की इच्छा रखने वाली, अलसित नैत्रों वाली, रस सिक्त मधुर बोलने वाली, धैर्य और क्षमा भावना रखने वाली, संसार में शोभा युक्त, दिखने में गुणवाली-ऐसे लक्षणों से युक्त स्त्री चित्रणी जाति की होती हैं । वह ऐसी होती है; मानो मोहिनी-मंत्र का पठन किया हो । ऐसी स्त्री सहज ही अपने पत्ति के चित्त को चुरा लेती है ।

अलप केस कुच थूल[1], थूंल[2] दंती उच्चारन ।
थूल उदर लंकीस, जंघ क्रिसलं गँध वारुण[3] ॥
घोर णिंद्र[4] तन तास, अलप रसणा[5] रस छंडै ।
अलप सील गंभीर, सबद कलहंतर मंडै ॥
आचार ध्रंम[6] नहि सुद्ध मन, विधि विचार विभचार घन ।
आसंख-संख संखिनि गुनत्ति, सुख्ख नाह पावै न तन ॥ ६० ॥
ग्रा पा० १, २ सं० । ३, ४, ५ दे० । ६ सर्वप्रति ।

शब्दार्थ:—अलप=छोटे, सूक्ष्म, तुच्छ । थूल=बड़े, उच्च, मोटे, भारी । उदर=पेट । लंकीस= कमर । क्रिसल=कृष, पतली । णिंद्र=निद्रा । तन तास=त्रसित काय, भयावने शरीर वाली । रसणा= रसना । छंडै=छोड़ती, बरसाती

गंभरि=गहरे, उच्च। सबद=शब्द, आवाज, स्वर। विधि=विविध। आ=इस प्रकार। संख-संख=विशेष संख्या में। नाह=पति।

अर्थ:—छोटे केश और बड़े २कुच,बड़े २दांत वाली,भारी पेट और भारी कमरवाली, पतली जंघाओ वाली, हथिनी के समान अंग-वास वाली, गहरी निद्रा में सोने वाली, भयावने शरीर वाली, वाणी में तुच्छ सरसता रखने वाली, तुच्छ शील वाली, उच्च स्वर से कलह-वाक्य कहने वाली, आचार, धर्म और मन को शुद्ध नहीं रखने वाली; विविध विचार वाली तथा व्यभिचार में विशेष रुचि रखने वाली-स्त्री शंखिनी होती है। ऐसी स्त्री से उसके पति को कभी सुख नहीं मिलता।

दोहा

जंपि राज दुज राज सम, तुम मति-रूप अलोई।
कवन काज अवतार इह[1], सत्ति[2] कहो तुम सोइ॥ ६१ ॥

प्रा० पा० १, पा० का० घ०। २, घ०।

शब्दार्थ:—जंपि=कहा। मति-रूप=बुद्धि का स्वरूप। अलोई=अलौकिक। इह=इसका। सति=सत्य, स्पष्ट।

अर्थ:—तब राजा (पृथ्वीराज) ने द्विज (दूत) से कहातु म्हारी बुद्धि का स्वरूप अलौकिक है। अतः ऐसी राजकुमारी (शशिव्रता) का अवतार पृथ्वी पर किस लिये हुआ, उसका स्पष्ट वर्णन सुनाओ ?

हंस कहै राजान सुनि, कहों उतपत्ति त्रियेन।
सुनहु राज मन प्रसन होइ, त्रिवरि कहों सब बैन॥ ६२ ॥

शब्दार्थ:—राजान=नरेश्वर। त्रियेन=स्त्री की, कुमारी की। सुनहि=सुनने से।। त्रिवरि=व्यौरेवार, सविस्तार।

अर्थ:—तब हंस (नामक द्विज) कहने लगा—हे नरेश्वर ! जिसके सुनने से मन को प्रसन्नता होती है, उस स्त्री (कुमारी) की उत्पत्ति, मैं आपसे सविस्तार कहता हूँ।

कवित्त

इक्क[1] समै सुर ईस, अप्प पुरइंद थान गय।
आगम देव सुनेव, नागपति अति उछाह भय॥

अरघ पाद करिधूप, करै मंगल अपुब्ब सुर ।
सुभ आसन रजि रुद्र, करै घनसार[२] बारितर ॥
अस्तुति करंन लग्गौ सुरिँद, तब प्रसन्न भय ईस प्रति ।
उच्चरिय कूट-जट इंद्रसों, सुभ दिक्खौ[३] अच्छार[४] नृपति ॥ ६३ ॥

ग्रा० पा०, १, पा० । २, सर्वप्रति । ३, का० पा० । ४ घ० ।

शब्दार्थः—इक्क-समै=एक समय । सुरईस=महादेव, शिव । अप्प=स्वयम् । पुर इन्द=पुरेन्द्र, इन्द्र । गय=गये । नागपति=स्वर्गाधिप, इन्द्र । भय=हुआ । घनसार-बारि--तर=तब वहां पर विशेष कर्पूर (दीप) जलाये । प्रति=उस (इन्द्र) के प्रति । कूट-जट=जटाशेखर, शिव । सुभ= मंगल रूप में, मंगल मुखियों को । अच्छरि=अप्सरायें । नृपति=राजन, देवेन्द्र ।

अर्थः—एक समय महादेव, इन्द्र के स्थान पर गये । महादेव का आगमन सुनकर इन्द्र ने विशेष रूप से उत्सव मनाया । उनके चरणों में अर्घ्य देकर उसने धूप दीपादि का मंगल कार्य किया । शिव जब आसनारूढ़ हो गये तो वहाँ कर्पूर दीप जलाये गये । स्तुति करने पर शिव ने प्रसन्न हो इन्द्र से कहाः-हे देवेन्द्र ! आपकी मंगलमुखी अप्सराओं को (उनकी नृत्य कथा को) देखना चाहता हूँ ।

रंभ घृताची मैन, मँजु घोषा सुरग त्रिय ।
उरबसि केसी नारि, तुरत तिल्लोत्तमानि पिय ॥
किय श्रृंगार सुंदरिय, आइ उभ्भी सुर बामं ।
दिक्खि[१] त्रियामन प्रमुदि, हुऔ मन उदित कामं ।
अब सरस नृत्य कारनह कजि, जंत्र मृदंग उपंग[२] सजि ।
अस्तुति अनेक पढि घोष त्रिय, पहु पंजुलि सुर इंद्र-कजि ॥ ६४ ॥

ग्रा० पा० १, पा० । २, पा०, घ०, ।

शब्दार्थः—रंभ=रंभा । घृताची=घृताञ्ची । मेन=मेनका । सुरंग=सुरंगी, सुन्दर । उरबसि= उर्बशी । केसी=सुकेशी । तिल्लोत्तमानि=तिलोत्तमा । पिय=प्रिय । उभ्भी=खड़ी । दिक्खि=देखने से । प्रमुदि=प्रमुदित, प्रसन्न । कजि=लिये । जंत्र=यंत्रि, तंत्रि । उपंग= वाद्य विशेष । घोष= मंजुघोष । पहु पंजुलि=पुष्पाञ्जलि । इन्द्र-कजि=इन्द्र को ।

अर्थः— तब-रंभा, घृताञ्ची, मैनका, मंजुघोषा, उर्बशी, सुकेशी, तिलोत्तमा आदि सुन्दर अप्सरायें जो इन्द्र को अधिक प्रिय थी, वे सब सुर सुन्दरी (सुर बालायें)

शृँगार किये हुए सामने आ उपस्थित हुई, जिनको देखने मात्र से मन को प्रसन्नता और कामोद्दीपन हो जाता था। उन्होंने सरस नृत्य करने के लिये तन्त्र वाद्य, मृदंग तथा उपंग को तय्यार किया, एवं प्रारंभ में पुष्पाञ्जलि देने के लिये मंजुघोषा आगे बढ़ी और स्तुति कर इन्द्र को पुष्पाञ्जलि समर्पित की। (उसने अतिथि रूप में आये हुए शिव को समर्पित न कर इन्द्र को समर्पित की, जिससे उसके द्वारा शिव ने अपना अपमान समझा)।

तब सु कोप धरि ईस, दियौ सुर-श्राप पतन धर[१]।
और रंभ किय नृत्य, सुबर अन्नेक विद्धि पर ॥
बहु विवेक कल मान ताल मडै त्रिगंन[२] सुर।
रंजि राज-सुर ईस, दीन-बर-बानि रंभ गुर ॥
अति प्रमुदि चित्त कैलास पति, उभय देव आनंद हुअ।
सुभ सभा विराजै राज सुर, सुबर प्रमोदिय मन्न सँभुअ ॥ ६५ ॥

ग्रा० पा० १ पा० का०। २ सर्व प्रति।

शब्दार्थः—सुर-श्राप=श्राप वाक्य। पतन-धर=पृथ्वी पर जन्म लेने का। विद्धि पर=ढंग पर, ढंग से। कल=कला। त्रिगन=तीन। राज-सुर=सुरराज। दीन-बर-बानि= श्रेष्ठ वाणी कही। गुर=बड़ी, श्रेष्ठ उभय=दोनों। सँभुअ=शंभू।

अर्थः—इससे शिव ने (मजुघोषा पर) क्रुद्ध होकर श्राप दिया कि तेरा पतन होगा और तू भूमि पर जन्म लेगी। इसके बाद शिव को प्रसन्न करने के लिये रंभा ने अनेक प्रकार से नृत्य किया और विशेष कला-युक्त तीन स्वरों में ताल की रचना की। जिससे इन्द्र और शिव दोनों ने उसे सबसे श्रेष्ठ कहा। जब शंकर का चित्त प्रसन्न हुआ तो इन्द्र को भी हर्ष हुआ। इस प्रकार दोनों प्रसन्न दीख पड़े। उस श्रेष्ठ सभा में बैठे हुए शम्भु के मन को इन्द्र ने भी प्रसन्न किया।

दोहा

करि प्रसंन सुर-राज त्रिय, मुख अस्तुति सुर कीन।
बर बानी पुर इंद्र के, यह सु वाक्य सिव दीन ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—त्रिय=स्त्री रूप में अप्सरायें। दीन=दिये, कहे।

अर्थः—अप्सराओं, देवताओं और इन्द्र ने जब स्तुति करके शिव को प्रसन्न किया। तब शिव ने इन्द्र को सम्बोधित कर कहाः—

परै—तुभ्भ्क उत्तिम धरनि[1], पुत्री भूमि नरिंद।
दुअ पक्खां सिर छत्र है, करि सेवा हर इंद॥ ६७॥

शब्दार्थः—परै-तुभ्भ्क=पड़ेगी तूं, जन्म लेगी। दुअ-पक्खां=दोनों पक्ष, नेहर और सुसराल। इंद=इन्द्र।

अर्थः—हे इन्द्र! यह (मंजुघोष अप्सरा) उत्तम (मालव) भूमि पर राज वंश में जन्म लेगी, वहाँ पर इसे चाहिये कि शिव की उपासना करे, जिससे इसके दोनों पक्ष (नेहर और सुसराल) छत्र से सुशोभित होंगे।

वचन ईस तें बर लहै, हरन होइ तुअ दार[1]।
कलह केलि भावन भवन, ह्वै हैं युद्ध अपार॥ ६८॥

प्रा० पा० १ पा० घ०

शब्दार्थः—दारा=दारा, स्त्री। भावन=मन भावन पति।

अर्थः—मेरे वचनों के प्रभाव से इसका अपहरण होगा, और अपने मन-भावन (पति) के भवन में जाते समय कलह होगा और भयानक युद्ध होगा।

गाथा

तुछ दिन अंतर क्रमियं, आगम भरतार पामि[1] उध लोकं[2]।
फिरि अच्छरि अवतारं, पांमै तुभ्भ्क ईस बर-बांनी॥ ६९॥

प्रा० पा० १ का०। २ पा०।

शब्दार्थः—तुछ=तुच्छ, कुछ। आगम-भरतार=पति के स्वर्गारोहण पर, आने पर। पामि=प्राप्त करेगी। उधलोकं=ऊर्ध्व लोक, स्वर्ग। फिरि=फिर। पांमै=पायगी।

अर्थः—कुछ समय व्यतीत होने पर पति के स्वर्गारोहण के साथ २ ही ऊर्ध्व लोक (स्वर्ग) को प्राप्तकर यह अप्सरा रूप में फिर परिवर्तित होगी। यह मेरी श्रेष्ठ वाणी इसे फलेगी।

दै सराप[1] सुर नारि, अप्प करि ईस थान चलि।
घन अस्तुति कर इंद्र, प्रमुदि अति रुद्रवानि फलि॥

चलै थान कैलास, परी अच्छरी मृतं-पुर ।
जद्दव ग्रह त्रिय जाइ, उअर उप्पजी कुँअरि वर ।।
देवास थान तपि भांन नृप, तिहि पुत्री ससिवृत कुँअरि ।
सोइ वाच रुद्र देवह सुत्रिय, तुअ कारन साथह उअरि ।। ७० ।।

ग्रा० पा० १, का० पा० भीं० ।

शब्दार्थः—सराप=श्राप । सुर-नारि=अप्सरा । अप्प-करि=अपनाकर, क्षमाकर । घन=विशेष । परि=पड़ी, जन्म लिया । मृतंपुर=मृतपुर, मृत्युलोक । उअर=उर, कुक्षि । उप्पजी=उत्पन्न हुई । तिहि पुत्री शशिव्रत कुँअरि=उसकी (भानुराय की) पुत्री और (पुंज की) कुमारी शशिव्रता । वाच=वाचा, वरदान । साथह=साथ २ ही । उअरि=कुक्षि में पड़ी, उत्पन्न हुई, या उर्वरा पर आई, पृथ्वीपर जन्म लिया ।

अर्थः—इस प्रकार श्राप देकर पुनः क्षमा कर (वरदान देकर) शिव अपने स्थान के लिये रवाना हुए । इन्द्र के अधिक स्तुति करने से ही शिव प्रसन्न हुए और उनकी वाणी (उस अप्सराको) फली । उधर शिव ने कैलाश के लिये प्रस्थान किया और इधर वह अप्सरा मृत्यु लोक में यादव (पुंज) की स्त्री की कुक्षि से कुमारी (शशिव्रता) के रूप में उत्पन्न हुई । इस समय देवास नामक नगर पर भानु नाम का राजा शासन करता है । उसी की पुत्री के अतिरिक्त वहां वह (शशिवृत्ता) भी कुमारी रूप में है । वे दोनों (भान कुमारी-हंसावती और पुंज कुमारी-शशिव्रता) शिव के वरदान से आपके ही लिये दोनों साथ साथ ही पैदा हुई है

गाथा

जपै दुज सम राजं, तव—गुन त्रंन कीन अप्पारं ।
हम गुन किम संभरियं, लग्गे श्रोतान राग किम जद्दौं ।। ७१ ।।

शब्दार्थः—सम=से । तव-गुन=अपने यहाँ के गुण, शशिव्रत्ता के गुण । अप्पारं=अपार । हम=हमारे । संभरियं=सुने । जद्दौं=यादव कुमारी, शशिवृत्ता ।

अर्थः—तब राजा (पृथ्वीराज) ने द्विज-दूत से कहा-तुमने अपने यहां के (कुमारी शशिव्रत्ता के) गुणों का काफ़ी विस्तार पूर्वक वर्णन सुनाया है, किन्तु हमारे गुणों को उसने (कुमारी ने) किस प्रकार सुना है और उस को कैसे श्रोतानुराग हुआ उसे भी हमें सुनाओ !

दोहा

हंस कहै राजन्न सुनि, इह उतपति अनुराग ।
श्रवन सुनौ संभरि सु पहु, कहौं वृत्त—सं—लाग ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ—इह=इस प्रकार । वृत्त-सं-लाग=वह व्रत में लगी, उसने व्रत ग्रहण किया ।

अर्थः—तब हँस (दूत) ने कहाः— हे संभरी-नरेश ! उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में तो जैसी मैंने कही है; वैसी ही हुई है और उसको आपके प्रति जिस प्रकार अनुराग हुआ है तथा जैसा व्रत उसने लिया है; उसे मैं कहता हूँ ।

कवित्त

देवग्गिरि नृप भांन, सोमवंसी सुतपै नृप ।
तिन अनंत बल तेज, बहुल है गै पैदल तप ।
नयर मध्य कोटीस, बसै बानिक अनंतलछि ।
धंम तप्प नह पार, नहीं कोउ दास रहै इछु ।
सा एक लक्ख पयदल पुलत, खग्गजोर खूनी[1] वहै ।
जद्दव नरिंद सब गुन कुसल, धन प्रताप दिन-दिन लहै ॥ ७३ ॥

प्रा० पा० १ सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—देवग्गिरि=देवास । वहुल=बहुत से । है-गै=हाथी घोड़े । तप=तहप, तहाँपर । कोटीस=कोटाध्यक्ष, कोटीध्वज, करोड़पति । बानिक=वणिक, वैश्य । लछि=लक्ष्मी । तप्प=तप । इछु=इच्छुक । सा=उसके । पुलत=पलायन करते, चलते । वहै=चलते बनते, भगा देता ।

अर्थः—देवगिरि (देवास) पर इस समय भानु चन्द्रवंशी राजा श्रेष्ठ ढंग से शासन करता है । उसका बल और तेज अपार है । उसके यहाँ हाथी, घोड़े और पैदल सेना बहुत है । अपार श्री सम्पन्न करोड़ पति वैश्य उसके नगर में बसते हैं । उसके धर्म और तप का पार नहीं है । उसके सेवकों को किसी बात की इच्छा नहीं है । (सब प्रकार से वैभव सम्पन्न है) उसके चलने से एक लाख सेना चल पड़ती है और वह अपने खड्ग-बल से खूनी शत्रुको भगा देता है । ऐसा वर यादव-राजा सब गुणों से युक्त है । उसके चित्त और प्रताप की हमेशा वृद्धि होती रहती है ।

तिन-राजन कै मंत्रि, नाम आनंद चन्द भर।
तिन भगिनी चन्द्रिका, व्याह व्याही सु दूरि धर[1] ॥
नैर कोट हिस्सार, तास खित्रीय प्रथम बर।
अति सु प्रीति नर नारि, सुक्ख अनुभवै दीह पर ॥
कोइक्क दिवस भरतार वहि, तुच्छ दीह परलोक गत।
आनई बहिनी फिर अप्प गृह, अति सु दुक्ख निसिदिन करत ॥ ७४ ॥

ग्रा० पा० १ का०, पा०।

शब्दार्थः—तिन राजन के=उस राजा के। भर=वीर। व्याह व्याही सु=उसे व्याही। दूरि-धर=दूर देश में। हिस्सार=हीसार। तास=जो। खित्रीय=खत्री जाती में। प्रथम=प्रमुख। दीह-पर=प्रतिदिन, हमेशा। को इक्क=कोई, किसी। भरतार=पति। वहि=वह। तुच्छदीह=कुछ ही दिनों में, तुच्छ वय में। आनई=ले आया।

अर्थः—उस राजा के वीर मन्त्री आनन्दचन्द की बहिन चन्द्रिका का विवाह दूर देश नैर कोट हिसार में किया गया था। उसका पति खत्रियों में प्रमुख था। दम्पत्ति में विशेष प्रेम था। प्रति दिन वे सुख का अनुभव करते थे। कुछ ही दिनों बाद चन्द्रिका का पति स्वर्ग लोक सिधार गया। तब मन्त्री आनन्दचन्द अपनी बहन को अपने घर ले आया और बहिन के विधवा हो जाने से वह रात-दिन दुःखी रहने लगा।

दोहा

अति प्रवीन विद्या लहन, गान तान सुभ साज।
केइक दिन अंतर वहिग, गइ अंतबर राज ॥ ७५ ॥

शब्दार्थः—लहन=लेने, प्राप्त करने, अध्ययन में। बहिग=बीतने पर। अतेबर-राज=राजा के अंतहपुर में।

अर्थः—उसकी बहिन चन्द्रिका विद्या में अति प्रवीण और अच्छे साजबाज के साथ (श्रेष्ठ वाद्यों पर) लय से गाने वाली थी। कुछ दिन बीतने पर वह राजा के अंतः पुर में आई।

तिन संगह ससिव्रत्त सुअ, पढन विद्य सुभ काज।
देखि[1] कुंवरि अद्भुत अत्रय, रंजित ह्वै मन लाज ॥ ७६ ॥

ग्रा० पा० १, मों० घ०।

शब्दार्थः—तिन संगह=उसके साथ, उसके द्वारा। सुग्र=उस। अवय=अवयव, अंग स्वरूप।

अर्थः—उसके द्वारा शशिव्रत्ता का विद्याध्ययन प्रारम्भ हुआ। चन्द्रिका, कुमारी के अद्भुत स्वरूप को देखकर प्रसन्न हुई और विशेष संकोच में पड़ गई (योग्य वर सोचकर संकोच पूर्वक आपका परिचय देने का विचार किया)।

कवित्त

जब खित्रिनी चंद्रिका, कहै गुन नित चहुवानं।
जेस पराक्रम राज, तेइ बरने दिन मानं॥
राज कुंअरि जब सुनै, तबै उभ्भरै रोम तन।
फिरि पुच्छै ससिवृत्त, सद्दि एकंत मंत[1] गुन॥
जे जे सु पराक्रम राजकिय, सोइ कहै खित्रिनि समथ।
श्रोतान राग लग्यौ उअर, तो वृत लीनौ[2] सुकथ॥७७॥

ग्रा० पा० १, पा० घ०। २. का० पा०।

शब्दार्थः—खित्रिनी=खत्राणी, वैश्य जाति में खत्री गौत्र की। जेस=जैसा। पराक्रम=पुरुषार्थ। तेइ=तैसा। दिनमानं=प्रत्येक दिन, हमेशा। उभ्भरै=उठते। फिरि=बार २। सद्दि=बुलाकर। मंत=मंत्रणा। समथ=समस्त या कार्य साधने में विशेष साहस रखने वाली। उअर=हृदय।

अर्थः—चन्द्रिका ने आपके गुण उसे (कुमारी को) बताये और जैसा आपका पुरुषार्थ है वैसा ही वर्णन वह सदैव कुमारी के समक्ष करने लगी। जब आपके शौर्य-वर्णन को कुमारी सुनती तब उसका शरीर रोमाञ्चित हो जाता और वह (शशिव्रत्ता) उससे बार २ आपके विषय में पूछती तथा एकान्त में चन्द्रिका को बुला कर मंत्रणा करती। वह खत्राणी आपके समस्त पराक्रम का वर्णन सुनाया करती, उसी से कुमारी को श्रोतानुराग हुआ, और आपकी सुन्दर ख्याति को सुनकर ही उसने आपको वरण करने का व्रत लिया।

दोहा

यों बरक्ख दुअ वित्ति गय, भइय वैस बर उंच।
तब कामन सु कलेव सुर करे सेव सुचि संच॥७८॥

शब्दार्थः—बरक्ख=वर्ष। वैस=वय, आयु। उँच=बड़ी। कामन=कामिनी, सुन्दरी। कलेव-सुर=केलवेश्वर शिव। सुचि=शुचि, पवित्रता। संच=संचय।

अर्थः—इस प्रकार दो वर्ष बीतने पर जब वह बड़ी हुई तब वह (शशिवृता) पवित्रता का संचय कर (बाह्य और अंतर से शुद्ध हो) केलवेश्वर शिव की उपासना करने लगी।

हर सेवा नित प्रति करै, मन वाचा[१] क्रम बंध।
बर चहुआन सु कामना, सेवा ईस सुगंध ॥ ७९ ॥

ग्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थः—बंध=बँधी हुई। बर=पति। कामना=चाह, इच्छा।

अर्थः—हे चाहुआन नरेश (पृथ्वीराज) ! आपको पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा से वह (कुमारी) मनसा, वाचा, और कर्मणा से शिवकी सेवा सदैव करने लगी और सेवा में केवल सुगंधित पदार्थ ही भेंट करती थीं (पत्र पुष्प ही भेंट कर श्रद्धा से ही संतुष्ट करती थी)।

कवित्त

कहै हंस सुनि राज, करौं वंनन सु कह्यौ गुर।
दिवस च्यारि[१] प्रज्जंत, ओं-णमो[२] सरन लहो पर॥
सेवत नितप्रति ईस, मास पंचह बित्तय[३] वर।
एक सुदिन सिव सिवा, वचन संपुट लग्गी कर॥
देवाधिदेव सुनि ईस बर, करिसुचित्त कुंअरि सू व्रत।
प्रारथ्थ[४] मुंडमाली[५] सरस, परसंसा[६] गवरी करत॥ ८० ॥

ग्रा० पा० १, ३ घ०। ४, ६ पा० घ० भीं। २, ५ स०।

शब्दार्थः—गुर=गुरु। च्यारि=चार। प्रज्जंत=पर्यंत। ओं-णमो=ॐ नमो। संपुट=जोड़े। सुचित्त=सूचित, या सचेत। प्रारथ्थ=प्रार्थना। परसंसा=प्रशंसा।

अर्थः—हंस (दूत) कहने लगाः— हे नरेश्वर ! कुमारी की शिवोपासना के विषय में जैसा मेरे गुरु ने मुझसे कहा, वही बात आपसे कहता हूँ। राज कुमारी (शशिव्रता) ने चारदिन तक ॐ नमः (शिवाय) मत्र की शरण ली (ॐ नमः शिवाय रटती रही) निरंतर शिव की सेवा करते हुए जब उसे पाँच मास व्यतीत होगये तब पार्वती ने दोनों हाथ जोड़कर शिव-शिव उच्चारण किया। उस शब्द को (समाधिस्थित) देवाधिदेव शिव ने सुना, उन्हें सजग देखकर पार्वती ने

दोहा

फिरि राजन यों उच्चरिय, सुनि दुजराज सुजान।
पिता व्याह क्योंकरि रचिय, क्यों प्रोहित पठवान ॥ ८६ ॥

शब्दार्थ:--पठवान=पठाया, भेजा ।

अर्थ:—राजा (पृथ्वीराज) ने तब कहा:—हे पटुद्विज ! ऐसा होते हुए कुमारी के पिता ने क्यों विवाह रचा, और क्यों अन्य को व्याह ने के लिये बुलाने को पुरोहित भेजा ।

कवित्त

कहि दुजेस कल वानि[1], अहो ढिल्ली नरेस सुनि ।
देगिग्वरी जद्दव नरेस, रच्चि बहु भति[2] व्याह गुनि ॥
अति रचना विधि करिय, तासु गुन कहि न सकों बर ।
संखेपक दुज कही, सुनि रु राजंन वहै नर ॥
प्रोहित सु हत्थ जदुनाथ लै, पठइय श्रीफल सुदिन धरि।
कनवज्ज दिसा इकमास प्रति, चलि राजन गुर मिलि सुजुरि ॥ ८७ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ घ० का० ।

शब्दार्थ:–दुजेस=द्विजेश, द्विज, दूत । जद्दव नरेश=यादव राजवंशी । गुनि=सोच समझकर । गुन=सोचते हुए । संखेपक=संक्षेप में । राजंन=प्रमुख यादवराज । जदुनाथ=यादव नरेश । सुदिन-धरि=विवाह के लिये श्रेष्ठ दिन निश्चित करके । सुजुरि=साथियों सहित, जुटकर [एकत्रित होकर] ।

अर्थ:—सुन्दर वाणी में तब द्विज कहने लगा:—हे दिल्लीश्वर (देवास) के राजवंशज उस यादव (पुंज) ने सोच समझकर विशेष ढंग से विवाह की रचना की है, जिसके लिये सोचते हुए भी मैं उस रचना का वर्णन नहीं कर सकता । फिर भी संक्षेप में कहता हूं । जब यादव राजवंशी (पुंज) ने (वीरचंद के विषय में) सुना तो आज्ञा देकर विवाह के लिये श्रेष्ठ दिन निश्चित कर पुरोहित के द्वारा कुमारी के संबंध का श्रीफल भेजा । वह पुरोहित एक मास तक चलकर कन्नोज गया और अपने साथियों सहित वहाँ के राजा से मिला ।

मिले राज जयचंद, सु गुर प्रोहित्त समत्थं ।
पठए जद्दव — नाथ, वस्त श्रीफल सुभ सत्थं ॥

हय साकति सजि पंच, सहस इक वस्त्र पटंबर ।
मुत्ति माल जुरि पंच, अवर जो वस्त व्याह पर ॥
हेमंग पंच सत लेइ दुज, सुर राजन अग्गै धरिय ।
ते बस्त अनेकं बिधि सुबर, रंजि राज अप्पन सुजिय ॥ ८८ ॥

शब्दार्थः—समत्थं=सामर्थ्यवान । जद्दव-नाथ=यादव राज वंशी पुंज । वस्त=वस्तु । सुभ=शुभ, मांगलिक । साकति=जीन । पटंबर=रेशमी वस्त्र । मुत्तिमाल=मोतियों की मालायें । जुरि=जोड़ी । व्याह=विवाह, सम्बन्ध । हेमंग=स्वर्णिम मुद्रायें । सत=सौ । दुज-सुर=द्विज देव । अग्गै=आगे, सामने । रंजि=प्रसन्न हुआ ।

अर्थः—वह सामर्थ्यवान राजगुरु पुरोहित, राजा जयचन्द से मिला, और यादव राज वंशी (पुंज) ने जो, जो मांगलिक वस्तुएँ श्रीफल के साथ भेजी उन्हें और सजे हुए पाँच घोड़े एक सहस्त्र रेशमी वस्त्र, पाँच जोड़ी मोतियों की मालायें तथा अन्य सामान जो सम्बन्ध-समय में भेजा जाता हैं वह सब एवं पाँच सौ स्वर्ण मुद्रायें सम्मुख रक्खी । उन विविध मूल्यवान वस्तुओं को देखकर राजा मन से प्रसन्न हुआ ।

मिलि प्रोहित जैचन्द, दियौ श्रीफल सु विंद-कर ।
जे पठई बर वस्त, अग्ग लै धरिय राजबर ॥
सोइ श्रीफल कमधज्ज, दियौ सुई अवज पुंज नर ।
अति उछाह मान निय, मिले रस हास परस पर ॥
बोलयौ तब्ब प्रोहित सुबर, अहों राज पंगुरन सुनि ।
लै चलै बींद नन करि बिलँब, दिन तुच्छै साहो सु पुनि ॥ ८९ ॥

शब्दार्थः—विंद-कर=वन्दना करके । कमधज्ज=कमधज, वीर चन्द को । अवध=अवधि, लग्न पत्र । पुंअ=यादव पुंज, शशिव्रता के पिता । निय=नजदीक, सटकर । राज पुंग्रन=पंगुराज, कन्नौजेश्वर । बींद=दुलहा । दिन-तुच्छै=थोड़े ही दिनों में, निकट ही सा हो=लग्न दिन ।

अर्थः— पुरोहित ने मिल कर कुमारी के सम्बन्ध का श्रीफल वन्दना करके जयचन्द को दिया और जो श्रेष्ठ वस्तुएँ भेजी थी वे भी सब सामने रक्खी । यादव पुन्ज द्वारा श्रीफल और लग्न पत्र जो जयचन्द के यहां भेजा था । वह जयचन्द ने कमधज (वीरचन्द) को बुला कर समर्पित कराया और विशेष हर्ष प्रकट किया । एक दूसरे

से हास्यपूर्वक (सम्बन्धियों में व्यंग वाक्य कहे जाते हैं उस ढंग से) गले मिले। तब पुरोहित ने कहा—हे पंगुराज (कन्नौजेश्वर)! दुल्हे को लेकर चलिये, इसमें विलम्ब न कीजिये; क्योंकि लग्न दिन निकट ही आ गया है।

दोहा

ह्वै प्रसंन पहु पंगुरै[1], दियौ हुकुम सुअ बंध।
प्रेरि सथ्थ जब अप्प पर, अति पर घर सुअ नंध[2] ॥ ६० ॥

ग्रा० पा० १ का० पा० घ०। २ पा०।

शब्दार्थः—सुअ—उस। बंध=बंधु, भाई को। प्रेरि=बुलालो। अप्प-पर=अपने और पराये। सुअ=उसे। नंध=नोधकर, सोचकर, विचार कर।

अर्थः—प्रसन्न होकर पंगुराज (जयचन्द) ने अपने भाइयों में से उस वीरचंद को आज्ञा दी कि पराये घर (कन्या के पिता) की स्थिति को देख कर अपने और परायों को साथ में ले जाने को बुलालो।

सज्जि सेन चतुरंग वर[1], देवगिरि कज व्याह।
अति अगनित सथ द्रव्य लिय, नर उच्छव करनाह ॥ ६१ ॥

ग्रा० पा० १ पा० का० घ०।

शब्दार्थः—कज-व्याह=विवाह के लिये। करनाह=करने को, मनाने को।

अर्थः—फिर देवगिरि नगर (देवास) में विवाह के लिये जाने को चतुरंगिनी सेना सजाई और साथ में असंख्य द्रव्य उत्सव मनाने के लिये लिया।

कह संभरि[1] बर हंस सुनि, कहि[2] जद्दों संकेत।
कोन थान हम मिलन है, कहन बीच संमेत ॥ ६२ ॥

ग्रा० पा० १, २, पा०।

शब्दार्थः—संकेत=संकेत स्थान, मिलन स्थान।

अर्थः—संभरी नरेश (पृथ्वीराज) ने तब हंस से कहाः-यादव कुमारी का संकेत (मिलन) स्थान कौनसा है और हम किस स्थान पर उससे मिलें तथा मध्यस्थ कौन होगा? यह सब हमें कहो।

गाथा

कहि इय[1] दुज संकेतं, हो राज्यंद धीर ढील्लीसं[2] ।
तेरसि उज्जल माघे, व्याहन बरनीय थान हरसिद्धीं[3] ॥ ६३ ॥

ग्रा० पा०, १, पा०, का०, । २, पा० का० घ० । ३, पा० ।

शब्दार्थ:—तेरसि=तेड़ा, बुलाया । उज्जल=उज्ज्वल, शुक्ल पक्ष । माघे=माघ । बरनीय=कहा ।

अर्थ:—द्विज कहने लगा:-हे धीर वीर दिल्लीश्वर ! माघ मास के शुक्ल पक्ष में त्रयोदशी को हरसिद्धि नामक स्थान पर वरण करने के लिये आने को कहा है ।

दोहा

तब राजन फिरि उच्चरै, हो देवस दुजराज ।
जो संकेत सु हम कहिय, सो अक्खौ[1] त्रिय काज ॥ ६४ ॥

ग्रा० पा०, १, पा०, का० घ० ।

शब्दार्थ:—देवस=देवास निवासी । अक्खौ=कहो । त्रिय-काज=स्त्री के लिये, कुमारी को ।

अर्थ:—तब राजा (पृथ्वीराज) ने कहा:-हे देवास निवासी द्विजराज ! जिस संकेत-स्थान के लिये तुमने हमें कहा है वही स्थान हमारे मिलने का निश्चित है। तुम जाकर यह सब कुमारी से कह देना ।

दस सहस्र हेंवर चढिय, न्रप दिल्ली चहुआन ।
हुकम सद्दि साहन कियौ, दै सूरनि[1] विलहांन ॥ ६५ ॥

ग्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थ:—हेंवर चढिय=अश्वारोही वीर घोड़ों पर चढ़े । सद्दि=बुलाकर । साहन=साहनी, हय-शाला के अधिकारी । सूरनि=बहादुरों को । विलहान=विलहने, (वे घोड़े जो खासाहय शाला से प्रमुख वीरों को चढ़ने के लिये दिये जाते थे ।)

अर्थ:—दिल्लीश्वर चाहुवान (पृथ्वीराज) दस सहस्र अश्वारोहियों को लेकर चलने लगा और हयशाला के अधिकारी को बुलाकर आज्ञा दी कि वीरों को विलहने (खासा घोड़े) चढ़ने को दो ।

अगम-निरागम जानि के, चलि न्रप सुक्रह वार[1] ।
माह वद्दि पंचमि दिवस, चढि चल्लिय[2] तुक्खार[3] ॥ ६६ ॥

ग्रा० पा० १, २, पा० का० । ३, संशोधित ।

शब्दार्थ—अगम-निरागम=गमनागमन। जानिके=सोचकर, मुहूर्त दिखाकर। माह=माघ। बद्दि=विद, कृष्णा। तुक्खार=घोड़े पर।

अर्थः—इसके बाद गमनागमन का मुहूर्त दिखाकर माघ कृष्णा पंचमी शुक्रवार को राजा (पृथ्वीराज) घोड़े पर चढकर रवाना हुआ।

चढ्ढि चलिय प्रथिराज बर, देवगिरि धर राज।
तब सु कन्ह बरदाय बर, पुच्छिय बिगति[1] सु काज॥ ६७॥

ग्रा० पा० १, पा० भीं०।

शब्दार्थः—विगत-सु-काज=कार्य की विगत, कार्य का ब्यौरा, विषय।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज, देवगिरि (देवास) के भू भाग की ओर चढ चला, तब काका कन्ह ने चन्द बरदाई से चढाई किस लिये की गई, इस विषय में पूछा।

कहत कंन्ह बरदायबर, अहो राज-सुभ-मानि।
कहो पथान सज्ज्यो कहां, सो हम कहो प्रमान॥ ६८॥

शब्दार्थः—राज-सुभ-मानि=राजा का शुभ मनाने वाले, राजा के शुभ चिंतक। पथान=पृथ्वीराज। प्रमान=सोचकर, स्पष्ट।

अर्थः—कंन्ह ने कहा-हे राजा के शुभ चिंतक बरदाई (कविचन्द)! पृथ्वीराज ने किस पर चढ़ाई की है, इस बात को हमें स्पष्ट बताओ।

चढत राज प्रथिराज, सगुन भैभीत उपन्नौ।
स्याम अंग तन-छिद्र, कलस संमुह[1] संपन्नौ॥
रत्त वस्त्र आरुह्य, रत्त तिलकावलि छुट्टिय।
मुकत माल छुट्टिय बिसाल[2], केस छुट्टिय कस टुट्टिय[3]॥
लुट्टिय अनंग भयभीत गति, मन अलुब्भ निद्रा असति।
बिब्भाइ भाइ उनमोद पति, मंद मंद सक्रति हसति॥ ६९॥

ग्रा० पा० १, पा० का० भीं०। २, पा०। ३, दे०।

शब्दार्थः—भैभीत=भयानक। उपन्नौ=हुआ। संमुह=सामने। सपन्नो=मिला। रत्त=रक्त, अरुण। आरुह्य=पहने हुए। छुट्टिय=छूट रही थी, छटा दे रही थी। छुट्टिय=खूटी हुई, टूटी हुई। तुट्टिय=

टूटी। लुट्टिय अनंग=काम क्रीड़ा से श्रमित। गति=दशा। अलुब्भ=अलुब्ध, अप्रसन्न। असति=अलसित। विब्भाई=विभाव। भाइ=भाव। उनमोद=अनुमोदन। सकति=सिकुड़ती, संकुचित होती हुई।

अर्थ :—उसी समय विदा होते ही राजा पृथ्वीराज को भयानक शकुन हुआ एक स्त्री सामने मिली जिसके सिर पर कृष्ण वर्ण का सछिद्र कुंभ (काली हांडी) था। उस स्त्री के वस्त्र रक्त वर्ण के थे और तिलक भी रक्त वर्ण का था। वह टूटी हुई मोतियों की बड़ी माला पहने हुए थी। उसके सिर के बाल खुले हुए थे। कंचुकी की कसें टूटी हुई थीं। उसकी दशा काम-क्रीड़ा से श्रमित और भयातुर थी। वह मन से अप्रसन्न, निद्रित तथा अलसित अवस्था में थी। भाव-विभावों द्वारा वह पति का अनुमोदन करती हुई सकुचाती और मँद २ हँसती हुई दिखाई देती थी।

दोहा

पाछे वीर सगुन्न भय, ते कहंत कविचंद।
कै दंदय[1] गुन उप्पजै, के नवीन ग्रह दंद ॥१००॥

ग्रा० पा० १, पा० का० भीं०।

शब्दार्थ :—पाछे=पीछे, पश्चात। कै=या, अथवा। दंदय=युद्ध। गुन=फल उप्पजै=होगा। दंद=कलह।

अर्थ :—पश्चात् वीरतापूर्ण शकुन हुए। उन्हें देखकर कवि चन्द ने कहा:-या तो इस युद्ध से फल की प्राप्ति होगी अथवा इससे घर में नया कलह छिड़ेगा

कवित्त

सीस डुल्लि[1] कविचंद, चित्त अंदेह उपन्नौ।
पुव्व बैर चहुआन, बैर कमधज्ज दिपन्नौ॥
सबर जोर संग्राम, निबर अंगम्यो न जाइय।
को जम हथ्थ पसारि, लेय[2] ग्रह अप्प बुलाइय॥
मंडाय पेट डंकिन सरसि, कौन बांह सायर तिरै।
अप सगुन जानि चहुआन चलि, दैवि-धान निम्मित[3] करै ॥१०१॥

ग्रा० पा० १ दे०। २, ३ भीं० प०।

शब्दार्थ:—डुल्लि=डुलाया, हिलाया। अंदेह=संदेह, शंका। पुब्ब=पूर्व, पहले से। दिपन्नौ=उद्दिप्त हुआ, वृद्धि को प्राप्त हुआ। सबर=सबल। जोर=जोड़ी, समानता। निबर=निर्बल। अंगम्यो= अपनाना, समानता करना। मंडाय=मांडे, सामने करे, हाथ फिराये। डंकिन=डायनी, पिशाचिनी। सरसि=से। बांह=बाँहें, हाथ। सायर=समुद्र। अपसगुन=अपशकुन। देवि-धान=देवी का ध्यान। निम्मित=निमित्त, लिये।

अर्थ:—अप शकुन से चित्त में सशंक हो कविचंद ने सिर हिलाया और कहने लगा:— चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) की कमधज (जयचन्द) के साथ पहले से ही शत्रुता है फिर इस कलह के कारण वह और भी बढ़ जायगी। सबल शत्रु की समानता सबल ही कर पाता है। निर्बल उनका सामना नहीं कर सकते वह मूर्ख है जो बलवान को छेड़ता है। यमराज को हाथ फैलाकर कौन अपने गृह पर बुलायेगा? डायन को पेट पर हाथ फेरने को कौन कहेगा? (वह यों ही कलेजे का भक्षण कर जाती है), समुद्र को अपने हाथों के बल पर कौन पार करेगा? इन अपशकुनों को जान कर भी पृथ्वीराजने चढ़ाई की है; यह सोच कर उन अप शकुनों की शांति के लिये कविचन्द देवी का ध्यान करने लगा।

वेस मद्द बलमद्द, और बंध्यौ सुरतानी।
राज मद्द उनमद्द काम मद्दह परिमानी॥
अरु श्रवनौ श्रोतांन, तौन बंध्यौ चहुआनं॥
दल बद्दल पावस [1]नरिंद, चल्यौ दच्छिन धरवानं॥
छत्तीस कुली बर वंस विय, चढि प्रथीराज नरिंद चलि।
उप वंन्न बंब बज्जी विषम, थान-थान[2] द्रिगपाल हलि॥ १०२॥

ग्रा० पा० १ पा०, घ०। २, का०, भीं०, घ०।

शब्दार्थ:—वेस=आयु.जवानी। उनमद्द=उनमत्त। काम=कामदेव, पुरुषार्थ। परिमानी=माना गया। तौन=त्रोण, माथा। दच्छिन=दक्षिण दिशा की ओर। धर-वानं=भूमिपति। विय=अन्य। उप= पास। वन्न=वन, अरण्य। बंब=वाद्य विशेष। द्रिगपाल=दिगपाल।

अर्थ:—जवानी के, बल के, बादशाह को बंधनमें लेने के कारण और राज एवं काम-देव के मद में उन्मत्त हुआ चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) श्रोतानुरागी होकर (शशिव्रता

के रूप की प्रशंसा सुनकर) भाथा कसकर वर्षा-कालीन बादलों के तुल्य सेना सजा कर दक्षिण (दिशा) की ओर चल पड़ा। पृथ्वीराज की चढ़ाई सुनकर छत्तीस ही वंश के क्षत्रिय साथ हो गये। उस अरण्य के समीप भयानक रणवाद्यों के बजने से दिग्पाल अपने २ स्थानों से विचलित हो हिल पड़े।

दोहा

इन-अग्गैं कम धज्ज लै, आई सँपत्तौ जान[१]।
माघ नवमि त्रंबक बजै, चहुआना परिमान ॥ १०३॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—इन-अग्गैं=इनसे पहले, पृथ्वीराज से पूर्व। कमधज्ज=कमधज वीरचंद। संपत्तौ=पहुंचा। जान=बरात त्रंबक=तासे, वाद्य विशेष।

अर्थः—पृथ्वीराज से पूर्व ही, कमधज-वीरचंद बरात सजाकर देवगिरि (देवास) पहुँच गया। इधर माघ मास की नवमी को चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) के भी वहाँ (देवास) पहुँचने से बाजे बजने लगे।

बाल प्रान कट्टत सु फुणि[१], सगुन एक मन मान।
बढि अवाज चहुआन की, अली सुन्यौ अपुकान[२]॥ १०४॥

गा० पा० १, २, दे०।

शब्दार्थः—बाल=बाला, शशिव्रता। मनमान=मन माना, मनोइच्छित। बढि अवाज=शोरगुल। अप्प=अपने।

अर्थः—वीरचंद के आगमन पर बाला (शशिव्रता) ने अपने प्राण त्यागना निश्चित किया; उसी समय मनवांछित शकुन उसको हुए और चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) के आगमन का भी शोरगुल उसके कानों पर पड़ा।

यों सु सुनिय नृप भान नैं, पुत्रि प्रलय व्रत-कीन।
चर छिप्पय[१] चहुआन पै, जद्दव मोकलि[२] दीन ॥१०५॥

ग्रा० पा० १ का०। २ पा० घ०।

शब्दार्थः—प्रलय-व्रत=प्राण त्याग ने की प्रतिज्ञा। चर=दूत। छिप्पय=क्षिप्र, गुप्त। मोकलिदीन= भेज दिया।

अर्थः—यादव राजा भान ने सुना कि कुमारी शशीव्रता ने (यदि उसको वीरचन्द से विवाह करने के लिये बाध्य किया तो) प्राण त्यागना निश्चित किया है। तब उसने चाहुवान राजा के पास गुप्त रूप से दूत भेज दिया।

मुक्काए मति वंतिनी, नृप कग्गद दै हथ्थ।
पूजा मिसि वाला सुभर, संभु थान मिलि तथ्थ ॥१०६॥

शब्दार्थः—मुक्काए=भेजा। तथ्थ=तहाँ पर।

अर्थः—उस दूत द्वारा यादव राजा के पत्र के साथ २ बुद्धिमति शशिव्रता ने भी संदेश भेजा कि पूजा के बहाने शिव-मंदिर में आकर मैं आपसे मिलूंगी।

कवित्त

हय गय दल चतुरंग, कंक मंडूयौति कंन्ह सिर।
राजद्दव वग्गरी, रांम रघुवंस जुद्ध जुर॥
निड्डुर रा-रट्ठौर, सेन सज्जै भ्रत रज्जै।
एक एक संपज्ज, एक एकह[1] गुन लज्जै॥
जुग्गिनि डहक्कि वंवरि लमय[2], जिम ज़िम शंकर सिर धुनिय।
अतताइ उत्त उत्तंग वर, बावारो सारह सुनिय ॥१०७॥

प्रा० पा० १, २, पा०।

शब्दार्थः—कंक=जुद्ध, युद्धभार। मंडूयोति=मँडदिया, दे दिया, सौंप दिया। कंन्ह सिर=कंन्ह के सिर पर, कंन्ह को। रा-जद्दव=जामराय यादव। जुद्ध जुर=युद्ध में भिड़ पड़ने वाला। भृत=भृत्य, सेवक, साथी। संपज्ज=संप, मेल। एक-एकह=एक के जैसी ही दूसरे में, साम्य रूप में। लज्जै=लज्जा। डहक्कि=डह डहाना, हुंकार करना। वंवरि=वंव, वाद्य विशेष। बावारो=पृथ्वीराज के बड़े बाप का पुत्र, गोविन्द राज चाहुआन। सारह=सार, लोहा।

अर्थः—हाथी-घोड़ों और चतुरंगिनि सेना को सजाकर युद्ध का भार कंन्ह को सौंपा गया। उसकी सहायता के लिये जामदेव यादव, देवराज वग्गरी, युद्ध में अड़ पड़ने वाला रघुवंशी रामराय, और निडडुरराय राष्ट्रवर अपनी २ सेना और साथियों सहित सुसज्जित हो सुशोभित हुए। वे सब एक दूसरे से मेल रखने वाले तथा गुण और लज्जा में साम्य रखने वाले थे। उसी समय योगिनियाँ हुँकार करने

लगी, बंब (वाद्य) बजने लगा, शिव प्रसन्न होकर मस्तक को हिलाने लगे। सर्व प्रथम वहाँ उन्नत वीर अत्ताताई और गोविन्द राज (चहुवान) का लोहा बजता हुआ सुनाई दिया।

गाथा

सार प्रहाररति भेवो, देवो देवत्त जुद्धयौ बलयं।
गंध्रव्वी प्रति ब्याहं, सा ब्याहं सूर कलयामी[१] ॥ १०८ ॥

ग्रा० पा० १ पा० घ०।

शब्दार्थ—भेवो=भेद युक्त, भ्रमदायक जुद्धयो-बलयं=युद्ध शक्ति गंध्रव्वी=गंधर्व। सूर=शूरवीर। कलयामी=सुन्दर।

अर्थः—उनका खड्ग प्रहार भ्रम दायक था। उनकी युद्ध-शक्ति देव-तुल्य थी (यह सब विवाह के निमित्त हो रहा था) अतः गंधर्व विवाह ही वीरों के लिये सुन्दर विवाह माना गया है।

कवित्त

सेन[१] लद्धि संमुहिय, भान आवाज राज सुनि।
प्रान लद्धि जो मद्धि, लाज लभ्भी जु सूर-धुनि ॥
प्रिय बिरहिनि रिधि रंक, ध्यांन लभ्भै जोगिन्दं।
बलह काम कलहंत, किकह विश्वासत इंदं ॥
संभरिय कांन संभरि नृपति, बीरचंद आगम विषम।
निहकाल काल भंजन गढै, बढै सार सारह विभ्रम ॥ १०९ ॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—संमुहिय=समुहाया। लद्धि=प्राप्त किये। मद्धि=शरीर के मध्य। लभ्भी=प्राप्त की। सूर-धुनि=वीर ध्वनि, वीर घोष। प्रिय-बिरहिनी=प्यारी वियोगिनी शशिव्रता। रिधि=रिद्धि। लभ्भै=पाये। जोगिन्दं=योगिन्द, शिव। बलह=बलवान। कलहंत=कलह स्वरूप। किकह=कितने ही कहने लगे। विश्वासत=विश्वास पूर्वक। इन्दं=इन्द्र। निहकाल=निष्काल, काल रहित, मृत्यु रहित। भंजन-गढै=दुर्गों का नाशक, दुर्गों को ढहा देने वाला। बढै=बढ़ाया, मिलाया। विभ्रम=भ्रांति दायक।

अर्थः—सेना सजाकर सामना करने के लिये पृथ्वीराज को तय्यार सुनकर यादव राजा भान के मन और शरीर को शांति मिली। उसकी वीर-ध्वनि सुनकर उसको अपनी लज्जा की रक्षा का भी विश्वास हुआ। पृथ्वीराज की प्रिया-वियोगिनी (कुमारी शशिव्रता) जो रंक तुल्य थी। वह पृथ्वीराज के आने पर रिद्धि रूप होगई (स श्रृंगार, आश्रितों के लिये उदार बन गई)। उसने ध्यान में स्वयं शिव को प्राप्तकर लिया। उस समय वह बलवान राजा (पृथ्वीराज) किसी की दृष्टि में काम के समान किसी की दृष्टि में कलह-स्वरूप और किसी की दृष्टि में इन्द्र तुल्य दिखाई पड़ा। उस संभरी नरेश्वर का विषम ढंग से आना वीरचन्द ने भी सुना। अतः जिनकी मृत्यु कभी संभव नहीं ऐसे वीरों का भी वह काल-स्वरूपी पृथ्वीराज शत्रुओं के दुर्गों को ढहाने वाला था। उसने लोहे से लोहा बजा कर यकायक वहाँ भ्रांति पैदा करदी।

दोहा

सार धार पूजै नहै, खिति सामंतन नाथ।
अवृत बीर क्यों पूजई, दैव दैवतह साथ ।।११६।। 110

शब्दार्थः—सार-धार=शस्त्रधारा, शस्त्र प्रहार। पूजै नहै=नहीं पहुँचते, समानता नहीं कर सकते। खिति=क्षिति, पृथ्वी। अवृत=अड़कर, भिड़कर। बीर=वीर चन्द। पूजई=पहुँचेगा, सफल होगा।

अर्थः—सामंतों के स्वामी (पृथ्वीराज) की लोह-धारा (शस्त्र प्रहार) की समानता पृथ्वी पर कौन कर सकता है? क्योंकि उसके सब साथी श्रेष्ठ देवताओं तुल्य हैं। तब वीरचंद उससे लड़कर कैसे सफलता प्राप्त कर सकेगा?

गाथा

दुअ वंस अंस[1] सरिसं, बज्रं बाहु बज्रयो[2] बलयं।
बज्रं दृष्टिति रिष्टं, सा निष्टं अष्टयो कुलयं[3] ।।१११।।

ग्रा० पा० १, भीं। २, घ०। ३, पा०।

शब्दार्थः—अंसं=अंश, तेज। दृष्टिति=दृष्टि। रिष्टं=अरिष्ट। सा=वह। निष्टं=नष्टकारी। अष्टयो-कुलयं= अष्ट कुली पहाड़।

अर्थः—दोनों (पृथ्वीराज और वीरचंद) वंश और तेज में समान ही हैं तथा वज्राङ्ग और वज्र तुल्य बाहुबल रखने वाले हैं। एवं दोनों की अरिष्टकारी अष्ट कुली पहाड़ों को ढहा देने वाली, समान वज्र दृष्टि है।

कवित्त

अति प्रचंड बलवंड, बैर बाहरु तताइय[1] ।
माया हीन मसंद, दंद दारुन डर नाइय ॥
दल दुंदन सिंधु रहि, बाहु दंतन उख्खारहि ।
एक एक संग्रहे, एक शस्त्रन[2] करि झारहि[3] ॥
दैवत्त वाह दैवत्त भर, देवग्गिरि सम्हौ चलिय ।
बर वीर धीर साधन सकल, अकल महूरति मति कलिय ॥ ११२ ॥

ग्रा० पा० १ घ० पा० । २ पा० । ३ भीं० ।

शब्दार्थः—बैर=शत्रुता, बदला ! बाहरु=सहायता करना । तताइय=तेज आतुर । माया=मोह, प्रपंच, कलंक । हीन=रहित । मसंद=मसनद, गद्दी, सिंहासन । दंद=द्वंद युद्ध । दारुन=दारुण, भयानक । डरनाइय=डर नहीं, निर्भय । दुंदन=द्वंदन, भिड़ने वाला । सिंधुरहि=हाथियों से । संग्रहै=पकड़ने वाला । वाह=बाहु, भुजा । संम्हौ=सामने, ओर । अकल=गुप्त । महूरति=मुहूर्त मनेच्छा । कलिय=कलि, सुन्दर ।

अर्थः—(फिर भी) पृथ्वीराज विशेष बलवान था जो बदला लेने और सहायता करने के लिये आतुर रहता था । जिसका सिंहासन माया (कलंक) से रहित था । जो युद्ध में भयानक और निर्भय था । सेना में हाथियों से लड़कर उनके दांतों को अपने हाथों से वह उखेड़ लेता था । एक को धरपकड़ता था, तो दूसरे को शस्त्र प्रहार द्वारा काट देता था ऐसा वह देव तुल्य भुजाओं वाला (पृथ्वीराज) और सामंत भी जिसके देव तुल्य हैं; देवगिरि की ओर बढ़ा । उस श्रेष्ठ धीर वीर (पृथ्वीराज) के सब साधन और मति श्रेष्ठ होते हुए भी उसकी मनेच्छा गुप्त थी ।

दोहा

अकल वीर रस अकल[1] भुज, कलि-न जाहि सामंत ।
भीम भयानक बल सुवृत, जे भजे गज दंत ॥११३॥

ग्रा० पा० १, सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—अकल=बेचैन करने वाला । कलि-न=कल नहीं पड़ती, चैन नहीं पड़ती । वृत=प्रतिज्ञा ।

अर्थः—जिस (पृथ्वीराज) की वीरता और भुजायें शत्रुओं को बेचैन करने वाली हैं, जिसके सामन्तों को युद्ध किये बिना चैन नहीं पड़ती है, जिसका बल, प्रतिज्ञा

तथा जिसकी भयानकता भीम के समान है। जो हाथियों के दांतों को तोड़ देने वाला है।

लभ्भै-जस लिख्खीय बर, दैवजोग नह हथ्थ।
पुव्व-दई प्रथिराज कौं, सोइ प्रनमन समरथ्थ ॥११४॥

शब्दार्थ:—लभ्भै-जस=यश लाभ, यश की प्राप्ति। देवजोग=दैवयोग, देवाधीन। नह हथ्थ= हाथ में नहीं, हाथ की बात नहीं। पुव्व-दई=पहले से ही देदी। सोइ=वह।

अर्थ:—(विधाता ने) लिखने वाले ने जिसकी भाल-स्थली पर यश प्राप्ति लिख दी है उसी को वह प्राप्त होती है। यह बात देवाधीन है-हाथ की बात नहीं। वह यश-प्राप्ति पहले से ही ईश्वर ने पृथ्वीराज को देदी। इसीलिये वह प्रण से और मन से सामर्थ्यवान है।

चहुआना[1] कै कृतस यन, मरन सरन प्रथिराज।
उभै सिंघ दुअ बीच पल, उभै सिंघ सिरताज ॥११५॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ:—कृतस=कार्य, चरित्र। यन=ऐसे। मरन=मृत्यु। उभै=खड़े, डटे हुए। पल=मांस।

अर्थ:—चाहुवान राजा पृथ्वीराज के ऐसे कार्य थे कि मृत्यु भी (आपत्ति पड़ने पर) उसकी शरण लेना चाहती थी। उस समय देवगिरि के पास डटे हुए पृथ्वीराज और वीर चन्द इस प्रकार दिखाई देते थे मानों सिंहों के सिरताज दो सिंह खड़े हो और उनके बीच में उनका भक्ष्य (मांस) हो।

गाथा

घटिका उभय सु देवो, रहियं निकट राजनं ग्रामं।
जानिज्जै नृप नैरं, दिक्खन-काजैव सोभियं नैनं ॥११६॥

शब्दार्थ:—जानिज्जै=मानो। नृपनैरं=यादव राजा का नगर, देवगिरि, (देवास)। दिक्खन-काजैव= देखने के लिये।

अर्थ:—वह देव तुल्य राजा (पृथ्वीराज) दो घड़ी तक देवगिरि के निकट खड़ा रहा। उस समय यादव राजा का वह नगर ऐसी शोभा पा रहा था मानों पृथ्वीराज को देखने के लिये आँखें खोल रहा हो।

दोहा

रंध्र गवक्खनि नैर मधि, जारिन चिंत प्रमान ।
मानहु नृप प्रथिराजकौ, रंध्र नैन प्रत प्रान ॥ ११७ ॥

शब्दार्थः—रंध्र=छेद । गवक्खनि=गवाक्ष, झरोखे । नैर=नग्र । चिंत=देखकर । प्रमान=अनुमान, ज्ञान । रंध्र-नैन=रंध्रों से लगे हुए नैत्र । प्रत=प्रत्येक के, या पहुँच रहे हैं ।

अर्थः— नगर के गवाक्ष (झरोखे) और जालियों के रंध्रों (छेदों) को देखने से यही अनुमान होता था कि मानों उन रंध्रों से लगे हुए जिन (सुन्दरियों) के नैत्र थे उन सबके प्राण उन (रंध्रों) के द्वारा पृथ्वीराज के पास पहुँच रहे हों (समर्पित हो रहे हों)।

कवित्त

दुहूं पास नृप नयर, राज दिक्खै प्रति राजं ।
मनों हथ्थ बर नयर, राज संमुह प्रति साजं ॥
कोट कठिन मेखल सु, रंध्र[1] द्रिग पलक उघारिय ।
राज कीत्ति संभरन, गोख श्रवनन संभारिय ॥
किंकिनि सु पाइ घुंघुर सु गज, राज निसान सबद्द प्रति ।
चहुआन राव आगम सुव्रत, कम्ल हीय बढ़िय सुरति[2] ॥ ११८ ॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति । २ पा० का० भीं ।

शब्दार्थः—दिक्खे=देखने लगे । कोट=दिवाल । मेखल=मेखला, किंकिनी । रंध्र=गवाक्षादि के छिद्र । गोख=गवाक्ष, झरोखे । सबद्द प्रति=राजा के प्रति स्वर, संमान स्वर । सुव्रत=श्रेष्ठ है जिसका व्रत (श्रेष्ठ व्रत वाली शशिव्रता) ।

अर्थः—समीप आने पर राजा पृथ्वीराज की ओर देखते हुए वहाँ के दोनों राजा इस प्रकार मालूम पड़े मानों देवगिरि (देवास) ने स्वागत करने के लिये अपनी दोनों भुजायें बढ़ाई हों और (शहर की) दृढ़ दिवार ही उसकी (देवास की) कटि किंकिनी बनगई हो। गवाक्षादि के रंध्र ही (पृथ्वीराज को देखने के लिये) खुले हुए नैत्र हों। गवाक्ष (झरोखे) ही राजा (पृथ्वीराज) का यशगान सुनने को कर्ण बने हों। हाथियों के पैरों में ध्वनित, घुंघरु द्वारा ही किंकिनी की ध्वनि की हो और राजद्वार पर बजने वाले नक्कारों ने ही स्वागत-स्वर से उसका (पृथ्वीराज का) सम्मान किया हो इस प्रकार चाहुवान राजा का आया हुआ

जानकर श्रेष्ठ व्रत वाली (शशिव्रता) के हृदय-कमल में पृथ्वीराज के प्रति श्रेष्ठ प्रीति थी, उसमें ओर भी वृद्धि हो गई।

दोहा

काम कलह रत बढ्ढि प्रति, सुनिय भान नृप कान।
आनंदह दुख उप्पज्यौ, मरन सु निश्चय मान ॥११९॥

शब्दार्थ:—काम कलह=कामी, कलही। मरन=मृत्यु।

अर्थ:—कामी-कलही राजा (पृथ्वीराज) के प्रति कुमारी के प्रेम की वृद्धि सुनकर राजा भांन को प्रसन्नता ओर दुःख दोनों हुए और उसने निश्चय मान लिया कि अब मृत्यु से सामना करना होगा।

श्लोक

मंगलस्य सदा व्याहं, अव्याहं अमंगलं अगी[1]।
ब्रह्मा चकित समो द्रष्टे,कज्जे कज्जसु[2] कंकजसि ॥१२०॥

ग्रा० पा० १, पा०, घ०। २, का०, घ०।

शब्दार्थ:—अगी=आगे जाकर। समो द्रष्टे=देखकर। कज्जेकज्जसु=युद्ध पर युद्ध। कंकजसि=किस लिये।

अर्थ:—विवाह वही है जो वर वधू के लिये सदा मंगल कारी हो। वह विवाह बुरा (खराब) है, जो आगे जाकर उनके लिये अमंगलकारी सिद्ध हो। पृथ्वीराज और शशिव्रता के विवाह को देखते हुए ब्रह्मा भी चकित थे और सोचते थे कि इसके कारण युद्ध पर युद्ध किस लिये छिड़ रहा है। (वास्तव में यह तो पृथ्वीराज के लिये ही निर्मित की गई है)।

कवित्त

फिरिग पंति चिहुपास, सूरउभ्भै[1] चावद्दिसि।
अतित जुद्ध आवद्ध, मंत[2] वरखंत बीर असि ॥
और व्याह मंगलह, व्याह मंगल अधिकारिय।
परि पिशाच दानव सु बुध्धि,योग[3] मग्गह विच्चारिय।
नन करहु तात दुख पुत्त कौ, घर लीनौ जम सद्दि कैं[4]।
पृथिराज राज राजन बलिय, को पुज्जै रन वद्दिकैं ॥१२१॥

ग्रा० प० १, भीं०, का०, घ०। २, पा० का० घ०। ३, ४, घ०।

शब्दार्थ:— पंति=पंक्ति। चिहुपास=चारों ओर। चावद्दिसी=चारों ओर। अतित=अतीत, आगन्तुक महमान। आबद्ध=बाधा रहित, बे रोक टोक। मंत= मतवाले। असि=तलवार। परि= परन्तु, किन्तु। पिशाच=पैशाचिक विवाह। नन=नहीं। जम=यमराज। सद्दिकैं=बुलाकर, निमंत्रित करके। पुज्जै=पहुंचे, समानता करे। रन-ब्रद्दिके=युद्धार्थ बुलाकर, रण का निमंत्रण देकर।

अर्थ:— यादव-राजकुमार (लक्खन) बोला-हे पिता (यादव राज भान) सुनिये ! सैन्य-पंक्ति और वीर सामन्त नगर के चारों ओर हो गये हैं बिना रोक टोक के आये हुए आगन्तुक मेहमान युद्ध करने के लिये उद्यत हैं और उनके मतवाले वीर खड्ग प्रहार करने लगे हैं। जहाँ मांगलिक विवाह के अधिकारी जुट जाते हैं वह विवाह मांगलिक ही माना जाता है; किन्तु इन्होंने तो पैशाचिक विवाह करना निश्चय कर योग मार्ग प्राप्त करने की सोची है। अतः आप पुत्र की चिन्ता न करें; क्योंकि आपने स्वयम् ही जानबूझ कर यमराज को घर पर निमंत्रित कर लिया है। राजा पृथ्वीराज सब राजाओं मे बलवान है। उसे रण का निमंत्रण देकर कौन उसकी समानता कर सकता है ?

दोहा

को पुज्जै बद्दत सु रन, वयन सयन प्रथिराज।
अवृत जित्ति जित्तिय सयल, को मंडै कृतकाज ॥१२२॥

शब्दार्थ:— बद्दत=बाद, छेड़कर। वयन=अन्य नहीं। सयन=सेनाओं में। अवृत=अड़ता। जित्ति=जितने, जो। जित्तिय=जीत लेता। सयल=सहज ही में। मंड़े=मँडता, प्राप्त करता। कृतकाज= कृतकार्य, सफलता।

अर्थ:— युद्ध का वाद-विवाद छिड़ने पर उससे समानता कौन कर पाता है, क्योंकि सेनाओं में पृथ्वीराज सा वीर अन्य नहीं देखा गया। उससे जो अड़ता है उसको वह सहज ही में जीत लेता है उसके आगे युद्ध में सफलता प्राप्त करना कठिन है।

गाथा

को मंडै कृत काजं, साजं जुद्धाय[1] सूर गो वंनं[2]।
तारिज्जैं सजि राजं, बंकिम भूमाइ[3] विषमयं होई ॥ १२३ ॥

प्रा० पा० १ पा० भों। २, ३ पा० का० घ०।

शब्दार्थ:—साजं=सजने पर। जुद्धाय=युद्ध के लिये। तारिज्जे=उद्धार करिये। बंकिम=वीर। भूमाइ=भूमि, पृथ्वी।

अर्थ:—इस युवक वीर (पृथ्वीराज) के युद्धार्थ सजने पर कौन युद्ध में सफल हो सकता है? अतः हे नरेश्वर! ऐसे के समक्ष सजकर अपनी वीर भूमि का उद्धार करना (रक्षा करना) ही बड़ी बात है।

देवालय भगवती, पूजैत्र पुंजयो[1] बालं।
सु बर पुछ्यौ प्रथिराजं, कज[2] संसा बीरयो हथ्थं॥ १२४॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति। २, भीं।

शब्दार्थ:—पूजैत्र=पूजेगी, या पहुंचेगी। पुंजयो-बालं=पुंज कुमारी। पुछ्यौ=पूछेगी, याचना करेगी, मांगेगी, उसी के पक्ष में रहेगी। कज=कार्य। संसा=संशय, बाधा। बीरयो=वीरचंद के। हथ्थं=हाथ में।

अर्थ:—जब वह पुंजकुमारी (शशिव्रता) भगवती के देवालय पर जाकर भगवती को पूजेगी, तब वह पृथ्वीराज को ही वर-रूप में मांगेगी और इससे स्पष्ट है कि वीरचंद के कार्य में बाधा पैदा होगी।

दोहा

विखम ठौर बंकिम[1] विखम, कल सोभित वृत कंद।
को[2] प्रथिराजह अंगमें, मनों प्रथी पुरइंद॥१२५॥

ग्रा० पा० १ घ०। २ पा० का० भीं० घ०।

शब्दार्थ:—ठौर-स्थान। बंकिम=बांका। विखम=विषम। कल=सुन्दर। वृत कंद=शत्रु नाशक प्रतिज्ञा। को=कौन। अंग में=समानता कर सकता है। पुर इंद=पुरेन्द्र, इन्द्र।

अर्थ:—जो कठिन स्थान का स्वामी है और जो स्वयं बांका और प्रचण्ड वीर है तथा सुन्दर और सुशोभित है। जिसकी प्रतिज्ञा शत्रु नाशक है ऐसा पृथ्वीराज मानो इन्द्र का साक्षात अवतार है। उसे युद्धार्थ कौन निमंत्रित कर सकता है?

मनो राज प्रथमी[1] पुरह, धनि सु ध्रम्म धवलेश[2]।
मानहु बीर—नरिंद कौ, रति आयौ अविशेष॥१२६॥

ग्रा० पा० १ का० घ०। २ पा० का०।

शब्दार्थः–प्रथमी=पृथ्वी। धनि=धन्य है। धवलेश=धवल वृषभ। बीर-नरिन्द=वीर रूप धारी राजा। रति=प्रेम। अविशेष=अवशेष।

अर्थः—धन्य है इस नरेश्वर (पृथ्वीराज) को, यह वास्तव में पृथ्वीपर धर्म रूपी धवल वृषभ है और वीर-रूप एवं प्रेम का केवल यही अवशेष-स्वरूप धारण करके समक्ष आया हो।

यों करत दुद्दिय[1] बियौ, कथा श्रमन सुनि मंत।
जाकौ तें पतिवृत[2] लियौ[3], सो आयौ अलि कंत॥ १२७॥

ग्रा० पा० १, टी० १,। २, ३, सर्वप्रति।

शब्दार्थ–दुद्दिय=द्वंद। बियौ=दोनों नैत्र और कान)।

अर्थः—उधर शशिव्रता के नैत्र और कान झगड़ने लगे। उसी समय उसके कानों ने शशिव्रता से कहा:—हे कुमारी! जिसका तुमने पतिव्रत गृहण कर रक्खा है वही तेरा पति (पृथ्वीराज) आगया है।

श्रवन नयन का मैल-कै, भन चंचल चल चित्त।
श्रोताने दिष्टांन अरु, मिलि पुच्छै दोइ मित्त॥ १२८॥

शब्दार्थः–मेल-कै=मैल कराती हुई। श्रोताने=श्रोतानुराग। दिष्टांन=दृष्टानुराग।

अर्थः—फिर वह चंचला (कुमारी शशिव्रता) चल चित्त हो (क्या होगा इस दुविधा में पड़ी हुई) अपने कानों और नैत्रों में मेल कराती हुई श्रोतानुराग और दृष्टानुराग का ज्ञान, कर्ण और नैत्रों से पूछकर करने लगी।

नैन श्रवन्नन पूछई, तुम जानौं[1] बहु भंति[2]।
मेरेजिय अंदेस है, कही नमैं पिय जंति[3]॥१२९॥

ग्रा० पा० १, पा०, का०, घ०। २, घ०। ३, पां०।

शब्दार्थः–बहु भंति=विशेष प्रकार से। अंदेश=शंका। कही=किसी अन्य की ओर। नमैं=नम जायगा। पिय=प्यारा (पृथ्वीराज)। जंति=जाय।

अर्थः— शशिव्रता के श्रवणों ने उसके नैत्रों से प्रश्न किया किया कि हे नैत्रों-! हम श्रवण तुमसे इसलिये पूछते हैं कि तुम विशेष जानकारी रखते हो, अतः हमें इस बात की शङ्का है कि कहीं प्यारा (पृथ्वीराज) किसी अन्य (सुन्दरी) की ओर तो नहीं झुक जायगा (अन्य सुन्दरी के वश में तो नहीं हो जायगा)।

श्रवनन सन नेंना कही, तुम जानौ चहुआन।
काम नृपति कौ रूप धरि, आवत है इन थान ॥१३०॥

शब्दार्थः—इन=इस। थान=स्थान।

अर्थः—श्रवणों के प्रश्न का नैत्रों ने उत्तर दियाः-तुम चाहुवान को जानते ही हो, वह (शशिवृता के प्रेमवश) साक्षात कामदेव का स्वरूप धारण करके इस स्थान को आता है।

ताम हंस आयो समखि, कह्यो अहो शशिवृत्त।
चाहुआन आयौ प्रछन, मिलन थांन हरसित्त॥ १३१ ॥

शब्दार्थः—ताम=तब, इतने में। हंस=हंस नामक दूत। समखि=समक्ष। प्रछन=गुप्त रूप से। हरसित्त=हर सिद्धि।

अर्थः—उसी समय हंस नामक दूत भी (शशिव्रता के पास) आ पहुँचा। और कहने लगा हे शशिवृता! चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) तुम से मिलने को हरसिद्धि नामक स्थान पर आगया है।

कवित्त

घेरि[1] गांम जद्दव नरिंद, सिंघ उभभै चिहु पासं।
पल—नंखिय रंभा सु, करन आरंभ प्रवासं॥
एक एक गुन करहि, सब्ब फूले सतपत्तं।
तिन मध्यह शशिवृत्त, भई कम्मोदनि मंतं॥
पित पुच्छि पुच्छि परिवार सब, पुच्छि बंध-रज्जन सकल।
आघृत्त तात अग्या सुग्रहि, भईय बाल बुध्या विकल॥ १३२ ॥

प्रा० पा० १, २ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—पल-नंखियः=पलकें डाली, द्रष्टि डाली। प्रवासं=प्रवास, अन्यस्थान को जाने को, युद्ध भूमि में आने को। गुन-करहि=गुणकर, हित चाहने वाले। सब्ब=सब। सतपत्तं=शतपत्र, कमल। कम्मोदनी=कुमोदिनी। मं तं=मान, समान। पित=पिता। बंध-रज्जत=राजा के बधूवर्ग। आवृत्त=बार बार। तात=पिता (बड़े पिता यादवराज भान)। अग्य=आज्ञा। बुध्या=बुद्धि।

अर्थः—यादव राजा के गांव (देवास) को घेर कर सिंह तुल्य वीर (पृथ्वीराज के सामन्त) चारों ओर छा गये हैं। यह देखकर रंभा अप्सरा ने युद्ध भूमि में आने को दृष्टि डाली। कुमारी शशिव्रता का मनोरथ सफल होता देखकर, जो शशिव्रता के हित को चाहने वाले थे (स्त्री पुरुष) थे, वे सब कमल के समान विकसित होगये। उनके बीच में शशिव्रता कुमोदिनी सी बनी हुई थी। कमल-पुष्पों के साथ कुमोदिनी नहीं खिलती। अतः वह उदास मुख थी। उसने अपने पिता, परिवार, राजा के बंधु वर्ग आदि से इस विषय में (हरसिद्धि के स्थान पर जाने को) पूछा और बड़े पिता भान की आज्ञा प्राप्त की, उस समय वह बालिका व्याकुल थी और बुद्धि कुंठित थी।

दोहा

विकल बाल जहँ सकल हुअ, बुद्धि विकल प्रति-साज।
तान वचन सच्चै सुकरि, जिन अप्पी प्रथिराज॥ १३३॥

ग्रा० पा० १ टि०।

शब्दार्थः—प्रति-साज=प्रत्येक सजकर, सब तत्पर होकर।

अर्थः—बालिका (शशिव्रता) को विकल देखकर सब विकल होगये और सब यही मनाने लगे कि यादव राजा भान (या तान) ने जो पृथ्वीराज को शशिव्रत्ता अर्पण कर दी है उस बात को ईश्वर सत्य कर बतावे।

गाथा

वीरं चंद सु-व्याहं, सो व्याहं जोगिनी पुरयं।
संभरि क्रन शशिव्रत्तं, आगम[1] बीराइ मंजनं तनयौ[2]॥ १३४॥

ग्रा० पा० १, पा० का०। २, पा०।

शब्दार्थः—जोगिनी पुरयं=योगिनी पुरेश्वर, दिल्लीश्वर, पृथ्वीराज। संभरि=सँभल कर, सुनकर। क्रन=कान, या क्रिया। मंजनं तनयं=शरीर मंजन।

अर्थः—वीरचंद के बजाय योगिनी पुरेश्वर (दिल्लीश्वर पृथ्वीराज) के साथ विवाह होने का निश्चय और पृथ्वीराज का आना सुनकर शशिव्रता ने शृङ्गार करने के लिये शरीर का मंजन किया।

कवित्त

पुच्छि मात पित पुच्छि, पुच्छि परिवार ग्रेह सब ।
मैं वृत लियौ निबद्ध, गवरि पुज्जंन बाल जब ॥
तिन थानक सब देव, नीति आरंभ व्रत लिन्नौ[1] ।
तव प्रसाद उप्पनौ, मोहि इच्छाव्रत दिन्नौ[2] ॥
तिन काल व्रत्त लिन्नो सु मैं, गवरि प्रसाद सु पुज्ज फल ।
वारंज वात तुअ मोह हुअ, कहै और अबलहि अफल ॥१३५॥
ग्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः–पुच्छि=पूछकर । निबद्ध=अबाध्य । नीति=नित, नित्य, हमेशा । पुज्जफल=फल प्राप्ति । वारंज=वार, अभी । अबलहि=अबला ।

अर्थः—उस (शशिव्रता) ने माता, पिता परिवार तथा घरवालों से पूछा और कहा—मैं जब बालक थी तब गवरी पूजन का अक्षय व्रत लिया था। यह ऐसा स्थान है जहाँ देवताओं ने भी सदा से शुभ कार्य के आरंभ में व्रत लिया था। आपकी कृपा से मुझे भी व्रतेच्छा हुई है और मैंने भी उसी समय (बचपन में) व्रत गृहण किया है। और गवरी की कृपा से फल-प्राप्ति का वर मिला है। अगर अभी आप ममत्व-वश वहाँ जाने की आज्ञा नहीं देंगे तो मुझ अबला का व्रत निष्फल कहा जायगा ।

दोहा

दुख देवल कौ छंडनह, उर सिंचन-अंकूर ।
दीह काल बल वीची बदि, लिय सामान[1] सँपूर ॥१३६॥
ग्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः–देवल=देवालय । सिंचन-अंकूर=प्रेम के अंकूर पैदा होना । दीह-काल=दिवस और समय । बल=बलवान । वीचि=बीच में, हृदय में, मन में । वदि=कहती हुई, मानती हुई । सामान= सामग्री । सँपूर=परिपूर्ण ।

अर्थ: इष्ट-स्थान देवालय को छोड़कर हृदय में प्रेम का अंकूर पैदा होने से (पृथ्वीराज के साथ जाने से) स्वजनों के विछोह का दुःख हुआ; किन्तु मन में दिवस और समय को बलवान मानती हुई वह (शशिव्रता) संपूर्णतः पूजन सामग्री साथ में ले चली।

बाला बेनी छोरि करि, छुट्टै चिहुर[1] सुभाइ।
कनक थंभ तें उत्तरी[2], उरग सुता दरसाइ ॥१३७॥

ग्रा० पा० १, २, पा० का०।

शब्दार्थः—बेनी=चोटी। छोरिकरि=छोड़दी, खोल दी। छुट्टै=खुले हुए। चिहुर=केश। सुभाइ=शोभित हुई। उरग-सुता=नाग कन्या।

अर्थः—उस बालिका ने अपनी वेणी को खोल दी और खुले हुए केशों के कारण वह ऐसी सुशोभित हुई मानों स्वर्णिम स्तंभ पर नाग-कन्यायें (नागिनियां) उतरती हुई शोभा पा रही हो।

कवित्त

तजि भूखन बर बाल, इक्क[1] आचिज्ज उपन्नौ।
लता हेम पर चंद, उभै खंजन ढिग चिन्न्हौ ॥
श्रीफल उरज विसाल, बाव बर भ्रङ्ग-सु-पत्ती।
सुकि सु तरंग अरन्नि, करी भग्गाव्रल वंती[2] ॥
सोभंत उरग पति भुअ्र शरन, हंस-मुत्ति-चर बर करी।
सुध काज चढ़ै पप्पील सुत, काम-पत्तिनी दुख डरी ॥ १३८ ॥

ग्रा० पा० १, २, पा०।

शब्दार्थः—भूखन=भूषण। आचिज्ज=आश्चर्य। उपन्नौ=पैदा हुआ। लताहेम=सुवर्णलता, कनक-लता। उभै—दो। चिन्न्हौं=देखे गये। बाव=वापी, कुआ। भ्रंग-सु-पत्ती=श्रेष्ठ भ्रंग पंक्ति। तरंग=तरंगिनी, सरिता। भग्गावल=भागल, अर्गला। उरगपति=सर्प [शेषनाग]। भुअ्र शरन=पृथ्वी की शरण लेता हुआ, नीचे को झूमता हुआ। हंस-मुत्ति-चर=मुक्ता भक्षी हंस। सुध=सीधी, ऊपर। पप्पील=पिपीलिका, चिटियां। काम-पत्तिनी=कामदेव की पत्नी, रति।

अर्थः—उस बालिका (शशिव्रता) ने जब तन मंजन करने के लिये (स्नानार्थ) आभूषण उतारे तो एक आश्चर्य प्रद बात हुई। उस समय कनक-लता पर स्थित चन्द्रमा के पास ही दो खंजन (एक प्रकार की चिड़िया), श्रीफल, श्रेष्ठ वापी, भ्रंग पंक्ति, सुकी, सरिता, अर्गला, नीचे को झूमता हुआ सर्प, मुक्ताभक्षी हंस, श्रेष्ठ हाथी और ऊपर को चढ़ती हुई पिपीलिका दिखाई पड़ी, जिससे कामदेव की स्त्री रति दुःख से संकुचित हो डर गई। (कवि ने इसमें रूपकातिशयोक्ति अलंकार के द्वारा केवल उपमान का वर्णन करके उपमेय का बोध कराया है। अतः कनकलता के समान शशिव्रता का गौर वर्ण, पतला शरीर, चन्द्रमा के समान मुख, खंजन के समान नैत्र, श्रीफल के समान उरोज, वापी के समान नाभि, भ्रंग पंक्ति की भांति भोहें, शुक के समान नासिका, सरिता की तरह त्रिवली, अर्गला के समान दोनों भोहों के बीच की आड़ (खींची हुई रेखा), नीचे की ओर झूमते हुए सर्प के समान वेणी (चोटी), मुक्ता हारी हंस सा शशिव्रता का प्रेम (या भूषण ध्वनि), श्रेष्ठ हाथी सी चाल और ऊपर की ओर चढ़ती हुई पिपीलिका से नाभि और उरोजों की ओर बढ़ती हुई रोम राजि समझना चाहिये)।

दोहा

ते दासी दस बाल ढिग, तिर बरने कवि चंद।
तिन में बाल सु सोभियै, मनों पृथी पुर इंद ॥१३६॥

शब्दार्थः—तिर=तारा (तारा मंडल)। पृथीपुर=भूमण्डल पर। इन्द=इन्दु, चन्द्रमा।

अर्थः—उस कुमारी के आस पास जो दस दासियाँ थी, उनके लिये कवि कहता है:—वे तारा-मण्डल-तुल्य थी और उनमें वह (बालिका) भूमण्डल पर अवतरित चन्द्रमां के समान सुशोभित थी।

छुटि मृग-मद कैकांन छुटि, छुटिसुगंध की बास।
तुंग मनों दो तन दियै[२], कंचन खंभ प्रकास ॥१४०॥

ग्रा० पा० १, पा०, भीं०, घ०।

शब्दार्थः—मृग-मद=मतवाला मृग जाति का हाथी। कैकांन=घोड़ा, तुरंग। छुटि=खुल पड़ा। छुटि=फैलगई। वास=आवास, निवास स्थान। तुंग=बुर्ज। प्रकाश=प्रकाशवान, चमचमाते।

अर्थः—(हस्तिशाला से) मतवाला मृग जाति का हाथी या (हयशाला से तेज) अश्व खुल पड़ा हो, इस प्रकार कुमारी (देवालय को जाने को) स्वच्छन्दता पूर्वक चल पड़ी। उसकी तन-सौरभ सारे आवास में फैल गई। शरीर पर दोनों उरोज ऐसे सुशोभित थे मानों चमचमाते स्वर्णिम स्तंभ पर दो तुंग (बुर्जे) रच दिये गये हों।

तिमिर बीर गवनं कुवट, त्रिगुन तेज रवि[1] त्रास।
चवनित विक्रम परि-सकी, काम-ज्वाल बल हास॥ १४१॥

ग्रा० पा० १ भीं।

शब्दार्थः—वीर=वीर चंद। गवनं=गमन किया, चल पड़ा। कुवट=राह, बे राह। रबि=रवि, (सूर्य स्वरूपी पृथ्वीराज)। चवनित=चौगुने। परी-सकी=शंकित, स शंकित हुआ। ह स=परिहास, ह्रास।

अर्थः—तम-स्वरूपी वीरचंद, तिगुन तेजोमय रवि-स्वरूपी (पृथ्वीराज) के डर से राह बेराह चलपड़ा और उस (पृथ्वीराज) के चौगुने पराक्रम के सामने वह सशंकित हुआ। उसकी काम ज्वाला तथा बल का ह्रास हो गया।

सजि शृँगार शशिवृत्त तन, चढ़ि चौंडोल सुरंग।
पूजन कूं बर[1] अंबिका, आई बाल सु-अंग॥ १४२॥

ग्रा० पा० १ घ०।

शब्दार्थः—चढ़ि=सवार हुई। चौंडोल=चौडोल, पालकी। सुरंग=सुन्दर। अंबिका=देवी। सु-अंग=श्रेष्ठ काय।

अर्थः—राज कुमारी शशिव्रता शृंगार करके सुन्दरपालकी पर सावार हुई और वह देवी का पूजन करने के लिये चली (रवाना हो गई)।

सज्जि सेन जद्दव-त्रपति, दसत तीन चौंडोल।
लकरि लाल से-पंच अग, दस-दिसि दिक्खन[1] लोल॥ १४३॥

ग्रा० पा० १ पा० का०।

शब्दार्थः—जद्दव-नृपति=यादव राजा। दसत तीन=दस और तीन, तेरह, या तीस। लकरि=छड़ी। से-पंच=पांचसौं। दस-दिसि=दसों दिशाओं में, चारों ओर। दिक्खन=देखते थे। लोल=चपल।

अर्थः—यादव-राजा ने भी कुमारी के जुलूस के लिये सेना मजाकर साथ में कर दी। उसके साथ तेरह (या तीस) पालकियाँ, पांच सौ लाल रंग की छड़ी लिये हुए पुरुष, पालकियों के आसपास चलते हुए चारों ओर चपल दृष्टि से इधर उधर देख रहे थे।

अरुनोदय उद्यमह, सव्व[1] लिन्नै सु बंध भर।
उभय सहस बाजित्त, ढोल त्रँबक्कि मत्त गुर ॥
अद्ध सहस नफ्फेरी, सहस सहनाइ सुरंगो।
सुबर वीर पूजा प्रमान, बाल[2] किन्नी[3] मति चंगो ॥
बिनु[4] पुंज संग सेना सकल, अकल अपूरव बत्त बर।
चर सकल विकल अलि कुलन कौं, सुचित मित्त इक्कइ सुथिर ॥ १४४ ॥

ग्रा० पा० १ से ४, पा०।

शब्दार्थः—उद्यमह=उगने पर, होने पर। बंध=बंधु। भर=भट, सामंत। बाजित्त=वाजित्र। त्रँबक्कि=तासे। मत्त-गुर=मस्ताने स्वर से बजने वाले। अद्ध-सहस=अर्ध सहस्र। नफ्फेरि=नफेरि, वाद्य विशेष। सहनाइ=शहनाई, वाद्य विशेष। प्रमान=मानकर, सोचकर। चंगी=श्रेष्ट, उमंग पूर्ण। बिनु=बिना, अतिरिक्त। पुंज=शशिव्रता के पिता पुंजराज। अकल=अज्ञात। बत्त=बात, घटना। चर=दूत। अलि कुलिन=शत्रु वंशज, शत्रू। सुचित=सूचित करने वाला। मित्त=मित्र, सूर्य। इक्कइ=एकमात्र। सुथिर=सुस्थिर, डटा हुआ।

अर्थः—अरुणोदय होने पर भ्राताओं और सामन्तों को साथ में लिया। तदुपरान्त साथ में दो सहस्र बड़े २ ढ़ोल, (वाद्य विशेष) तासे आदि बाजे मस्ताने स्वर से बज रहे थे। अर्ध सहस्र नफेरियाँ, एक सहस्र सुन्दर शहनाइयाँ, (वाद्य विशेष) बज रही थीं। देवी-पूजा के बहाने वीर पूजा (पृथ्वीराज की पूजा, स्वागत) करने की मन में सोचकर उस बालिका (कुमारी शशिव्रता) ने अपनी मति को उमंग पूर्ण और स्वस्थ करली, केवल कुमारी के पिता पुंजराज के अतिरिक्त सब सेना उसके साथ में थी। उसे देखने से ज्ञात होता था कि कोई अज्ञात और अपूर्व घटना घटने वाली है। सब दूतों और व्याकुल हुए शत्रुओं को (इस घटना से, अरुण-वर्ण उदय होकर) एक मात्र नभ पर प्रकाशित सूर्य ही इस (युद्ध छिड़ने विषयक) बात से सूचित कर रहा था।

कवित्त

दहति-तीन चौंडोल, मध्य चौंडोल बालभय ।
भमर टोल झंकार, दासि बिंटिय सु पंच सय ॥
सित्त पंच असवार, पंति मंड़िय चावद्दिसि ।
अद्ध लक्ख पाइल प्रचंड़[1], सथ्थ आयो सु अंगकसि ॥
मंगल विवेक विधि उच्चरे, बंधी बंदनमार करि ।
उत्तरी बाल देवल सु ढिग, लग्गि पाइ परदक्खि फिरि[2] ॥१४५॥

ग्रा० पा० १, २, दे० ।

शब्दार्थ—दहति-तीन=दस और तीन, तेरह । भय=हुआ, थी । भमर-टोल=भ्रमर समूह, भृंग समूह बिंटिय=घेरे हुए थी । पंच-सय=पांचसौ । सित्त-पंच=पांचसौ । पंति=पंक्ति । चावद्दिसि=चारों ओर, आसपास । अध्ध-लक्ख=अर्धलक्ष । पाइल=पैदल । सथ्थ=संघ, समूह । विवेक=ज्ञानी, बुद्धिमान द्विज । बंदनमार=वन्दन माला । उत्तरी=उतरी । देवल=देवालय । लग्गि-पाइ=पाँव लगी, वन्दना की । परदक्खिफिरि=प्रदक्षिणा देकर ।

अर्थः—तेरह पालकियों (सहेलियों आदि के बीच में कुमारी शशिव्रता की पालकी थी । कुमारी की पालकी के आस पास पांचसौ दासियाँ शोभित थी । जिनके अंग-वास के कारण उनपर भृंग समूह मँडराते हुए गुँजार कर रहे थे । उस पालकी के आस पास पंक्ति बद्ध होकर पांचसौ सवार चल रहे थे; और अर्धलक्ष प्रचंड पैदलों का समूह भी आ उपस्थित हुआ था । बुद्धिमान द्विज विधि पूर्वक मङ्गल पाठ पढ़ रहे थे । और देवालय के द्वार पर वंदन माला बाँधी गई थी । इस प्रकार वह कुमारी जुलूस के साथ देवालय के समीप आकर पालकी से उतरी और प्रदक्षिणा देकर (शिव पार्वती से) वंदना की ।

गाथा

उतरि बाल चौंडोल तें, प्रीति हेत प्रथिराज ।
जिन देवत्त जु संपज्यौ, सो मंडन प्रथिराज ॥ १४६ ॥

शब्दार्थः—प्रीति-हेत=प्रीति के कारण, प्रीति के वश में । देवत्त=हे देव । संपज्यौ=पैदा किया मंडन पृथि=पृथ्वी का मंडन स्वरूपी । राज=राजा ।

अर्थः—पृथ्वीराज के प्रेम को हृदय में बसा कर बालिका पालकी से उतरी और कहने लगी, हे देव ! जिस राजा को तुमने मेरे लिये पैदा किया है ? वह (पृथ्वीराज) तो पृथ्वी का मंडन स्वरूपी है।

मंडन रन छंडन कलह, दल दैवत्त सु जुद्ध ।
बर वज्जे वाजित्र घन[1], भै सामन्त विरुद्ध ॥ १४७ ॥

ग्रा० पा० १ पा० घ० ।

शब्दार्थः—छंडन-कलह=कलह से छुड़ाने वाले, आपत्ति को मिटाने वाले। दल=सेना। दैवत्त=देवताओं तुल्य। घन=विशेष, जोर से, उच्च स्वर से। भै=हो गये !

अर्थः—युद्ध का मंडन (करने) वाले, अपने स्वामी (पृथ्वीराज) की आपत्ति को मिटाने वाले और सेना में देवताओं के समान युद्धकर्ता सामंत शत्रुओं से विरुद्ध होकर श्रेष्ठ रण-वाद्यों को उच्च स्वर से बजवाने लगे।

विरुध जुद्ध बंधन-सुदल, स्वामि ध्रंम्म चित पान ।
दुतिय ध्रंम जानै नहीं, धनि सामंत बखान ॥ १४८ ॥

शब्दार्थः—बंधन-सुदल=सेना को पंक्ति बद्ध करने वाले। चितपान=जिनका चित्त अपने हाथ में हैं। ध्रंम=धर्म। थनि=धन्य है। बखान=वाखान, प्रशंसा।

अर्थः—युद्ध में शत्रुओं के विरुद्ध रहने वाले, सेना को श्रेष्ठ ढंग से पंक्ति बद्ध करने वाले, स्वामी धर्म को निभाने वाले और चित्त जिनका अपने हाथ में है एवं जो दूसरों के धर्म को नहीं मानते हैं; ऐसे उन सामंतों के यश को धन्य है।

गाथा

बद्धे-दल संमूरं, लक्खं सैनाय अवृतं बलयं ।
ते जग्गे रस बीरं, जानिज्जे जोग जग्गायं[1] ॥ १४९ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—बद्धे दल=दल को बढ़ाया। संभूरं=सम्पूर्ण। लक्खं-सेनाय=लाखों की संख्या वाली सेना। अवृतं बलयं=लगातार बल प्रदर्शित करते हुए। जानिज्जे=मानों। जोग-जग्गायं=योगमाया जागृत हुई हो।

अर्थः—उस समय सारी सेना आगे बढ़ी और लाखों सैनिक शक्ति के साथ भिड़ गये, (बारबार अपना बल बताने लगे) जिससे वीर-रस की इस प्रकार जागृति हुई मानो योग माया जागी हो।

दोहा

भयौ बीर बीरह तिगुन, नच्यौ रुद्र बहु-भेद।
सौ दिख्यौ दिख्यौ नहै, सो देखन गुन छेद॥ १५०॥

शब्दार्थः—भयो=हुआ, फैल गया। बहु-भेद=विविध भाँति, भाँति भाँति। छेद=छिदना, क्षत विक्षत होना।

अर्थः—उन वीरों के कारण वीर रस त्रिगुण रूप में फैल गया। और भांति २ से शिव-नृत्य करने लगे। ऐसा दृश्य देखा गया जैसा पहले कभी नहीं देखाथा। ऐसे दृश्य को देखने के लिये क्षत विक्षत होने के गुण होने चाहिये (युद्ध में सम्मिलित होने की शक्ति होनी चाहिये)।

नह तारक्क[1] सु जुद्ध बर, नह देवा सुर मान।
सो दिख्यौ कमधज्ज सौं[2], चाहुआन बलवान॥ ॥ १५१॥

ग्रा० पा० १ पा०। २ घ०।

शब्दार्थः—तारक्क=तारकासुर।

अर्थः—कमधज (वीरचंद) के साथ बलवान चाहुवान (पृथ्वीराज) का जैसा युद्ध हुआ वैसा न तो तारकासुर का, न देत्रासुर का ही युद्ध श्रेष्ठ कहा जा सकता है।

चाहुआन कमधज्ज बर, बेर खटक्क सु बद्द।
देवगिगरि उग्गाहिये, करि भारथ्थ सनद्ध[1]॥ १५२॥

ग्रा० पा० १ घ०।

शब्दार्थः—सु बद्द=श्रेष्ठ वाद। उग्गाहिये=गाहे, कुचले। सनद्ध=सनद, सिद्ध, स प्रमाण।

अर्थः—चाहुआन और कमधज दोनों में एक दूसरे के प्रति वैर भाव खटक रहा था और इसीलिये देवगिरी में युद्ध छिड़ा। जिसमें एक दूसरे को कुचलने का प्रयत्न करते हुए महाभारतयुद्ध के दृश्य को प्रमाणित कर दिया।

चढ्यौ पुंज नव साज बर, अरुभर लिन्ने सथ्थ ।।
शंभु थान पूजन मिसह, चलि बर आयौ तथ्थ ।।१५३।।

शब्दार्थः—बर=वर, दुलहा, वीर चन्द । तथ्थ=तहाँ, वहाँ ।

अर्थः—यादव पुंज (शशिव्रता के पिता) ने सुना कि पूजा के बहाने शिवालय में दुल्हा (वीरचंद) गया है तो (युद्ध की संभावना से) वह भी अपने योद्धाओं को साथ में ले नूतन-युद्ध-साज सजाकर वहाँ पहुँचा ।

कवित्त

सहस सत्त कप्परिय, भेख क्यंनौ[1] तिन वारं ।
कपट कंध कावरि समूह[2], धसिय देवी दरबारं ।।
सर्व शस्त्र आरंभि[3], हस्त प्रारंभि[4] सु रीसल ।
धसिय भीर सम्मूह, जूह पाइक्क मंडिगल ।।
दल प्रबल उदधि ज्यों मथन कजि[5], भूज सु किस्न चहुआन किय ।
शशिवृत्ता बाल रंभह समह, मिलिय गंठि बंधन सुहिय ।।१५४।।

प्रा० पा० १, से ४, दे० । ५, घ० ।

शब्दार्थः—कप्परिय=कपाली, कापालिक । तिनवारं=उसी समय । कावरि=डोली । रीसल=क्रोध पूर्वक । पाइक=पैदल, सेना । मंडिगल=मंडन किया । कजि=लिये । किस्न=कृष्ण, विराट रूपधारी ।

अर्थः—उसी समय पृथ्वीराज के सात सहस्र साथियों ने कापालिक (शिवभक्त) साधुओं का वेश बनाया और छल पूर्वक कंधे पर डोलियाँ ले-समूह के अन्दर मिल गये और देवी के मंदिर में प्रवेश कर गये। क्रोध पूर्वक सबने हाथ चला कर शस्त्राघात शुरु किया । उसी प्रकार पैदल सैनिकों का समूह भी भीड़ में मिल गया और वह भी सुन्दर ढंग से युद्ध करने लगा। इधर चाहुवांन राजा (पृथ्वीराज) ने भी विपक्षियों की समुद्र तुल्य सेना का नाश करने के लिये, विराट रूप धारी कृष्ण की भुजा तुल्य अपनी भुजाओं को बनालिया। उसी के फल स्वरूपी रंभा तुल्य कुमारी शशिवृता उसे प्राप्त हुई और दोनों के हृदय का उसी समय गठ-बंधन होगया ।

दिठ्ठ दिठ्ठ लग्गी समूह, जूह[1] उतकंठ सु भग्गिय ।
निय[2] लज्जानिय नयन, मयन माया रस पग्गिय ॥
छल बल कल चहुआन, बाल कुअरीपन[3] भंज्यौ[4] ।
दोष त्रीय म्यंटयौ[5], उभय भारी मन रंज्यौ[6] ॥
चौहान हथ्थ बाला गहिय, सो ओपम कविचंद कहि ।
मानो कि लता कंचन लहरि, मत्त बीर गजराज गहि ॥ १५५ ॥

ग्रा० पा० १, २, सर्व० । ३ पा० घ० । ४ से ६, दे० ।

शब्दार्थ:—लग्गी=मिली । समूह=सामने । जूह-उतकंठ=अभिलाषा के विविध विचार । म्यंटयौ=मिट गया । भग्गिय=दूर हुए । निय=निकट । भंज्यौ=दूर किया, मिटा दिया । लहरि=लहराती हुई ।

अर्थ:—सामना होने पर एक दूसरे (पृथ्वीराज और कुमारी शशिव्रता) की नजर मिली और अभिलाषा (प्रतीक्षा) के विविध विचार दूर हो गये । उस समय पृथ्वीराज को निकट देखकर कुमारी के नैत्र सलज्ज हो गये और प्रेम में पड़े हुए दम्पति पर कामदेव की माया का जाल छा गया । उस सुन्दर चाहुवान (पृथ्वीराज) ने छल और बल द्वारा कुमारी के कौमार्य को अपहरण द्वारा मिटा दिया और वह कुमारी सत्य प्रेम के कारण निर्दोष सिद्ध हो गई । दम्पति एक दूसरे को देखने पर विशेष प्रसन्न हो गये । उसी समय चाहुवान (पृथ्वीराज) ने उस बालिका का हाथ पकड़ लिया । उसकी तुलना कविचन्द करता है कि मानों मतवाले हाथी ने लहलहाती हुई स्वर्णवल्ली को पकड़ लिया हो ।

गाथा

मृग मदकस यति चित्तो, मित्तं पुनरोपि चित्तयं बसयं ।
अजहूँ कन्ह वियोगे, कालिंदी कंन्हयौ नीरं ॥ १५६ ॥

शब्दार्थ:—मृग मदकस यति=मृग मद जिसमें है ऐसा कस्तूरी हिरण । कंन्ह=कृष्ण । कंन्हयो-नीरं=कृष्णमय नीर, कालिन्दी का जल ।

अर्थ:—जिस (कुमारी) के चित्त की दशा कस्तूरी वाले हिरण के समान थी (नाभि में कस्तूरी होते हुए भी हिरण सुगंधी की खोज में भटकता है । उसी प्रकार उसका प्रियतम पृथ्वीराज हृदय में बसा था फिर भी वह दूर मानती थी), किन्तु वही प्रिय

समक्ष होते ही (सब भ्रम दूर हो गया) पुनः चित्त में बस गया। सत्य है-प्रिय-विछोह रहते प्रेयसी की दशा शोचनीय [एवं ज्ञान शून्य] होती है। कृष्ण-विछोहसे आज भी कालिन्दी का नीर कृष्णमय दीख पड़ता है [प्रिय-प्रेयसी ऐक्य रूप होते हैं। विछोह होने पर ज्ञान शक्ति दूर होते हुए भी एक दूसरे में तन्मय दीखते हैं]।

गहियं गह-गह-कंठो, बचनं सजनाइं निट्ठयो कहियं।
जानिज्जै सतपत्रं, बंधे सद्दाइ भवरयं करियं[1] ॥ १५७ ॥

ग्रा० पा० १ घ०।

शब्दार्थ:—गह-गह-कंठो=गदगद कंठ। सजनाइं=सज्जन से, प्यारे से। सतपत्रं=शतपत्र, कमल। बंधे=बंधा हुआ, रुद्ध। सद्दाइ=शब्द, गुंजार।

अर्थ:—पृथ्वीराज के द्वारा हाथ पकड़ते ही कुमारी का कंठ गद २ हो गया। वह प्रियतम से इस प्रकार मुश्किल से बोल सकी, जैसे कमल-रुद्ध-भ्रमर गुंजार करता है।

तपतं दिल में रहियं, अंगं तपताइ उप्परं होई।
जानिज्जै स कुलालं,[1] घटनो अंग इक्कयौ[2] सरिसौ ॥ १५८ ॥

ग्रा० पा० १, २, पा०।

शब्दार्थ:—तपतं=तप्त, ताप। उप्परं=बाह्य। कुलालं=कुलाल, कुंभकार।

अर्थ:—शारीरिक ताप बाह्य चीज है; किन्तु दिल का ताप दिल में ही बना रहता है जैसे कुलाल-घट ताप सहकर भी वैसा ही बना रहता है जैसा उसका पूर्व स्वरूप होता है (यही दशा कुमारी की थी। उसके दिल का विरह-ताप दिल में ही रह गया और प्रियतम के मिलने पर वह स्वस्थ सी दिखाई दी)।

अप मंगल अल बाले, नेनं-नक्खाइ नक्ख किं लसयो[1]।
जानिज्जै घन कृपनं, सपनंतरो दत्त यं धनयं ॥ १५९ ॥

ग्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थ:—अप मंगल=अपने मंगल समय। अल=अलि, सखि। नेनं-नक्खाइ=नैत्रों के समीप (समक्ष) आने पर। नक्ख=नखरा। किं-लसयौ=क्यों करती। सपनंतरो-दत्तयं=स्वप्न तुल्य देना।

अर्थः—दृष्टा सखी कहने लगीः—हे बाले (शशिव्रता) अपने मंगल-समय प्यारे के नैत्रों के समक्ष होते ही यह नखरे बाजी इस प्रकार क्यों करती है ? जैसे महान कृपण, धन होते हुए भी उसका देना स्वप्न तुल्य है, इच्छा होते हुए भी बनावटी अनिच्छा प्रकट करना कृपण तुल्य है)।

गहि शशिवृत्त नरिंद सिढ़ि[1] लंघत ढहि-थोरी।
काम लता कल्लहरी, पेम मारुत झक झोरी॥
बर लीनी करि साहि, चंपि उर पुट्ठि लगाई।
मन सुरंग सोई बत्त, कंत लगि कान सुनाई॥
नृप भयौ रुद्र करुना सुत्रिय, बीर भोग बर सुभर गति।
सगपन सु हास बीभच्छ रिन, भय भयान कम धज्ज दुति॥१६०॥

1 पा० १ पा०।

शब्दार्थः—लंघत=लांघते, चढ़ते। ढहि-थोरी=ज़रा लुढकी, जरा सी खिसकी। कल्लहरी=कामल। पेम=प्रेम। करि-साहि=हाथ पकड़ कर। पुट्ठि लगाई=पीठ से लगाई, घोड़े के पीठ पर चढ़ाली। सगपन=सम्बन्धियों में। हास=हास्य। बीभच्छ=बीभत्स। रिन=रण। भयभयान=भयानक हुआ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने देवालय की सीढ़ियाँ चढ़ते ही शशिव्रता का ज्योंही हाथ पकड़ा त्योंही कुमारी कुछ इस प्रकार झिझकी (कंपित हुई) जिस प्रकार कोमल काम-लतिका प्रेम-पवन के लगने से झकझोर दी गई हो। उस दुल्हे (पृथ्वीराज) ने हाथ पकड़ कर कुमारी को हृदय से लगा घोड़े की पीठ पर चढ़ा लिया। उसी समय पवित्र मन ने प्यारे के कानों में अपनी बात कह दी। उस समय पृथ्वीराज में रौद्र, कुमारी में करुणा, सामन्तों में वीर, सम्बन्धियों में हास्य, युद्ध में वीभत्स और कमधज वीरचन्द में भयानक रस दिखाई दिया।

दोहा

बीर गत्ति संधिय सुमित, वृत्त अवृत्त न-जाइ।
घरी एक आवृत्त रखि, सुबर बाल-अनु-राइ॥ १६१॥

शब्दार्थः—वीर=पृथ्वीराज। वृत्त=व्रत। अवृत=अड़ने का। न-जाइ=नहीं हटा। आवृत रखि=घेरे रक्खा। सुबर=उस समय। बाल-अनु-राइ=बालिका और राजा को, बालिका सहित राजा को।

अर्थः—श्रेष्ठ मतिवाले वीर (पृथ्वीराज) ने वीर मति का साधन किया। उसने युद्ध करने का व्रत गृहणकिया था, इसीलिये वह वहां से नहीं हटा। उस समय शत्रू-वीरों ने भी एक घड़ी तक कुमारी सहित राजा पृथ्वीराज को घेरे रक्खा।

बाल-सुबैर स बैर-त्रिय, भान विरुद्ध न कीन।
सकल सेन साधन घरी, कलहंकृत गति चीन॥ १६२॥

शब्दार्थः—बाल-सुबैर=बालिका का श्रेष्ठ समय, कुमारी का मांगलिक अवसर। बैर-त्रिय=स्त्री का बदला, बालिका के अपहरण की शत्रुता। गति=हालत, मार्ग। चीन=चिन्ह, सोचा, अनुसरण किया।

अर्थः—बालिका (शशिवृता) के श्रेष्ठ मांगलिक अवसर को सोच कर बाला के अपहरण का वैर (बदला) होते हुए भी यादव राजा भान ने उस (पृथ्वीराज) के विरुद्ध छेड़ छाड़ नहीं की, किन्तु शस्त्र-परीक्षा की घड़ी सोचकर अन्य वीरों ने स्वतः कलहप्रद-मार्ग का अनुसरण किया।

घरिय पंच दिन रह्यौ, मंत जद्दव प्रारंभिय।
मिलि कमधज्ज नरिंद, सकट व्यूहं[1] आरंभिय॥
अर्द्ध सथ्थ अप्पनौ, चरन मंडिय बामं[2] दिसि।
व्यूह चक्र विय पाइ, सथ्थ उभ्भौ नरिंद कसि॥
उद्धवन भार अंगत सकट, सबर पुंज अप्पन सजिय।
रघुनाथ साथ बलियं बिहसि, हंकि सु लछिमन तहँ रजिय॥१६३॥

ग्रा० पा० १, पा० घ०। २, घ०।

शब्दार्थः—मंत=मंत्रणा। चरन=पैर, पैया। विय=दूसरा। पाइ=पैया। नरिन्द=कमधज राज, वीरचंद। उद्धवन-भार=भार उठाने (ढोने)। अंगत=अंग, स्थान। लछिमन=लक्ष्मण।

अर्थः—जब पांच घड़ी दिन शेष रहा तब यादवों ने युद्ध करने का निश्चय किया और कमधज नरेश वीरचंद ने भी यादवों से मिल कर शकट व्यूह की रचना की। अपनी अर्ध सेना को वाम पैये के स्थान पर कर दाहिने पैये के स्थान पर स्वयम् वीरचंद डट गया। भार ढोने के स्थान पर (ऊपर का ढांचा या धरुंडे की जगह) की ओर स्वयम् पुंज (शशिव्रता का पिता) बढ़ा और जिस प्रकार रामचन्द्र की सहायता पर बलवान लक्ष्मण थे उसी प्रकार प्रसन्नता पूर्वक पुंज का साथ देने के लिये यादव-कुमार लक्ष्मण युद्ध भूमि में सुशोभित हुआ।

सुनि वज्जी घरियार[1], लाग नीसानन बज्जिय[2] ।
इक दिन दोऊ सेंन, चंपि चावद्दिसि सज्जिय[3] ॥
महन रंभ सा-जग्य, मध्य मोहन शशिवृत्तं ।
असुर सु सुर मिलि मथहि, सूर वंसी रजपूतं ॥
आरंभ पत्र मंड्यौ कपट, कपट मुक्कि कढ्ढिय लपट ।
दुहूं बीच जद्दों कुंअरि, उभय सिंह सारह झपट ॥ १६४ ॥

ग्रा० पा० १, पा० घ० । २, ३, पा० ।

शब्दार्थः—घरियार=घंट । महन रंभ=महार्णव, समुद्र । सा-जग्य=वह जगह, वह स्थान, युद्ध-भूमि । मोहन=मोहिनी स्वरूप । सूर-बंसी=सूर्य वंशी [चाहुआन और कमधज] । सारह=सार, लोहा, शतस्त्रास्त्र ।

अर्थः— घंट-निनाद के साथ २ नक्कारे बजने लगे, और एक ही दिन में दोनों सेनायें सुसज्जित होकर एक दूसरे को दबाने लगी । वह युद्ध-भूमि, समुद्र स्वरूप होगई । उस स्थान पर शशिव्रता ही मोहिनी स्वरूपा कही जाने लगी । देव दानव तुल्य दोनों सूर्य वंशी (चाहुआन और कमधज) क्षत्रिय उस युद्ध-वारिधि का मंथन करने लगे । शशिव्रता द्वारा भेजे गये पत्र की हो यह सब कपट लीला थी । वह वहाँ प्रकट होकर दोनों ओर से वाड़वाग्नि की ज्वाला तुल्य क्रोधाग्नि की ज्वाला फैलने लगी । चाहुआंन (पृथ्वीराज) और कमधज (वीरचंद) के बीच में यादव-कुमारी को प्राप्त करने का प्रश्न था और उन दोनों सिंहों (पृथ्वीराज और वीरचंद) में शस्त्रास्त्र की झपट थी (लड़ाई थी) ।

दोहा

चाहुआन कमधज्ज बर, मिले लोह जल छोह ।
भर-भर टट्टर बज्जही, बंसह लग्गिय कोह ॥ १६५ ॥

शब्दार्थः—जल-छोह=नूर के उत्साह में । भर-भर=एक दूसरे के । टट्टर=अंग । बंसह=बाँसों में । कोह=खो, खे, आग ।

अर्थः—श्रेष्ठ चाहुवान और कमधज वीरों ने तेज बनाये रखने के लिये उत्साह से अपने २ लोहों (शस्त्रों) को मिलाया । वह एक दूसरे के अंगों पर पड़कर इस प्रकार बजने लगा, मानों बांसों के घर्षण से अग्नी प्रज्वलित होगई हो ।

गाथा

उच्चरियं अरि भायं, सायक कस्सेत्र अप्प अप्पायं ।
कड्ढे लोह करारं, मारं मार[१] जंपि जीहायं ॥ १६६ ॥

ग्रा० पा० १ पा० का० भीं० ।

शब्दार्थः—उच्चरियं=उचारे, कहे, प्रगट किये । भायं=भाव । कस्सेत्र=ऐंचे । जंपि=कहे । जीहायं=जिह्वा से ।

अर्थः—शत्रुओं पर अपने २ भाव प्रगट करते हुए वीरों ने धनुष को ऐंचे और करारे शस्त्र निकालकर मार २ शब्दोच्चारण किया ।

अवृत-घाइ घट-भंग-कौ, करन मतहु बरबीर ।
मनहु काल कपि दल निरति, लेन लंक मति धीर ॥१६७॥

शब्दार्थः—अवृत-घाइ=लगातार आघात । घट-भंग-कौ=शरीर नाश के लिये । मतहु=मता, विचार । निरति=निरत, लीन ।

अर्थः—श्रेष्ठ वीर सामन्तों ने शरीर-नाश के विचार से लगातार आघात किया, मानों काल स्वरूपी कपि-सेना लंका-विजय के लिये निरत हो गई हो (युद्ध में लीन हो)।

धन धीरत्तन बीर बर, करिय न पंग प्रवाह ।
चच्चर सीचव रंग गति, वधि[१] बंधन रिन चाह ॥१६८॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—धन=धन्य है । धीरत्तन=धैर्यधारी । पंग=पंगु, (कमधजी सेना) । प्रवाह=परवाह । चच्चर=चाचरे, भाल । सीचव=सींच दिये । रंग-गति=रंग दिये हो उस तरह । वधि=बढ़कर ।

अर्थः—धन्य है उन धैर्यधारी श्रेष्ठ वीरों को जिन्होंने पंगु (कमधज्जी) सेना की कुछ भी परवाह न की और उन्होंने युद्ध में उत्साह-वृद्धि करने के लिये अपने भाल-स्थल को शोणित से रंजित कर दिया (रंग दिये)।

गाथा

मानिक्कं प्रति ताजं, हेमं हेमेल विद्ध साधरियं ।
जानिज्जै निसि मद्धं, निरमलं तारक सोभियं गैनं ॥ १६९ ॥

शब्दार्थः—मानिक्कं=माणिक-या, मणि। प्रति=प्रत्येक। तार्ज=ताज, मुकुट। हेमं=हर्म्य, स्वर्णिम। हेमेल=हिमाचल। विद्ध=विधि, तरह, तुल्य। तारक्क=तारे। गैनं=नभ में।

अर्थः—हिमाचल-तुल्य उन वीरों के मस्तक पर मणि जटित स्वर्णिम मुकुट थे, जिससे ऐसा आभास होता था, मानों रात्रि में निर्मल तारे नभ पर जग मगा रहे हों।

मुच्छी उच्चस वंकी, बालं चंद सुभ्भियं नभ्भं।
गत गुर[1]घन नीसानं, रीसानं खंग खलयाई॥ १७०॥

ग्रा० पा० १ पा० का० घ०।

शब्दार्थः—मुच्छी=मूंछें। गत-गुर=जोर से आहत होने पर, जोर से बजने पर। रीसानं=क्रोधित हो उठे। खंग=नाशकर्ता। खलयाई=दुष्टों के, शत्रुओं के।

अर्थः—नभ-स्थित अर्ध चन्द्र की आकृति लिये हुए जिनकी उठी हुई वक्र मूंछे थीं, ऐसे वीर जो शत्रुओं के नाश कर्ता थे, वे विशेष जोर से नक्कारे बजने पर क्रोधित हो उठे।

कवित्त

सबर बीर कमधज्ज, अरघ अप्पिय खग मग्गं।
इखु[1] अच्छित उच्छरहि, जानि परिमान नमग्गं॥
सार धार पुंखियै, बीर मंगल उच्चारै।
सबै साथ बंदियहि, सकल पूजा संभारै॥
बर मुक्कि बरन बरनी सुबर, इह अपुब्ब पिख्यौ नयन।
उप्पनौ बीर सिंगार सँग, रुद्र बीर चौरी सयन[2]॥१७१॥

ग्रा० पा० १, सर्वप्रति।

शब्दार्थः—सबर=उस समय। अप्पिय=दिया। खग-मग्गं=खड्गमार्ग से, खड्ग द्वारा। इखु=इक्षु, बाण। अच्छित=अक्षत। उच्छरहि=उछाले गये। नमग्गं=निमग, निगम, अगम, अपार। पुंखिये=पक्षी। मुक्कि=छोड़ दिया बरनि=दुलहन। अपुब्ब=अपूर्व। चौरी=मंडप। सयन=सेना।

अर्थः—उस समय वीरचंद कमधज्ज ने खड्ग द्वारा रक्त का अर्ध्य देना प्रारंभ किया। वहाँ बाणों को ही विभिन्न अक्षत विधि से रक्त उछाला गया। शस्त्राघात और गिद्धनियाँ आदि पक्षियों की ध्वनि ही वीरों का मंगल गान बन गया।

वंदना में सब साथियों ने भाग लिया। वही वहाँ पूजा मानी गई। दुल्हे बने हुए वीरचन्द ने दुलहन को वरण करने की इच्छा छोड़ दी। उस समय वह अपूर्व वीर दिखाई पड़ा। उसके साज बाज शृंगार-रसकी छटा छाने वाले थे; किन्तु स्वरूप वीर और रौद्र रस पूर्ण था। सेना-स्थल ही उसके लिये मंडप बना हुआ था।

दोहा

सिर सोहत बर सेहरौ, टोप ओप अति अंग।
बगतर बागे केसरें, रुधि भिज्जत[1] विषमंग ॥ १७२ ॥

ग्रा० पा० १ का०।

शब्दार्थः—ओप=उपमा, तुलना, शोभा। बगतर=बख्तर, कवच। केसरें=केशरियां। रुधि भिज्जत=रुधिर से भींजा हुआ, रक्त रंजित। विषमंग=विषम।

अर्थः—सिर पर बँधा हुआ सेहरा शिरस्त्राण की भांति विशेष शोभा युक्त था और रक्त रंजित केसरियां बागा कठिन कवच की छटा दिखा रहा था।

सकट भग्ग लइ बग्ग बर, कमधज वीर विसेज।
मिले वीर बोरंत[1] बर, दोऊ दैवत तेज ॥ १७३ ॥

ग्रा० पा० १ घ०।

शब्दार्थः—सकट=शकट, व्यूह। भग्ग=तोड़कर। लइ=ली, उठाई। बग्ग=रास। विसेज=वैसे में, उस समय।

अर्थः—अपनी और यादवी सेना को शकट व्यूहाकार रूप दे रक्खा था। कमधज (वीरचंद) ने उस क्रम को उस समय तोड़ दिया, जब वह अपने घोड़े की रास उठाकर वीर श्रेष्ठ पृथ्वीराज से जा भिड़ा। उस समय दोनों [पृथ्वीराज और वीरचंद] का तेज देव तुल्य दिखाई दिया।

गाथा

देव ते-ज दैवत्त गुन, अवृत मत्ति गुन कंति।
शशिवृत्ता चहुआन सौं, सुव्रत मंत गुनयंति[1] ॥ १७४ ॥

ग्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थ—ते-ज=वे। अवृत-मत्ति=अड़ने की मस्ती, भिड़ने की मस्ती। कंति=काति। सुवृत-मंत=व्रत का मतवाला। गुनयंति=गुनागया, माना गया।

अर्थः—वे दोनों [पृथ्वीराज और वीरचंद] स्वयम् देव-तुल्य थे, वैसे ही उनमें गुण, वैसी ही उनमें शक्ति और कांति थी; किन्तु उस समय चाहुआन (पृथ्वीराज) ही शशिव्रता के वृत का मतवाला अधिक वीर माना गया।

सांइ सूर सांई सु गति, दल दुंदुभि दैवत्त।
विध रंकर वीरह करह, सु बर वीर मारुत्त ॥ १७५ ॥

शब्दार्थ,—सांइ=स्वामी। विध=विधि, विधाता। रंकर=रंक। वीरह=वीरचंद को। करह=कर दिया। मारुत्त=मारुतीय, हनुमान।

अर्थः—स्वामी पृथ्वीराज के समान ही उसके सामंत बहादुर थे। वैसी ही उनकी युद्ध में गति थी, वैसी ही सेना थी, वैसी ही दुंदुभि थी और वैसे ही वे भी देव तुल्य थे, उन मारुती (हनुमान) तुल्य वीरों के द्वारा विधाता ने वीरचंद को रंक बना दिया। [सेना रहित कर दिया]।

काल कूट कीनौ विषम, कोलाहल घन कीन।
अवृत वृत्त अंतह भखै, सो भारत्थ प्रवीन ॥१७६॥

शब्दार्थः—कालकूट=जहर, हलाहल। कीनौ=किया, फैलाया। अवृत-वृत्त=भिड़ने की प्रतिज्ञा। अंतह=अन्त में। भखै=नाश किये। भारथ्थ=युद्ध में।

अर्थः—जो भयानक हलाहल फैलाते हैं और जो विशेष शोरगुल मचाते हैं वे वीर नहीं होते। युद्ध प्रवीण तो वे वीर माने गये हैं। जो लड़ने की प्रतिज्ञा करके अन्त में शत्रुओं का नाश कर देते हों।

भारथ-दिख्खिय तत्त मति, अवृत चिंत बल छीन।
जिन गुन प्रगटित पिंड-किय, सो भारथ्थ प्रवीन ॥१७७॥

शब्दार्थः—भारथ-दिख्खिय=युद्धारंभ में देखे गये। तत्त=तत्व। अवृत=भिड़ने पर। चिंत=चिंतन किये गये, सोचे गये, देखे गये। छीन=क्षीण। प्रगटित=प्रकठ करते, प्रकाश में लाते हुए पिंड-किय=पिंड स्वरूप बन गये, अन्तिम पिंड दान करा गये।

अर्थः—युद्धारंभ में जिनकी बुद्धि तत्वमय दिखाई देती है, किन्तु लड़ने पर जो क्षीण-बल मालुम होते हैं वे वीर नहीं कहे जा सकते। रण-दक्ष योद्धा वही हैं जो युद्ध में अपने वीर-गुणों को प्रकाश में लाकर पिण्ड स्वरूप बन जाते हैं।

कंठ-कील कीलह[1]-सुव्रत, वृतत जुद्ध सम पाइ ।
सुबर बीर भारथ्थ गुन, उठे बीर विरुझाइ ।। १७८ ।।

ग्रा० पा० १ घ० ।

शब्दार्थः—कंठ-कील=कंठों को कील दिये, बोलना बंद कर दिया, कंठों को रुद्ध कर दिये। कीलह-सुव्रत=व्रत पालने में बाधक हो गये। वृतत=व्रतते, करते। गुन=गुने गये, माने गये।

अर्थः—शत्रुओं के युद्ध को समान देखकर उनके कंठों को रुद्ध कर दिया (बोलना बंद कर दिया)। और उनके व्रत पालन में बाधक होगये। (पृथ्वीराज के) वे वीर सामंत झगड़ते (बत्थ गुत्थ होते) हुए ऐसे दिखाई दिये मानों महाभारत-युद्ध-समय के श्रेष्ठ वीर हों।

खल सकुल अकुल-प्रकृति[1], चतुर चित्त विरुझाइ ।
मनु बड़वानल मध्य तें, समुद सत्त गुन भाइ ।। १७९ ।।

ग्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—खल=शत्रु। संकुल=एकत्रित हो गये। अंकुल-प्रकृति=आंकल वृषभ की प्रकृति वाले, [आंका हुआ वृषभ सूर्य का सांड़ कहलाता है वह न तो नाथा जाता न जोता जाता वह स्वच्छन्द विचरण करता है]। समुद=समुद्र। सत्तगुन=सौगुना। भाइ=भाया, सुशोभित हुआ।

अर्थः—उन स्वच्छन्द वृषभ तुल्य चतुर चित्त वाले वीरों को उलझा हुआ देखकर शत्रु भयातुर हो एकत्रित हो गये। उस समय वह, विपत्तियों का समुद्र तुल्य समूह, (पृथ्वीराज के) वाड़वाग्नि तुल्य सामन्तों के कारण सौगुना सुशोभित हो पाया।

वीर थान विभ्रम भइय, नयन रत्त सम सार ।
मानहु वर धरि अद्ध में, नाकपत्ति गिरि झार ।।१८०।।

शब्दार्थः—वीर=वीरचन्द। विभ्रम=भ्रमित। भइय=हुआ। रत्त=अरुणवर्ण। सार=लोहा, शस्त्र। बर-धरि=बल ग्रहण करता हुआ। अद्ध में=नीचे को, पृथ्वीपर। नाकपत्ति=स्वर्ग का स्वामी, इन्द्र। झार=झाड़ रहा हो-पटक रहा हो, ढहा रहा हो।

अर्थः—जिस (पृथ्वीराज) के नैत्र और शस्त्रों को समान ही अरुणवर्ण देख कर वीरचन्द अपने स्थान (युद्ध भूमि) से भ्रमित होगया। उस समय पृथ्वीराज आघात करता हुआ ऐसा दिखाई दिया मानों बल प्राप्त करता हुआ इन्द्र, पृथ्वीपर पर्वतों को गिरा रहा हो।

कवित्त

नाक-पत्ति संभरिय, उभै काया अधिकारिय ।
वह जित्यौ बलि राइ, यहन दुज्जन सम सारिय ॥
छित्ति पत्ति अति अभ्भ, दुहुन आभा पति बुद्धं ।।
इह गोरी सुरतान, उहति दानवह[1] विरुद्धं ॥
खग खुलै दुहुन पुज्जैन को, दोऊ बाउ बर बीर रन ।
लै चल्यौ हरिव शशिवृत्त को, पहुपंजलि पुज्जै तरुन[2] ॥१८१॥

ग्रा० पा० १, २, पा० ।

शब्दार्थ:—नाक-पत्ति=स्वर्ग का स्वामी, इन्द्र । संभरिय=चाहुवान राजा । उभै=दोनों । काया=शरीरधारियों का ! यहन=यह । दुज्जन=शत्रु । सम-सारिय=लोहा चलाने में समानता रखता है । छित्ति-पत्ति=पृथ्वी का स्वामी । अति-अभ्भ=सघन बादलों (मेघों) युक्त, विशेष नूर । आभा-पति-बुद्धं=मेघों का तथा विबुधों का स्वामी, नूर धारियों और पंडितों का स्वामी । खग-खुलै=खह (नभ) मार्ग पर चलने वालों को प्रसन्न करने वाला, नंगी खड्ग वाला है । पुज्जे=पूजे । बाऊ=वायु, पवन । रन=रण, अरण्य, युद्ध । तरुन=तरुणाई ।

अर्थ:—इन्द्र और पृथ्वीराज दोनों शरीर धारियों के (एक देवरूप दूसरा राजा रूप में) स्वामी है । एक राजा बलिको, दूसरा शत्रुओं को जीतने वाला है । एक विशेष मेघों (बादलों) के कारण, दूसरा विशेष प्रताप के कारण पृथ्वीपति माना गया है । एक मेघों का स्वामी दूसरा तेज-धारियों का स्वामी है । दोनों विबुध (देवता और पंडितों के) पति हैं । एक दानवों के दूसरा गौरीशाह के विरुद्ध है । एक नभ-मार्ग पर विचरण करने वालों (देवताओं) को प्रसन्न करने वाला है, और दूसरा सदा खड्ग निकाले हुए रहता है । दोनों को कौन नहीं पूजता ? दोनों में से एक पवन के सहारे रण (अरण्य) में विचरण (मेघ द्वारा वर्षा) करता है, दूसरा श्रेष्ठ वीरों को साथ में लिये रण में सुशोभित होता है । इस प्रकार इन्द्र की समानता रखने वाला धीर पृथ्वीराज शशिव्रता को लेकर चल पड़ा । यह देख कर स्वयम् तरुणाई ने उसको पुष्पाञ्जलि समर्पित कर पूजा की ।

दोहा

तरुन तेज तम हरन बर, बाल बहिक्रम उच्छि ।
मानों रति आरुढ करि, बर बारधि मति लच्छि ॥ १८२ ॥

शब्दार्थः—तरुन=युवक, पृथ्वीराज । तम-हरन=तम हर, सूर्य । बहिक्रम=वयक्रम, आयु । उच्छि= अच्छी । रति-आरूढ-करि=प्रेम को हृदय में बसाकर । बारधि=वारिधि, समुद्र । लच्छि=लक्ष्मी ।

अर्थः—उस युवक [पृथ्वीराज] का तेज श्रेष्ठ तमहर (सूर्य) के समान था, उसी के योग्य बालिका की आयु भी अच्छी थी, वह प्रेम को हृदय में बसाये हुए (शशिव्रता) लक्ष्मी तुल्य समुद्र के समान गहरी मति लिये हुए थी ।

लच्छि सु मथि[1] रु लिन्न[2] हरि, इह लीनी संग्राम ।
घटि बढि मंत्रह समन बरि, दोऊ बीर बढि वाम ।। १८३ ।।

ग्रा० पा० १ का० । २ सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—मथि=समुद्र मंथन करके । लिन्न=ली, प्राप्त की । इह=इसने, पृथ्वीराज ने । घटि बढि= घटा बढ़ी, कम ज्यादा । मंत्रह=सम्मति से, सोचने पर । समन=समान नहीं । वाम=वामायें, लक्ष्मी और शशिव्रता ।

अर्थः—लक्ष्मी को विष्णु ने समुद्र मंथन करके और पृथ्वीराज ने शशिव्रता को युद्ध करके प्राप्त किया । इस प्रकार सोचने पर एक (विष्णु) कम और दूसरा (पृथ्वीराज) उससे बढ़कर प्रतीत होता है; किन्तु दोनों वामाङ्गनायें [लक्ष्मी और शशिव्रता] उन दोनों वरों से बढ़ गई । वे दोनों समान गुणों को लिये हुए थी । [किसी में कोई कमी नहीं दिखाई देती थी] ।

गाथा

चावद्दिसि नृप बिंट्यौ, पुंजं सेनाय[1] सेनयौ बीरं ।
धर धरनी आधारं, सा धारं डुल्लियं शीशं ।। १८४ ।।

ग्रा० पा० १, भीं०, घ० ।

शब्दार्थः—चावद्दिसि=चारों ओर । बिंट्यौ=घेर लिया । धर=धड़, रुंड । सा=उनके । धारं=तलवार की धारा । डुल्लिय=डोल रहे थे ।

अर्थः—उसी समय चारों ओर से यादव-पुंज और वीरचंद की सेना ने पृथ्वीराज को घेर लिया । उस समय वीरों के रुंड पृथ्वी पर खड़े थे । किन्तु उनके मुंड तलवार की धारों पर इधर से उधर उछाले जा रहे थे ।

दोहा

कोंपि बीर कायर धरक्कि, परखि पयंपन जोग ।
यह गति छंडे बीर बर, परै परत्तर भोग ।। १८५ ।।

शब्दार्थः—धरक्कि=धड़कने लगे, कंपायमान हुए । परखि=देखकर । पयंपन=प्रयाण । जोग=योग । परै=प्राप्त करता, उपभोग करता । परत्तर=परस्त्र, स्वर्ग । भोग=विलास, सुख ।

अर्थः—युद्ध भूमि में अंतिम प्रयाण के समय योग को देखकर वीर पुरुष क्रोधयुक्त और कायर कम्पायमान होगये । कवि कहता है:— शरीर छोड़ कर ऐसी गति को प्राप्त करता है, वही स्वर्ग के सुख का उपभोग कर पाता है ।

कवित्त

बांन पथ्थ बल भीम, सत्त सिवरं अधिकारी ।
गंभीरां-गुर सिंघ, नेह करनह क्रत भारी ।।
बल सु जग्य सक्रह विसाल, बलह [1]पुरषारथ सारी ।
सुर सिधि बुद्धि गनेश, क्रम्मन धुत्र धू [2]अधिकारी ।।
सामन्त सूर सूरह विरुध, बीर बीर पारस फिरिय ।
बर सिंघ-सिंघ रक्खै मरन, बर को बिद को बिद डरिय ।।१८६।।

प्रा० पा० १, पा० । २ घ० ।

शब्दार्थः—पथ्थ=पार्थ । सिवर=शिवि । गंम्भीरां-गुर=गहरी गर्जना । क्रतभारी=भारी कार्य करने वाला । बल=बली । जग्य=यज्ञ । सक्रह=इन्द्र । विसाल=बड़प्पन, बड़ाई । बलह=बलराम । सारी=श्रेष्ठ । धू=निश्चय । पारस-फिरिय=चारों ओर फिर गये, घेर लिये । सिंघ-सिंघ=सिंहों में श्रेष्ठ । रक्खै-मरन=मृत्यु को बसाया । बर-को-बिद=श्रेष्ठ किस प्रकार । को-बिद=बुरी तरह से ।

अर्थः—बाण चलाने में अर्जुन, बल में भीम, सत्यव्रत पालन में शिवि, गहरी गर्जना करने में सिंह, विशेष प्रेम निभाने में कर्ण, यज्ञ करने में बली, बड़प्पन में इन्द्र, पुरुषार्थ में बलराम, सिद्धि में देव, बुद्धि में गणेश और निश्चित किये हुए रास्ते पर चलने वाला ऐसा पृथ्वीराज और उसके सामन्त ध्रुव-तुल्य थे । उनके वीरचन्द और उसके योद्धा उनके विरुद्ध होकर उन्हें घेर लिये; किन्तु उन श्रेष्ठ सिंह तुल्य वीरों ने मृत्यु को बसा लिया । उनके समस्त विरोधियों को किस प्रकार श्रेष्ठ कहा जांय, जो मृत्यु से बुरी तरह डर गये ।

दोहा

सु रिधि बुद्धि बुध्यंत-रन[1], भिरन[2] सूर दुति राज ।
चाहुआन प्रथिराज कल, मंडि बीर सिर ताज ॥ १८७ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० भीं० घ० ।

शब्दार्थः—सु रिधि=देव तुल्य । बुध्यंत-रन=रण में जब बढ़ा । सूर-दुति=सूर्य सा तेज । कल=सुन्दर । मंडि=मंडन ।

अर्थः—देवतुल्य बुद्धि वाला, सुन्दर चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) युद्ध में बढ़ा और लड़ने लगा, तब उसका तेज सूर्य के समान दिखाई दिया और उस समय वह वीरों के ताज के समान (शोभा बढ़ाने जैसा) भासित हुआ ।

चाहुआन कमधज्ज बर, मिले लोह-छुटि छोह ।
धार मुरै मुख ना मुरै, मरट मुच्छ-क्रत जोह ॥ १८८ ॥

शब्दार्थः—मिले=सामने होगये । लोह-छुटि=शस्त्र बरसाते हुए, चलाते हुए । छोह=उत्साह पूर्वक । धार-मुरै=शस्त्र धारा मुड़गई । मरट=बँट । मुच्छ-क्रत=मूँछों पर देते हुए । जोह=जो ।

अर्थः—चाहुवान [पृथ्वीराज] और कमधज (वीरचंद) दोनों श्रेष्ठ वीर थे वे मूंछों पर बल देकर एक दूसरे पर लोहा बरसाते हुए उत्साह पूर्वक सामने होगये । उनके आघात से शस्त्रों की धारें मुड़ गई, किन्तु उनके मुख युद्ध से नहीं मुड़े ।

चाहुआन कमधज्ज दुति, रति नाइक प्रति धीर ।
सारंगी सारंग बल, इह लग्गी अति बीर ॥ १८९ ॥

शब्दार्थः—रति नाइक=कामदेव । प्रति=प्रत्येक । सारंगी=धनुष धारी । सारंग-बल=धनुष के बल पर । इह=वे । लग्गी अति=लग गये, भिड़ गये ।

अर्थः—चाहुआन (पृथ्वीराज) और कमधज (वीरचंद) दोनों विशेष धीरवीर थे । और उनकी कान्ति रति-नायक (कामदेव) सी थी । वे धनुषधारी अपने २ धनुष के बल पर एक दूसरे से भिड़ गये ।

कहां पंच पंचौ बसत, कहां प्रकृति प्रति अंग ।
कहां हंस हंसह बसै, कौन करै रन जंग ॥ १९० ॥

शब्दार्थ:—कहां=कहां है । नहीं सा है । पंच=पंच तत्व मय शरीर । हंस=प्राण पखेरु, आत्मा ।

अर्थ:—पंच तत्व, प्रकृति और आत्मा अमिट होती हुई भी पंच तत्वों से बने शरीर में आत्मा नहीं दीख पड़ती है । उसी तरह युद्ध करने वाला कौन है । यह भी स्पष्ट नहीं कहा जा सकता । [अर्थात् शरीर प्रकृति और आत्मा का युद्ध से सम्बन्ध नहीं । कर्म ही सब कुछ करता कराता रहता है और कर्मानुसार करना चाहिये यह ईश्वरीय वाक्य माना गया है] ।

इह कहि कढ्ढिय सार कर, खोलि खग्ग दोउ पानि ।
मानहु मत्त अनंग द्वै, धृत छुट्टै जम जानि ॥ १६१ ॥

शब्दार्थ:—इह=ऐसा सार=लोहा, शस्त्र । खोलि=कसा खोलते हुए । धृत=धृति, पृथ्वी छुट्टै= छूट पड़े, टूट पड़े, जुट पड़े । जम=यम ।

अर्थ:—ऐसा कहकर पृथ्वीराज और वीरचन्द ने हाथों से तलवारों के कसे खोल शस्त्र गृहण किये । उस समय ऐसा दिखाई दिया मानों अनंग शरीर धारी दो मतवाले योद्धा यय-स्वरूप हो पृथ्वी पर भूमने लगे हों ।

विषम जग्य आरंभ, वेद प्रारंभ शस्त्र बल ।
है गै नर होमियै, शीश आहुत्ति सुस्ति[1] कल ॥
क्रोध कुंड विस्तरिय, कित्ति मंडप करि मंडिय ।
गिद्धि सिद्धि वेताल, पेखि पल साकृत छंडिय ॥
तुंबर सु नाग क्यंनर[2] सुत्रर[3], अच्छरि अच्छ-सु-गावहीं ।
मिलि दान अरस अप्पन जुगति, भुगति मुगति तत पावहीं ॥ १६२ ॥

ग्रा० पा० १, २ दे० । ३, पा० घ० ।

शब्दार्थ:—है=घोड़े । गै=हाथी । सुस्ति=स्वस्ति वाचन । गिद्धि=गिद्धिनि । सिद्धि=सिद्धनि, योगिनी । पल=मांस । साकृत=शाकल्य, हविर्द्रव्य । छंडिय=छोड़ा । क्यंनर=किन्नर । अच्छरि= अप्सरा । अच्छ-सु-गावहीं=अच्छा गान, मंगल पाठ । अरस=अस, प्राण । अप्पन=अर्पण, देना । भुगति=भक्ति । मुगति=मुक्ति । तत=तत्काल ।

अर्थ:—उस समय कठिन यज्ञ आरम्भ हुआ । शस्त्र द्वारा बल-प्रदर्शन ही वहां वेद-विधान था । हाथी, घोड़े और मनुष्य ही वहाँ होमे जारहे थे, सिर की आहुति के साथ

ही स्वस्ति वाचन होरहा था। क्रोध का ही वहाँ विस्तृत अग्नि कुंड था। कीर्ति का ही मण्डप तना हुआ था। गिद्धनि सिद्धनी (योगिनी) और वैताल वीर द्वारा आमिष फैंका जाना ही वहाँ पर शाकल्य (हविर्द्रव्य) था। तुम्बर, नाग, किन्नर और अप्सराओं का गान ही मंगल पाठ था, और वहाँ एकत्रित हुए वीर, मोक्ष-प्राप्ति के लिये अपने प्राणों का ही दान कर रहे थे, जिसके द्वारा भक्ति और मुक्ति को वे तत्काल प्राप्त करते थे।

दोहा

करि सुचार आचार सब, समद किति फल दीन।
गुरुजन मिसि करुना करिय, कायर हा हर कीन ॥ १६३ ॥

शब्दार्थ:—सुचार=सदाचार । आचार=आचरण, व्यवहार । समद=समुद, प्रसन्नता पूर्वक । किति=कीर्ति लता की फल स्वरूपा [शशिवृता] । दीन=दिया, ले जाने दी, रोक न की । मिसि=मिस ।

अर्थ:—जो कायर थे, वे गुरुजन होने का बहाना करके सदाचार को व्यवहार में लाते और दया बतलाते हुए हा शिव ! हा शिव !! कहकर प्रसन्नता पूर्वक कीर्ति-लता की फल स्वरूपा शशिव्रता को पृथ्वीराज द्वारा ले जाने में रोक नहीं की [वे युद्ध से हट गये]।

कवित्त

मिलि जद्दव कमधज्ज, अहिय[1]-व्यूहं आरंभिय।
पुच्छ सु लखि मनि बंधि[2], पांइ गुज्जर पारंभिय ॥
सुधर मांड वर बीर, पंग-बंधह रचि गढ्ढौ।
फन अप्पन भय पुंज, जीभ कूरंभ सु ठढ्ढौ ॥
हथनारि गोर[3]-जंबूर घन, दसन द्रढ्ढ द्रग मुख्ख करि।
मनि भयौ मेर मारूफ़खां, चच्चर सी चौरंग परि ॥ १६४ ॥

प्रा० पा० १ घ० । २ पा० । ३ पा० घ० ।

शब्दार्थ:—अहिय-व्यूहं=सर्प व्यूह । लखिमनि=लक्ष्मण । बंधि=हुआ । सुधर=श्रेष्ठ धड़ । पंग-बंधह=पंगुराज का भाई, कन्नोजेश्वर जयचन्द का भाई । गढ्ढौ=दृढ़ । ठढ्ढौ=खड़ा । हथनारि-गोर-जंबूर=तुपके और छोटी तोपें आदि । चच्चर=कपाल । सी=उन्होंने, या उस समय । चौरंग=चारों ओ से ।

अर्थः—यादव और कमधजों ने मिलकर पुनः अपनी सेना को सर्प-व्यूहाकार रचा, पूँछ के स्थान पर यादवराज कुमार लक्ष्मण हुआ, उदर के स्थान पर गुर्जरी वीर हुए, धड़ के स्थान पर वीरचंद दृढ़ता पूर्वक डट गया, फन के स्थान पर यादव पुंज हुआ, जिह्वा के स्थान पर यादवों और कमधजों का पक्षपाती कोई कूरम्भ वीर होगया, आग्नेयास्त्र और जंबूरे आदि चलाने वाले दृढ़ रद-पंक्ति हुए, दृग और मुख के स्थान पर नियुक्त हुए और मेरु तुल्य उन्नत मणि के स्थान पर मारुफखां हो गया। उस समय वीरों के कपाल पर चारों ओर से शस्त्र वर्षा होने लगी।

गाथा

सप्प[1] व्यूह आरंभो[2], प्रारंभो बीर भद्रायं।
जानिज्जे चवरंगं, चतुरंग[3] इक्क घंटायं॥ १६५॥

ग्रा० पा० १ पा० भीं०। २, ३ पा० घ०।

शब्दार्थः—सप्प व्यूह=सर्प व्यूह। चवरंगं=चोरंगी, हाथ पैर कटा हुआ मानव। चतुरंगं=चतुरंगिनी सेना। इक्क घंटायं=एक घड़ीतक।

अर्थः—सर्प-व्यूह की रचना क्या हुई मानों वीर भद्रगण द्वारा युद्धारंभ हुआ हो। उस समय एक घड़ी तक चतुरंगिनी सेना में अंग भंग के समान दृश्य उपस्थित हो गया।

दोहा

घटिय-घट्ट अघटन घटिय, पटिय[1] सार दुअ सैन।
पंगराइ बंध्यौ सु व्रत, किये रत्त बर नैन॥ १६६॥

ग्रा० पा० १ सं०।

शब्दार्थः—घटिय-घट्ट=नर शरीरों की संख्या में कमी होगई। अघटन=कूघटना। पटिय=पट गई। सार=लोहास्त्र। पंगराइ=कमधज, वीर चन्द (वंश सूचक शैली के अनुसार वीर चन्द को भी पंगुराय लिखा)। बंध्यौ=बांधा, ग्रहण किया। व्रत=प्रण, प्रतिज्ञा। रत्त-बर=रतंबर, अरुण वर्ण।

अर्थः—ऐसी कुघटना घटी कि नर-शरीरों की संख्या में कमी हो गई और शस्त्रों द्वारा दोनों सेनायें पट गई। उस समय कमधज वीर चंद ने अरुण वर्ण नैत्र करके शत्रु नाश की दृढ़ प्रतिज्ञा करली।

रत्ते नैन विखम्म गति, दावानल प्रथिराज ।
बीरचंद घन उन्नयौ, सार सु बुट्ठन आज ॥१६६॥

शब्दार्थ:—विखम्म=विषम । घन=बादल । उन्नयो=उमड़ा । बुट्ठन=बरसाने को ।

अर्थ:—उसी प्रकार दावानल-स्वरूपी पृथ्वीराज के भी अरुण वर्ण नैत्र थे, और भयंकर गति थी; किन्तु वीरचन्द सार-वृष्टि करने वाले बादल की तरह उसकी ओर झपट पड़ा ।

कवित्त

मोर व्यूह प्रथिराज, सथ्थ सज अप्पन कीनौ ।
चंचु-केश-मंडली, कन्ह चहुआन सु दीनौ ॥
पाइ पिंड-विधि-पंध, गरुअ गहिलोत बीर सजि ।
पुंच्छ राज रघुवंश, चरन पुंडिर चंद रजि ॥
दुहु लोह कढ्ढि परियार तें, सारधार भे[1] अब्ब[2] भर ॥
पल पंच तरंगनि रुक्कि जल, जांनि कमोदनि नंचि सर ॥१६८॥

प्रा० पा० १, सं० । २, पा० का० घ० ।

शब्दार्थ:—मोर=मयूर । चंचु-केश-मंडली=चोंच और उसके समीप के केश गुच्छ (कलंगी) । दीनौ=रूप दिया, नियुक्त किया । पाइ=पाया, देखा गया । पिंड-विधि-पंख=शरीर और पंख की तरह । परियार=प्रहार । सारधार=रक्त रंजित । भे=हुए । अब्ब=सब । तरंगिनि=नदी । नंचि= नाचते हों, तैरते हों । सर=सिर, मस्तक ।

अर्थ:—यह देख कर पृथ्वीराज ने भी अपने सब साथियों के साथ मयूरव्यूह की रचना की, जिसमें चोंच और कलंगी के स्थान पर कन्ह चाहुवान नियुक्त किया गया । शरीर और पक्ष के स्थान पर भारी वीर गुहिलोत, पूंछ के स्थान पर रघुवंशी राय (रामराय बड़ गुज्जर), और चरण के स्थान पर चंद पुंडीर सुशोभित हुआ । इस प्रकार स्थित होकर दोनों सेनाओं ने शस्त्र उठाकर प्रहार करना शुरु किया जिससे वीर रक्त रंजित हो गये । पांच पल तक रक्त की प्रवाहित नदी ने मृत शवों के कारण रुक कर तालाब का रूप धारण कर लिया । जिसमें तैरते हुए मुंड प्रफुल्लित कुमोदिनी से दिखाई दिये ।

दिखि वर लखिन्न फत्रज, चंपि चतुरंग रिंगावहु ।
अरि सयन्न संभार, धीर भंजै मग पावहु ॥

बहु गरिष्ट ता-रिष्ट, हक्कि अप्पन पर धावहिं।
सु बर सिंघ आलसैं, स्याल सूधौ करि ध्यावहिं॥
उट्ठै न बीर बीरह उठत, सुबर मंत फुनि फुनि करै।
बर सै न अंब सर मेघ कौ, जो न समर सरवर भरै॥१६६॥

शब्दार्थः—दिखि=देख कर। लखिन=लक्ष्मण। फव्वज=फौज, सेना। रिंगाहु=चला दो, हटा दो। अरि=अड़ कर। सयन्न=सेना। धीर=धैर्यवान। भंजे=नष्ट करने पर। गरिष्ट=कठोर। ता-रिष्ट=उनकी रीठ, उनके आघात। हक्कि=बढ़कर। आलसैं=आलस्य युक्त होने पर। स्याल=सियाल, गीदड़। सूधो=सरल। करि=मान कर। ध्यावहि=धाते, बढ़ते। उट्ठै न=नहीं उठते, नहीं बढ़ते। उठत=उठने पर, बढ़ने पर। फुनि फुनि=पुनः २, बार २। अंब=जल। सर=बाण।

अर्थः—इस प्रकार सेना को व्यूह-बद्ध देख कर यादव कुमार लक्ष्मण बोला, यदि आगे बढ़ना है तो शत्रु सेना को दबा कर हटा दो और अड़ कर अपनी सेना को संभालते हुए धैर्यवान शत्रुओं को मार दो तब ही रास्ता पा सकोगे। विपत्तियों के आघात अति कठोर हैं जिनके द्वारा वे अपनी ओर इस प्रकार बढ़ते ही आते हैं जैसे आलस्य युक्त सिंह को सरल मान कर गीदड़ बढ़ते ही जाते हैं। इस प्रकार वीरों के बढ़ने पर भी जो वीर नहीं बढ़ता और बार २ मंत्रणा करता हैं, वह वीर मेघ तुल्य कैसे कहा जा सकेगा, जो जल वृष्टि तुल्य बाण वृष्टि कर युद्ध रूपी सरोवर को परिपूर्ण नहीं करता है।

गाथा

समर सु मथ्यौ सेनं, तारं झंकार बीर भद्रायं।
केवल गति कल-रूपं, भूपं[1] बीर जुद्धयो समरं॥ २००॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—समर=युद्ध में। मथ्यौ=मंथन हुआ। केलव गति=कैवल्य गति। कल-रूपं=सुन्दर रूप से। भूपं=राजा [पृथ्वीराज]। बीर=वीर चन्द। जुद्धयो=युद्ध छेड़ा, जुटे। समरं=युद्ध में।

अर्थः—युद्ध में सेना का विनाश होने लगा, वीरभद्र की तंत्री के तार झंकृत होने लगे, जिस समय राजा पृथ्वीराज और वीर चन्द युद्ध भूमि में जुटे उस समय वीरों को सुन्दर रूप से कैवल्य-गति प्राप्त होने लगी।

दोहा

समर-जुद्ध मच्चिय समर, हालाहल बर मत्ति ।
कोलाहल पंखिनि कियौ, कामरूपबर जत्ति[1]।। २०१ ।।

ग्रा० पा० १ सं० ।

शब्दार्थः—समर-जुद्ध=युद्ध में जुटने पर । मच्चिय=छा गई । समर=समरांगण में । मत्ति=मस्ती । पंखिनि=गिद्धनियें या डाइनी । कामरूप=काम देव स्वरूप, या कांगरु देवी । बर जत्ति=बरजने लगी, निषेध करने लगी ।

अर्थः—उनके युद्ध में भूझने पर समरांगण में हलाहल और मस्ती छागई । गिद्ध-नियाँ शोर गुल मचाती हुई कामदेव स्वरूपी वीरों (पृथ्वीराज और वीरचन्द) को युद्ध करने से इन्कार करने लगी (कहने लगी कि ऐसी सुन्दर काया को इस प्रकार काट मारकर के नष्ट मत करो या कामरूप "कामरु प्रदेश की डाइनियाँ वहाँ जितनी थी वे सब युद्ध की भयानक स्थिति को देखती हुई कोलाहल करने लगी) ।

गाथा

उट्ठहि एक प्रमानों, धावंताय पंचयौ सयनं ।
वाहंतं वर लोहं, सा-दूनं[1] दिख्खए[2] वीरं ।। २०२ ।।

ग्रा० पा० १, का० भीं० । २, पा० ।

शब्दार्थः—उट्ठहि=खड़े होते । धावंताय=बढ़ते हुए । सयनं=सेना में । सा-दूनं=उससे दूने, दस ।

अर्थः—उस समय युद्धार्थ खड़ा वीर एक, बढ़ते समय पांच और शस्त्र चलाता हुआ उससे द्विगुण [दस] दिखाई देता था ।

रुधिरं-पत्रत सतयौ, दो मझ्झ काय हक्कयौ सिरयं ।
अति गति दुष्ट प्रकार, अगिनत होंइ बीर सम सेनं ।। २०३ ।।

शब्दार्थः—रुधिरं-पत्रत=रक्तपात होने पर । सतयौ=शत, सौ । दो-मझ्झ=दोनों सेनाओं में । काय=वीर काय । हक्कयो-सिरयं=ऊपर बढे । अगिनत=अगणित ।

अर्थः—दोनों सेनाओं में रक्तपात होने से वही एक २ वीर सौ वीरों के समान होकर इस प्रकार आगे बढता था जैसे दुष्ट दूसरों को कष्ट पहुँचाने के लिये अनेक रूप धारण करता है । इस वातावरण से सेना में अनेकों वीर ही वीर दिखाई देने लगे ।

अगनित गने न जानं, इक्को इक्कोपि रुद्धयो सहसं ।
बर बीरा रसु भट्टं, दावानलं पंगयो वीरं ॥ २०४ ॥

शब्दार्थः—गने न जानं=पार नहीं पा सकते । इक्को इक्कोपि=एक एक । पंगयौ-बीरं=कमधज वीरचन्द ।

अर्थः— जिनका पार नहीं पा सकते ऐसे वे एक २ वीर सहस्त्रों शत्रुओं को रोंधने के लिये अगणित वीरों तुल्य थे, जो श्रेष्ठ वीररस से ओत-प्रोत थे, उनका शोषण करने के लिये कमधज वीरचंद उस समय दावानल-तुल्य दिखाई दिया ।

दोहा

तव चहुआन सु कंन्ह वर, ठढ्ढौ करि गुरुराज ।
हुकम नृपति छुट्टौति इम, जनु तीतर पर बाज ॥ २०५ ॥

शब्दार्थः—तव=तब । ठढ्ढौकरि=खड़ा किया । गुरुराज=राजाओं का गुरु-तुल्य पृथ्वीराज । हुकम=हुक्म, आज्ञा । छुट्टौति=टूट पड़ा ।

अर्थः— तब श्रेष्ठ कन्ह चाहुवान को राजगुरु (राजाओं के गुरु तुल्य पृथ्वीराज) ने युद्धार्थ खड़ा किया, राजा (पृथ्वीराज की आज्ञा पाते ही वह कंन्ह) विपक्षियों पर इस प्रकार टूट पड़ा, जिस प्रकार तीतर पर बाज पक्षी झपटता है ।

कवित्त

मुख छुट्टत नृप बैन, नैन दिठ्ठौ धावंतो ।
क्रंम बंध बल मोह, छोह बंध्यौ सु बरत्तौ ॥
सुबर सेन चहुआन, सिंग जद्दू न नवाई ।
जनु मंदिर बियबार, ढक्कि[1] इकबार बनाई ॥
तकसीर करन दोउ अंस बर, क्रित्ति मग्ग करतव्य कर ।
अथवंत रविह आदित्य दिन, अगनि सार बुट्ठिय[2] कहर ॥ २०६ ॥

ग्रा० पा० १ घ० । २ का० पा० भीं ।

शब्दार्थः—धावंतो=बढ़ता हुआ । क्रंम बंध=कम बद्ध । बल=सैन्य शक्ति । छोह=उत्साह । बरत्तौ=बलता, जलता, प्रज्ज्वलित । सिंग=शृंग, सिर । जद्दून=यादवों के । मंदिर=मदिराचल । सुबर सेन=सेना में सबल योद्धा । जद्दू=यादव । न-नवाई=नहीं नमाया ।

त्रिय वार=उस समय। ढक्कि=ढ़केलाता हुआ, धकेलता हुआ। इक=एक दूसरे को। बार=बारु, बालू, रेत, धूलि। बनाई=बनाते, बनाना चाहते। तकसीर=अपराध, दूषित कर्म। कित्ति=कीर्ति। अथवंत=अस्त होने पर। अगिनि सार=लोहाग्नी। बुट्ठिय=बरसादी। विघ्नप्रद, भयानक।

अर्थः—राजा के मुख से आज्ञा प्राप्त करते ही वह आगे बढ़ता हुआ दिखाई दिया और सैन्य-शक्ति को व्यवस्थित (क्रम बद्ध) किया। उत्साह और उमंग में भर कर वह शत्रुओं पर क्रुद्ध हो उठा। जैसा चहुआन कन्ह सेना में सबल योद्धा था वैसा ही लड़ाका यादव (लक्ष्मण या पुंज) था। दोनों ने परस्पर किसी के सामने सिर नही झुकाया। वे दोनों उस समय मंदराचल पर्वत के समान उन्नत दिखाई देते थे। एक दूसरे को धक्का देकर वे धूल में मिलाना चाहते थे। इस प्रकार दोनों वीर दूषित वृत्ति लिये हुए श्रेष्ठ अंस धारी थे। वे केवल अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये कीर्ति-मार्ग पर चलकर आदित्यवार के दिन सूर्यास्त के समय विघ्न प्रद शस्त्राग्नि बरसाने लगे (प्रहार करने लगे)।

गाथा

मुख छुट्टा नृप वैनं, कै दिठ्ठाय धावता नैनं।
बज्जी-बाहु सु वारं, धारं ढारि मत्तयौ धरयं॥ २०७॥

शब्दार्थः—कै=उसी समय। बज्जी—बाहु=वज्र तुल्य भुजा वाला। वारं=वार, प्रहार। धारं=धारा, खड्ग। मत्तयौं=मतवाले हाथी।

अर्थः—राजा के मुख से आज्ञा होते ही कन्ह झपटता हुआ दिखाई दिया और उसके वज्र-बाहु के खड्गाघात से कितने ही मतवाले हाथी ज़मीन पर लुढ़कने लगे।

दोहा

मत्त ढरहि संमुख भिरहि, स्वामि-सनाह स-सूर।
आज मुख्य चहुआन कन्ह, सिंधु सत्त कौ नूर॥ २०८॥

शब्दार्थः—ढरहि=लुढकते। स्वामि—सनाह=स्वामी का कवच [तनत्रांन] स्वरूपी। स—सूर=वह वीर। सिन्धु—सत्त=सातों सिंन्धु [सप्तसिंधु से परिवेष्टित पृथ्वी]। नूर=तेज।

अर्थः—वह स्वामी का तनत्रान स्वरूपी वीर (कन्ह) जब शत्रुओं का सामना करके लड़ने लगा तब मतवाले हाथी लुढ़कने लगे। और सब यही कहने लगे कि

आज के समय में प्रमुख वीर कन्ह चाहुआन ही सातों समुद्रों से परिवेष्ठित पृथ्वी का वास्तव में नूर (तेज) स्वरूपी है।

गाथा

सत्तं सिंधुन[१] नूरं, कारुरं करनयो नथ्थी।
एको अंग सुरंगो, दिक्खेवा बीरयं बीरं ॥२०९॥

ग्रा० पा० १, घ० पा०।

शब्दार्थ:—कारूरं=करूर, क्रूर, भयानक। करनयो=करण। नथ्थी=नहीं। सुरंगों=सुन्दर। दिख्खेवा=देखा गया। बीरयं बीरं=श्रेष्ठ वीर।

अर्थ:—कन्ह सातों समुद्रों से परिवेष्टित पृथ्वी का तेज स्वरूपी था। उसके समान क्रूर (भयानक) योद्धा कर्ण भी नहीं कहा जा सकता। वह एक ही श्रेष्ठ वीर था, जो सब में सुन्दर दीखता था।

धनयं लच्छि-नरिंदं, तिहि-सज्जीय[१] सायरो नथ्थी।
कलहंतं बल विषमं, जुखमं-देहीय लज्जनौ[२] सूरं ॥२१०॥

ग्रा० पा० १, भीं। २, सर्वप्रति।

शब्दार्थ—धनयं=धन्य है। लच्छि—नरिंदं=यादव वीर लक्ष्मण। तिहि-सज्जीय=उसकी सजाई, (उफान)। सायरो=समुद्र। नथ्थी=नहीं। कलहंतं=कलहान्त, युद्धान्तर। जुखमं—देहीय=यक्ष शरीर धारी। लज्जनौ=लज्जित होते। सूरं=वीर।

अर्थ:—किन्तु धन्य है लक्ष्मण यादव को उसकी सज्जाई (उफान) की तुलना समुद्र भी नहीं कर पाता। युद्ध में उसका बल विषम था, जिसके समक्ष यक्ष देह-धारी वीर भी लज्जित होते थे।

कड्ढे लोह दुहथ्थं, सत्तं घरियाय बज्जयौ अंगं।
चावदिसि चतुरंगी, अनुरंगी सेन सब्बाई ॥ २११ ॥

ग्रा० पा० १, सर्वप्रति।

शब्दार्थ:—दुहत्थ=दोनों हाथों से। सतं घरियाय=सात घड़ी बजने पर। बज्जयौ-अंगं=बज्रांगी, समस्त।

अर्थः—उस बज्रांग धारी वीर (लक्ष्मण) ने जब सायंकाल की सात घड़ी बजी, तब अपने दोनों हाथों से लोहा (खड्ग) निकाला, यह देखकर चारों ओर समस्त चतुरंगिनी सेना प्रसन्न होगई।

दोहा

अनुरंगी सेना सकल, सद्द सुरद्ध विरुद्ध।
अबुध बुद्ध भारथ्थ में, दान मान सु प्रबुद्ध[1] ॥ २१२ ॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—सद्द=शब्द। सुरद्ध=सूर वीर, सारद्ध, शस्त्रधारी। अबुद्ध=जड़, मूढ। भारथ्थ में=युद्ध में। प्रबुद्ध=प्रबुद्ध, दक्ष।

अर्थः—सब सेना प्रसन्न दिखाई दी और एक वीर दूसरे वीर के विरुद्ध शब्द कहने लगा जिससे वे वीर दान और सम्मान में दक्ष और विवेकी होते हुए भी उस समय युद्ध में जड़वत (ज्ञान रहित) दिखाई देते थे।

गाथा

बर अथवंत सु दीहं, झुमझं विन जोतयं-कलयं।
घरि घट अघट नरिंद्रं, सा बुद्धं बीर भद्रायं ॥ २१३ ॥

शब्दार्थः—झुमझं=जूझे, लड़े। विन=वे। जोतयं-कलयं=सुन्दर ज्योति धारी। घरि=घड़े, शस्त्राघात करके। घट=शरीर। अघट=बुरा ढंग दे दिया, अस्त व्यस्त कर दिये। बुद्धं=बुद्ध, दक्ष, (रण दक्ष)।

अर्थः—सायंकाल होने पर सुन्दर ज्योति (तेज) धारी योद्धा लड़ने लगे, उनमें से जिन राजवंशियों ने विपक्षियों के शरीर को शस्त्राघात द्वारा अस्त व्यस्त कर दिया, वे ही रण-दक्ष योद्धा वीरभद्र गण के समान कहे गये।

को दिट्ठौ समबीरं, सा मंतं स्वामयो कृतयं।
इक्कं करन प्रमानं, अंगद कामेय रावनो भिरयं ॥ २१४ ॥

शब्दार्थः—को=कौन। सम्बीरं=समान वीर। सा-मंतं=वैसे मतवाले। स्वामयो=स्वामी के। कृतयं=कार्य के लिए। करन=कर्ण। अंगद-कामेय=अंगद तुल्य कार्य करने वाला। रावनो=रावण से।

अर्थः—उन (लक्ष्मण यादव और कन्ह चाहुवान के समान स्वामी के कार्य के लिये लड़ने वाले कोन मतवाले योद्धा हो सकते हैं ? उन दोनों में से एक (यादव लक्ष्मण) कर्ण और दूसरा (कन्ह चाहुवान) रावण से लड़ने वाला अंगद के तुल्य था।

कवित्त

बर अथवंत सु दीह, झुम्भिझ लक्खिन[1] जद्दव भर।
लोह धार लगि विषम, ईस लीनौं जु शीश कर॥
रह्यौ न तन-दभ्भझन सु, मंस पलचर नन खाइय।
अस्त्र[2] शस्त्र पक्खर पलान, टूक[3] ढुढँत नन पाइय॥
वरि लियन बीर अंतर मिल्यौ, अच्छर-सुच्छर ना लियौ।
मिलि गय सु भान सुत भान कौ, दिव दुंदभि बज्जत बियौ॥ २१५॥

ग्रा० पा० १, ३, का० घ०। २ पा० का० घ०।

शब्दार्थः—अथवंत=अस्त होते। लक्खिन=लक्ष्मण। तन-दभ्भझन=दाध संस्कार के लिये। नन=नहीं। पलान=जीन। टूक=टुकड़े। अंतर=अंतरात्मा, आत्मा रूप में। अच्छर-सुच्छर=अप्सरा-वप्सरा [मुहावरे के रूप में]। भान=सूर्य मण्डल में। बियौ=वह।

अर्थः—दिन अस्त होने पर वीर लक्ष्मण यादव जूझ पड़ा। उसके शरीर पर भयंकर रूप से शस्त्र-धारें पड़ी जिससे उसके सिर को शिव ने हाथ में उठा लिया। उसका शरीर इस प्रकार टुकड़े २ होगया कि दग्ध संस्कार के लिये और मांस भक्षी जानवरों के लिये आमिष का एक भी टुकड़ा नहीं मिला। उसके शस्त्रास्त्र और घोड़े की जीन पाखर के टुकड़े खोजने पर भी नहीं मिले। उसे वरण करने के लिये आई हुई अप्सराओं को भी वह वीर, आत्मा रूप में ही दिखाई दिया। भानराय यादव का वह पुत्र स्वर्ग में दुंदुभि बजवाता हुआ सूर्य मण्डल में जा मिला।

अगनि झार धर—धार, सार—वज्जी प्रहार अरि[1]।
कंक दिष्ट मिघा सु रारि, जानि[2] भग्गौन लगं भरि॥
शस्त्र घात आघात, बथ्थ अनबथ्थ सु लग्गा।
सुरतु-राति रति सेज[3], मिले-दूती मन भग्गा॥
भिरदार सैन नृप द्वै करिय, दोउ घाव घन घुम्मि घट।
उबर्यौ कंन्ह प्रथिराज क्रम, झुम्भिझ पुंज वंध्यौ सुभट॥२१६॥

ग्रा० पा० १ सं०। २ पा० का० भीं०। ३ का० घ०।

शब्दार्थः–धर-धार=खड्ग को धारण कर। सार-वज्जी=वज्रास्त्र। अरि=अड़ कर। कंक=युद्ध। दिट्ठ=देखे गये। रारि=झगड़ा। भग्गोन=भगर खेल, बनावटी मारकाट बताया जाने वाला इन्द्रजालिक खेल, भाग दौड़ का खेल। लगं मरि=रचकर भिड़ने लगे हों। बथ्थ=बाहुपाश में पकड़ना। अन बत्थ=छूट जाना। सुरतु-राति=सुरति की रात्रि। सेज=शैया। मिले-दूती=नायक के दूती से मिलने पर, दूती से नायक का संयोग होता देखकर। मन-मग्गा=मनो मालिन्य होगया। सिरदार सैन=सेना नायक। करिय=करि, हाथी। उब्बर्‌यौ=बचगया। क्रम=भाग्य।

अर्थः—वीरों ने डटकर अग्नि-ज्वाला के तुल्य खड्ग धारणकर वज्रास्त्र के तुल्य प्रहार किया। उस समय युद्ध में झगड़ते हुए वीर, सिंह के समान दिखाई दे रहे थे, या उन्होंने भगगल खेल [इन्द्रजालिक या भाग दौड़ के खेल] की रचना की हो, ऐसा आभास होता था। शस्त्राघात करते हुए वे वीर इस प्रकार एक दूसरे को पकड़ते और छूट जाते थे। मानो दूतो से नायक का संयोग होता देखकर नायिका सु-रति की रात्रि में मनो मालिन्य कर बैठी हो। उस युद्ध में दोनों सेनाओं के सेना नायक [कन्ह चाहुवान और पुंजराज यादव] करि-स्वरूप थे। उन दोनों के शरीर गहरे घावों के लगने से झूमने लग गये थे। उनमें से पृथ्वीराज के भाग्य से कन्ह बच-गया लेकिन युद्ध करके सामन्तों ने पुंजराज यादव को पकड़कर बांध लिया।

कवित्त

जीति लियौ जैपत्त[1], चारु चतुरंग स मोरी।
बर बंध्यौ त्रप पुंज, ढाल-जद्दव ढंढ़ोरी॥
बर लच्छिन परि खेत, कंन्ह चहुआन उपारिय।
खेत ढूंढि प्रथिराज, सुभ्रत झोरी करि डारिय॥
इतने सु भान अस्तमित भये, दऊ सेन बर उत्तारिय।
मुक्की न बग्ग कम धज्ज की, रोस-राह विस-रन भरिय॥ २१७॥

ग्रा० पा० १ का० पा० भीं०।

शब्दार्थः–जै पत्त=जय-पत्र। मोरी=मरोड़दी, पीछे हटा दी। ढाल-जद्दव=यादवों के ढाल स्वरूपी वीर, या ढलैत वीर। ढंढोरी=टटोल लिये परख लिये। लच्छिन=लक्ष्मण। खेत=रण क्षेत्र। उपारियि=उठाया गया। ढूंढि=खोज करके। सुभ्रत=श्रेष्ठ सेवक, योद्धा। झोरी=झोली।

डारिय=उठाये। भान=भानु, सूर्य। अस्तमित भये=अस्तहुआ। उत्तरिय=उतरपड़ी। मुक्की-न-वग्ग=मस्ती नहीं छोड़ी, मस्ती नहीं मिटी। रोस-राह=क्रोध के कारण। त्रिस-रन=युद्ध विष, कलह-विष। भरिय=भरगया, छा गया।

अर्थः—उत्तम चतुरंगिनी सेना को पीछे हटा और विजय प्राप्त कर चाहुवान राजा ने (यादवों से) जय-पत्र प्राप्त किया और श्रेष्ठ पुंजराज को बांध लिया, तथा यादवों के ढाल-स्वरूपी वीरों को जांच (परख) लिया। इस युद्ध में यादव-कुमार लक्ष्मण रण क्षेत्र में धराशाई हुआ और कन्ह चाहुवान घायल अवस्था में उठाया गया। रण क्षेत्र में खोज कर अन्य घायल योद्धाओं को भी झाली में डालकर उठाया गया। इतने में सूर्यास्त होगया, फिरभी दोनों सेनायें (चाहुवान और कमधज की) उतर पड़ी, कारण कि कमधज वीरचन्द की मस्ती नहीं मिटी थी, उसमें क्रोध के कारण कलह-विष छाया हुआ था।

बजी संझ घरियार, सार बज्यौ तन झंझर।
जनु कि बज्जि झननंक, ठनकि घन टोप सउ-व्वर[१]॥
अनिल अग्गि सम जग्गि, जेन धज वंधि सुलग्गा।
मनु द्रप्पन सें बैठि, नेत वडवानल जग्गा॥
घन स्यांम सेत[२] रत रंग बर, त्रिविध बीर गुन बर भरिय।
हर हार गंठि रुट्ठी उमां, किम उतारि पच्छो धरिय॥ २१८॥

ग्रा० पा० १, टि० १, । २, सं०।

शब्दार्थः—संझ=सांझ, सायंकाल। झंझर=जर्जरित, अस्त व्यस्त। सउ-व्वर=वह श्रेष्ठ। अनिल=पवन। अग्गि=अग्नि। जेन=जिस प्रकार। धज=ध्वजा। बंधि=वृद्धि, बढ़ने, फैलने। लग्गा=लगी। मनु=मन। द्रप्पन=दर्प। बैठि=गर्क होकर। नेत=नेता, प्रमुख वीर। घन=विशेष। सेत=श्वेत। रत=रक्तवर्ण, अरुण। हर-हार=शिव के लिये हार, [मुंडमाला]। गंठि=जोड़कर, गूंथकर, पिरोकर। रुट्ठी=रूठ गई, रुष्ट होगई। पच्छो=पीछा, पुनः।

अर्थः—ज्योंही सायकाल की घड़ी बजी, त्योंही लोहा बजने लगा और वीरों के शरीर अस्त व्यस्त होगये। श्रेष्ठ शिर-स्त्राण इस प्रकार विशेष ठन ठनाने (बजने) लगे मानों वज्रपात की झनझनाहट हुई हो। पवन के संसर्ग से प्रज्ज्वलित अग्नि-ज्वाला के

समान ध्वजायें फहरने लगी। वीरों के मन दर्प में गर्क हो गये, जिससे वीर वाड़वा-ग्नि तुल्य जागृत हो उठे। उस समय वीरचंद कम धज (ईर्षा के कारण) विशेष काला पड़ गया तथा क्षण में वह [दुःख के कारण] श्वेत और क्षण में [क्रोध के कारण] अरुण वर्ण दिखाई दिया। जिससे वह त्रिगुण (कालापन तमोगुण, श्वेत-पन सत्वगुण, और अरुण रजोगुण) से भरा हुआ भासित हुआ। उसी समय पार्वती द्वारा शिव के लिये जो मुंडहार (मुंडमाला) गुंफित था, उसे शिव ने पुनः [युद्ध छिड़ने से नूतन मुंडमाला की आशा में] उतार दिया। जिससे पार्वती रुष्ट हो गई [अपने द्वारा गुंफित मुंडमाला को उतार देने से अपना अपमान समझा]।

दोहा

परि पथ्थर सथ्थर सुरन, गनक गनें नहिं जाइ।
हत्थ तीन लुत्थह चढी, मुरवी मद्ध न माइ ॥ २१६ ॥

शब्दार्थ:—पथ्थर=प्रस्तर, फेलकर। सथ्थर=उस स्थल पर। गनक=गणिक। गनें नहिं जाइ=गिनती नहीं हो सकती। लुत्थह=लोथें। चढी=उपर तले हो गई। मुरवी=मुरवी, पृथ्वी। माइ=समा सकी।

अर्थ:—उस युद्ध स्थल में मृत-शव प्रस्तर (फैल) कर पड़ गये, जिनकी गिनती गणिक से नहीं हो सकती। वे मृत-शव इतने थे कि तीन २ हाथ उपर लोथें लग गई जो उस रण भूमि में नहीं समा सकी।

संझ सपत्तो न्रपति बर, नव-नव-रस अरपंत।
बर पृथिराज नरिंद दुति, सो ओपम कवि कंत ॥ २२० ॥

शब्दार्थ:—सपत्ते=हुँपचा। नव-नव-रस=नव ही रस, नूतन प्रेम। अरपंत=अर्पित करता, छाता। दुति=प्रतिमा। कंत=कांता।

अर्थ:—सांझ पड़ने पर श्रेष्ठ राजा पृथ्वीराज नवरस (नूतन प्रेम या भिन्न २ में नवों रस) अर्पित करता हुआ (छाता हुआ) कान्ता (शशिव्रता) के समीप (वितानमें) पहुँचा। उस समय उसकी प्रतिभा को सोचकर वह (नव रस दायक होने से) कान्ता के समीप कवि-स्वरूप था।

कवित्त

घरिय तीन निसि गइय, बार बर-सुक सु आगम।
पंति परी अरि जूह, बीर विंझौ अरि जागम ॥

कोट खलन सोभै विसाल, साम-सामंत[1] सूर थँभ ।
जस देवल उप्पनौ, बीय-गय गिरी सेत रँभ ॥
प्रथिराज देव—दानव—दलन, लच्छि रूप जद्दव कुँअरि ।
नव रस विलास पूजा करहि, बर-अच्छरि भइ पहुप-सरि ॥ २२१ ॥

ग्रा० पा० १ भीं० पा० का० ।

शब्दार्थः—बार=समय । बर सुक्र=श्रेष्ठ गृह शुक्र, मीन राशि का (उच्च) शुक्र । पंति=पंक्ति । अरि-जूह=शत्रु समूह । बीर-विंथ्यौ-अरि=भिड़ने पर वीरों द्वारा घेरा गया । आगम=जगह,स्थल । कोट=दिवाल । खलन=शत्रु । साम-सामंत=स्वामी धर्म के धारण कर्ता सामंत । सूर=बहादुर । थँभ=स्तंभ । जस=यश । देवल=देवालय । उप्पनौ=उत्पन्न हुआ, बना । बीय-गय=दो हाथी । सेत=श्वेत । रँभ=रंभा, अप्सरा । देव-दानव-दलन=दानवारि (विष्णु) । बर-अच्छरि=वर कर अप्सरायें, मृत वीरों को वरण की हुई अप्सरायें । पहुप-सरि=पुष्पों की लड़ी, पुष्प माला ।

अर्थः—तीन घड़ी रात्रि जाने के बाद पृथ्वीराज के उच्च शुक्र ग्रह का आगमन हुआ (या श्रेष्ठ शुक्रवार के आगमन की तीन घड़ी रात्रि जा चुकी थी)। उसी समय अरि समूह धराशायी हुआ, फिर भी वीरों द्वारा घेरा जाना पुनः (युद्ध) स्थल बन गया। वहाँ शेष शत्रु ही बुलंद दिवाल, स्वामि-धर्म के धारण कर्ता बहादुर सामत ही स्तंभ, यश ही दो श्वेत वर्ण (पाषाणके) हाथी, गिरि और अप्सराओं की प्रतिमाओं से युक्त देवालय पृथ्वीराज ही दानवारि देव (विष्णु), यादव कुमारी ही लक्ष्मी और मृत वीरों को वरण कर अप्सरायें ही वहाँ पुष्प मालायें बनगई एवं नव रस ही वहाँ पर सविलास पूजा करने लगा ।

भान कुँअरि शशिवृत्त, नैन श्रृंगार सु राज ।
बीर रूप सामत, रुद्र प्रथिराज बिराजै ॥
चंद अदभ्भुत जानि, भए कातर करुना मय ।
बिभछ्छ अरिन संमूह, सांत[1] उप्पनौ मरन भय ॥
उप्पज्यौ हास अपछरि[1] अमर, भौ भयान भावी बिगति ।
कमधज्ज[2] राव प्रथिराज बर, लरन लोह[3] चिंतेति[3] रति[4] ॥ २२२ ॥

ग्रा० पा० १, ३, ४, पा० भीं० । २ संशोधित ।

शब्दार्थ:—रुद्र=रौद्र। चन्द=कविचंद। अदम्भुत=अद्भूत। कातर=कायर। विभछ=बीभत्स। उप्पनौ=उत्पन्न हुआ। मरन-भय=जिनकी मृत्यु हो गई उनमें। हास=हास्य। अपछरि=अप्सरायें। अमर=देवता। भो=भया, हुआ। भयान=भयानक। भावी-विगति=भविष्य को सोचने पर। कमधज्जराय=वीरचंद कमधज्ज। लरन-लोह=लड़ने को लोहा। चिंते=चिंतन किया, चाहा। रति=रात्रि।

अर्थ:—जब वीरचंद कमधज्ज और श्रेष्ठ वीर पृथ्वीराज ने रात्रि में भी लोहा लेना चाहा, तब भानुराय (भानुराय के छोटे भाई पुंज) की कुमारी शशिव्रता के नैत्रों में शृंगार, सामंतों में (वीर रस) शौर्य, पृथ्वीराज में रौद्र, कविचंद में अद्भुत, कायरों में करुणा, शत्रु समूह में बीभत्स, मृत-वीरों में शांत, अप्सराओं में हास्य, और (हिन्दुओं के) भविष्य को सोचते हुए देवताओं में भयानक रस छागया।

कहै राम रघुबंस, सुनौ सामंत सूर तुम।
अमर नर न बंछहि सु, जुद्ध किन कथ्थ नरिंद भ्रम॥
धार तिथ्थ वर आदि, तिथ्थ काशी सम भज्जै।
असि-वरुना तिन मध्य, लोह तेजं सम गज्जै॥
सिव सिद्ध जोग सज्जै सकल, अकल अपूरव वत्त इह।
लभ्भयौ न बीर जिन ब्रह्म पद, छिनक मद्धि गति लभ्भि इह॥ २२३॥

शब्दार्थ:—बंछहि=समझना। किन=किसने। धार-तिथ्थ=धारा तीर्थ। भज्जै=कहा जाता। असि-वरुना=गंगा का असिघाट। लोह-तेजं=तेज लोहा, तेज तलवार। गज्जै=गाई जाती, कही जाती। सिव=शिव, कल्याण। सिद्ध=सिद्धी, अर्थ। जोग=योग, योग्य। सज्जै=साधन करते, सजाई करते। अकल=अज्ञात। लभ्भ्यौ=प्राप्त किया। इह=यहाँ।

अर्थ:—उस समय रघुवंशी रामराय कहने लगा:—हे बहादुर सामंतों! सुनो, मानव शरीर को अमर नहीं समझना चाहिये। कोई २ भ्रम में पड़ा हुआ वीर-क्रीड़ा को युद्ध कहता है। वास्तव में धारा-तीर्थ (खड्ग धार द्वारा कट पड़ना) आदि-तीर्थ-काशी तुल्य कहा गया है। यहाँ पर तेज (पानीदार) तलवार ही सजल-असि-घाट है, वहाँ शिव से सिद्धि प्राप्ति के लिये योगी योग साधन करते हैं; तो यहाँ कल्याणार्थ (मोक्ष प्राप्ति के लिये) सब योग्य वीर रण के लिए सजाई करते हैं किन्तु दोनों के अंतर में एक अज्ञात और अपूर्व बात यह है कि काशी में बस कर जो वीर ब्रह्मपद को प्राप्त न कर सका वह इस धारा-तीर्थ द्वारा क्षणमात्र में मोक्ष प्राप्ति कर लेता है।

पढि सु मंत्र गुरराम, विष्णु-पंजर सनाह दिय ।
केस—कंस—मरदन्न, नंद नंदन लिलाट किय ॥
भोंह भुअद्धर धरि समूह, नैन निज्जिय नाराइन ।
बदन दिद्ध श्री कृष्ण, हृदय थप्पौ मथुराइन ॥
कटि जंघ गुविंद रच्छा करन, चरन थप्पि असरन सरन ।
गुर इष्ट समरि प्रथिराज कौ, इह सुदिद्ध रच्छा करन ॥ २२४ ॥

शब्दार्थ:—गुरराम=गुरुराम पुरोहित। विष्णु-पंजर=एक स्तोत्र जिसके पढ़ने से रक्षा की संभावना है। सनाह=उस स्तोत्र स्वरूपी कवच । दिय=दिया, दीक्षित किया । भुअद्धर=पृथ्वीको धारण कर्ता, शेषनाग । समूह=सामने । निज्जिय=निज, अपने । बदन=मुख । दिद्ध=दिया, बताया । थप्पौ=स्थापित किया । मथुराइन=मथुरेश । गुविंद=गोविन्द । गुर=गुरु । समरि=स्मरण करके ।

अर्थ:—उसी समय पुरोहित गुरुराम ने विष्णु पंजर (मंत्रित) कवच से राजा को सुशोभित किया । जिसमें केश-रक्षक कंसारि, ललाट रक्षक नंद नंदन, भोंहों का रक्षक शेषनाग, नैत्रों का रक्षक नारायण, मुख का रक्षक श्री कृष्ण, हृदय का रक्षक मथुरेश, कटि और जंघाओं का रक्षक गोविन्द और चरणों का रक्षक अशरणों का शरण दाता (प्रभू) को बताता हुआ, इष्ट का स्मरण कर गुरु ने पृथ्वीराज को उसकी रक्षार्थ विष्णु पंजर मंत्र से दीक्षित किया ।

दोहा

सा पंजर दिय राजबर, सस्त्र लगै नहिं चाइ ।
कोटि अंग घावह घने, भुज प्रमान सो पाइ ॥ २२५ ॥

शब्दार्थ:—सा=वह । पंजर=विष्णु पंजर । चाइ=चाह, इच्छा करके । कोटि=करोड़ों [शत्रु]। घावह=आघात । पाइ=पाया, माना गया ।

अर्थ:—श्रेष्ठ राजा (पृथ्वीराज) को ऐसे विष्णु पंजर मंत्र से दीक्षित किया, जिसके कारण इच्छा करके (खूब लक्ष करके) चलाया हुआ शस्त्र भी उसको नहीं छू पाता । करोड़ों शत्रु अंग पर विशेष आघात करें, उसी समय वह पंजर भुजाओं के समान रक्षा करने वाला था ।

कवित्त

देव दसमि दिन दीन, दीह पद्धरौ नरिंदं ।
गुरु पंचम रवि नमो, सुबर ग्यारमो सु चंदं ॥
त्रतिय थान बर भोम, सुक्र सप्तम बर कीनौ ।
नृप सुपनंतर आइ, ईस जीपन बर दीनौ ॥
चौसठ्ठि पुट्ठि वि-पुट्ठियन, अरिन सेन सम्मुह परे ।
त्रिदघोष सद्द बज्जैत सब, सुबर लोह कढ्ढे करे ॥ २२५ ॥

शब्दार्थः—दीन=दिया, दीक्षित किया । दीह=दिन । पद्धरौ=अच्छा । गुरु=बृहस्पति । भौम=मंगल । बर-कीनो=बलकीनो । ईस=शिव । जीपन=जीतने का, विजय होने का । चौसठ्ठि=चौसठ ही योगिनियें । पुट्ठि=पीठ पर, पक्ष पर । वि-पुट्ठिय-न=अन्य के पीठ पर न रही, विपक्षितों के पक्ष पर न रही । त्रिध्घोष=जोर से । सद्द=आवाज । बज्जैत=बाजे, बजे । सुबर=उस समय । लोह=लोहा । कढ्ढे=निकाला, पकड़ा । करे=कड़े, विषैले ।

अर्थः—विष्णु पंजर मन्त्र से राजा को गुरुराम ने देव दशमी के दिन दीक्षित किया, वह दिन राजा के लिये सब प्रकार से अच्छा था । उस दिन राजा पृथ्वीराज को बृहस्पति पांचवा, रवि नवमाँ, चन्द्रमां ग्यारहवाँ, मंगम तीसरा और शुक्र सातवाँ (स्थान पर) था । उसी रात्रि को स्वप्न में शिव ने आकर राजा पृथ्वीराज को इस युद्ध में विजय होने का वर दिया और चौसठ ही योगिनियाँ विपक्षियों की पीठ (पक्ष) पर न रह कर राजा की पीठ (पक्ष) पर हो गई । वे सब शत्रु सेना के सामने होने को तत्पर हुई । उसी समय रण वाद्यों की जोर से ध्वनि होने लगी,और सब ने विषैले शस्त्र पकड़े ।

दोहा-(सोरठी)[1]

रिन मंते सामंत, घाइल[2] अंगत जे घने[3] ।
मनो मत्त मयमंत, बिना महावत रारि मिलि ॥२२६॥

ग्रा० पा० १, पा० । २, घ० । ३ सं० ।

शब्दार्थः—रिन=रण । मत्ते=मतवाले । अंगत=अपनाया, डटे रहे । मत्त=मस्त । मयमंत=हाथी । रारि-मिलि=भिड़े ।

अर्थः—पृथ्वीराज के रण-मतवाले सामंतों ने विशेष घायल होकर भी युद्ध को इस प्रकार अपनाया (छेड़ा) मानो बिना महावत के मतवाले हाथी भिड़ गये हों ।

देवप्पति देवह सु दुति, मति सामंत सधंत ।
जिन अच्छरि-सच्छरि कहीं, सो जस बढि बर कंत ॥२२८॥

शब्दार्थः—देवप्पति=देव तुल्य है जिनका स्वामी । सधंत=भिड़े, युद्ध छेड़ा । जिन=जिनकी । अच्छरि–सच्छरि=अप्सरायें सहचरी हो गई । जस=यश । बढ़ि=बढ़ाया । कंत=स्वामी ।

अर्थः—जिनका स्वामी देव तुल्य है, जिनकी कांति और मति भी देव तुल्य हैं, ऐसे उन सामंतों ने युद्ध छेड़ा, किन्तु उनमें से जिन्होंने अप्सराओं को सहचरी बना लिया था (उनसे विवाह कर लिया) उन्हीं, सामंतों के कारण स्वामी (पृथ्वीराज) के यश में वृद्धि हो पाई ।

गाथा

जस-धवली बर बढयं, त्रय लोकं साधयौ तरयं ।
जानिज्जै परिमानं, सत्तं समुद सींचयौ नीरं ॥ २२६ ॥

शब्दार्थः—जस-धवली=धवल यश, उज्ज्वल यश । सत्तं-समुद=सप्त सिंधु । सींचयौ=सींच दिया, परिपूर्ण कर दिया । नीरं=नीर से, नूर से, कांति से ।

अर्थः—जो त्रैलोक्य का साधन करके तर (मुक्त हो) गये, उन्हीं ने राजा के धवल यश में इस प्रकार वृद्धि की, मानों उन्होंने सप्त-सिन्धु (युद्धवारिधि) को स्वकांति रूपी जल से परिपूर्ण कर दिया हो ।

दोहा

फेरि पंति पारस सुवृत, अगति करी नहिं गत्ति ।
जिन सांई साधन[1] कला बनि सामंति सुमत्ति ॥२३०॥

ग्रा० पा० १, का० पा० भीं० ।

शब्दार्थः—फेरि=फिरसे । पंति=पंक्ति पारस=वेरा । सुवृत=श्रेष्ठ वृतधारी । अगति=मोक्ष-विमुख । गत्ति=मोक्ष विचार । बनि=बने रहे । सामंति=सामंत ।

अर्थः—शत्रु-पंक्ति के द्वारा घिर जाने पर भी उन श्रेष्ठ वृतधारी सामंतों ने अपनी युद्ध गति को मन्द नहीं किया (मोक्ष से विमुख नहीं हुए, कलंकित नहीं हुए) जो सामंत अपने स्वामी की कीर्ति-कला के साधन स्वरूप थे । वे उस समय (घिर जाने पर) भी सुमति पर चलते रहे (दृढ़ता को नहीं छोड़ा) ।

तिन कुल दग्ग न लग्ग बर, जिन कुल बल चावंड ।
दोष रहित अच्छिरि- अमी, किए खंड पाखंड ।।२३१ ।।

शब्दार्थ: -दग्ग=दाग । अच्छरि-अमी=अमिय सने अक्षर, मधुर वर्ण । खंड=खण्डन, नाश । पाखंड=प्रपंच, आडम्बर ।

अर्थ:—जिस वंश को श्रेष्ठ वीर चामंडराय का बल है। उन वीरों के कुलको दाग नहीं लग सकता । वह (चामुंडराय) शत्रुओं के आडम्बर को इस प्रकार नाश कर देता था जैसे सरस-वर्ण काव्य दोष का अपहरण कर लेता है ।

नथ्थह मुव्वी वीर बर, बल बंकम घट घाइ ।
घरी एक आचिज्ज भो, जोति मग्ग विरुझाइ ।।२३२।।

शब्दार्थ:-नथ्थह=नहीं । मुव्वी=पुरवी, पृथ्वी । बल-वंकम=बांकावीर । घट-घाइ=शरीरों को नष्ट किये । आचिज्ज=आश्चर्य । भो=हुआ । जोति-मग्ग=ज्योति मार्ग, ज्योति स्वरूप के रास्ते पर । विरुझाइ=उलझ पड़े, झगड़ने लगे ।

अर्थ:—चामुण्डराय जैसा श्रेष्ठ वीर पृथ्वी पर अन्य नहीं माना गया उस बांके वीर ने बहुत से शत्रु-शरीरों का नाश कर दिया जिससे उनकी मृत-आत्मायें ज्योतिमार्ग पर जाती हुई एक दूसरे से उलझ पड़ी [इतने वीर मारे गये जिनकी आत्माओं का ज्योतिमार्ग पर विचरण करना कठिन होगया] । जिससे एक घड़ी तक सब आश्चर्यान्वित होगये ।

भारथ्थह नथ्थी सुव्रत, अव्रत वृत्त गति देव ।
जिन सांई दुज्जन हत्यौ, सो सांई प्रति सेव ।।२३३।।

शब्दार्थ:-नथ्थी=नहीं । सुव्रत=श्रेष्ठ वृतधारी । अव्रत=आथड़ते समय, भिड़ते समय ।

अर्थ:— चामंडराय जैसा श्रेष्ठ वृतधारी वीर महाभारत युद्ध में भी नहीं देखा गया, जिसकी प्रतिज्ञा और गति लड़ते समय देव तुल्य थी। ऐसे उस वीर ने शत्रु का नाश करके अपने स्वामी की सेवा की ।

सेव-देव देवन सुबल, रुंधत गिद्ध सु मंस ।
मोह-पान माया-सुकृत, उडत मुक्कि तिन हंस ।। २३४ ।।

शब्दार्थः—सेव-देव=देवता की सेवा करने वाला, देव तुल्य स्वामी की सेवा करने वाला। रुंधत=रोंध दिये, उलझा दिये। मंस=मांस, आमिष। मोह-पान=हाथों ने मोह लिये, हाथों पर मोहित हो गये। माया-सुकृत=माया कृत्य, माया कौतुक, माया जाल। मुक्कि=छोड़कर (शरीर छोड़कर)। हंस=आत्मा, प्राण पखेरू।

अर्थः—चामंडराय, देव-तुल्य-स्वामी की सेवा करने वाला था। उसका बल भी देव-तुल्य था। उसने शत्रु-शवों की ढेरी लगादी। जिससे उनके आमिष में गिद्ध समूह उलझ गया और उनके प्राण पखेरु शरीर छोड़कर उड़ गये। उनको, उसके हाथों ने माया-जाली कौतुक के समान माह लिया (उस के द्वारा मारे गये वीर भी उसके कर-प्रहार पर मुग्ध हो गये)।

हंस न हंसिय हंस बर, मुगति सरोवर बीय।
तमु छंड्यौ उह मंडिकै, निसा भ्रम्म नह नीय॥ २३५॥

शब्दार्थः—हंस=प्राणी। न-हंसिय=नाश किये, छुड़ा दिये, छुटकारा दे दिया। हंस=सूर्य। बीय=दो। उह-मंडिकै=उससे भिड़कर। नह-नीय=उनके नज़दीक न रही, उससे छुटकारा पागये।

अर्थः—उस हंस (सूर्य) स्वरूपी वीर (चावंड) ने मोक्ष-सरोवर में भेजने के लिये उससे भिड़ने वाले प्राणियों के, शरीर और सांसारिक घोर निशा (अज्ञानता) इन दो से छुटकारा दे दिया।

हूँसांई पर—हथ्थरें, परम तंत पद पाइ।
देवगिरी भंजन मता, रा चामंड विरुझाइ॥ २३६॥

शब्दार्थः—हूँसांई=हूँस करने वाले, इच्छा करने वाले। पर—हथ्थरें=हाथों पड़कर। देवगिरी—भंजन=देवगिरि (देवास) के उस युद्ध में शत्रुओं का नाश करने। मता=मंत्रणा इच्छा।

अर्थः—युद्धेच्छा करके जो विपक्षी वीर बढ़े थे वे उसके हाथों में पड़कर परम तत्व को प्राप्त कर गये। इस प्रकार वह वीर चामुण्डराय देवगिरि (देवास) के उस युद्ध में शत्रुओं का नाश करने के लिये इच्छाभ पूर्वक उल पड़ा।

कवित्त

रा चामंड जैतसी, रामबड़ गुज्जर बुल्लिय।
वलियभद्र वलिराम, सार धारह मति खुल्लिय॥

कलह किति विस्तरै, राइ निड्डुर सम सारं ।
दुहू बोल दुअ्र सरन[१], मरन किति अवधारं[२] ॥
बैकुंठ लेन लिन्नै सु खग, विहँग मग्ग पंखी सु गति ।
नरसिंह सिंह छंडै नहै, सार धार मारह दिपति ॥ २३७ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० घ० ।

शब्दार्थः—बलिराम=बलराय (नाम विशेष) । मति-खुल्लिय=विचार विकास पाते, प्रसन्न होते । किति=कीर्ति । सम-सारं=शस्त्र द्वारा । दुहूँ-बोल=दोनों बातें । दुअ्र-चरन=दो पंक्ति में, दो ढंग से । अवधारं=धारण करना चाहिये, पालन करना चाहिये । लेन=लेने को, प्राप्त करने को । लिन्ने=ली, गृहण की । सुगति=तरह । छंडै नहै=नहीं छोड़ते, मुंह नहीं मोड़ते । दिपति=दीप्ति, कांति ।

अर्थः—चामंडराय, जैत्रप्रमार, रामराय बड़गुज्जर, बलिभद्र, बलराय, और निड्डुराय कहने लगे:- शस्त्र-धार से ही हमें प्रसन्नता है और उसी के द्वारा हमें कलह-कीर्ति का विस्तार करना चाहिये । हमारे लिये या तो मरना या कीर्ति को प्राप्त करना इन दो ही बातों का पालन करना है । उपर्युक्त दोनों बातों को सोचते हुए ही हमने वैकुण्ठ-प्राप्ति के लिये दो दो खड्ग इस प्रकार पकड़े हैं, जैसे पक्षियों के उड़ने के लिये दो पंख होते हैं । अतः नर शरीर-धारी सिंह और सिंह शस्त्र की मार से मुँह नहीं मोड़ता, इसीसे वह तेजस्वी होता है ।

गाथा

सारं धार दिपत्ती[१], रुधिरं छंडेव सूरयौ मग्गं[२] ।
जानिज्जै मधु मासं, सा फूलेव खख्खरो वनयं ॥२३८॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति । २ पा० ।

शब्दार्थः—दिपत्ती=दिपंत्ती, दीप्ति मान होते । रुधिरं-छंडेव=रक्त बहाकर । सूरयौ-मग्गं=सूर्य के मार्ग पर, सूर्य मंडल के मार्ग पर, सूर्य मंडल को जाते हुए । मधु मासं=चैत्र मास में । सा=वह । फूलेव=फूल, खिल पड़े । खख्खरौ=खांखरे, पलाश, द्रुम ।

अर्थः— शस्त्र से ही बहादुर दीप्तिमान होते हैं । सूर्य-मण्डल की ओर जाते हुए उनके रक्त रंजित शरीर ऐसे दिखाई देते थे मानो चैत्र मास में पलाश-खिल पड़े हो ।

काल दंड खंडन करै, भिरै बीर भारथ्थ ।
सुवर वीर सामंत गति, दै दुवाह पारथ्थ ॥२३९॥

शब्दार्थः—भारथ्थ=युद्ध। सुब्र=सबल। दे-दुबाह=दोनों हाथ प्रसार कर मिलाना, हाथ मिलाना। पारथ्थ=पार्थ, अर्जुन।

अर्थः—सबल वीर (पृथ्वीराज) के उन सामन्तों की युद्ध में ऐसी गति थी कि वे काल-दंड का खंडन करते हुए युद्ध में जुट पड़ते थे और अर्जुन के समान योद्धा से भी हाथ मिलाने की सामर्थ्य रखते थे।

पारथ पा रत्थिय सुव्रत्त, सारथ्थिय चहुआन।
मानहु बीर समुद्र गति, तिरन मते ध्रम पान ॥२४०॥

शब्दार्थः—पारथ=पार्थ। पा=पाकर। रत्थिय=रथी। सुव्रत=व्रतधारी। मते=मंत्रणा। ध्रम-पान=धर्म के बल पर।

अर्थः—वे व्रतधारी वीर अर्जुन के समान ही रथी थे। उन्होंने कृष्ण तुल्य चाहुवान (पृथ्वीराज) को सारथी पाकर अपने धर्म के बल पर वीरता के समुद्र को तेरने की दृढ़ मंत्रणा मन में करली।

ध्रंम-पार सामंत बर, उदै अस्त भौ भान।
बहुरि पंग पारस फिरिय, बल न घट्यौ चहुआन ॥२४१॥

शब्दार्थः—धर्म-पार=धर्म की पाज, धर्म के पालन कर्ता। भान=भानु, सूर्य। बहुरि=फिर से, या-लोटकर। पंग=पंगु सेना, कमधजी सेना। पारस-फिरिय=आस पास होगई, घेर लिया।

अर्थः—सूर्य उदय होकर अस्त भी हो गया; किन्तु युद्ध बंद न हुआ, पंगुराज (कमधज्ज) की सेना ने फिर घेर लिया, किन्तु श्रेष्ठ सामंत जो धर्म की पाज-स्वरूप थे उनके कारण चाहुवान राजा की शक्ति कम न हो पाई।

कवित्त

वल छंड्यौ नवि राज, सूर उभ्भै दुअ पासं।
जंघारौ रा-भीम, स्वामि सन्नाह सुभासं॥
दुहु बांहां सामंत, दून दह दहूँ अधिकारिय।
अमर बंघ खावास, खग्ग खोल्यौ खिझि सारिय।

जंघार राव जोगिन्द बर, भुगति मुगति अप्पन अनिय ।
तामस न बुझयौ दोउ सेन कौ, बजि निसान आभा धुनिय ॥२४२॥

शब्दार्थ:—नवि=नहीं । सन्नाह=कवच । दुहुँ-बाहां=दोनों ओर, दोनों पार्श्व में । दून-दह= दुवन दह, दुर्जनों को दग्ध करने वाले, शत्रुओं को दग्ध करने वाले । दहुँ=दोनों (शत्रुओं को दग्ध करने और स्वामी की रक्षा करने) । अधिकारिय=अधिकारी, योग्य । बंध=बंधु । खावास=खवास, अंग रक्षक । खिजि=क्रोध में आकर । सारिय=सारधारी, लोहधारी । अप्पन=अर्पण करने, देने । अनिय=अनी, शत्रु सेना । निसान=नक्कारे । आभा=बादल, नभ । धुनिय=प्रतिध्वनित कर दिया, या थर्रा दिया ।

अर्थ:—चाहुवान राजा की शक्ति कम नहीं हुई, उसके बहादुर सामंत दोनों ओर खड़े होकर शत्रुओं से लोहा लेने के लिये अड़ गये । अड़े हुए सामंतों में से जंघारा भीम स्वामी के लिये कवच तुल्य था वह और अन्य भी राजा के दोनों पार्श्व में डटे हुए वीर शत्रुओं को दग्ध करने और स्वामी की रक्षा करने के अधिकारी (योग्य) थे । उसी समय कमधज वीरचन्द के अंग रक्षक का भाई लोहधारी अमर ने क्रोध में आकर खड्ग के कसों को खोला । इधर से श्रेष्ठ योगी-स्वरूपी जंघारा भीम ने शत्रु सेना की भक्ति-मुक्ति अर्पण करनी शुरु की (काटमार शुरु की) । रात दिन लड़ने पर भी दोनों ओर की सेनाओं का क्रोध शान्त न हुआ । और उन्होंने नक्कारे बजाकर नभ-मण्डल को प्रतिध्वनित कर दिया (थर्रा दिया) ।

गाथा

आभा सुनिय सु देवो, वज्जे साराइ मुंदरे बज्जे ।
नीसानं-निसि सारं, साहारं पारखां होई ॥ २४३ ॥

शब्दार्थ:—बज्जे=बाजे, वाद्य । साराइ=सार, लोहा । मुंदरे=मंद मंद, मधुर । नीसानं-निसि=रात्रि के नक्कारे । सारं-साहारं=लोहे द्वारा मारे जाकर । पारखां-होई=परीक्षा हुई, परीक्षा में उत्तीर्ण हुए ।

अर्थ:—नभ-स्थित देवताओं ने रण वाद्यों के साथ २ शस्त्रों की मधुर ध्वनि को सुनी, रात्रि में बजने वाले उन नक्कारों की ध्वनि के साथ २ खड्ग द्वारा मारे जाकर वीर परीक्षा में उत्तीर्ण होने लगे ।

दोहा

पर-पक्खरत पवित्र गति, रा निड्डुर राठौर ।
वंधु दोष जान्यो नहै, स्वामि ध्रंम पति मौर ॥ २४४ ॥

शब्दार्थ:–पर-पख्खरत=पाखरें पड़ने पर। बंधु-दोष=भाई से लड़ने का दोष। जान्यो नहै=नहीं जाना, ध्यान नहीं दिया, परवाह न की। पति=लज्जा। मौर=मेरी।

अर्थः—घोड़ों पर पाखरें पड़ने पर पवित्र गति वाले निडडुरराय ने अपने भाई के साथ भिड़ पड़ने के दोष की ओर ध्यान नहीं दिया, (वीरचन्द और निड्डुरराय दोनों कमधज थे; किन्तु उसने पृथ्वीराज का साथ न छोड़ा) और उसने कहा, मेरी लज्जा तो स्वामी-धर्म के धारण करने सें ही है।

गाथा

जग्गिय स्वामित कामं, भ्रमियं बीर बीर विस्तारं।
तिम तिम तामस तेजं, सेनं सज्जि मुक्ति सा-धीरं॥ २४५॥

शब्दार्थः–जग्गिय=जागृत हुए। स्वामित=स्वामी के कार्य के लिये। भ्रमियं=भ्रमित करते हुए। वीर विस्तारं=वीर रस को विस्तृत कर दिया। तिम-तिम=जैसे २, तैसे २। तामस=तमोगुण, क्रोध। सेनं-सज्जि=सेना में प्रचार कर दिया, सेना में सज दिया। मुक्ति=मोक्ष। सा-धीरं=उन धीर वीरों ने।

अर्थः—इस प्रकार वे धीर-वीर सामन्त स्वामी के कार्य के लिये उत्तेजित हो गये। विपक्षी-वीरों को भ्रम में डालकर उन्होंने वीर-रस को फैला दिया। जैसे २ उन धीर-वीरों में तमोगुण बढ़ता गया, वैसे ही सेना में उन्होंने मोक्ष का प्रचार बढ़ा दिया (तेजी से मारने लगे)।

मुक्ती धारन धीरं, पंजर-सज्जेव मथ्थनो-परयं।
बर ससिवृत्त सु व्याहं, दाहं देहाइ दुख्खनो तजयं॥ २४६॥

शब्दार्थः–पंजर-सज्जेव=शरीर से सुसज्जित हुए। मथ्थनो-परयं=विपक्षियों का मंथन करने लगे। दाहं देहाइ=शारिरिक दाह, सांसारिक जलन। दुख्खनो=दुःख। तजयं=छोड़ दिया।

अर्थः—मोक्ष-प्राप्ति के लिये वे वीर अपने शरीर से सुसज्जित होकर विपक्षियों का नाश (मंथन) करने लगे और पवित्र शशिव्रता कुमारी के विवाह के बहाने उन्होंने शारिरिक दाह (सांसारिक जलन) के दुःख को छोड़ दिया।

देह दुख्ख कट्टिय[1] सुक्रम, रन जित्तय स्रुग-पान।
पंच हूंन पंचो परिग, सुनिय बीर रस पान॥ २४७॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—कट्टिय=काट दिये, दूर किये। सुक्रम=श्रेष्ठ कर्मों द्वारा, या भली प्रकार से बढ़कर। सुग-पान=स्वर्ग को प्राप्त किया। पंच-दून-पंचों=पांच, दो और पांच, कुल बारह (या पंच दून [१०] और पंचौ [५] कुल पन्द्रह)।

अर्थः—अपने श्रेष्ठ कर्मों द्वारा (या भली प्रकार से बढ़कर) दैहिक दुखों को दूर कर दिया और युद्ध में विजयी होते हुए उन्होंने वीर रस का पान कर स्वर्ग प्राप्त किया। ऐसे-वीरों की कुल संख्या द्वादश (या-पन्द्रह) सुनी गई।

गाथा

परियं बीर ति नामं, सुर-ति त्री-दूहनं दह घट्टी।
सजले सूर सुधारी, भारी भरनेव भारथं-भिरयं ॥ २४८ ॥

शब्दार्थः—ति=उनके। सूर-ति=वे बहादुर। त्री-दूहनं=तीन दूने, छः। दह घट्टी=दस घड़ी। सजले=सजल, पानी युक्त, नूर युक्त। भरनेव=भिड़ पड़ने वाले। भारथं-भिरयं=युद्ध में जुट पड़े।

अर्थः—जो बहादुर घायल होकर दस घड़ी तक पृथ्वीपर सोये रहे, उनकी संख्या छः है, वे तेजस्वी वीर भयंकर युद्ध करने वाले थे। जो युद्ध में जूझ पड़े (जिनके नाम निम्न हैं) वे ये थे:—

कवित्त

परत देव-वर-क्रंन, सरन-रख्खन सांई बर।
परि मुख-रन पुण्डीर, सार सारंग देवधर॥
पर्‍यौ बीर बलिभद्र, जैत[1] पाँवार पवितं[2]।
धार-धनी चढि धार, सलख लख्खन दुति मंतं[3]॥
लाखन्न सिंह भुज पाइ बर, अरिन पाइ उट्ठाइ लिय।
धनि-धन्नि सूर सामंत वर, जुग जीरन जीरन सु जिय॥ २४९॥

ग्रा० पा० १ से ३ सं०।

शब्दार्थः—देव-वर-क्रंन=श्रेष्ठ देव कर्ण। सरन-रक्खन=रक्षा करने वाला। सांई=स्वामी। मुख-रन=युद्ध के समक्ष, युद्ध में सामने करके। सार=लोहा। धर=धारी। पाँवार=प्रमार। धारधनी=धारराज वंशज। चढि-धार=खड्ग धारा का आघात सहता हुआ। पविंतं=पवित्रता। सलख-लक्खन=सलखानी लक्खन। दुति-मंतं=कांति युक्त, नूर युक्त। भुज-पाइ-बर=जिसकी भुजायें श्रेष्ठ पाई जाती थी। पाइ-

उठ्ठाइ-लिय=पैर उखाड़ दिये, भगा दिये। धनि-धन्नि=धन्य है। जुग=युग, कल्प। जीरन=जीर्ण, पुराना, अंतिम अवस्था युक्त, अंत। जिय=जीव।

अर्थः—स्वामी की रक्षा करने वाला देव कर्ण,युद्ध में सामना करने वाला लोह-धारी सारंगदेव पुंडीर,वीर बलभद्र,वीर जैत्र प्रमार,खड्ग का आघात सहने वाला तेजस्वी धार-राजवंशज सलखानी लखन, और श्रेष्ठ भुजाओं वाला लाखनसिंह नाम के छः सामंत घायल होकर धराशायी हुए। कल्प एवं जीवन का अंत संभव है किन्तु धन्य है ऐसे सामंतों को जिन्होंने ऐसी अवस्था में भी शत्रुओं के पैर उखाड़ दिये (भगा दिये, अपनी ख्याति को अमर कर दिया)।

दोहा

जुग जीरन जीरन सु बर, चरन किति सा किद्ध।
सुबर बीर सामन्त बर, गत्ति न पुज्जै सिद्ध ॥२५०॥

शब्दार्थः—सुबर=श्रेष्ठ पुरुष। चरन=चलती फिरती, विचरण करती हुई, फैलती हुई। किद्ध=की। सुबर=सबल। पुज्जै=पहुँचते।

अर्थः— कल्प का और श्रेष्ठ-पुरुषों का अन्त निश्चय है, किन्तु जिन्होंने स्व-कीर्ति को संसार में फैला दिया, ऐसे सबल और श्रेष्ठ, वीर-सामन्तों की गति को सिद्ध भी नहीं पहुँच सके।

सिद्ध न पूजै गत्ति तिन, छाया मोहन-माय।
इन छाया-मंडी तह, ध्रंम-छांह-रहि छाइ ॥२५१॥

शब्दार्थः—पूजै=पहुंच सकते। छाया=छागये, बसे हुए। मोहन-माय=मोहनेवाली माया। छाया-मंडी=छागये, बसेरा लिया। ध्रंम-छांह=धर्म की छाया।

अर्थः—मोहने वाली माया की छाया में बसे हुए सिद्ध, उन वीरों की गति को नहीं पहुँच सकते; क्योंकि उन्होंने जहां पर धर्म की छाया छाई हुई थी उसी के नीचे बसेरा लिया (वे माया से विरक्त और स्वधर्म के अनुरक्त थे)।

ध्रंम छांह रहि छाइ बर, करिय सूर सामंत।
सो करनी करिहै न को, करिय बीर गुन मंत ॥२५२॥

शब्दार्थः—को=कोई भी। गुन मंत=गुणवान, बुद्धिमान।

अर्थः—श्रेष्ठ धर्म की छाया में बसेरा लेकर बुद्धिमान बहादुर सामंत जो कर पाये वैसी करनी अन्य कोई नहीं कर सकेगा।

गुननिमंत गंभीर-गुर, जै जै सद्द सु सिद्ध।
बरन बिहुसि बरनिय बरहि, रंभ अरंभन सिद्ध॥ २५३॥

शब्दार्थः—गुननिमंत=गुणवंत, बुद्धिमान। गंभीर-गुर=गहरा गुरुत्व। सद्द=शब्द। बरन=बरने को। बिहुसि=विहँसते हुए। बरनिय=वरण करने योग्य, दुलहन। वरहि=वरण करते। रंभ=रंभा, अप्सरा। अरंभन-सिद्ध=आरंभ को साधकर, युद्धारंभ का साधन करते हुए।

अर्थः—युद्ध को साधन बनाकर जिन्होंने हँसते हुए अप्सराओं का वरण किया। उन गुणवान (बुद्धिमान) वीरों के गहरे-गुरुत्व को देखकर सिद्धों ने भी उनके लिये जय-जय शब्द उच्चारण किया।

गाथा

रंभा अरंभ-बरयौ, अच्छी-अच्छीव अच्छरी सरनौ।
के की गवनी कित्ती, सा कित्ती बंधयौ रक्खी॥ २५४॥

शब्दार्थः—अरंभ-वरयो=युद्धारंभ समय वरण की। अच्छी-अच्छीव=अच्छी २। अच्छरी=अप्सरायें। सरनो=शरण, आश्रित। के की=कितनों की ही। गवनी=गमन की, चलती बनी, नष्ट हो गई, ह्रास हुआ। सा=उन्होंने। कित्ती=कीर्ति। बंधयो-रक्खी=बंधन में रखी, काबू में रक्खी, नष्ट न होने दी।

अर्थः—सुन्दर अप्सरायें जिसको शरण में (आश्रित) हैं, ऐसी रंभा को युद्धारंभ के समय उन्हों (सामतों) ने वरण किया अन्य कितने ही वीरों की कीर्ति का ह्रास हुआ। किन्तु उन वीरों ने स्व-कीर्ति को अपने अधिकार में रक्खा (उसे नष्ट न होने दिया)।

दोहा

राजद्वार घरियार बज्जि, सार-बज्जि रति सार।
सूर सुमति सामंत की, बीर उतारन पार॥ २५५॥

शब्दार्थः—सार-बज्जि=लोहा बजता रहा। रति-सार=सारी रात्रि को, या रात्रि में श्रेष्ठ। सुमति=सु-मंत्रणा, श्रेष्ठ विचार।

अर्थ:—सारी रात्रि लोहे से लोहा बजता रहा, इतने में राजद्वार पर प्रातःकाल की घड़ियाल बजी, उसी समय बहादुर सामंतों ने वीरों को भव-सिन्धु से पार उतारने का श्रेष्ठ विचार किया।

दोहा

पुख्ख मास रवि उग्गयौ, भूमि नछित्रन सीस।
मनहु बुद्ध बंदन सुबुधि, करन काम क्रत-ईस ॥ २५६ ॥

शब्दार्थ:—पुख्ख=पौष। नछित्रन=नक्षत्र। बंदन=वंदन किये गये, वंदनीय बनगये। सुबुधि=सुबुध, बुद्धिमान। करन-काम=कार्य करने, कार्य पूर्ती करने,। क्रत-ईस=स्वामि जिस कार्य को करता (करना चाहता)।

अर्थ:—पौष मास (मकर संक्रांति, या पौषकी पूर्णिमा) के सूर्य के समान पृथ्वी के नक्षत्र स्वरूपी राजाओं पर राजा पृथ्वीराज उदय हुआ (उसके प्रताप में दिनों दिन वृद्धि होने लगी) इसी लिये स्वामी पृथ्वीराज जिस कार्य को करना चाहता था, उसी कार्य की पूर्ति करने वाले बुद्धिमान सामंत भी मानों उस (सूर्यस्वरूपी पृथ्वीराज) के मित्र-ग्रह बुध तुल्य वंदनीय बन गये।

क्रत्तन ईस बल बुद्धि बल, बुद्धि पराक्रम संधि।
सुबर बीर संग्राम गुन, अति गुन निर्गुन-बंधि ॥ २५७ ॥

शब्दार्थ:—क्रतन=कार्य। ईस=स्वामि। सुबर=उस समय। गुन=गिने गये, समझे गये. माने गये। अति गुन=विशेष गुने, अधिकतर। निर्गुन-बंधि=निराकार से बँधे हुए, आदि ब्रह्म के उपासक।

अर्थ:—स्वामी के कार्य और बुद्धि बल के कारण सामंतों की भी बुद्धि और पराक्रम की संधि होपाई और उस समय युद्ध में वे वीर ऐसे माने गये मानों वे अधिकतर आदि-ब्रह्म (निराकार) की उपासना में बँध गये हों (संसार से विरक्त हों)।

गाथा

बंधे बुद्धि सु धारे, प्राहारे बीर सुभटायं।
निज तं नेह सुधारी, आहारी अंकुरी बीरं ॥ २५७ ॥

शब्दार्थ:—बंधे=बांध दी, रत करदी। बुद्धि=मति। धारे=धारा से, खड्ग से। तं=तम, तमोगुण। आहारी=नाशकारी। अंकुरी=उठी।

अर्थः—उस समय श्रेष्ठ सामंतों की मति एक मात्र खङ्गाघात में रत होगई। तमोगुण से प्रेम रखने वाले वीरों की नाशकारी खङ्ग उठते ही प्रहार होना शुरु हुआ।

दोहा

अंकुरि बीर शरीर गति, सुभट-सु-थट्ट सुभट्ट।
अघट-घट्ट नहँ-कियुँ परै, परे बीर दहपट्ट॥ २५८॥

शब्दार्थः—गति=मोक्ष। सुभट-सु-थट्ट=वीर समूह। सुभट्ट=सामंत। अघट-घट्ट=क्रूर ढंग, भयानक स्वरूप। नहँ-कियुँ-परै=नहीं कह सकते, अकथनीय। दहपट्ट=द्रह वाट, नाश।

अर्थः—वीरों के शरीर में मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा अंकुरित होगई जिससे सामंत और उनके वीर-समूह का अकथनीय भयानक स्वरूप होगया। उनके द्वारा शत्रु-वीर नष्ट होकर धराशायी होने लगे।

कवित्त

हाइ हाइ आरिष्ट, दिष्ट अंबरिय सूर बर।
मुकि करवल चामंड, करहु गोलक उप्पर धर॥
गोलक तुंबा भग्ग, वंध भग्गे चहुआनं।
स्वेत छत्र दिखि सीस, पर्यौ कमधज्ज निधानं॥
घरि इक्क इक्क[1] विभ्रम भयौ, सार सार प्राहार बर।
जानैकि मत्ति दंतिन कला, कूट-मंत्र धारह सुधर॥२६६॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—आरिष्ट=अरिष्ट। दिष्ट=द्रष्टि। अंबरिय=उठी। मुकि=छोड़ी, चलाई, प्रहार किया। करबल=करवाल, खड्ग। गोलक=गोल सेना, अंग रक्षक सेना। तुंबा=गोलाकृति घेरा। भग्ग=टूट गया। बंध-भग्गे=बंधन टूट-गया, घेरा टूट गया, मुक्त हो गया। पर्यौ=उमड़ पड़ा। कमधज्ज=वीरचन्द। निधानं=निधन करने को, नाश करने को। जानेकि=मानो। मत्ति-दंतिन=मतवाले हाथियों का। कला=कौतुक। कूट-मंत्र=कूटनीति। धारह=खड्ग ने।

अर्थः—उसी समय श्रेष्ठ वीर चामंडराय की दृष्टि शत्रुओं की ओर उठी जिससे हाय अरिष्ट ? हाय अरिष्ट ? ? ऐसा शोर गुल मच गया। उसने अपनी खड्ग का प्रहार

कमधज्ज वीरचंद की गोल (अंग रक्षक) सेना पर किया, जिससे उसका घेरा टूट गया, और चाहुवान नरेश उस घेरे से मुक्त हो गया। पृथ्वीराज के सिर पर श्वेत छत्र सुशोभित हुआ, यह देख कर वीरचन्द कमधज्ज नाश करने के लिये उसी ओर बढ़ चला और एक दूसरे पर शस्त्र प्रहार होने लगे, जिससे एक घड़ी तक युद्ध-भूमि में भ्रांति छागई उससमय वीरों की खड्ग ने कूट नोति को अपनाया जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानो मतवाले हाथियों का कौतुक छिड़ा हो।

दोहा

धाराहर बित्त्यौ सुधर, चर-चरिष्ट चवुरंग।
रा निडड्डुर रट्ठौर बर, रुप्यौ खेत भ्रत भंग ॥ २६१ ॥

शब्दार्थ:—धाराहर=खड्गाघात। बित्त्यौ=बीता, हुआ। चर-चरिष्ट=चल चली, चलायमान हो गई। चवुरंग=चतुरंग, चतुरंगिनी सेना। रट्ठौर=राष्ट्रवर। रुप्यौ-खेत=रण क्षेत्र में डट गया। भ्रत-भंग= भाई के नाश के हेतू।

अर्थ:—इस प्रकार खड्गाघात हुआ। जिससे चतुरंगिनी सेना चलायमान हो गई। यह देखकर अपने सगोत्रीय बंधु (वीरचन्द) के नाश के हेतू श्रेष्ठ वीर राष्ट्रवर निडड्डुरराय रणक्षेत्र में आ डटा।

गाथा

पंगुर पाइ-सु धारं, पंगुर-भयौ चित्त तिन बीरं।
नह पंगुर कर नैनं, पंगुर नां सूरयौ वैनं ॥ २६२ ॥

शब्दार्थ:—पंगुर=पंगु वंशज, राष्ट्र वर वीर निड्डुर और वीरचन्द। पाइ-सु धारं=पैर जमाया। पंगुर-भयौ=चंचल हो गये। पंगुर=शिथिल। सूरयौ=बहादुरों के।

अर्थ:—उन पंगु-वंशजों [निडड्डुरराय और वीरचन्द] ने युद्ध-स्थल में दृढ़तापूर्वक पैर जमाये उस समय एक बंधु दूसरे बंधु को देखकर क्षणमात्र के लिये दोनों वीरों के चित्त चंचल हो गये, किन्तु युद्ध करते हुए उनके हाथ, नैत्र और बचनों में पंगु-पन [शिथिलता] नहीं आ पाया [अर्थात् कर-प्रहार होता रहा, क्रूर दृष्टि एक दूसरे की ओर उठती रही, और मुख से मार २ शब्द उच्चारण होता रहा]।

दोहा

बयन सूर चंचल भइय, निहचल पग सिर-नाग ।
अदग दग्ग-भंजै सकल, करत अदग्गन-दाग ।। २६३ ।।

शब्दार्थः—बयन=वियन, दोनों । सिर-नाग=शेषनाग के सिर पर, पृथ्वी पर । अदग=निष्कलंक । दग-भंजे=कालिमा को मिटाकर । अदग्गन-दाग=निष्कलंक वीरों को कलंकित कर दिया ।

अर्थः— शेषनाग के सिर [पृथ्वी] पर दृढ़ता पूर्वक पैर देते हुए दोनों वीर [निड्डुर राय और वीरचंद] [युद्धार्थ] चंचल (आतुर) हो गये और स्वयं निष्कलंक हो, वंश की कालिमां को मिटाते हुए उन्होंने निष्कलंक वीरों को कलंकित कर दिया ।

अदग दग्ग मग्गिय-सुक्कत, वरबीरा-रस पान ।
छित्ति छित्ति स्वा-मित्त-गति,मुकति सु अप्पन बान ।।२६४।।

शब्दार्थः–मग्गिय–सुक्कत=सुक्रत मार्ग, मोक्ष मार्ग । बीरा–रस–पान=वीर रस के बल पर । छित्ति= छत्री, क्षत्री । स्वा–मित्त–गति=स्वगति मित्त, स्वगति मन्द । मुकति=मुक्ति, मोक्ष । अप्पन=अर्पण । बान=बानि, प्रतिज्ञा ।

अर्थः—उन वीरों ने वीर रस के बल पर मोक्ष समर्पण की प्रतिज्ञा का पालन किया और पृथ्वी पर जिन क्षत्रियों की स्वगति (मोक्षगति) मन्द है, उन निष्कलंक वंश-वाले वीरों को कलंकित कर उन्हें सुक्रत मार्ग (मोक्ष) की प्राप्ति करा दी ।

कवित्त

घरी इक्क इक रंग रंग सव-रथ्थ बिछोरिय ।
पगी जानि पारक्ख, जेम दरिया हिल्लोरिय ।।
यों खग धपि दोउ सेन, सूर सामंत विलोकिय ।
मनों मत्त उठि दृष्टि, पीय बीयोग वि-सोकिय ।।
झुम्मयौ धार धारह धनी, सुनिय कित्ति मित्तह पनौ ।
सामंत सूर सा मंत गुन, सु बर बीर मत्ताह[1] सुनौ ।। २६५ ।।

[1] ग्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—इक रंगा=एक रंग, स्थिर विचार वाला । रंग=विनोद । सव-रथ्थ=समस्त रथियों के । बिछोरिय=बिछुड़ा दिये, मिटा दिये । पगी=थाह लेने वाला । पारक्ख=पारख, दक्ष (तेरु) । जेम=

जैसे। दरिया=दरियाव, समुद्र। खग-धपि=खड्ग को तृप्त करके। वि-सोकिय=दो सोकें, दो सवतियें। धार=खड्ग धारा (द्वारा)। धारह धनी=धार राज वंशज [जैत्र प्रमार या कोई अन्य प्रमार वीर]। मित्तह-पनो=कमी।

अर्थ:—एक घड़ी तक उस समय वीरों ने एक रंग [स्थिर विचार वाले] होकर समस्त विपक्षी वीरों के युद्ध-विनोद को मिटा दिया। सैन्य-समुद्र का इस प्रकार उन्होंने मंथन (नाश) कर दिया, जैसे थाह लेने वाला दक्ष तैराक समुद्र को हिलोरे देता है। दोनों सेना के बहादुर सामंत अपनी २ खड्ग को तृप्त कर इस प्रकार विपक्षियों की ओर देखने लगे, मानों पति वियोग को स्मरण कर दो मस्त सवतियों (सोतों) की दृष्टि एक दूसरी पर पड़ी हो। उसी समय स्व-पक्ष की कीर्ति में कमी होती देख धार-राज वंशज (जैत्र प्रमार) खड्ग की धार को सहन करता हुआ भूमने लगा। वह श्रेष्ठ वीर सामंतों के समान ही बहादुर, गुणज्ञ और मस्ताना सुना गया।

दोहा

फनि-मनि लुट्टन काज गुर, भौ गुरइत गुर-देव।
सार सूर संम्हौ भिरिय, बरन पथ्थ मुख सेव ॥२६६॥

शब्दार्थ:-फनि-मनि=शेषनाग के सिर-स्थित (पृथ्वी के) मणि तुल्य वीरों को। लुट्टन=लूटने, कोसने। गुर=भारी, बड़े। भौ-गुरइत=गुरुत्वयुक्त हुआ। गुर-देव=भारी वीर देवकर्ण। बरन=वर्णन किया गया, कहा गया। पथ्थ=पार्थ, अर्जुन। सेव=सो, वह।

अर्थ:—उसी समय शेष नाग के सिर पर (पृथ्वीपर) स्थित मणि तुल्य बड़े २ वीरों को कोसने के लिये भारी वीर देवकर्ण प्रमार ने गुरुत्व धारण किया, और लोह-धारी-वीर शत्रुओं से सामना करता हुआ वह अर्जुन के तुल्य कहा गया।

गाथा

लग्गिय त्रासन सूरं, बीरं सुभटाइ मत्तयो-दंती।
जानिज्जै परिमानं, भारथ्थं बीरयो-कंती ॥२६७॥

शब्दार्थ:—मत्तयो-दंती=मतवाले हाथी। जानिज्जे=जाना गया, माना गया। परिमानं=प्रमाण, समान। भारथ्थं=महाभारत युद्ध समय का। बीरयो-कंति=कांति धारी वीर, नूर धारी वीर।

अर्थः—वह वीर, विपक्षी वीर योद्धाओं और मतवाले हाथियों को त्रस्त करने लगा, उस समय वह ऐसा माना गया मानों महाभारत युद्ध-समय का तेजस्वी वीर हो।

दोहा

हल-देवत बिछरत्त बर, परखिय जंपहि जोग।
सुबर सूर सामंत गुन, श्रुग्ग मत्त मति भोग॥ २६८॥

शब्दार्थः—हल-देवत=हलदेव, हलधर, बलराम। बिछरत्त=बिछुड़ते, दूर होते, विरुद्ध होते, विमुख होते। जंपहि=कहते हुए, बोलते हुए, उपदेश देते समय। जोग=जोगी, योगी। श्रुग्ग=स्वर्ग।

अर्थः—विमुख होते समय वह हलधर (बलराम) सा, और बोलता (उपदेश वाक्य कहता) हुआ योगी सा दिखाई देता था। एवं स्वर्ग-सुख को भोगने केलिये उस मतवाले की मति, बलवान बहादुर सामंत सी कही जाती थी।

भोग जोग दुअ बिद्धि-बिध, दान भुगति संगाइ।
त्रीय कहै नट्ठे सु त्रिय, त्रियन-गती मुह पाइ॥ २६९॥

शब्दार्थः—बिद्धि=विधि। बिध=विधि। भुगति=भक्ति। संगाइ=संग, साथ। त्रीय-कहै=त्रय वेद के कथन किये जाते। नट्ठै-सु-त्रिय=त्रयताप का नाश होता। त्रियन-गती=त्रय गति, स्वर्ग प्राप्ति, सूर्य मण्डल की प्राप्ति और सूर्य मण्डल से परे ब्रह्मपद प्राप्ति।

अर्थः—उसके पास भोग, योग, दान और भक्ति साथ २ सुशोभित थी, उसके समीप तीनों वेदों का कथन किया जाता जिससे त्रिताप का नाश होता एवं उसके समक्ष होने वाले (पास रहने वाले, सामना करने वाले) त्रिगति (स्वर्ग, सूर्य मण्डल एवं सूर्य मण्डल से परे ब्रह्मपद) को प्राप्त करते थे।

त्रिय न गत्ति पावहि पुरुष, धरन—धरत्तिय ताम।
सूर धीर सूरह भिरत, वर विश्राम तजि जाम[1]॥ २७०॥

[1] पा० १ पा० का० भीं० घ०।

शब्दार्थः—धरन-धरत्तिय=पृथ्वी को धारण कर्ता, पृथ्वीपर अधिकार रख सकता। ताम=तहाँ तक। विश्राम=शांति, सुख। जाम=जहाँ तक।

अर्थः—कवि कहता है जहाँ तक सुख पूर्वक रहना छोड़कर धैर्यवान योद्धा, योद्धाओं से नहीं भिड़ पड़ता, वहाँ तक वह न तो त्रय गति (स्वर्ग, सूर्य मण्डल

और उससे परे की गति) को प्राप्त कर सकता है और न पृथ्वी को ही धारण कर पाता है (पृथ्वीपर अधिकार नहीं रख सकता)।

भुमि विभँग क्रिन्निय[1] सुवृत, देवत्तह–प्रति देव।
महन रंभ मच्च्यौ सुभर, गुन–श्रमंन ग्रभ-भेव ॥ २७१ ॥

ग्रा० पा० १, पा० घ०।

शब्दार्थ:–भूमि विभँग=भूमि नाश का। क्रिन्निय=किया। सुवृत=श्रेष्ठ वृत, प्रतिज्ञा। देवत्तह-प्रति=देवताओं के प्रति, देवताओं के समक्ष, देवताओं को साक्षी करते हुए। महनरंभ=महान आरंभ, महान युद्ध। मच्च्यौ=ठाना। गुन-श्रमंन=गुण श्रवण करने पर। ग्रभ–भेव=गर्व होता।

अर्थ:—उस देव प्रमार ने देवताओं के प्रति शत्रु के भूभाग का नाश करने की प्रतिज्ञा की और महान युद्ध ठाना, जिसके गुणों को श्रवण करने पर प्रत्येक को गर्व हो आता है।

मरन सीस मुक्क्यौ सु वसु, रस–पारायन देव।
दुतिय-मुतिय दुति बैर तिनु, भ्रम भग्गा जुग-भेव ॥ २७२ ॥

शब्दार्थ:–मुक्क्यौ=छोड़ा, दिया। रस–पारायन=वीर रस का पारायण किया, युद्ध किया। दुतिय-मुतिय=दो बार मुक्ति, इस युद्ध में घायल हो मृत-तुल्य होकर एक बार और बाद में जीवित रह अन्त समय दूसरी बार मुक्ति का अनुभव किया। भ्रम भग्गा=भ्रांति को दूर की। जुग-भेव=दोनों के भेद की, दोनों के अन्तर की, स्वर्ग और पृथ्वी के अन्तर की।

अर्थ:—वह इतना घायल हुआ कि मृत तुल्य हो गया। फिर भी (शिव को) शीश समर्पित नहीं कर पाया [जीवित रहा], उसने रस [वीर रस] का पुनः आस्वादन [फिर से युद्ध] किया। वह मृत-तुल्य हो मोक्ष स्थान पर पहुँच पुनः सावधान हो गया और जीवित रह कर बाद में मोक्ष प्राप्त कर पृथ्वी और स्वर्ग के अन्तर को जीवित ही जान सका। और मन से उसने भ्रांति को दूर किया।

अवृत–वृत्त विभ्रम भइग, हय गय दल[1] चतुरंग।
चाहुआन कमधज्ज सों, भय बीरा रस भँग ॥२७३॥

ग्रा० पा० १ पा०, का० भों० घ०।

शब्दार्थः—अवृत-वृत्त=भिड़ते समय, भिड़ने की प्रतिज्ञा करने पर। भइग=हो गये। भो=हुआ। बीरा-रस-भंग=वीर रस का अन्त, वीर रस की इति श्री।

अर्थः—जब स्वयं चाहुवान (पृथ्वीराज) और कमधज (वीरचन्द) भिड़े, तब वहाँपर हाथी, घोड़े और चतुरंगिनी सेना भ्रमित हो गई और वीर रस की इतिश्री होगई।

गाथा

भौ बीरा रस भंगं, जंगं जुगतीय बीर सुभटाईं।
सद्धिर सुद्धिर सु घटं, सा-ठट्टई घट्टयौ भंगं ॥२७४॥

शब्दार्थः—जुगतीय=जागृत होने पर, उत्तेजित होने पर। सद्धिर=सधीर, धीर वीर। सुद्धिर सुघटं= सुन्दर शरीर धारी। सा-ठट्टई=वे करने लगे, उनका होने लगा। घट्टयौ-भंगं=शरीर नाश।

अर्थः—वीर योद्धाओं के युद्धार्थ सावधान होने पर वीर-रस की इति श्री हो गई और उस समय सुन्दर शरीर-धारी धीर वीरों के सुन्दर शरीरों का नाश हो गया।

अस्तमितं वर भानु॑, पायानौ परम संतोषं।
जानिज्जै जस वधुअं[१], नव चंदनं तिलकयौ दीयं ॥ २७५ ॥

प्रा० पा० १ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—अस्तमितं=अस्तहुआ। भानु॑=भानू, सूर्य। पायानौ=पयान, प्रयाण, लौटना। वधुअं=विधु, चन्द्रमा, या वधु। नव=नवेली, नव वधु, या नूतन।

अर्थः—सूर्यास्त होने के बाद वीरों को युद्ध स्थल से लोटने पर परम संतोष हुआ। उस समय स-चन्द्र-निशा से ऐसा भासित हुआ मानों नववधु ने भाल पर चन्दन का तिलक किया हो।

दोहा

निसि-गत बंछे भान बर, भँवर चक्कि अरु सूर।
मंतह मत्त पयान-गति, बर भारथ्थ-अँकूर ॥ २७६ ॥

शब्दार्थः—निसि-गत=रात्रि की समाप्ति। बंछे=चाहते। भान-वर=श्रेष्ठ सूर्य, श्रेष्ठ सूर्योदय। भँवर=भ्रमर। चक्कि=चक्रवाक। सूर=बहादुर। मंतह-मत्त=मतवाली मंत्रणा, उन्मत्तता युक्त मंत्रणा। पयान-गति=लौट जाने की हालत में भी, या रवाना होने के विषय में। भारथ-अँकूर=युद्धेच्छा अंकुरित।

अर्थः— रात्रि की समाप्ति और श्रेष्ठ सूर्योदय का होना भ्रमर, चक्रवाक और बहादुर ये तीनों सदा चाहते हैं। अतः रात्रि होने पर युद्ध-स्थल से लौट जाने पर भी वीरों में उन्मत्तता युक्त मंत्रणा और युद्धेच्छा होती रही।

कवित्त

कुमुद उघरि मूंदिय सु, बंधि सतपत्र प्रकारय।
चकिय चक्क बिच्छुरहि, चक्कि शशिवृत्त निहारय॥
जुवती-जन चढ़ि काम, जाहि कोतर तर पंखी।
अवृत्त वृत्त सुंदरिय, काम वढ्ढिय वर अंखी॥
नव नित्त हंस-हंसह मिलै, बिमल चंद उग्गयौ सु नभ।
सामंत सूर नृप रक्खि कै, करहि बीर विश्राम सभ॥२८७॥

शब्दार्थः— प्रकारय=प्राकार। चक्कि=चकित। जुवती-जन=युवास्त्रियों के पतियों में। चढि-काम=काम जागृत हुआ। जाहि=जाने लगे। कोतर-तर=कोटरों में। पंखी=पक्षी। अवृत= आवृत्त, लगातार। वृत्त सुंदरिय=सुन्दरियों का समूह। अंखी=आंखों में, नैत्रों में। नव-नित्त= हमेंशां नूतन बने रहने वाले प्रेमी-प्रेमिका। हंस-हंसह=हँस हँस कर। नृप-रक्खिकै=राजा को बचाने का उपाय सोचकर। सभ=सब।

अर्थः— कुमोदिनी खिल पड़ी, कमल ने प्राकाराकृति मूँदकर (भ्रमरों को) बंधन में कर लिया। चक्रवाक दम्पति बिछुड़ गये, शशिवृत्ता की चेष्टा चकित सी दिखाई दी, युवा स्त्रियों के पतियों में काम जागृत हो गया। पक्षी कोटरों में जा बसे। सुन्दरी-समूह के नैत्रों से लगातार काम वृद्धि का अनुभव होने लगा, सदा नूतन बने रहने वाले प्रेमी, प्रेमिकायें (छेला और छबीली स्त्रियें) एक दूसरे से हँस २ कर मिलने लगे, और आकाश पर निर्मल चन्द्रमां उदय हुआ। उसी समय बहादुर सामंतों ने राजा (पृथ्वीराज) की रक्षा के विषय में मंत्रणा की और निश्चय किया कि राजा को सकुशल रवाना करके ही हम सब विश्राम करेंगे।

गाथा

जै-जै घर चहुआनं[1], एकं होइ सब्थयौ सूरं।
को रक्खे[2] परमानं, अरि रक्खैं कढ्यौ-मच्छी॥ २७८॥

प्रा० पा० १ का० भीं० घ०। २ का० घ०।

शब्दार्थः—जै-जै=जाइये, जाइये। एकं-होइ=एक होकर। को=कौन। रक्खे-परिमानं=रक्षा कर सकता है। रक्खे=रहेंगे। कड्ढ्यौ-मच्छी=मस्ती को उतार कर।

अर्थ—हे चाहुवान नरेश (पृथ्वीराज)! आप घर लौट जाइये। उसके बाद हम सब बहादुर सामंत एक होकर युद्ध करेंगे। फिर देखें, शत्रु की कौन रक्षा कर सकता है? हम उसकी मस्ती को उतार कर ही रहेंगे।

दोहा

गोव्यंदं[1] प्रति व्याहं, सनमानं सूरयो वृत्ती।
अप-रक्खै अरि जुद्धं, रक्खै स्वामि मरनयौ अप्पं ॥ २७९ ॥

ग्रा० पा० १ घ०

शब्दार्थः—गोव्यंदं=गोविन्द, कृष्ण। प्रति=के साथ। सूरयो-वृत्ती=सूर वृत्ती, वीर वृत्ती, वृतधारी वीर। अप-रक्खै=आप धरा रक्खें। अरि-जुद्धं=शत्रु के साथ युद्ध। मरनयौ=मृत्यु। अप्पं=आप।

अर्थः—हे वृतधारी वीर (पृथ्वीराज)! आपका यह विवाह रुक्मणी के साथ कृष्ण का हुआ था उसी प्रकार हुआ है और वैसा ही आपका सम्मान रहा है। इसलिये आप शत्रु के साथ युद्ध को रहने दीजिये, यदि आप युद्ध में बने रहेंगे तो यह समझ लीजिये कि युद्ध-भूमि में आपने मृत्यु को बसा रक्खा है।

अप्प वृत्त इह सूर किय, सूर वृत्त चहआन।
स्वामि रहै लज्जै जलिनि, भौ वृत-वृत्तिय पान ॥ २८० ॥

शब्दार्थः—रहै=रह पाँय, धराशाई हों। जलनि=जननी। वृत-वृत्तिय=एक वृत धारी का वृत दूसरे व्रत धारी के। पाणि, हाथों में।

अर्थः—हे चाहुवान नरेश! आपकी प्रतिज्ञा का पालन हम सामन्तों ने किया है उसी प्रकार हमारी प्रतिज्ञा का पालन आपको करना चाहिये। एक दूसरे का व्रतपालन एक दूसरे के हाथों में है। हे स्वामी! यदि आप युद्ध-स्थल में रहते हैं [धराशायी हों] तो हमारी जननी लज्जित होती है (हमको नीचा देखना पड़ता है)।

गाथा

कालिन्दी तन-स्यामं, लग्गे-नथ्थि अगनतं स्यामं।
भय-अत्रि वृत्तिय तामं, अन्यं-जानि तत्तयो-सारं ॥ २८१ ॥

शब्दार्थ: —तन-स्यामं=श्याम वर्ण सलिल ! लग्गे-नथ्थि=नहीं लगता । अगनतं=अगाणत, विशेष । स्यामं=कालिख, कलुषित । भय-अवि=भय आगया, डर गये, डर कर हट गये । वृत्तिय=व्रतधारी । तामं=तैसे, उसी प्रकार । अन्यं-जानि=अन्य सब जानते हैं । तत्तयो-सारं=तेज लोहा ।

अर्थ:—कालिन्दी का शरीर श्याम वर्ण का है किन्तु उसे विशेष कलुषित नहीं कहा जा सकता । उसी प्रकार हे व्रतधारी वीर (पृथ्वीराज) ! आपके ऊपर डर कर हटने का कोई दोष नहीं लगा सकते; क्योंकि अन्य सभी आपके तेज-लोहास्त्र को जान गये हैं (आपकी शस्त्रख्याति संसार प्रसिद्ध है) ।

कवित्त

दुक्ख मानि सो रत्त, सुनहु[1] सामन्त सूर बर ।
चन्द उडग्गन काम, सर्‌यौ कहुँ दिक्खि सूर भर[2] ॥
भान काम नन सरे, अरुन जो होइ तेज बर ।
काम राम नन सरैं, हनू कुद्यौति लंक धर ॥
नन सरै काम मंगल सु विधि, जो मंगल-आक्रुत्त तप ।
सामंत सूर इम उच्चरैं, मोहि कढ़ि झुभ्भझुति अप ॥२८२॥
ग्रा० पा० १, घ० । २ पा० ।

शब्दार्थ:—सो-रत्त=उस रात्रि को । उडग्गन=उडगन, तारे । सर्‌यौ=बन पड़ा, सधा । दिक्खि=देखा गया । भान=भानु, सूर्य । नन=नहीं । सरैं=बनता । हनू=हनूमान । कुद्योति=कूदा । विधि=तरह । मंगल-आकृत=मंगलाकृति, अरुण वर्ण । इम=ऐसे । कढ़ि-मोहि=मुझे रवाना करके, चले जाने पर । झुभ्भझुति=जूझोगे, युद्ध करोगे । अप=आप, तुम ।

अर्थ:—उस रात्रि में सामंतों के इस प्रकार कहने पर दुःखी हो पृथ्वीराज कहने लगा:—हे बहादुर सामंतों सुनो क्या चंद्रमां का कार्य तारागण से हुआ है, सूर्य का काम क्या विशेष अरुणिमा कर सकती है, क्या रामचन्द्र का कार्य केवल हनुमान के लंका में कूद जाने से ही सधा है और क्या मंगल ग्रह का कार्य मंगलाकृत अरुणिमा से ही बन पड़ा है ? उसी प्रकार तुम्हारा यह कथन है, क्या मेरे चले जाने पर तुम युद्ध कर पाओगे ?

दोहा

मुहि कढ्ढिरु तुम रहौ बर, जियत जांहि उन थान ।
ऐसी रीति अरीत वर, पढ्ढी नहँ चहुआन ॥ २८३ ॥

शब्दार्थः–मुहि=मुझे। कढ्ढिरु=विदा करके। उन-थान=अपने स्थान, घर, दिल्ली। पढ्ढी=पढा।

अर्थ—मुझे युद्ध भूमि से विदाकर के हे सामंतों! तुम युद्ध-स्थल में रहना चाहते हो। किन्तु तुम जानते हो कि युद्ध से हटकर जीवित घर जाने जैसी कुरीति का पाठ इस चाहुवान (पृथ्वीराज) ने कभी नहीं पढा।

गाथा

जम्मन मभिझ सुरंगं, सो जंपेव सूर तुम तत्तं।
दिन भौ रवि[1] संग्रामं, सम्मान दारेति एव गस्सं ॥ २८४ ॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः–जम्मन=जमुना, यमुना। मभझ=में। सुरंग=श्रेष्ठरंग। जंपेव=कहा। तत्तं=तत्व युक्त। दिन-भौ-रवि=दिवस और सूर्योदय होने पर। सम्मान-दारेति=सम्मान प्राप्तकर्ता। एव=यह। गस्सं=ग्रसेगा

अर्थः—हे बहादुरों! यमुना के रंग के समान तुमने मेरे लिये तत्व युक्त दृष्टांत कहा है; किन्तु दिन के साथ २ सूर्योदय होने पर देखोगे कि यह सम्मान प्राप्तकर्ता (पृथ्वीराज) किस प्रकार शत्रुओं को ग्रसता है?

विष लग्गा नृप बैनं, हालाहलयौ तप्पयो सूरं।
उत्तर दिय नहँ राजं, गामनि सभा वुद्धि जन बत्तं ॥२८५॥

शब्दार्थः–हालाहलयौ=भयानक। तप्पयो=तेज प्रसारित किया सूरं=सूर्य। गामनि-सभा=ग्रामीणों की सभा। बुद्धिजनबत्तं=बुद्धिमानों की बात, बुद्धिमानों का ढंग, बुद्धिमानों का मौन गृहण करना।

अर्थः—सूर्य के समान प्रखर तेज प्रसारित करते हुए राजा (पृथ्वीराज) ने जो वचन कहे वे सामंतों को विष तुल्य लगे; किन्तु उन्होंने इस प्रकार राजा को उत्तर नहीं दिया जिस प्रकार ग्राम्य सभा (देहातियों की पंचायत) में बुद्धिमान मौन गृहण कर लेता है।

कवित्त

बार बार भर कहिग, राज मानै न तत्त-मत।
बीरचंद ता अग्ग, चलै प्रथिराज हारि-गत ॥

मो भज्जै अरि गज्ज, मोहि गज्जे अरि भज्जै ।
ता छत्री कुल लज्ज, छत्रधरि सिर-हति लज्जै ॥
जं होइ प्रात दिक्खौ सकल, महन रंभ इत्तौ करौं ।
चहुआन चिंत चिंतह सुगति[1], वर भारत गुन विस्तरौं ॥२८६॥

[1] मो० पा० १, का० घ० ।

शब्दार्थः—तत्त-मत=तत्व युक्त बुद्धिवाला, या-तत्व मुक्त मंत्रणा । हारि-गत=पराजय की तरह । मो-भज्जै=मेरे भाग जाने पर । गज्ज=गर्जना करेंगे, दर्प वाक्य कहेंगे मोहि-गज्जै=मेरे गर्जना करने पर भज्जै=भाग जाते । ता-छत्री=उस क्षत्रिय का । सिर-हति=सिरपर । जं=जैसा । महन रंभ=महान आरम्भ, भयानक युद्ध । इत्तौ=इतना, ऐसा । चिंत=चिन्तन करने पर ।

अर्थः—फिर भी सामंतों ने विदा होने के लिये बार २ कहा; किन्तु तत्व-युक्त बुद्धि-वाले राजा (पृथ्वीराज) ने उनकी बात नहीं मानी और उसने कहा वीरचन्द के सामने से पृथ्वीराज, पराजित व्यक्ति की तरह चला जाय तो जो शत्रु मेरी गर्जना मात्र से भाग जाते हैं वे ही गर्जना करने लगेंगे (दर्प वाक्य कहेंगे) इस प्रकार भाग जाने वाले क्षत्रिय का वंश और उसका छत्र धारण करना लज्जास्पद है, अतः जैसा भी होगा, प्रातः देखा जायगा कि मैं कैसा भयानक युद्ध करता हूँ । मैं चाहुवान, श्रेष्ठ महाभारत के युद्ध-समय के वीरों के समान गुण-विस्तार कर सकूंगा और मेरा चिंतन करने मात्र से शत्रु मोक्ष का चिंतन करने लगेंगे ।

गाथा

विस्तरि गुनयो प्रातं, रत्तं रत्त सूर बीरायं ।
चावद्दिसि वर वीरं, सा धीरं मत्तयो वीर ॥ २८७ ॥

शब्दार्थः—रत्तं=अरुणवर्ण । सूर=सूर्य । बीरायं=वीर । चावद्दिसि=चारों ओर । सा=वही । धीरं=धैर्य धारण कर्ता । मत्तयो=मतवाला । वीरं=वीर ।

अर्थः—जब प्रातः काल सूर्य और वीर दोनों अरुणिमा युक्त होंगे तब मैं अपने वीर गुण का विस्तार करूँगा; क्योंकि चारों ओर से श्रेष्ठ वीरों द्वारा घेरेजाने पर भी जो धैर्य को धारण करता है वही वीर मतवाला कहाजाता है ।

मत्ति-वीर संमुह भिरन, कठिन शस्त्र अति पान ।
भान पयानह दीह गुन, लोह पयान पयान ॥ २८८ ॥

शब्दार्थ:—मत्ता-बीर=मतवाला वीर। कठिन=दृढ़। पान=पाणि, हाथ। भान=भानु, सूर्य। पयानह=चलपड़ा। लोह=लोहा।

अर्थ:—उस मतवाले वीर (पृथ्वीराज) ने शत्रुओं के साथ भिड़ने के लिये शस्त्र को हाथ में दृढ़ता से पकड़ लिया, उधर नभ मण्डल पर उदय होकर सूर्य और इधर युद्धस्थल में उसका लोहा साथ २ ही चला पड़े।

गाथा

अंकुर बीर सु भट्टं, अघटं-घट्टाइ क्रोधयो कलहं।
हय-मुक्क्या-चलि बंधी, निड्डुर[1] सथ्थैव[2]सठ्ठयो[3] बीरं ॥ २८६ ॥

ग्रा० पा० १, २, पा० । ३ घ० का०।

शब्दार्थ:—अघटं-घट्टाइ-अघटित घटना घटी। हय-मुक्क्या=घोड़े बढाये। चलि-बंधी=चाल बांधकर, पंक्तिबद्ध होकर। सथ्थैव=साथ में। सठ्ठयो=साठ।

शब्दार्थ:—उसी समय सामंतों में वीर रस अंकुरित हो गया और क्रोधकारी कलह (युद्ध) की अघटित घटना घटने लगी। निड्डुरराय ने सेना को पंक्तिबद्ध करके अपने घोड़े को बढ़ाया, यह देखकर उसकी सहायतार्थ साठ सामंत साथ में हो गये।

दोहा

वीर-बीर बीराधि बर, कढे लोह तजि छोह।
सूर बीर सामंत गति, नहिं माया नहिं मोह ॥ २६० ॥

शब्दार्थ:—बीर-बीर=वीर वीरचंद कमधज्ज। तजि-छोह=उमंग रहित होकर, निरुत्साही होकर।

अर्थ:—उधर से वीरवर वीरचन्द कमधज्ज और उसके श्रेष्ठ वीरों ने भी शस्त्र उठाये; किन्तु वे निरुत्साही थे, परन्तु पृथ्वीराज के धैर्यवान सामंतों में न तो सांसारिक मोह था, न वे माया में ही लिप्त थे (वे प्राणों पर खेल कर युद्ध करते थे)।

कवित्त

हको हक्क[1] बज्जिय[2] प्रकार, सार-बज्जै-ति[3] बीर बर।
सुबुधि बुद्ध-आबुद्ध, मत्त लग्गै असि वर झर ॥
इकत रुद्ध आरुद्ध, नद नारद अधिकारिय।

रंभ सिंभ आरंभ, सिद्ध बुद्ध दै तारिय
धनि-धन्नि[४] सूर दिन धनित बल, छल छत्रिय अंकूर रजि ।
कलहंत काल कालह विषम, सुबर बीर बीरत्त रजि ।।२६१।।
ग्रा० पा० १, ३, ४ पा० । २ भीं० घ० ।

शब्दार्थ:—हको हक्क=हाक पर हाक, हुँकार पर हुँकार । बज्जिय प्रकार=वज्र तुल्य । सार-तज्जै-ति= उन्होंने लोहा बजाया, उन्होंने लोहा झाड़ा । सु बुद्धि=सु बुद्ध, बुद्धिमान । दुद्ध-आबुद्ध=बुद्धि, अबुद्धि, सुध बुध रहित । मत्त=मस्ती, मतवाले । झर=झड़ी । ईकत=एक । रुद्ध=रोंधे जाते । आरुद्ध=अरुद्ध घेरे नहीं जाते, घेरे से बाहर हो जाते । नद्द=नाद । अधिकारिय=दत्त । रंभ=रंभा । सिंभ=शंभू, शिव । आरम्भ=आना शुरू हुआ, आ पहुंचे । धनि-धन्नि=धन्य है ! धन्य है !! । धनित=धन्य हो । बल=बल प्रदर्शन ।

अर्थ:—हुंकार पर हुँकार करते हुए श्रेष्ठ वीर वज्र सदृश लोहा बरसाने लगे। बुद्धिमान होते हुए भी वे मस्ती में सुध बुध भूल कर खड्ग प्रहार कर रहे थे। एक रोंधा जाता था तो दूसरा घेरे से बाहर निकल जाता था। उस समय नारद भी संगीत के अधिकारी (दत्त) बनकर वीणा वादन कर रहे थे। रंभा और शिव भी युद्ध भूमि में आ पहुँचे एवं बुद्धिमान सिद्ध (या सिद्ध और विबुध देवता भी तालियां बजाने लगे)। धन्य है, उन बहादुरों को जिन्होंने उस दिन बल प्रदर्शन कर क्षत्रियत्व को अंकुरित कर दिया था, उस कलह समय में वे विषम काल के समान दिखाई पड़ते थे। उस श्रेष्ठ वीरों में वीरत्व शोभा पा रहा था।

बीर-रज्जि बीराधि-भर, बलिय बीर-गन सज्जि ।
सुबर सूर सामंत के, मंत कलह-तुटि बज्जि ।। २६२ ।।

शब्दार्थ:—बीर-रज्जि=बीरचंद सुशोभित था । बीराधि-भर=श्रेष्ठ योद्धा । बीर-गन=बीर समुह । सज्जि=सजे, तत्पर हुए । सुबर-सुर=सबल-वीर । मंत=मंत, मतवाले । कलह-तुटि=युद्ध में टूट पड़े । बज्जि=वज्र तुल्य ।

अर्थ:—श्रेष्ठ वीर चंद कमधज युद्ध-स्थल में सुशोभित था और उसका बलवान वीर-समूह भी युद्ध में सजग था और इधर से भी सबलवीर (पृथ्वीराज) के मतवाले सामंत युद्ध में वज्र तुल्य हो कर टूट पड़े ।

मंत कलइ बज्जिय-तुटहि, घटहि अघट तुटि-मंस ।
सुबर सूर सामंत कौ, बर उड्डै तन अंस ।। २६३ ।।

शब्दार्थः—मंत कलह=युद्ध के मतवाले । बज्जिय-तुटहि=वज्र तुल्य टूट पड़ने से । घटहि-अघटित घटना घटने लगी । तुटि-मंस=मांस टूटने लगा । उड्डै=उड़ने लगी । तन-अंस=शरीर से अंश स्वरूपी आत्मा ।

अर्थः—युद्ध के उन मतवालों के वज्र तुल्य टूट पड़ने से अघटित घटना घटने लगी और मांस के टुकड़े टूट २ कर गिरने लगे । बलवान वीर सामंतों की देह से अंश-स्वरूपी आत्मा उड़ २ कर जाने लगी ।

हंसति उड्डहि अंस-दै, कंसत के सिय मान[1] ।।
बर पंखिय पावै न जन, बर छुट्टै करिवान ।।२६४।।

प्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—हंसति=हंस, प्राण पखेरु । अंस-दे=दैविक अंश । कंसत=कंस । केसि=केशव, कृष्ण । मान=तुल्य । पंखिय=पक्षी । पावै-न-जन=नहीं जा पाते, विचरण नहीं कर सकते । करि=हाथों से । वान=बाण ।

अर्थः—दैविक अंश-स्वरूपी प्राण-पखेरु इस प्रकार उड़ने लगे जैसे केशव (कृष्ण) ने कंस के प्राण पखेरु को उड़ाया था । वीरों के हाथों से इतने बाण छूट रहे थे कि उनके कारण नभ में पक्षी इधर उधर विचरण नहीं कर सकते थे ।

कवित्त

सूर संधि विधि करहि, क्रम्म संधी जम[1] तोरहि ।
इक्क लक्ख आहुटहि, एक लक्खं रन-मोरहि ।।
सुबर वीर मिथ्था विवाद, भार[2] भारथ्थह खंडै ।
बिच्चि बीर गजराज, बाद अंकुस को मंडै ।।
कलहंत केलि काली विषम, जुद्ध देह देही सु गति ।
सामंत सूर भीखम बलह, स्वामि काज लग्गेति मति ।।२६४।।

प्रा० पा० १,२, सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—संधि=साधक, साधन । विधि-करहि=तरीका अपनाते हुए । क्रम्म=कर्म । संधी=

साधन, तरीके। जम=यम। तोरहि=तोड़ देते। इक्क=एक-ही वीर। लक्ख=लाखों से। आहुटहि=अड़ते, भिड़ते। एक=एक ही वीर। लक्खं=लाखों को। रन-मोरहि=युद्ध से मोड़ देते। सुबर=श्रेष्ठ। वीर=वीरचंद। मिथ्या=मिथ्या,वृथा। भार भारथ्थह=युद्ध के भार स्वरूपी। खंडै=नाश कराना। बिच्चि=बेचकर। बाद=वाद विवाद, हठ, अभिमान वाक्य। मंडे=करता। कलहंत-केलि=कलह क्रीड़ा। जुद्ध देह=युद्ध में देते। देही=देहधारियों को। भीखम=भीष्म। लग्गे=लगा रक्खी।

अर्थः—वे वीर युद्ध साधन के तरीके को अपनाकर कर्म द्वारा यमबंधन के तरीकों को तोड़ देते थे। एक २ वीर लाखों से भिड़ता था और लाखों को युद्ध भूमि से मोड़ देता (भगा देता) था। श्रेष्ठ वीरचन्द का वह युद्ध-विवाद और युद्ध में भार-स्वरूपी अपने वीरों का नाश कराना इस प्रकार वृथा था। जैसे हाथी को बेचकर केवल अंकुश पर गर्व करना हो (शशिवृत्ता का अपहरण हो जाने पर वृथा काट मार करना) पृथ्वीराज के वीर सामंतों की कलह-क्रीड़ा कालिका की भयानक युद्ध-क्रीड़ा तुल्य थी। जिसके द्वारा वे सामंत शत्रु काया को मोक्ष देते हुए भीष्म तुल्य बल प्रदर्शित करने लगे और स्वामी के कार्य-साधन में अपनी मति लगादी।

दोहा

स्वामि काज लग्गे सुमति, खंडि खंडि[१] धर धार।
हार हार मंडे हियै, गुथ्थि हार हर हार॥ २९६॥

ग्रा० पा० १ पा० का०।

शब्दार्थः—सुमति=श्रेष्ठ मतिवाले, बुद्धिमान। धर=धड़, रुंड। धार=धारा, खड्ग। हार हार=अनेक हारों से, अनेक मुंडमालाओं से। मंडे हियै=हृदय का मंडन किया। गुथ्थि-हार=हार को गूंथते हुए, मुंडमाला को पिरोते हुए। हर-हार=शिव हार गये, शिव थक गये, शिव श्रमित हो गये।

अर्थः—वीर-रुंडों को खड्ग द्वारा खंड २ करते हुए वे बुद्धिमान सामंत स्वामी के कार्य में लग रहे थे और शिव, मुण्डमालाओं को पिरोते हुए श्रमित हो गये थे एवं अनेकों मुण्डमालाओं से उन्होंने अपने वक्षस्थल को मंडित कर लिया था।

गाथा

सिर तुट्टै खुर तारं, लारं तुट्टि बीरयो सिरयं।
धर तुट्टै प्राहारं, सा बज्जै तारयं तारं॥ २९७॥

शब्दार्थः—खुर तारं=घोड़ों की पैर की नालें। लारं=लार, मुह के झाग, फेन। तुट्टि=पड़ते। धर=धड़, रुंड। प्राहारं=प्रहार। सा=वह। बज्जै=बजरहे थे, झंकार कर रहे थे। तारयं-तारं=तंत्री के तारों के समान।

अर्थः—घोड़ों की नालों के प्रहार से शत्रुओं के सिर टूट रहे थे और उड़ते हुए घोड़ों के मुंह के झाग वीरों के सिरपर पड़ते थे एवं शस्त्र, तत्री के तार के झंकार के तुल्य बजते थे और उनके प्रहार से रुंड कट कटकर गिर रहे थे।

तारं तार प्रहारं, देवल द्वाराय[1] झल्लरी वज्जं।
बज्जंते सिर सारं, प्राहारं पंच घटि कांई॥ २६८॥

ग्रा० पा० १ घ०।

शब्दार्थः—देवल=देवालय। द्वाराय=द्वार पर। झल्लरी=झालरें। बज्जंते=बजते हुए। घटिकांई=घड़ी।

अर्थः—प्रहार के साथ शस्त्र, तंत्री के समान इस प्रकार झंकृत हो रहे थे, मानों देवालय के द्वार पर झालरें बजती हों। उसी प्रकार सिर पर लोह-प्रहार होते हुए (होते हुए) पांच घड़ी हो गई।

कवित्त

घटिय पंच दिन घट्यो, उमरि आरब्ब पुंज खरि।
इक्क[1] दिना दोउ सेन, मोह छंड्यौ क्म्मीनि करि॥
बान गंग पत्तयौ, बीर ग्यारसि दिन सोमं।
सूर धीर सामंत, सूर उड्डे रन रोमं॥
क्रत काम काज-सांई विभ्रम, दल दंतिय पंतिय गमै॥
सामंत सूर सांई विभ्रम, रोम रोम रज्जी[2] भ्रमै॥ २६६॥

ग्रा० पा० १ पा०। २ घ०।

शब्दार्थः—घट्यो=घट गया, व्यतीत हो गया। उमरि=उमड़कर। आरब्ब-पुंज=अरबी घोड़ों के समूह। खरि=खड़ा, बढ़ाया। इक्क-दिना=उस दिन। क्म्मनि-करि=स्वकर्म का पालन करके। पत्तयौ=पहुंचा। बीर=वीर पृथ्वीराज। उड्डे=उड़ा दिये, काटकर फेक दिये। रोमं=रोम २, प्रत्येक

कतकाम=कृत्य काम, कार्य सफल, कार्य कुशल। काज-सांई=स्वामी के कार्य के लिये। त्रिभ्रम=भ्रांति पैदा करदी। दल-दंतिय=गज सेना। पंतिय=पंक्ति। गमै=खो दी, नष्ट करदी। रोम-रोम=प्रत्येक-अंग। रज्जी-भ्रमै=रजोगुण भ्रमता, रजोगुण बसता, रजोगुण भासित होता।

अर्थ:—उस दिन की घड़ियों में से पांच घड़ी व्यतीत हो जाने पर वीरों ने झपटकर अरबी घोड़ों के समूह को बढ़ाया और उस दिन दोनों सेनाओं ने स्व कर्म का पालन करते हुए प्राणों के मोह को छोड़ दिया। वीर पृथ्वीराज युद्ध करता हुआ एकादशी सोमवार को बाण गंगा के तट तक पहुँच गया, धैर्य धारी वीर सामंतों ने भी विपक्षी-वीरों के प्रत्येक अंग को काट दिया। उन्होंने कार्य कुशल स्वामी के कार्य के लिये गज-सेना की पंक्ति को खत्म करते हुए भ्रांति पैदा करदी। उस समय सामंतों और स्वामी के प्रत्येक अंग में रजोगुण मालूम होता था तथा सबको उनके कारण भ्रम हो जाता था।

दोहा

रोम राज रज्जी भ्रमहि, थोर थनी ठुँठि[1] बाल।
उतकंठा उतकंठ की, ते पुज्जी प्रतिपाल ॥ ३०० ॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ:—रोम राज=राजा के रोम २ में, राजा के प्रत्येक अङ्ग में। रज्जी=रजोगुण। थोर थनी=छोटे २ कुचोंवाली, शशिव्रता। ठुँठि=ठिठक गई। उतकंठा=उत्कंठा, अभिलाषा, इच्छा। उतकंठ=अभिलाषा रखने वाली। पुज्जी=पूर्ण की।

अर्थ:—जिस राजा (पृथ्वीराज) के प्रत्येक अङ्ग में रजोगुण भासित होता था, उसकी ओर छोटे स्तनों वाली (शशिव्रता) ठिठक कर देखने लगतीथी। उस (कुमारी) की इच्छा को राजा ने प्रेम का पालन कर पूर्ण करदी। (उसके प्रेम ने उसे युद्ध भूमि छोड़ने को बाध्य कर दिया)।

साटक

सोता[1] से उतकंठ रंभति गुना, रंभा अरंभा बरं।
संधं बिद्धि सु सुद्ध-कारन-मिते, देवंगना सुंदरी ॥
जा बंदै मिनि चंद कारन मिते, निर्भासितं भासितं।
पाखंडं तजि लीन सूरति बरं, आरंभ पा रंभनं ॥३०१॥

ग्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थः—सोता=श्रोता। से=सहित, समान। उतकंठ=अभिलाषा। रंमति-गुना=रंभा के समान गुणों वाली। अरंभा=युद्धारंभ द्वारा। वरं=वरण की। संधं-विद्धि=विधि पूर्वक साध दिया। सुद्ध-कारन-मिते=मित्र (प्यारे) के प्रति शुद्ध हेतु। जा=जिसे। बदे=वंदना करता, नत मस्तक होता। मिति=थोड़ा, तुच्छ। कारन-मिते=मित्र (प्यारे) प्राप्ति का हेतु। निर्भासितं=अप्रगट। भासितं=प्रगट। पाखंडं=पाखंड, शृंगारी विम्डबना। लीन=लिया, प्राप्त किया। सूरति=सू'त, स्वरूप। बरं=बर, (प्यारे) को। आरंभ=युद्ध के प्रारम्भ में, युद्ध की शुरुआत में। पा-रंभ-नं=उस रंभा स्वरूपी कुमारी ने प्राप्त कर लिया था।

अर्थः—अभिलाषा की स्रोत, रंभा के समान गुणों वाली उस कुमारी का वरण महान युद्धारंभ कर पृथ्वीराज ने किया, उस देवाङ्गना तुल्य सुन्दरी का अपने मित्र (प्यारे पृथ्वीराज) के प्रति जो शुद्ध हेतु था उसे विधि पूर्वक उसने साध दिया [पूर्ण किया], जिसकी प्रभा को देखकर चन्द्रमां भी उसके समक्ष नत मस्तक था। उसका मित्र (प्यारे) प्राप्ति का हेतु, अप्रगट और प्रगट रूप में था (काम और लज्जा उसमें समान थी)। वह शृंगार की विडम्बना से रहित, श्रेष्ठ स्वरूप को प्राप्त किये हुए थी, और अपने इच्छित वर (प्यारे पृथ्वीराज) को युद्धारंभ के द्वारा उस रंभा स्वरूपी (कुमारी शशिव्रत्ता) ने प्राप्त कर लिया था।

गाथा

आरम्भा[1] प्रारम्भौ, उतकंठा क्रिनयौ वृतयं।
साधा धरी सु धरियं, रन छुट्टै तीनयौ पनयं ॥३०२॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—आरम्भा-प्रारम्भौ=युद्धारम्भ से पूर्व। क्रिनयौ=किया। वृतयं=व्रत। साधा=साध दिया, पूर्ण कर दिया। धरी सु धरियं=अर्द्धाङ्ग में धर ली, अर्धाङ्ग में स्थान देकर ही रहा। रन-छुट्टै=युद्ध से हटा। तीनयौ=उसी के। पनयं=प्रण के कारण।

अर्थः—युद्धारम्भ से पूर्व ही अभिलाषा और व्रत, कुमारी शशिवृता ने ग्रहण किया था। उसे राजा (पृथ्वीराज) ने पूर्ण किया और अर्धाङ्ग में उसे स्थान दिया और उसी की प्रेम-प्रतिज्ञा को निभाने के लिये राजा ने युद्ध से हटने की इच्छा की।

दोहा

वालप्पन जुव्वपनह गति, कथतिय पन-हति काज।
भर-कट्टै त्रप-राज गुन, नह चल्लै प्रथिराज ॥३०३

शब्दार्थः—बालप्पन=बाला (शशिव्रता) का प्रण। जुव्वपनह=युवापन, यौवन। कथतिय=कहा जाता। पन-हति=प्रण भंग, प्रतिज्ञा भंग। भर-कड्ढ=सामन्त युद्ध से हटाना चाहते थे। न्रप-राज=राजाओं का राजा (पृथ्वीराज)। गुन=सोच कर। नह-चल्ले=नहीं हटा।

अर्थः—बाला (शशिवृता) की प्रेम-प्रतिज्ञा और पृथ्वीराज का यौवन ही उसके युद्ध से नहीं हटने की प्रतिज्ञा-भंग का कारण कहा जाता है। सामन्त-गण यद्यपि राजा को युद्ध भूमि से हटाने का बहुत प्रयत्न कर चुके थे लेकिन राजाओं का राजा (पृथ्वीराज) वीर-प्रतिज्ञा को सोचकर नहीं हटता था।

नह चल्लै पृथिराज रिन, लज्ज लपट्टिय पाइ।
वय जोरै कर हथ्थ दो, चलि संभरिवै राइ ॥३०४॥

शब्दार्थः—रिन=रण से, युद्ध से। लज्ज=लज्जा। लपट्टिय=पाइ=पैरों से लिपट गई, पैर जकड़ दिये। वय=उम्र, तरुणावस्था। हथ्थ=हाथ। चलि=चलिये, घर को चलिये। संभरिवै-राइ=संभरेश्वर।

अर्थः—क्षत्रियत्व की लज्जा से पैर जकड़े हुए थे। इसी लिये पृथ्वीराज युद्ध से नहीं हटा। यह देखकर उसकी तरुणावस्था ने हाथ जोड़ कर उसे निवेदन (बाध्य) किया कि हे संभरेश्वर ! आप मेरा कथन स्वीकृत करके घर को चलिये।

लज्ज परब्बत ह्वै रही, वै न तजै नृप पास।
दूहूं बीर मंतन सुबुधि, अति-गत्तिय रति त्रास ॥ ३०५॥

ग्रा० पा० १ का० पा०।

शब्दार्थः—परब्बत=पर्वत। ह्वै रही=हो रही थी। न्रप-पास=राजा के समीप, राजा के समक्ष। दूहूँ=दोनों की। मंतन=मंत्रणा। अति-गत्तिय=अधिकतर (विशेष विचारणीय)। रति=प्रेम। त्रास=डर।

अर्थः—युद्ध से हटने में पर्वत के समान लज्जा बाधक थी। इधर तरुणावस्था का प्रश्न भी राजा के समक्ष था। उस बुद्धिमान वीर (पृथ्वीराज) के लिये दोनों की मंत्रणा विचारणीय थी। एक (वय) की मंत्रणा में प्रेम और दूसरी (लज्जा) की मंत्रणा अस्वीकृत करने में निर्भयता का ह्रास था।

फिरि बुल्ली लज्जी सुनहि, हों मंडन तन बीर।
मो बिन इक्कै काज न्रप, बुद्धि न आवै तीर ॥ ३०६॥

शब्दार्थः—फिरि=फिर । बुल्ली=बोली, कहा । लज्जी=लज्जा । हों=मैं । इक्के=एक भी, कोई भी । तीर=समीप ।

अर्थः— फिर लज्जा ने वय से कहा—मैं वीरों के शरीर की मंडन (शोभा) स्वरूप हूँ। मेरे बिना राजाओं का कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता और मेरे बिना बुद्धि भी उनके समीप नहीं ठहरती।

तूं वै एकह-पन रहै, रंग कसूंभ प्रमान ।
हों नन छंड़ों पास तुम्र, तीनों पनह समान ॥ ३०७ ॥

शब्दार्थः—एकह-पन=एक ही रंग में । कसूंभ=कुसुंभे । प्रमान=समान । हों-नन=मैं नहीं । छंडो=छोड़ती । पास-तुम्र=तेरे समीप रहते हुए भी । तीनों-पनह=तीन बातें (दान, खड्ग और स्वरूप)।

अर्थः—हे वय ! तू एकमात्र कुसुंभे के रंग की तरह अच्छी बनी रहती है; किन्तु मैं तेरे समीप रहती हुई भी तीन बातों (दान, खड्ग, और स्वरूप) को नहीं छोड़ती ।

तूं लज्जी मो सथ्थ है, दान खग्ग अरु रूप ।
मों-चल्लै तीनों चलै, संची चवै न भूप[1] ॥ ३०८ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—मों-चल्लै=मेरे चले जाने पर, वृद्ध होने पर । तीनों=तृष्णा के कारण उदारता, निर्बलता के कारण खड्ग धारण, और वृद्धत्व के कारण सौंदर्य । चलैं=चले जाते, नहीं रहते । संची=सांच, सत्य । चवै=कहती । भूप=राजा को ।

अर्थः—वय ने कहा:— हे लज्जा ! तू दान, खड्ग और स्वरूप को लिये हुए मेरे साथ है; किन्तु जब मैं तरुणत्व से परे होती हूँ (वृद्धत्व को पा लेती हूँ) तब तीनों (दान, खड्ग और स्वरूप) में बाधक हो जाती हूँ यह सच्ची बात तू राजा को क्यों नहीं कहती ?

सुन रे वै लज्जी चवै, हूं मंडन नरलोइ ।
मो बिन अप्प न लभ्भि[1] है, नर-त्रिभास न होइ ॥ ३०९ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—नरलोइ=नरलोक । अप्प=आपा, शक्ति । लभ्भि है=प्राप्तकर सकता । नर-त्रिभास=मनुष्यत्वका आभास, प्रसिद्धी ।

अर्थः—तब लज्जा ने कहाः— हे वय ! सुन, मैं नर-लोक की मंडन स्वरूपा हूँ। मेरे बिना मनुष्य शक्ति नहीं पा सकते और न मनुष्यत्व का आभास ही हो पाता है (मनुष्य प्रसिद्धी को नहीं पा सकता)।

बै बुल्ली लज्जी कलह, क्रत कै काम सुनंत ।
इक्कैं—पल—पल मंडनौ, हों[1] रज्जन रज कंत ॥ ३१० ॥

प्रा० पा० १ भीं० घ० ।

शब्दार्थः—बैं=वय, उम्र । क्रत=कृत्य । कै=करने वाली । इक्कैं-पल-पल=एक पल मात्र में । मंडनो=मंडन करने वाली । रज्जन=राजाओं में । रज-कंत=राजसी कांति, राजसी तेज ।

अर्थः—वय ने कहा— हे लज्जा ! तेरा काम कलह-कृत्य करना सुना गया है; किन्तु मैं ही ऐसी हूँ जो राजाओं के शरीर में राजसी तेज का पल पल में मण्डन करती रहती हूँ।

तो[1] लज्जी सच्ची चवै, तत लगि ध्रंम प्रकार[2] ।
आवृत्तह गुन भ्रत्त किय, जोग सुंहंदा चार ॥ ३११ ॥

प्रा० पा० १, पा० । २, सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—तत=तत्व । लगि=लगा हुआ, सम्बन्धित । ध्रंम=धर्म से । आवृत्तह=अड़ते हुए, युद्ध समय । भ्रत्त-किय=सेवकों ने किया, सामंतों ने किया । जोग=योगियों सी । सुहंदा=इनकी । चार=चलन, गति ।

अर्थः—हे लज्जा ! फिर भी तेरा कहना सत्य है; जिस प्रकार धर्म से तत्व का संवंध है उसी प्रकार युद्ध-समय में राजा के सामंत (राजा के प्रेम में बँधे हुए) वैसा ही कृत्य करते हैं, इनकी गति योगियों सी है । (ये मोक्ष प्रिय हैं)।

अग्गि-पान सामंत बल, ध्रत-धीरत्तन जोध ।
शस्त्र लग्गि लग्गै-नमन, तउन पत्त[1] पति जोध ॥ ३१२ ॥

प्रा० पा० १, सं० ।

शब्दार्थः—अग्गि-पान=आगे पाये गये, अग्र भाग में देखे गये । बल=बलि, बलवान । ध्रत-धीरत्तन=धैर्यधारी । जोध=योद्धा, वीर । शस्त्र लग्गि=शस्त्र लगने पर । लग्गे-नमन=नमने लगे, झुकने लगे, धराशाई होने लगे । तउन=फिर भी नहीं । पत्त=रवाना हुआ । पति-जोध=वीर स्वामी, पृथ्वीराज ।

अर्थ:—बलवान वीर सामंत जो धैर्य धारी थे। वे युद्ध में राजा के अग्र भाग में [लड़ते हुए] देखे गये और शस्त्र लगने पर वे धराशायी होने लगे, फिर भी उनका वीर स्वामी (पृथ्वीराज) युद्ध स्थल से नहीं हटा।

त्रिपति घाइ[1] सूरन भए, त्रिपति उमापति मुंड।
उमा त्रिपति[2] रुधिरं भई, धनि सूरन भुज दंड ॥ ३१३ ॥

ग्रा० पा० १, पा० घ०। २, पा०।

शब्दार्थ:—त्रिपति=तृप्त। घाइ=घाव। उमा=पार्वती, शक्ति, देवी। धनि=धन्य है।

अर्थ:—धन्य है ! बहादुर सामंतों के भुज दंडों को जिनके बल पर वीर घावों से शिव मुण्ड संग्रह कर, और देवी रुधिर पी-पीकर तृप्त हो गई।

सूर सु धनि भुज दंड बल, बल विक्रम ज्यों पाय।
बल किन्नौ छल छंडयौ, बर बीरा-रस चाइ ॥३१४॥

शब्दार्थ:—ज्यों=जैसा, जैसे ही। छंड्यौ=छोड़कर। बीरा-रस=वीर रस। चाइ=चाहकर, इच्छाकरके।

अर्थ:—धन्य है, उन वीरों को और उनकी भुजाओं को जो पराक्रम प्राप्त करके (या विक्रम नरेश तुल्य बल प्राप्त करके) वीर रस के इच्छुक हो छल को छोड़ केवल बल को ही अपनाया।

कवित्त

बीर घाइ-आघाइ, बीर विरुझाइ सेन बर।
लक्ख लक्ख इक मद्धि, लक्खऊ भिरे[1] लक्ख झर ॥
दल-दंतिन विच्छुरैं, घाइ हैंवर किननंकहि[2]।
इक्क[3] लक्ख रुंधियै, खग्ग खग्गनि झननंकहि ॥
ठननंकि घंट घंटिय परहि, कज्जल कूट विवान भ्रम।
सामन्त सूर सामन्त-हथ, करहि चन्द अस्तुति-सु-क्रम ॥३१५॥

ग्रा० पा० १ का०। २ सर्व प्रति। ३ पा०।

शब्दार्थ:—घाइ-आघाइ=घावों से छक गये। विरुझाय=उलझ पड़े, जुट पड़े। लक्ख-झर=लाखों झड़ी की, लाखों प्रहार किये। दल-दंतिन=गजारोही सेना। विच्छुरैं=विछुड़ गई, दूर हो गई, हट गई। घाइ=घायल होकर, कटकर। हैवर=घोड़े। किननंकहि=कराहने लगे, सिसकने लगे।

रुंधिय=रोंधे गये। विवान=विड्डुज्याग्राहन, या वे वारुथ, हाथी। भ्रम=भ्रांति। सामंत–सूर=बहादुर सामंत। सामंत–हथ=विपक्षी वीरों को मारकर। अस्तुति-सु-क्रम=स्तुत्य कर्म।

अर्थः—वीर योद्धा सेना से जूझ कर घावों से छक गये। एक २ वीर लाखों की संख्या वाली सेना में प्रवेश कर लाखों से भिड़े और लाखों वार किये। गजारोही सेना युद्ध–भूमि से हट गई और घोड़े कट २ कर सिसक ने लगे। एक ही वीर लाखों को रोंधता हुआ तलवार से तलवार टकरा कर झनझनाने लगा। गज-घंटा और घंटिकायें ठनठनाने लगे। लुढकते हुए हाथियों से कज्जल गिरि शिखरों के ढ़हने की सी भ्रांति होने लगी। कवि (चन्द) कहता हैं, बहादुर सामन्त विपक्षी वीरों को मार २ कर स्तुत्य-कर्म करने लगे।

गाथा

रत[1]-घन-तन विश्रामं, संग्रामं[2] इक्क घरियाई[3] ॥
दावानल चहुआनं, सा बीरं बीर–बीराधी[4] ॥३१६॥

ग्रा० पा० १ का०। २, पा० घ का०। ३, का० भीं० घ०। ४, पा०।

शब्दार्थः—रत-घन-तन=बहुत से वीरों के शरीर रक्त रंजित होने पर, विशेष रक्तपात होने पर। विश्रामं=विश्राम लिया, रुका, बंद रहा। इक्क-घरियाई=एक घड़ी तक। सा=वह। बीरं=वीरचन्द। बीर–बीराधी=श्रेष्ठ वीर।

अर्थः—उस समय विशेष रक्तपात हो जाने से एक घड़ी तक युद्ध बंद रहा। फिर भी वह श्रेष्ठ वीर चाहुआन (पृथ्वीराज) वीरचन्द के लिये दावानल बना हुआ था।

बीराधं बर-बरयौ, सा भंज्जै आवनं गवनं।
मोहं सलाक भंजो, ना-सज्जं पंजरो दीवो[1] ॥३१७॥

ग्रा० पा० १, का०।

शब्दार्थः—बीराधं=श्रेष्ठ वीरों से। बर-बरयो=श्रेष्ठ। सा=वह। भंज्जै=तोड़ देने वाला। आवनं–गवनं=आवागमन। मोहं–सलाक=मोह शलाका, प्रेम की शलाका। भंजो=विँधगया। ना–सज्जं=नहीं सजा, पथिक न बनाया। पंजरो=तन, पंजर। दीवो=दिवि का, स्वर्ग का।

अर्थः—वह श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ वीर (पृथ्वीराज) विपक्षियों के आवागमन को तोड़ देने (मिटादेने) वाला था; किन्तु (शशिव्रता के) प्रेम की शलाका से

वह बिँधा हुआ था (उसे वह तोड़ नहीं सका) और इसीलिये उसने अपने तन-पिंजर को स्वर्गागमन का पथिक नहीं बनाया (युद्ध से विदा ली)।

गाथा

हम बहुलं वे-सतयं, बंधे-तेग मुक्कि न्रप-जाई[१] ।
जीवत सुनि कमधज्जं, नां-मुक्कै लख्खयौ-बलयं ॥ ३१८ ॥

ग्रा० पा० १ भीं० ।

शब्दार्थ:—बहुलं=बहुत हैं, काफी हैं। बे-सतयं=दो सौ। बंधे-तेग=तलवारें कसेंगे,तलवार पकड़ेंगे। मुक्कि=युद्ध छोड़कर। नृप-जाई=हे नरेश्वर आप जाइये। ना-मुक्कै=नहीं छोड़ेंगे। लक्खयौ-बलयं=लाखों का बल होते हुए भी, लाखों साथी होते हुए भी।

अर्थ:—राजा को विदा कर सामंतों ने कहा; आप युद्ध छोड़कर घर को जाइये हम आपके दौ सौ सामंत ही इन विपक्षियों के लिये काफी हैं। हम पीछे से तलवार पकड़ेंगे। इसके साथ लाखों वीरों का बल होते हुए भी, देखें; यह कमधज्ज (वीरचन्द) जीवित कैसे घर को लौट सकता है ?

यों रज्जे नृप भरयौ, सरनं-सूर सूर-गत्ताई[१] ।
उग्गंतो रवि मानं, यों रत्ताइ रत्तयो-मुखयं ॥ ३१९ ॥

ग्रा० पा० १ घ० पा० का० ।

शब्दार्थ:—सरनं-सूर=सूर्य स्वरूपी राजा के आश्रित । सूर-गत्ताई=उस सूर्य स्वरूपी राजा के चले जाने पर भी। उग्गंतो=उदय होते हुए। मानं=मान, संमान। रत्ताइ=अरुणिमा। रत्तयो-मुखयं=अरुण-वर्ण मुख।

अर्थ:—उस सूर्य-स्वरूपी राजा (पृथ्वीराज) के विदा हो जाने पर भी उसके आश्रित सामंत इस प्रकार मुख पर अरुणिमा लिए हुए सुशोभित हुए जिस प्रकार अप्रत्यक्ष उदय होते हुए सूर्य की अरुणिमा छाई रहती है।

दोहा

सत्थ सु तुझ्म कर्‌यौ सु सब, सुभट भट्ट बड़-भृत्य ।
क्यौंन जाइ जीवत घरह, कहा करौगे मृत्य ॥ ३२० ॥

शब्दार्थ:—सथ्थ=साथी। बड़-भृत्य=बड़े २ योद्धा। मृत्य=मरकर।

अर्थः—उसी समय निड्डुरराय ने वीरचन्द कमधज्ज को सावधान करते हुए कहा कि तेरे साथी बहादुर सामंत और बड़े २ योद्धा जो थे वे सब कट गये हैं। अब भी तूं जिन्दा घर को क्यों नहीं जाता ? वृथा मारे जाने से क्या हाथ लगेगा ?

दोहा

परे सुभर दोऊ दलन[1], निढ्ढुर देख्यौ बंध।
कौन भुजा बल जुध करै, सुनि कमधज्जअ मुंद्ध ॥३२१॥

ग्रा. पा. १ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—परे=धराशाई हुए, मारे गये। निढ्ढुर=निड्डुरराय। बंध=बंधु, भाई। मुंद्ध=मूढ, अयाने।

अर्थः—भाई (वीरचन्द) की ओर देखकर निड्डुरराय ने पुनः कहाः- दोनों सेनाओं के बहुत से सामंत मारे गये हैं। हैं वीर कमधज ! अब तू किस भुजा के बल पर युद्ध कर रहा है ?

बाला लै पृथिराज गय, गहिय-बग्ग कमधज्ज।
रोस-रीस बिरसोज भय, रह बाजे अन बज्ज ॥३२२॥

शब्दार्थः—बाला=शशिव्रता। गय=गया, चल पड़ा। गहिय-बग्ग=बाग पकड़ी, रास उठाई। रोस-रीस=क्रोध के आवेश में। बिरसोज=बिरसता, निरसता। भय=हुई, छा गई, छा दी। रह=रास्ते पर। अन=आकर। बज्ज=बजने लगे।

अर्थः—जब कमधज्ज (वीरचन्द) को ज्ञात हुआ कि बाला (शशिव्रता) को लेकर पृथ्वीराज युद्ध से चला गया है तब उसने अपने घोड़े की रास उठाई और क्रोधावेश के कारण युद्ध-स्थल में नीरसता छा दी और जिस रास्ते से पृथ्वीराज विदा हुआ उस रास्ते पर रण वाद्य बजने लगे।

कवित्त

अद्ध-कोस नृप अग्ग, बीर ठड्ढौ[1] करि बड्ढौ[2]।
मद समूह गजराज, छंडि पट्टै बल गड्ढौ ॥
ताज बंधि संकरिय, बीर बंध्यौ सु अष्ट कसि।
अरि न ठौर[3] छंडै न, क्रन्न मंडै दिल्लिय दिसि ॥
मनमत्थ महावत बद्धिअति, मन मत्तौ उन को धरै।
घन—घाइ रुधिर छुट्टै परे, अमर पुहप पूजा करै ॥ ३२३ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० का०। ३ भीं।

शब्दार्थः—अद्ध-कोस=आधा कोस। अग्ग=आगे जाकर। ठड्डौ=ठाड़ा हो गया, डट गया। करि=हाथी। वड्डौ=बढ़ा हो, आक्रमण किया हो। समूह=सामने। छंडि=छोड़ता हुआ, प्रवाहित करता हुआ। पट्टै=पट्टा, हाथी के सूंड में पकड़ाई जाने वाली तलवार। गड्डौ=गाढ़ा, दृढ़। संकरिय=शृंखला, जंजीर। बीर=वीरचन्द। बंध्यौ=बांधा, काबू में किया। अष्ट=हाथी के आक्रमण करने वाले आठ अंग (दो दाँत, तुंड, सूंड, चारों पैर। उसी प्रकार राजा के आठ कर्म दुष्टों को दंड देना, योग्य का सम्मान, प्रजा पालन, यज्ञादि द्वारा देवताओं को प्रसन्न करना, न्याय पूर्वक धन संग्रह, राजाओं को अधीन रखना, शत्रुओं को दबाना)। अरिंग=अड़ गया, अड़कर। ठोर=स्थान, युद्ध स्थल। छंडैंन=छोड़ता। कन्न=कांन। मंडे=लगा रक्खे। बढ्ढिअति=बढ़ा रहा था। मत्तौ=मतवाला। उन=उसे। को=कौन। धरै=पकड़ सकता, रोक सकता। घन-घाइ=विशेष घावों से छकगये। छुट्टै-परे=छूट पड़ा, बहगया। अमर=देवता। पुहप=पुष्प।

अर्थः—युद्ध-स्थल से विदाहोकर आधे कोस जाकर वह वीर नरेश्वर (पृथ्वीराज) फिर शत्रुओं से इस प्रकार लड़ने को उद्यत हो गया मानों मतवाला हाथी आक्रमण कर रहा हो। गजराज तुल्य वह राजा मद प्रवाहित करता हुआ शत्रु के सामने अपने पट्टे (तलवार) के बलपर दृढ़ बनारहा। उस समय वह लज्जा की दृढ़ शृंखला से बँधा हुआ था; किन्तु हाथी के आक्रमणकारी अष्टांग (दो दाँत, तुंड़, सूंड और चारों पैर) के तुल्य राजाओं के अष्ट कर्म (दुष्ट-दंडन, योग्य का सम्मान, प्रजापालन, यज्ञादि से देवताओं को प्रसन्न करना, न्याय पूर्वक धन संग्रह, राजाओं को अधीन रखना और शत्रुओं को दबाना) का पालन करने वाले इस राजा ने कर्मों के बलपर शत्रु वीरचन्द को कसकर दबा दिया, अड़ कर वह अपने स्थान को नहीं छोड़ रहा था। वह (मस्ती में) चौकन्ना होकर दिल्ली की तरफ अपने कान (ध्यान) लगाये हुए था। उस अड़ियल हाथी को कामदेव-रूपी महावत (दिल्ली की ओर) बढ़ा रहा था ऐसे मतवाले मन के हाथी को कौन पकड़ (रोक) सकता है? उसका सामना करने वाले बहुत से घावों से छक गये और रक्त बहने लगा- यह देखकर देवता भी उस (मतवाले पृथ्वीराज) पर पुष्प वर्षा कर पूजा करने लगे।

खूब राज प्रथिराज, खूब जैचंद बंध बर।
खूब सूर सामंत, खूब नृप सेन पंग बर॥

खूब सेन ढंढोरि, खूब झोरी-करि-डारिय ।
खूब खेत विधि-गाम, बान गंगा पथ झारिय ॥
आसेर आस छंड़िय नृपति, विपति संपत्ती जानि भर[1] ।
सुठिहार राज प्रथिराज कौ, धरे सबह चौँडोल घर ॥३२४॥

[1] ग्रा० पा० १, भीं, घ० ।

शब्दार्थ:—खूब=धन्य है । बंध=बंधु । पंग=पंगु, कन्नौजेश्वर । ढंढोरि=टटोल लिया, परख लिया । खूब=बहुतों को । झोरी-करि-डारिय=झोली में उठवाये । खेत=क्षेत्र । विधि-गाम=ब्रह्मगांव, (स्थान विशेष) । झारिय=मारकाट की, शस्त्र झड़ी की । आसेर=दुर्ग (दिल्ली) । आस=आशा । छंडिय=छोड़ दी । भर=भट, सामंतों ने । सुठिहार=सुँठालिया (मध्य प्रान्तान्तर्गत) । धरे=उठाया । चौं डोल=डोली ।

अर्थ:—धन्य है ! राजा पृथ्वीराज को, कन्नौजेश्वर, जयचन्द के भाई वीरचन्द को, पृथ्वीराज के बहादुर सामंतों को और पंगुराज (कन्नौजेश्वर) की श्रेष्ठ सेना को, जिन्होंने लड़कर एक दूसरे के सैन्य-बल को परख लिया, और बहुत से वीरों को झोली में उठाने योग्य (घायल) कर दिया । उस ब्रह्म-गांव-क्षेत्र को और बाण गंगा को भी धन्य है जिसके रास्ते पर मारकाट (शस्त्र झड़ी) हुई । वहां पर ऐसा भयानक युद्ध हुआ कि स्वयम् पृथ्वीराज ने भी अपने दिल्ली दुर्ग पर सकुशल पहुँचने की आशा छोड़ दी, फिर भी सामंतों ने उस आपत्ति को सुखद माना ।

युद्ध के अन्त में सुठिहार (मध्य प्रान्तान्तर्गत सुंठालिया) के राजा ने पृथ्वीराज और उसके सब घायल सामन्तों को उठाकर अपने यहाँ रक्खा (उपचार किया) ।

दोहा

डोला ग्यारह-दून-दस, एकादस तिन मद्धि ।
मद्धि अमोलिक सुन्दरी, काम विरामन संधि ॥ ३२५ ॥

शब्दार्थ:—डोला=डोलियें । ग्यारह-दून-दस=ग्यारह और दसदून (बीस) कुल इकतीस । अमोलिक=अमूल्य । काम-विरामन=कामदेव ने जिनमें विश्राम कर लिया है, जो काम की विश्राम स्थली सी थी । संधि=जिनकी अवस्था शैशवत्व और युवत्व की संधि को लिये हुए थी ।

अर्थ:—कुल इकतीस डोलियाँ थी उनमें से ग्यारह डोलियों में शैशवत्व और युवत्व

की संधि स्वरूपा कुमारी शशिवृत्ता और उसकी सहेलियां आदि जो काम की विश्राम स्थली के सदृश थीं, बैठी थीं।

डोला घाइन बढ्ढि नृप, बजि निसान त्रिघोष।
सब सामंत समंत[1] चढ़ि, विच सुन्दरी अदोष[2] ॥ ३२६ ॥

ग्रा० पा० १ घ०। २ पा०।

शब्दार्थः—बढ्ढि=बढाई। बजि=बजे। निसान=नक्कारे। त्रिघोष=जोरों से। समंत=मतवाले। अदोष=दोष रहित, विधि पूर्वक न गई, न व्याही गई।

अर्थः—राजा की आज्ञा से विजय के नक्कारे जोरों से बजवाकर आगे पीछे घायलों की डोलियाँ बढ़ाई गई और अपने मतवाले सामंतों सहित अश्वादि पर चढ़कर बीच में विधि पूर्वक नहीं व्याही गई (निर्दोष) कुमारी (शशिवृत्ता) की डोली को लेकर सब रवाना हुए।

गाथा

विच सुन्दरी अदोखं[1], दोखं-नैव बालयो मद्धिं।
तेरसि गुन अधिकारी, संपत्ते राजयो ग्रेहं ॥ ३२७ ॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति।

शब्दार्थ—अदोखं=अदोष, विधि पूर्वक न व्याही गई। दोखं-नैव=निर्दोष, अविवाहित। बालयो=बालायें, शशिवृत्ता को सहेलियां। मद्धिं=मध्म, बीच में। तेरसि=त्रयोदशी। गुन-अधिकारी=प्रवेश योग्य समझकर, बिना मूहूर्त भी अच्छा वासर समझकर। संपत्ते=पहुँचा। राजयो=राजा पृथ्वीराज। ग्रेहं=घर को, दिल्ली को।

अर्थः—बीच में विधि पूर्वक नहीं व्याही गई सुन्दरी शशिव्रता और उसकी अविवाहित सहेलियों को लेकर बिना मुहूत के भी शुभवासर त्रयोदशी के दिन पृथ्वीराज दिल्ली पहुँचा।

दोहा

इन-परंत पत्तो सुग्रह, सुबर-राज प्रथिराज।
हय गय दल बल मथत बर, रंभ सजीवन काज ॥ ३२८ ॥

शब्दार्थः—इन-परंत=इसके उपरांत, इसके बाद। सुबर-राज=सबल राजा। मथन=मंथन करके। रंभ सजीवन=रंभा स्वरूपी शशिवृत्ता के जीवन के। काज=लिये।

अर्थः—रंभा स्वरूपी कुमारी शशिवृत्ता के जीवन के लिये, श्रेष्ठ-अश्वारोही और गजारोही सैन्य के बल का भंजनकर सबल राजा पृथ्वीराज ने राज-महलों में प्रवेश किया।

सह जहाँ चामंड बर, बर-बर जुद्ध-विरुद्ध ।
सिद्ध[१] करै सामंत की, बर धीरज्ज सु बुद्ध ।। ३२६ ।।

ग्रा० पा० १ संशोधित।

शब्दार्थःसह=सब। जद्दों=यादवों। चामंड=चामुंडराय। बर-बर=बार२ ।जुद्ध-विरुद्ध=विरुद्ध होकर युद्ध किया। धीरज्ज= ° । बुद्ध=बुद्धि।

अर्थः—(पृथ्वीराज के चले जाने के बाद पीछे से) यादवों और चामुंडराय ने मिल कर कमधजी (वीरचंद की) सेना के विरुद्ध बार २ युद्धकर सामंतों के धैर्य और बुद्धि को सिद्ध कर दिया।

चाहुआन चतुरंग जिति, निगमबोध रहि राज।
बर शशिवृत्ता जित्तिगौ, धाम-सु-ढिल्ली साज।। ३३० ।।

शब्दार्थः—जिति=जीतकर, विजय प्राप्त करके। रहि=रहा, ठहरा, मुकाम किया। राज=राजा, पृथ्वीराज। जित्तिगौ=जीतकर ले गया, अपहरण करके ले गया। धाम-सु-ढिल्ली=दिल्ली के प्रत्येक गृह। सरज्ज=सजाये गये।

अर्थः—इस प्रकार चाहुवान नरेश (पृथ्वीराज) ने (वीरचन्द की) चतुरंगिनी सेना पर विजय प्राप्त कर शशिव्रता का अपहरण किया और दिल्ली पहुँचकर पहले निगमबोध स्थान पर डेरा किया उसकी बधाई सुनकर दिल्ली नगर सजाया गया।

गाथा

तपय सु नरपति ढिल्ली, दीहं-दीह पद्धरे-राजं।
जै-मंगै क्रत-कामं, सा देवं सोइयं देही ।।३३१।।

शब्दार्थः—तपय=तपता था शासन करता था। ढिल्ली=दिल्ली। दीहं-दीह=प्रत्येक दिन। पद्धरे-राजं=अच्छे थे। जे-मंगै=जो भी मांगते। क्रत-कामं=अच्छे काम करने वाले,या कार्य करके। सा=वह। देवं=देव तुल्य राजा। सोइयं=वही। देही=देता।

अर्थः—चाहुवान राजा पृथ्वीराज की प्रभुता में (उसके शासन में) दिल्ली के प्रत्येक

दिन अच्छे थे, जितने अच्छे कार्य करने वाले थे वे, जो भी उससे मांगते उसे वह देव तुल्य राजा दे देता था।

दीहं पासा रूवं, सारूवं भूपयो सब्बं।
जे-नख्खे ते मग्गे[1], देवानं - देवयो दीही[2] ॥३३२॥

ग्रा. पा. १, घ.। २ भीं.।

शब्दार्थः—दीहं=दिन। पासा=पासे। रूवं=रूप। सारूवं=सारें। सब्ब=सब (आश्रित)। जे-नख्खे= जैसा पासा पड़ता (राजाज्ञा होती)। ते मग्गे=उसी रास्ते पर। देवानं-देवयो=इन्द्र और देव तुल्य राजा के आश्रित। दीही=देते, कदम देते, चलते।

अर्थः—दिल्ली के वे दिन अच्छे थे। वहां का राजा पृथ्वीराज पासे के रूप में और सब सामंतादि सारों के रूप सें थे, जिस रूप में पासा पड़ता (राजाज्ञा होती) उसी रास्ते पर स्वयं इन्द्र तुल्य राजा और उसके देव तुल्य आश्रित पैर देते थे।

दोहा

सारिन चल्लै[1] पंस[2] बर, सारि पंस बर भोग।
सुबर सूर सामंत लै, करि ढिल्ली प्रति जोग ॥३३३॥

ग्रा. पा. १, पा.। २, पा. का. भीं.।

शब्दार्थः—सारिन=सार। चल्लैं=चलती। पंस=पासे। बर=बल। सारि=सारें। भोग=भोगते, प्रयोग होता। सुबर-सूर=सबल वीर राजा पृथ्वीराज। करि=कर रक्खा। ढिल्ली-प्रति=दिल्ली में। जोग= योग, संयोग, संपर्क।

अर्थः—जिस प्रकार पासे के बल पर सारें चलती हैं और सारों के अच्छे दाव पर पासे की चाल का प्रयोग होता है, उसी प्रकार सबल वीर, पृथ्वीराज और दिल्ली राज्य में संपर्क था (स्वामी और सामंत एवं प्रजा एक मत हो चलते थे)।

जै जै जस लद्धौ सुबर, बैर नृपति सुरतान।
सुबर बैर बर बढ्यौ, सुबर जित्ति चहुआन ॥ ३३४ ॥

शब्दार्थः—सुबर=उस समय। सुरतान=सुलतान गोरी। सुबर=सबल (कन्नौजेश्वर)। बैर=शत्रुता। बढ्यौ=बढाई, ठानी। जित्ति=जीता, विजय की।

अर्थ:—राजा पृथ्वीराज और सुलतान गौरी में जब २ शत्रुता पैदा हुई तब उस युद्ध में भी राजा (पृथ्वीराज) ने जय कीर्ति प्राप्त की। उसी प्रकार सबलवीर जयचन्द से (वीरचन्द के कारण) शत्रुता कर युद्ध में भी बलवान चाहुवान नरेश ने विजय प्राप्त की।

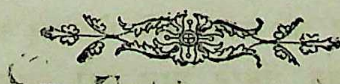
कवित्त

भई जीति चाहुआन, अरिय भंजे अभंग-भर।
जै जै सूर बखान, देव नंखैं सुमन्न वर॥
लै शशिवृत्ता राज, अप्प दिल्लीय सँपत्तौ।
अति तोरन-आनँद, चित्त रत्तौ रस[1] मत्तौ॥
अरि अवनि को न मंडै नमन[2], खग्ग दाग अरि खंडइय।
कविचंद दंद-दारुन कपहि[3], इक अडंड करि दंडइय॥ ३३५॥

ग्रा० पा० १ भीं। २ घ०। ३ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—अभंग-भर=अभंग योद्धा। सूर=बहादुर, सामंत। बखान=कहा। नंखैं=डाले, बर्षाये। सुमन्न=सुमन, पुष्प। लै=लेकर। राज=राजा। अप्प=आप, स्वयं। सँपत्तौ=पहुंचा। अति=विशेष। तोरन-आनंद=तोरणोत्सव मनाया। चित्त-रत्तौ=चित्त अनुरक्त हो गया। रस-मत्तौ=प्रेम का मतवाला। को=कौन। न-मंडै-नमन=नमन नहीं करता, सिर नहीं नमाता। दाग=दग्ध कर देता। दंद-दारुन=भयानक युद्ध। कपहि=काँपते, थर्राते। इक=एक को, किसी को। अडंड-करि=अदंडित करता। दंडइय=दंडित करता।

अर्थ:—चाहुवान नरेश पृथ्वीराज, विपक्षी अभंग योद्धाओं को नष्ट कर इस प्रकार विजयी हुआ और सामंतों ने जिस प्रकार जय २ कार किया उसपर देवताओं ने श्रेष्ठ पुष्प-वृष्टि की। शशिवृत्ता को लेकर वह दिल्ली पहुँचा और विशेष रूप से तोरणोत्सव मनाया गया (शशिवृत्ता के साथ विधि पूर्वक विवाह किया)। उसके बाद उस प्रेम के मतवाले का चित्त नव दुलहन से अनुरक्त हो गया। ऐसे वीर नरेश्वर के समक्ष ऐसा कौन शत्रु है जो उसे सिर नहीं नवांता? वह शत्रुओं का खंड २ कर अपनी तलवार द्वारा दग्ध कर देता था। कविचंद कहता है; उसके भयानक युद्ध को देखकर शत्रु थर्रा जाते थे और वह किसी को अदंडित और किसी को दंडित कर छोड़ देता था।



देवगिरि

(समय २४)

दोहा

ना चल्लै कमधज्ज गृह, गढ़ घेर्यौ फिरि भान ।
मानहु चंद सरद जिम, गिर नछित्र परिमान ॥ १ ॥

शब्दार्थः—कमधज्ज=वीरचंद । गिर=गिरि, देवास, देवगिरि । नछित्र=नक्षत्र । परिमान=प्रमाण, समान ।

अर्थः—पराजित होकर वीर चन्द कमधज्ज घर नहीं लौटा और भानुराय यादव के दुर्ग पर पुनः हमला कर दिया। उस समय गिरि (देवगिरि, देवास) शरद चन्द्र के समान और घेरने वाले शत्रु-सैनिक तारागण के समान दिखाई पड़ने लगे ।

इन कग्गद चहुआन पैं, उन मुक्कलि कनवज्ज ।
दुहौं वीर कविचंद इह, कै वज्जै कै वज्ज ॥ २ ॥

शब्दार्थः—मुक्कलि=भेजा । दुहौं=दोनों । कै वज्जै=कैसा समय बीता, कैसा युद्ध हुआ । कै वज्ज=कैसा बीतेगा, कैसा युद्ध होगा ।

अर्थः—यादव नरेश ने तब चाहुवान (वीर पृथ्वीराज) को और वीरचन्द कमधज्ज ने कन्नौज (जयचन्द) को पत्र लिखा, कवि (चन्द) कहता है दोनों (यादव और कमधज्ज या चाहुवान और कमधज्ज) वीर हैं । पहले कैसा युद्ध हुआ और देखें, आगे कैसा युद्ध होता है ?

कवित्त

सुबर वीर कग्गदह, पंग करि अप्पि सु जंपिय ।
बहु दुचित्त संजुत्त, लज्ज आजुत्त प्रकंपिय ॥
सुर सुकीय कर पंग, नैंन नीचे नृप दिट्ठौ ।
तब पहुपंग नरिंद, कुशल जानीन गरिट्ठौ ॥
पुच्छि सु बात इह करि यतम, जानि सोक कह उप्पनिय ।
संग्राम तेज भंजन भिरन, मरन कहौं मारन पुनिय ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—बीर=वीरचंद। कग्गदह=पत्र। पंग=पंगुराज। करि=कर, हाथ। अप्पि=देता हुआ, समर्पण करता हुआ। जंपिय=कहा। लज्ज=लज्जा। आजुत्त=सहित। सुर=आवाज। सुकीय=तोते जैसी। दिट्ठौ=देखा। गरिट्ठौ=गहरी। करीयतम=की जैसी, बीती जैसी। उप्पनीय=उत्पन्न होगा, पैदा होगा। मरन कहौ=मरण (आत्म हत्या) कहा जाय। मारन पुनिय=या शत्रु द्वारा मार दिये कहा जाय।

अर्थः—उधर दूत कन्नौज पहुँचा और पंगुराज (जयचंद) को सम्बोधित कर कहा-यह वीरचन्द का पत्र है, फिर उसने वह पत्र दिया। उस समय दूत की अवस्था अस्वस्थ, लज्जित और कम्पित सी थी। यह सुन जयचन्द ने तोते के समान टीं टीं कर (क्या है २ झुंझला कर पूछते हुए) उस दूत की ओर देखा। उसकी नजर जमीन की ओर थी। दूत की ऐसी अवस्था से कन्नौजपति अन्दर की बात को भांप गया कि हमारे पक्ष की कुशल नहीं दीख पड़ती है, पश्चात दूत से युद्ध विषयक बात की जानकारी ली; तब उसने जो बात बीती, वह कहते हुए कहा कि उसे सुन कर आपको शोक होगा। आप इसी से समझ लीजिये कि युद्ध-स्थल में शत्रु के तेज को नाश करने वाले से भिड़ने पर स्वयम् का मरण (आत्म-घात) या शत्रु द्वारा मार दिया कहा जाय।

दोहा

दुज्जन दवने पीरके, वज्जै-पर बर-केक।
भर भीरी रहि अंक के, मरन सरन के केक ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—दवने=दमन कर्ता। पीरके=पीड़ा पहुंचाने वाले। वज्जैपर=बजने पर, (शस्त्र-या-रण वाद्य बजने पर) बर-केक=कितनी ही बार। भर-भीरी=शत्रु पक्ष के वीर। अंक के=स्त्री की अंक में।

अर्थः—दुर्जनों का दमन करने वाले और पीड़ा पहुँचाने वालों के शस्त्र (या-रण वाद्य) बजने पर देखा गया है कि कितने ही श्रेष्ठ विपक्षी-वीर भागकर घर पहुँच स्त्री की अंक में या मृत्यु की शरण में ही रह पाते हैं।

देवग्गिरि गढ़ घेरि फिरि, हौं मुक्क्यौं नृपकाज।
मतौ मंडि रा-पंग पै, वे पुक्करि प्रिथिराज ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—देवग्गिरि=देवास दुर्ग। हौं=मुझे। मुक्क्यौं=भेजा। नृपकाज=आपके लिये। रा-पंग=राय पंग, पंगुराज। वे=वो, यादव। पुक्करि=पुकार की, सूचना दी।

अर्थः—हे राजन् ! देवास के दुर्ग को पुनः घेरने के बाद अपने पक्ष वालों ने मुझे आपके पास भेजा है और उधर यादवों ने इसकी सूचना पृथ्वीराज को दी है ।

कवित्त

क्रोध भरिय कमधज्ज, काक बर बोल उचारैं ।
जो भज्जै ग्रह अपन, कौन अप्पनौ विचारैं ॥
अरे सुनहु भर सुभर, जुज्झ भग्गो पति छंडै ।
बेचि बीर गजराज, बाद अंकुस कौ मंड़ै ॥
चहुआन सेन कित्तीक हैं, एक मीर बंदा वधै ।
लभ्भयौ राज अप अप्पुनह, लोहधार मो सम सधै[1] ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० १ भीं० पा० ।

शब्दार्थ:—काक=कौआ । भज्जै=भाग गया । अप्पनौ=अपना साथी । विचारै=सोचे, माने । जुज्झ=युद्ध । पति=लज्जा । बेचि=बेचकर । बाद=चर्चा । कित्तीक=कितनीक । वधै=खत्म कर सकता है । लभ्भयौ=सोच लिया । अप्पु-नह=अर्पण करना । लोहधार=शस्त्र धारा । मो=मेरे । सम=से । सधै=अपनाना चाहता ।

अर्थः—दूत की बात सुन कमधज नरेश क्रुद्ध हो कहने लगाः—क्या कभी कौआ भी अच्छी बोली बोल सकता है । जो पृथ्वीराज युद्ध छोड़कर भाग गया है, उसे कोई भी वीर अपना साथी कैसे बना सकता है ? हे वीर योद्धाओं सुनिये ! लज्जा को छोड़कर जो भाग गया है; वह ऐसा है, जो हाथी को बेचकर अंकुश की चर्चा छेड़ता हो (हाथी को खोकर केवल अंकुश के ही बल पर गजारोही कहलाना चाहता हो) ; चहुआन की सेना कितनीक है ? उसे तो मेरा एक मीर बन्दा ही समाप्त कर सकता है । उस चहुआन शत्रु ने तो अपने राज्य को समर्पित कर देने का ही विचार कर लिया है; इसीलिये मेरे साथ लोहे की धार को टकराना चाहता है ।

चढ़त पंग हय सज्जि, सज्जि गजराज सज्जि नर ।
यों जानी सुर असुर, करै कमधज्ज बियापुर ॥
बजि त्रिघोष बिय सहस, मीर बंदा दस लक्खिय ।
तीस लक्ख पाइक्क, सुबर पारंक वि अक्खिय ॥

जूसन विराग बलवीर सजि, दल सज्ज्यौ गंजन अरिन ।
पहु पंगवीर परतक्खि लै, किरन सु सम सज्जी किरन ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—बियापुर=नवीन नगर, नयी सृष्टि । बिय=दो । त्रिघोष=ऊँची आवाज । दस-लक्खिय=दश लक्ष । पाइक्क=पैदल सेना । पारंक=पाड़नेवाले, मार गिराने वाले । वी=वह । अक्खिय=इक्षुधारी, बाणधारी, कहे गये । जूसन=जोश में भरे हुए । विराग=वैरागी, नागों की फौज । गंजन=नष्ट करने को । परतक्खि=प्रत्यक्ष । किरन=सूर्य किरण । सज्जी किरन=किरणी, एक प्रकार का राज चिन्ह ।

अर्थः—पंगुराज के इस प्रकार आवेश में आने पर चढ़ाई करने के लिये हाथी घोड़े और सैनिक सुसज्जित हो गये । उस समय देवता और दानवों को ऐसा ज्ञात होने लगा, मानो कमधज राजा (विश्वामित्र के समान ही) आज नवीन सृष्टि का निर्माण करके ही रहेगा । ऊँची आवाज से उस समय दो सहस्र रण-वाद्य बजने लगे । दसलक्ष मोर-बन्दे सुसज्जित हुए । तीस लक्ष श्रेष्ठ बांके पैदल सैनिक, जो शत्रुओं को बाणों द्वारा मार गिराने वाले थे । अनेक जोश में भरे हुए बलवान वैरागी वीर (नागों की फोज) और अन्य सेना शत्रुओं को नष्ट करने के लिये तैयार होगई, उसी समय पंगुराज प्रत्यक्ष रूपसे सूर्य किरणों के समान प्रकाशमान किरणी (एक प्रकार का राज चिन्ह) धारण कर सुशोभित हुआ ।

दोहा

इह प्रतग पहुपंग लिय, बधि जद्दव चहुआन ।
जग्य अरंभ जु मंडिहौं, ता पच्छै परवान ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—प्रतंग=प्रतिज्ञा । बधि=वधकर, नाश करके । जग्य=यज्ञ । अरंभ=आरम्भ । परवान=प्रमाण, निश्चय ।

अर्थः—पंगुराज ने यह प्रतिज्ञा की कि यादव और चाहुवान का नाश करने के बाद ही यज्ञारंभ करूंगा, यह निश्चय है ।

कवित्त

चढ़त पंग मिलि सेन, पूर जिम नदिय मिलत त्रिन ।
बज्जि-वीर वातूल, जत्थ-कत्थह उड्डे खिन ॥

इकट्ठां फुनि जम्म, तुट्टि जूजू फल लद्धौ।
दैव क्रम्म करि जोग, आइ एकट्ठ अरुद्धौ॥
बंधेत काल डोरी तनैं, छुट्टि धार धन मिलहि तिम।
आवृत्त क्रम्म लिक्खै[1]बिना, मिलैं न पंचौ पंच जिम॥ ६॥

ग्रा० पा० १ सं०।

शब्दार्थः—त्रिन=तिन, त्रिवेणी। वज्जि वीर=वज्र काय वीर। जत्थ-कत्थ=यत्र तत्र। तुट्टि=तुष्ट। जम्म=जन्म। जूजू=भिन्न २। लद्धौ=प्राप्त किये हों। दैव क्रम्म=देवयोग। करिजोग=योगकर्ता। अरुद्धौ=उलझा, जुटा। बंधेत=बांधने के लिये। काल=यम। डोरी=पाश। तनैं=फैले हो। घन=बादल। आवृत्त=परिवर्तन। क्रम्म=कर्म, भाग्य। लिक्खै=देखे। मिलैं न=नहीं मिलेंगे। पंचौं–पंच-तत्वमय शरीर। पंच=पंचतत्व।

अर्थः—चढ़ाई करने के लिये पंगुराज जयचन्द की सेना इस प्रकार एकत्रित हुई जिस प्रकार परिपूर्ण त्रिवेणी का संगम हुआ हो या वज्रकाय-वीर तूफान की भांति शत्रुओं को क्षण भर में यत्र तत्र करने वाले हों अथवा पूर्व जन्म के अनेकों फल एक साथ प्रसन्न हुए हों। देवयोग की साधना करने वालों का समूह एक ही स्थान पर आकर एकत्रित हो गया हो या यम की पाश के तन्तु, बंधन में लेने के लिये फैले हों अथवा जल की धारा बरसाते हुए बादल आपस में मिले हों। एकत्रित हुए वे वीर अपने भाग्य-परिवर्तन को बिना देखे ही मन में अनुभव कर रहे थे कि क्या उनके पंच भौतिक शरीर पंचतत्वों में नहीं मिल जायेंगे ? (वे मृत्यु को भूले हुए थे)।

दोहा

बान पंग पहु पंग परि, मिली कंन की कान।
इह अपुव्व वर भान सजि, दै कग्गद चहुआन॥१०॥

शब्दार्थः—बान=आवाज। मिली=समागई। कंन-की-कान=कितने ही के कानों में, कानों कानों में। अपुव्व=अपूर्व।

अर्थः—पंगुराज आगया ! आगया ! की आवाज प्रत्येक के कानों में समा गई और यादव श्रेष्ठ वीर भानुराय पृथ्वीराज के लिये पत्र देकर अपूर्व ढंग से पंगुराज का सामना करने के लिये सुसज्जित होगया।

रति–पति पत्त आलुभिझ्झ घन, तिहि कग्गद मुक्कि दूत ।
तजि सिंगार भौ बीर रस, जिमि आयौ वरधूत ॥११॥

शब्दार्थ:–रतिपति=कामदेव । पत=प्रवेश करके । आलुभ्भिझ=उलझा रक्खा । घन=विशेष रूप से । तिहि=उसको । मुक्कि=दिया । वरधूत=वृद्धिपर ।

अर्थ:—जिसके शरीर में कामदेव ने प्रवेश कर विशेष रूप से उलझा रक्खा था उस चाहुआन राजा पृथ्वीराज को यादव नरेश के भेजे हुए दूत ने जाकर पत्र दिया, जिससे उसके शरीर से श्रृंगार रस विदा होकर वीर रस ने वृद्धि पाई, ऐसा दिखाई पड़ा ।

बाल कमोदनि पीय ढ़िग, ससि समान रस पान ।
बर बिलौकि जो देखिये, तौ चहुआनैं भान ॥ १२ ॥

शब्दार्थ:–बर=बल, शक्ति । चहुआनै=चहुआन नरेश ही । भान=भानु, सूर्य।

अर्थ:—बाला कुमोदनी के समीप पृथ्वीराज, सुधारस पान कराने वाले शशि के समान दिखाई पड़ता था । किन्तु यदि हम उसकी शक्ति की ओर देखें तो वह चाहुआन नरेश साक्षात् सूर्य के समान दिखाई पड़ता है ।

कवित्त

लाज सरस चहुआन, जोग उज्जै – जुध मुत्तम ।
त्रियन पाइ दिखि काम, बेर दिक्खे जु बीर सम ॥
घरि इक पंग नरिंद, कलँक ऊननि करि देखै ।
इत्त सु जद्दवराइ, सजन अप्पनौ सु लेखै ॥
सुरतंत स्वामि अभिलाष रिन, ग्रब्व राजमद्दह नृपति ।
मार सु नरिंद संकर भयौ, अति निकलंकह चित दिपति ॥ १३ ॥

शब्दार्थ:–जोग=योगी । उज्जै-जुध=ऊये-जुध, युद्ध छिड़ने पर । मुत्तम=उत्तम । बेर=शत्रु को । बीर-सम=वीर रस रूप । ऊननि=उदास होकर । इत्त=इधर । सजन=सज्जन । लेखै=समझता था । स्वामी=पृथ्वीराज । सुरतंत=सुरति सुख के बाद । रिन=रण, युद्ध । ग्रब्व=गर्व । मार=काम स्वरुप । संकर=रुद्र-रूप । निकलंकह=उज्वल । दिपति=दीप्तिमान, बिना धब्बे के ।

अर्थः—चाहुआन नरेश में जैसी सरस लज्जा थी वैसा ही वह युद्ध समय में उत्तम योगी के रूप में (मोह रहित) दिखाई पड़ता था। स्त्रियों के लिये वह कामदेव रूप था, शत्रुओं को मूर्तिमान वीर रस के रूप में दिखता था। घड़ी भर के लिये पंगुराज उदास होकर उसे कलंक रूप में देखता था। किन्तु इधर यादवराज उसे अपना सज्जन समझता था। सुरतिसुख के बाद राजा पृथ्वीराज, जिसे राज-मद का गर्व था युद्ध के लिये इच्छुक हुआ और वह काम-रूप से रुद्र-रूप में परिणित हो गया। उसका चित्त परम उज्वल था, उसमें किसी प्रकार का धब्बा नहीं था।

दोहा

घरी एक बंधी सुनी, पै मुक्कलि प्रथिराज।
बीयसोम अप्पन चढ़न, लैदीनी रस पाज॥ १४॥

शब्दार्थः—बंधी=बांधीगई, चित्त वृत्ति बँध गई। मुक्कलि=छोड़दी। बीय सोम=द्वितीय सोमेश्वर। अप्पन चढ़न=स्वयं चढ़ाई करने को। लैदीनी=लगादी, बाधदी। रस=वीर रस। पाज=बांध।

अर्थः—पृथ्वीराज को चित्तवृत्ति एक घड़ी के लिये शृङ्गार रस के बंधन में जकड़ी हुई सुनी गई। किन्तु उस द्वितीय सोमेश्वर ने चढ़ाई करते समय शृङ्गार रस की आड़ करने को वीर रस की पाज बांध दी।

चढ़त राज पृथिराज को, वढि आवाज सुरतान।
समर-सिंघ-रावर दिशा, दै कग्गद चहुआन॥ १५॥

शब्दार्थः—वढ़ि=बढ़ी। अवाज=आवाज।

अर्थः— जिस समय पृथ्वीराज चढ़ाई करने लगा उसी समय उसको सुलतान के चढ़ कर आने की सूचना मिली। तब चाहुआन नरेश्वर ने रावल समर-केशरी को पत्र लखा।

कवित्त

दिल्लीधर गौरी नरिंद, बंध पल्हंन प्रपत्तौ।
खां-हुसेन कै बैर, अनँगपालं सु मिलत्तौ॥
तिर भर जल गंभीर, हसम है गै कमधज्जी।
देवग्गिरि दिसि भांन, बीर पावस जिम सज्जी॥
धर लई सब्ब साहिब जुरत, भान न उप्पर मुक्क ही।
चित्रंगराज रावर समर, इह अवसान न चुक्कही॥ १६॥

शब्दार्थ:—बंध पल्हंन=पल्हन कछुवाहे का भाई । प्रपत्तौ=पहूंचा, डटा । मिलत्तो=मिला, मिलाकर । तिर=तैरकर । जल गंभीर=गहराजल, समुद्ररूपी वीर समूह । हसम=सेना । वीर=वीरचंद । साहिब=शहाबुद्दीन । जुरत=जुटकर । भान=भानु, सूर्य । उप्पर मुक्कहि=ऊपर करता, सहायता करता । अवसान=मौका । चुक्कही=बिसारना ।

अर्थ:—पत्र में लिखा कि हुस्सेन को शरण में रखा उसके बदले में गौरीशाह ने अनंगपाल को मिला कर दिल्ली के भूभाग में प्रवेश किया है। उसका सामना करने के लिये पल्हन कछवाहे का भाई डटा हुआ है। उधर भानुराय पर वीरचन्द के अनुरोध से आक्रमण करने के लिये अश्वारोहियों और गजारोहियों से सजी हुई कमधजी सेना, समुद्र तुल्य योद्धा-समूह को पार करती हुई पावस के रूप में सजी है। शाहबुद्दीन ने भी आकर दिल्ली के विशेष भूभाग पर कब्ज़ा कर लिया है। इस समय सूर्य भी हमारे ऊपर नहीं के समान है, ऐसा लगता है; उसने भी हमें छोड़ दिया है। इसलिये हे चितौड़पति रावल समर-विक्रम ! ऐसे अवसर को आप नहीं भूलें।

बंचिय कग्गद समर, समर-साहस उच्चारिय ।
तव सुमंत बर नृपति, मंत जानै न विचारिय ॥
हम सुमंत जो करै राज दिल्ली मति छंडौ ।
गहि गौरी सुरतान, अनँगपालह फिर मंडौ ॥
सामंत देहु हम संग वर, रन रूँधै पहुपंग नर ।
आरंभ महन-रंभह मतौ, इह सुमंत कुसलंत घर ॥ १७॥

शब्दार्थ:—समर=युद्ध का । समरसाहस=रावल समर-विक्रम । तव=तेरे । सुमंत=श्रेष्ठ मंत्री । मंत=मंत्रणा । मंडौ=सिंहासन पर सुशोभित कर । रन=युवराज रणसिंह (रावल समर-विक्रम के पुत्र) । पहुपंग=पंगुराज जयचंद । महन रंभह=महान-युद्धारंभ । कुसलंत=कुशल ।

अर्थ:—आये हुए उस युद्ध-सम्बन्धी पत्र को पढ़कर रावल-समर-विक्रम ने कहलाया, हे श्रेष्ठ नृपति पृथ्वीराज ! तेरे मंत्री श्रेष्ट मंत्रणा करना नहीं जानते। हमारी यही उत्तम सम्मति है कि आप दिल्ली को न छोड़िये। और यदि अनंगपाल चाहे तो उन्हें गौरीशाह को पकड़ कर फिर से सिंहासन पर सुशोभित करिये। आप अपने श्रेष्ठ सामंत हमारे साथ कर दीजिये ताकि राजकुमार रणसिंह (रावलसमर विक्रम

के युवराज) पंगुराज और उसके सामंतों को रोके। इस महान युद्धारंभ में भाग लेना चाहते हों तो इसी सुमंत्रणा से आपकी गृह-कुशल है।

दोहा

अमरसिंघ बंधव समर, समरसु मोकलि दीन।
ते सामंतन संग लै, देवग्गिरि मग लीन ॥ १८ ॥

शब्दार्थ:—समरसु=रावल समर-विक्रम। मोकलिदीन=भेज दिया।

अर्थ:—यह कहकर रावल समर-विक्रम ने अपने भाई अमरसिंह को चाहुआन की सहायतार्थ रवाना किया। वह दिल्ली पहुँचा और सामंतों को साथ लेकर देवास की ओर रवाना हुआ।

हमसु राज चहुआन ने, राखै घेरी राइ।
पंग औट बर कोट ह्वै, देवग्गिरि गढ़ जाइ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ:—हमसु=सेना। राखे-घेरी=घेर लिया। कौट=दीवार।

अर्थ:—चाहुआन-राज की सेना ने पंगुराज के साथी राजाओं को घेर लिया और देवास के दुर्ग पर पहुँचकर पंगुराज के रास्ते में आड़ करने के लिये श्रेष्ठ दीवार के रूप में हो गई।

कवित्त

देवग्गिरि गढ़ घेरि, ढोह मंड्यौ बर पंगं।
रन निग्घोष प्रमान, बीर बाजे रन जंगं ॥
चिहु दिसान उड़ि चक्र, उनै झीझं झर लग्गा।
द्वादस दिन रन मंडि, राव चामंड भिरि भग्गा ॥
सामंत पंग वित्ते नृपति, छल छज्जै बलहारियां।
दाहिम्म राव दाहिर तनय, रत्तीवाह विचारियां ॥ २० ॥

शब्दार्थ:—ढोह मंड्यौ=ढाहने की चेष्टा को, ढ़ाहना शुरू किया। रन निग्घोष=कुमार रणसिंह की उच्च घोषणा। प्रमान=मानते हुए, सुनते हुए। उनै=उमड़ कर। झीझं=झंझावत। झर लग्गा=झड़ी लग गई। भग्गा=नष्ट कर दिये। वित्ते=समाप्त हुए। छज्जै=किया। बलहारियां=बलहरे, राष्ट्रवर क्षत्रिय। रत्तीवाह=छापा, रात्रि में अचानक आक्रमण करना।

अर्थः—उधर वीर-श्रेष्ठ पंगुराज ने देवास दुर्ग को घेर कर गिराने की चेष्टा की। तब कुमार रणसिंह की युद्ध घोषणा को सुन कर उसके साथी वीरों ने युद्ध के लिये रण-वाद्य बजवाये। उस समय चारों ओर से चक्र चलने लगे और ऐसा दृश्य दीख पड़ा मानों झंझावात के साथ उमड़ कर वर्षा की झड़ी लग रही हो। इस प्रकार बारह दिवस तक युद्ध होता रहा। अग्रगण्य चावंडराय ने भिड़ कर कितने ही विपक्षी यौद्धाओं को नष्ट कर दिया अपने सामंतों को इस प्रकार समाप्त होते देख राजा-जयचंद और उसके सगोत्रीय बलहरे-वीरों (राष्ट्रवर क्षत्रियों) ने छद्म-युद्ध करना प्रारंभ किया तब दाहिर-पुत्र दाहिमा नरेश चावंडराय ने भी छापा मारने का निश्चय किया।

मिलि जद्दव चामंड, रत्तिवाहं संपन्नौ।
जोइज्जै सथ टारि, साथ टारिजै अपन्नौ॥
अंतसाथ सो साथ, और सब साथ सुपन्नौ।
कै भर तरकस बंध, थान मन्नं आकन्नौ॥
जीवंत दान भोगह समर, मरन तित्थ रँभ भिरन गति।
ए करै बात उभ्भैत नर, तास राज मंडल मिलति॥२१॥

शब्दार्थः—जोइज्जे=देख लेना चाहिये, पहचान लेना चाहिये। सथ=विपत्तियों के साथियों में। टारि=अलग। टारिजै=बचा लेना। अंतसाथ=अंत तक साथ देने वाला। सो साथ=वही सच्चा साथी है। साथ=साथी। सुपन्नो=स्वप्न तुल्य। कै=कितने ही। तरकस बंध=भाथा बांधने वाले। थान=घर की ओर। मन्नं=मन को। आकन्नौ=अंकित कर देते हैं, लगा देते हैं। तित्थ=तीर्थ। गति=मोक्ष। ए=यह। उभ्भेत=दो, दोनों। तास=तिस।

अर्थः—यादव और चामंडराय ने मिल कर छापा मारने को तय्यारी की और आपस में कहने लगे :— कि रात्रि के हमले में खूब सावधानी से विपत्तियों का ध्यान रखकर अपने साथियों को बचा लेना चाहिये। वास्तव में अन्त तक साथ देने वाला ही साथी होता है। अन्य साथी स्वप्न-तुल्य है (वे केवल नाम मात्र के हैं) कितने ही यौद्धा ऐसे भी होते हैं जिनका मन युद्ध के लिये भाथा बाँध कर भी घर की लगा ओर रहता है किन्तु जो मनुष्य मुँह से निम्न दो बातों की चर्चा करते रहते हैं:- (१) युद्ध में जीवित रहने पर दान और सांसरिक सुख का उपभोग मिलता है और

(२) रण में लड़ कर मरने से या तो रंभा मिलती है या मोक्ष प्राप्त होता है। ऐसे वीर, राज-वंशों में ही मिलते हैं।

हत्थ हत्थ सुभझैन, मेघ डंमरि मँडि रज्जी।
निशि निशीथ अंतरी, भान उत्तरि सथ सज्जी॥
बज्ज बीर झलकत पवंन, पच्छिम दिशि वज्जै।
मोर सोर पप्पीह, अवनि संक्रित घन गज्जै॥
बंधी[1] जु सिलह निशि सत्त मिलि, धसिय पंग दरबार दिसि।
चामंडराइ दाहर तनौ, लरन लोह कड्ढेति रिसि॥ २२॥

ग्रा० पा १ सं०।

शब्दार्थः—मेघ डंमरि=मेघाकृति। मंडि=छागई। रज्जी=धूली। निशीथ=अर्ध रात्री। अंतरी=में। भान=भानुराय। उत्तरी=उतरा। बिज्ज=बिजली। झलकत=दमकते, झलकते। पप्पीह=पपीहा। संक्रित=सक्र के, इन्द्र के। घन गज्जै=बादल गरज ने लगे। बड्ढी=बढ़ें। सिलह=सिलह रूपी सेना, सहायक सेना [या शस्त्र बढ़ाये]। सत्त=सात। धसिय=घुस पड़े, बढ़े। दरबार दिसि=खास खेमे की ओर। तनौ= तनय, पुत्र। लोह कड्ढेति=शस्त्र निकाले, शस्त्र उठाये। रिसि=क्रोध में आकर।

अर्थः—मेघाकृति अश्वारोहियों के चलने से इतनी धूलि छागई कि हाथ से हाथ नहीं सूझता था। अर्ध रात्रि के समय भानुराय भी सुसज्जित हो अपने साथियों सहित दुर्ग से उतर कर सहायता के लिये आ मिला। उस समय आकाश में बिजली चमकने लगी और वीरों में वीर रस झलकने लगा, पश्चिम दिशा का पवन चलने लगा तथा नभ से बादल पृथ्वी की ओर आ-आकर गर्जने लगे। जिससे मयूर और पपीहे शोर-गुल करने लगे। ऐसी उस अँधेरी रात्रि की सात घड़ी बीतने पर यादव और चाहुआनी वीरों ने कवच से सजकर पंगुराज के ख़ास खेमें की ओर कूच किया और दाहर-पुत्र चावंडराय ने क्रोध में आकर लड़ने के लिये शस्त्र उठाये।

धसि नरिंद चामंड, कूह बज्जी रन जंगं।
भर भग्गी चौकी समूह, जूह लग्गा रन जंगं॥
रन नरिंद-वाहन कुँआर, सार धारह हसि झिल्ले।
पंग टटी बौछार, जिते भज्जे तित मिल्ले॥

आरिष्ट काल बभ्भक्त घरी, उघरि मेह घन सार जल।
जग्गयो जोध कमधज्ज अब, मनौं सिंघ जुम्यौ सुछल ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—धसि=घुसते ही, प्रवेश करते ही। कूह=किलकारी, ललकार। बज्जी=की। रन=रावल समर-विक्रम के कुमार रणसिंह। जंगं=युद्ध में। चोकी समूह=प्रहरी वीरों का समूह। जूह=जुटने। लग्गा=लगा। रन=रणकुमार। जंगं=युद्ध में। रन=युद्ध में। नरिंद-वाहन=राजाओं को विचलित कर देने वाला। झिल्लै=झेला। टटी=दीवार (वीरों की दीवार)। बौछार=झड़ी। जिते=जितने। तित मिल्ले=उधर ही जाकर मिलता, पीछा करता। आरिष्ट=अरिष्ट। बभ्भक्त=बजने पर। उघरि=उघड़ गये, मिट गये। मेह=मेघ। घन=विशेष। सार=लोहा। जोध=योद्धा, वीर। सुछल=स्वच्छन्द।

अर्थः—पंगुराज के खास खेमें में चावंडराय के प्रवेश करते ही कुमार रणसिंह (रावल समर विक्रम के पुत्र) ने युद्ध की ललकार की; जिससे प्रहरी वीरों का समूह भागने लगा। उसी समय रण-कुमार भी युद्ध-रत हो गया। राजाओं को युद्ध से विमुख करने वाले (भगा देने वाले, विचलित करने वाले) युवराज ने हँसकर लौहा पकड़ा और पंगुराज के दीवार स्वरूपी वीरों पर हमला किया; जिससे पंगुराज के जितने यौद्धा थे, वे सब भागने लगे किन्तु उसने उनका पीछा नहीं छोड़ा। इस-प्रकार अरिष्टकारी काल की घड़ी बजही रही थी कि आकाश में छाये हुए मेघ हट गये किन्तु जल वर्षा के समान सस्त्र वर्षा होती रही। इतने में श्रेष्ठ योद्धा कमधज नरेश जयचद इस प्रकार जाग उठा, जिस प्रकार स्वच्छंद सिंह जूझने को उद्यत हुआ हो।

तब रावत उच्चरे, राज जोरी बर पंगं।
जिन चंपे बल पुंछ, रोस जग्यौ नृप दंगं ॥
नाग पत्ति कोपत्ति, उप्प बर कन्ह जगायौ।
राह सुमनि बित्तए, जम्म जुग राज झुकायो ॥
उच्चरै वीर कुटवार रिन, रन रुंध्या अप डिंभरू।
संभरै बीर कमधज्ज कौं, भये रोम गति बिभ्भरू ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—पुंछ=पूँछ, दुम। चंपै=दबाई। दंगं=युद्धर्थ। नागपत्ति=नागों का स्वामी, काली नाग। कोपत्ति=क्रोधित। अप्प=अपने। बर=बलपर। राह=रास्ता। सुमनि=श्रेष्ठ माना

हुआ। बित्तए=बिता दिया, छोड़ दिया। जम्म=यम। जुग=दो, द्वितीय। झुकाया=उतर पड़ा। कुटवार=कोतवाल, नगर रक्षक। रिन=रिनराय। रन=रणसिंह। रुंध्या=रूंधलिया, रौंधलिया। अप=आपको। डिंभरु=बालक ने। संभरै=सुनते ही। रोम=रोएँ। बिम्भरु=खड़े हो गये।

अर्थः—तब नगर-रक्षक वीर रिनराय रावत ने पंगुराज से कहाः-आज आपकी श्रेष्ट जोड़ी मिली है। क्रोध में आकर जिसने आपकी दुम को दबाया है-और युद्ध के लिये आपको इस प्रकार जगाया है, जिस प्रकार कृष्ण ने अपने बल पर भरोसा कर क्रोधित काली नाग को जगाया था, हे राजन्! श्रेष्ट माने हुए युद्ध-मार्ग को छोड़ कर वह आपकी ओर द्वितीय काल के समान हो झपट पड़ा है। बच्चा होकर भी रणसिंह ने रणमें आपको रौंध लिया है। यह सुनते ही वीर श्रेष्ट कमधज-नरेश के रोएँ खड़े हो गये।

अमर सिंह आहुट्ठ, नाग मुक्खी बर कड्ढी,
शीश शोभि गजराज, नाग मुख नागिनि चड्ढी,
हाड़ हटक्को हथ्थि, बीर खच्यौ कर सद्दे।
कै हथनापुर "चन्द", बीर खंचे बलि भद्दे॥
दंती सुभग्गि धरपर पर्यौ, इल खुच्यौ दँत अद्धकवि।
सिंघइ ति भूमि बर सुब्भई, मिलत भूमि हथ्थह ति रवि॥२५॥

शब्दार्थः—आहुट्ठ=आहड़ा क्षत्रिय। नाग मुक्खी=एक प्रकार का शस्त्र। नाग=सर्प और हाथी। हाड़=हड्डियों में। हटक्की=उलझगई। खच्यौ=ऐंचा। सद्दे=शीघ्रता पूर्वक। कै=मानौं, अथवा। हथनापुर=हस्तिनापुर। चन्द=कविचंद। बलिभद्दे=बलराम। दंती=हाथी। इल-खुच्यौ=जमीन में घुस पड़ा। दँत=दांत। अद्धकवि=वह अर्ध सा। सिंघइ=सांग, लोहे की बर्छी। सुब्भई=शोभित हुई। हत्थह=कर, किरण।

अर्थः—आहड़े अमरसिंह ने नागमुखी नामक शस्त्र को निकाल कर एक हाथी के सिर पर वार किया, वह शस्त्र नाग (हाथी) के मुख पर ऐसा सुशोभित हुआ मानो नाग (सर्प) के मुँह से नागिनी जा लगी हो। वार करने पर हाथी की हड्डियों में वह शस्त्र उलझ गया, जिसको उस वीर ने जल्दी से खींचा। कवि (चंद) कहता है—जिससे साथ २ हाथी भी खींचकर इस प्रकार आने लगा मानों बीर बलराम ने हल के द्वारा हस्तिनापुर को खींचा हो। आखिर हाथी नष्ट होकर जमीन पर पड़

जिससे उसका आधा दाँत जमीन में घुस गया और वह नाश कर्ता शस्त्र (सांग) भूमि से लगा हुआ इस प्रकार सुशोभित हुआ, मानों सूर्य-किरण भूमि से लगी हुई हो।

हस्तिकाल जम जाल, काल रुध्यौ चामंडह ।
सुनत पंग रसभंग, सीस लग्यौ ब्रह्मण्डह ॥
रन रुंध्यौ बछ्छरु, मीन गत्ति नीर प्रमानं ।
जग्गि बीर पहु पंग, तोन पारथ्थ प्रमानं ॥
जग लोह कोह कड्ढिय सु असि, भिरत न अपु अरि तक्कए ।
रहि जाम एक निसि पच्छली चढिवि सूर हय नक्खए ॥२६॥

शब्दार्थ:—हस्तिकाल=हाथियों का काल । जम जाल=यमपाश । काल=समय । रुंध्यौ=रुँधा । रसभंग=क्रोध में आगया । रन=रणसिंह । बच्छरु=बालक । तोत=त्रोण, भाथा । पारथ्थ=पार्थ, अर्जुन । प्रमानं=समान । कोह=क्रोध, आवेश । अपु=अपने । अरि=शत्रु, पराये । तक्कए=दीख सकते थे, पहचाने जाते थे । जाम=याम, प्रहर । पच्छली=पिछली । चढ़िवि=चढ़कर । नक्खए=बढ़ाया ।

अर्थ:—हाथियों के काल और यम-पाश रूपी होकर चामंड़राय ने भी उस समय पंगुराज को रौंधा, यह सुनकर पंगुराज क्रोधित हुआ और उसका सर ब्रह्मांड से जा लगा। बालक रणसिंह के द्वारा वह इस प्रकार रोंधा गया था, जैसे मच्छी जल से घिरी रहती है। वह वीर कमधज-राज जाग कर शस्त्रास्त्र बांधता हुआ पार्थ के समान दिखाई पड़ा। उसने आवेश में आकर शस्त्र और तलवार को उठाया; किन्तु रात्रि के (अँधेरे के) कारण अपने और पराए को नहीं पहचान पाने से जब पिछली रात हुई तब उस बहादुर ने घोड़े को बढ़ाया।

बज्जि कूह संमूह, अमर उट्ठै समरं भिरि ।
खंड मुक्ख भौ कोट, समर बंधं सुद्धे जुरि ॥
रा चावंड जैतसी, राव बड़ गुज्जर धाए ।
आहुट्ठे कमधज्ज सार बज्जे सुरझाए ॥
बर अंग जंग भज्जी सहर, लुथ्थि लुथ्थि आलुथ्थि परि ।
चढ्ढने अरिय संग्राम भिरि, खट्ठ सहस सेना गिरी ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—बज्जि=की । कूह=किलकारी, ललकारा । संमूह=सामने । कोट=दीवार । सुद्धे=शोध-लिये, टटोल लिये । जुरि=जुटकर । सार बज्जै=लोहा बजा । भज्जी=टूट गये, नष्ट हो गये । सहर=सिहर, सिर । लुथ्थि=शव । आलुथ्थि परि=लग गई । चढ्ढने=सजने पर, चढ़ाई करने पर ।

अर्थः—उस समय ललकार करता हुआ समर-विक्रम का भाई अमरसिंह शत्रुओं से युद्ध करता हुआ, उन्हें जांचने लगा। जिससे पंगुराज के वीरों की दीवार खंड-खंड हो गई। चावंडराय, जैत्र प्रमार और रामराय बड़ गुज्जर भी उस समय बढ़कर उसके साथ हो गये। आहड़े और कमधज वीरों ने लड़कर उस उलझे हुए युद्ध को सुलझा दिया (समाप्त कर दिया)। शस्त्रों के प्रहार से वीरों के सिर आदि अंग टूट रहे थे और शवों पर शव बिछ गये थे। इस युद्ध में दोनों ओर की छ सहस्त्र सेना धराशायी हुई।

दोहा

कोन हीन को नीर बिन, को तप-भांन नरिंद ।
सह धन धर मुक्की मिलै, लज्ज एह जयचंद ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—नीर=नूर, कांति । तप भांन=नष्ट तेज। मुक्की=छोड़ने पर,तिलांजलि देने पर । एह=यह ।

अर्थः—कवि कहता है:—कौन राजा हीन, तेज रहित और अप्रभावशाली कहा जाता है ? (जिसकी लज्जा चली गई है) हे राजा जयचंद ! सब धन और पृथ्वी को तिलांजलि दे देने पर भी यदि लज्जा रह जाय तो श्रेष्ट है। कवि ताना देता है— सब प्रकार से सम्पन्न होते हुए भी इस समय जयचन्द की लज्जा न रही।

दे[1] यस तिलक सु भान को, जोगिन पुस्तर चिन्ह ।
मोकलिजे आहुट्टपति, पग्ग पंग करि हिंन ॥२६॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—जोगिन=दिल्ली । पुस्तर=प्रशस्ती । मोकलिजै=लौटाया । आहुट्ठपति=आहड़ों के मुखिया, युवराज रणसिंह और आहड़ा अमरसिंह । पग्ग=पैर ।

अर्थः—भानुराय के भाल पर यश का तिलक किया गया। वह दिल्लीश्वर के जय

की प्रशस्ति के तुल्य बन गया। यह कार्य आहुड़ों के मुखियों का ही हो सकता है जो पंगुराज जैसे बलवान के पैर तोड़ कर लौटा सके।

गयौ पंग कनवज्ज दिसि, घन रक्खै धनमास।
नव नवमी नव सरद निसि, तिन मुक्की अरित्रास ॥३०॥

शब्दार्थः—घन=बहुत से योद्धाओं सहित। धन-मास=लक्ष्मी का महिना, कार्तिक मास।

अर्थः—धन्य है उन वीरों को जिन्होंने पंगुराज को अगणित योद्धाओं सहित कार्तिक मास तक रक्खा (युद्ध करते रहे), इसके बाद पंगुराज कन्नौज लौट गया। वह नवमी शरद-की और वह नवीन रात्रि यादव और उनके पक्ष वालों के लिये नूतन दिवस (त्यौहार) के समान थी। इस दिन शत्रु पंगुराज का भय उनके हृदय से दूर हुआ।

०*०*❀*०*०

रेवातट

(समय २५)

दोहा

देवगिरि जित्ते[1] सुभट, आयौ चावँडराय ।
जयजय नृप कीरति सकल, कहि कब्बिजन आय ॥ १ ॥

प्रा० पा० १, पा० घ० ।

शब्दार्थः—जित्ते=विजय प्राप्त की । सकल=सब । कब्बिजन=कवियों ने ।

अर्थः—देवगिरि के युद्ध में विजय प्राप्त करके चामुंडराय सामन्तादि सहित दिल्ली को आया । इस विजय के उपलक्ष में समस्त कवियों ने राजा पृथ्वीराज के कीर्ति-गान के साथ २ उसकी जय २ कार की ।

मिलत राज पृथिराज सौं, कही राव चावंड ।
रेवा तट जो मन करौ, (तो) वन अपुब्ब गज झुंड ॥ २ ॥

शब्दार्थः—अपुब्ब=अपूर्व ।

अर्थः—इसके पश्चात् राजा से मिलकर चामुंडराय ने कहा-हे नरेश्वर ! यदि रेवातट पर जाने की इच्छा की जाय तो वहाँ वन में हाथियों के अपूर्व झुण्ड मिल सकते हैं ।

कवित्त

सुनहु[1] राज पृथिराज, विपिन रवनीक[2] करी[3] जुथ ।
रेवातट सुन्दर-समूह, वीर[4] गज-हंत[5] चवन-रथ ॥
आखेटक-आचंभ, पंथ पावर रुक्कि पिल्लौ ।
सिंध वट्ट दिल्ली-समूह, राज खिल्लत दुअ[6] चल्लौ ॥
जल जूह-कूह कस्तूरि मृग, पह पंखी[7] अरु प्रबत तहँ[8] ।
चहुँवान वने[9] दिक्खे[10] नृपति, कहिन वनत दक्खिन[11] सु रह ॥ ३ ॥

प्रा. पा. १ से ३, का. पा. घ. । ४ सर्वप्रति । ५,७,८, का. । ६.१०, पा. घ. । ६,११ पा. ।

शब्दार्थ—रनवीक=रमणीक, रमणीय । करी-जुथ=करियुथ्थ हाथियों का समूह । सुन्दर-समूह-वीर=श्रेष्ठ वीर समूह । गज-हंत=हाथियों को मारने । चवन-रथ=के लिये कहता है (निवेदन करता है) ।

आखेटक-आचंभ=अद्भूत आखेट। पात्र=पामर, शत्रु। रुकि=रोकते हुए।। पिल्लौ=पयांन करो, पहुँचो,चलो,बढ़ो। सिंघ-वट्ट=सिंहल के रास्ते (सिंघपुर कोई स्थान विशेष या सिंध के रास्ते)। दिल्ली-समूह=दिल्ली का वीर समूह। राज=राजा। खिल्लत=खेलते हुए, (शिकार करते हुए)। दुअ=दोनों। जूह-कूह=अमावस्या की तम राशि तुल्य, तम समूह। पह=पास, समीप। प्रब्बतहँ=पर्वत। बने-दिख्खे=देखते ही बनता, देखने योग्य। कहि न बने=कहते नहीं बनता, अकथनीय। दक्खिन-सु-रह=दक्षिण दिशा के या दक्षिण के रास्ते पर (दिल्ली से दक्षिण की ओर के रास्ते पर)।

अर्थः—हे चाहुवान नरेश्वर पृथ्वीराज! सुनिये-रेवातट का वन जंगली-गज-समूह के कारण विशेष रमणीय है। आपका श्रेष्ठ वीर-समूह वहाँ जाकर हाथियों को मारने (शिकार करने) के लिये आपसे निवेदन करता है, अतः इस अद्भुत आखेट के बहाने रास्ते में रहने वाले दुष्ट शत्रुओं को रोकते हुए आगे बढ़िये। आप दोनों राजा (पृथ्वीराज और रावल समर-विक्रम के पुत्र युवराज रणसिंह या स्वयं रावर समर-विक्रम) दिल्ली के वीर समूह सहित सिंहल (या सिंधु) के रास्ते पर शिकार करते हुए चलिये। वहाँ पर सजल भूमि, वृक्षों की सघनता के कारण घना अंधकार, कस्तूरी मृग और पर्वत के पास ही विविध प्रकार के पक्षी रहते हैं। दिल्ली से यह स्थान दक्षिण दिशा के रास्ते पर है, जो देखने योग्य है और जिसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती।

दोहा

रंग[1] एक पहु-पंग कौ, अरु रवनीक सु[2] थान।
चावँड राव बचन्न सुनि, चढि चल्ल्यौ[3] चहुवान ॥ ४ ॥

ग्रा० पा० १, घ० का०। २ पा०। ३, सर्वप्रति।

शब्दार्थः—रंग=प्रसन्नता, रंग में रंगा जाना।

अर्थः—देवगिरि (देवास) में पंगुराज (जयचंद) पर विजय प्राप्त करने के रंग में रंगा हुआ चाहुवान नरेश्वर (पृथ्वीराज) चामुंडराय के कहने पर उस रमणीय स्थान को देखने की इच्छा से घोड़े पर चढ़ कर चल पड़ा।

कवित्त

चढत राज पृथिराज, बीर अगिनेव दिसा कसि।
सब्ब भूमि नर[1] नृपति, चरन चहुआन लगियसि[2] ॥

मिल्यौ भांन विस्तरी, मिल्यौ खट्टूल गढी नृप ।
मिल्यौ नंदिपुर राउ[3], मिल्यौ रेवा नरिंद अप ।।
बन जूथ मृग सिंघह रु गज, नृप आखेटक खिल्लई ।
लाहौर थान सुरतान तप, बर कग्गद लिखी मिल्लई[4] ।। ५ ।।

ग्रा० पा० १, ३, भीं । २ सं० । ४ सर्वप्रति ।

शब्दार्थ:—अगिनेव=आग्नेय । कसि=कसकर, तैयार होकर । भूमि नर=भोमिया या जनता । लग्गियसि=लगे, छुये । विस्तरी=वैत्तरी, वेत्र वती नदी के तट का । खट्टूल गढ़ी=खट गढ़ी या कोई स्थान विशेष । रेवा=रीवा । अप=आप, स्वयम् । खिल्लई=खेलने लगा । तप=ताप, डर । लिखि=लिखा । मिल्लई=मिल ।

अर्थः—पृथ्वीराज का शिकार के लिये चढाई करने पर, उसके साथी सामंत भी तैयार होकर उसी के साथ दिल्ली से आग्नेय दिशा की ओर चल पड़े । यह सुनकर अनेक भूमिपति और राजागण आ आकर चौहान (पृथ्वीराज) के चरण छूने लगे । वेत्रवती नदी का भानु नामक राजा (या वैत्रनदी तट के राजाओं का सूर्य, मुखिया) खट्टूल गढी का राजा, नन्दीपुर का राजा और स्वयं रेवा नरेश आकर पृथ्वीराज से मिले । वहां राजा मृग, सिंह और हाथियों की शिकार खेलने लगा । उसी समय लाहौर पर गौरीशाह के आक्रमण की सूचना का पत्र (चन्द पुण्डीर द्वारा लिखा-गया) राजा को मिला ।

दोहा

खाँ तत्तार मारुफ खाँ, लिये पान कर साहि ।
घर चहुआनी उप्परै, बज्जा-बज्जन-वाहि ।। ६ ।।

शब्दार्थः—पान=बीड़ा, युद्ध का ताम्बूल । साहि=ग्रहण किया, पकड़ा । बज्जा-बज्जन-वाहि= बजने लगे हैं, बजेंगे ।

अर्थः—उसमें लिखा था-तत्तार खां और मारुफ खां ने हाथ में (युद्ध का) बीड़ा ग्रहण किया है । अतः हे चाहुवान नरेश्वर ! अब आपके भू-भाग पर रण वाद्य बजेंगे यह निश्चय है ।

साटक

श्रोतं भूपय गोरियं वर भरं, बज्जाइ सज्जाइने ।
सा सेना चतुरग बंधि उललं, तत्तार मारुफयं ।।

तुभभ्भी सार स उप्पराव सरसी, पल्लानयं खानयं।
एकं जीव साहाब साहिनि-हयं[1], वीरं सयं[2] सेनयं ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १ का०। २ पा०।

शब्दार्थः—श्रोतं=सुनिये ! भरं=भड़, योद्धा। उलल्लं=उलल पड़े, उछल पड़े, उमड़ पड़े। तुभभ्भी=तू भी। सार=लोह, तलवार। उप्पराव=ऊपर, उठा। सरसी=सरस, सुन्दर। पल्लानयं=पलाने हैं, सजे हैं, । खानयं=खान, मुसलमान। साहाब=शहाबुद्दीन । साहिनी-हयं=अश्वारोही सैनिक। वीरंसयं=वीरता के अंश से युक्त।

अर्थः—हे राजा पृथ्वीराज ! सुनिये, गौरीशाह के श्रेष्ठ योद्धा रण-वाद्य बजवाकर युद्धार्थ सजे हैं तथा चतुरंगिनी सेना को पंक्ति बद्ध करके तत्तार खां और मारुफ खां मुखिया बनकर उमड़ पड़े हैं। अतः आपभी अपनो श्रेष्ठ तलवार को ऊपर उठाइये; क्योंकि मुसलमानों ने अपने घोड़े सजालिये हैं। उन अश्वारोही सैनिकों, सेना और शहाबुद्दीन का एक जीव है और वे सब वीरता के अंश से युक्त हैं।

दोहा

अहिबेली फल हथ्थ लै, तो ऊपर तत्तार।
मेच्छ मसूरति सत्ति कैं, बंचि[1] कुरानी बार ॥ ८ ॥

ग्रा. पा. १ पा.।

शब्दार्थः—अहिबेली फल=नागर-बेल, युद्ध का बीड़ा। सत्ति कैं=सत्य कही । कुरानी बार=कुरानी इबारत, कुरान की आयतें।

अर्थः—मुसलमान मसुरत्तिखाँ ने कुरान की आयातों को पढ़कर उनकी सत्यता बताई, इसीलिये तत्तारखाँ ने तुमसे युद्ध करने का बीड़ा (ताम्बूल) उठाया है।

खटमुर कोस मुकाम करि, चढि चल्ल्यौ चौहान।
चँद बीर पुंडीर कौ, कग्गद करि परिवान ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—खट मुर=खट्टूल गढ़ी से। कोस=एक कोस पर। परिवांन=परिमान, प्रमाण स्वरूप।

अर्थः—वीर चंदपुंडीर के इस पत्र को प्रामाणिक समझ कर पृथ्वीराज ने जहाँ पर वह शिकार खेल रहा था, वहाँ से चल कर खट्टूल गढ़ी से एक कोस पर विश्राम किया और फिर वहाँ से चढ़कर (शाही सेना की ओर) चल पड़ा।

गौरीवै - दल सम्मुहौ[1], गौ पंजाब प्रमान ।
पुब्ब रु पच्छिम दुहुँ दिसा, मिलि चुहान सुरतान ॥ १० ॥

ग्रा. पा. १ पा. घ. ।

शब्दार्थ:–गौरीबै-दल=गोरी सेना, शाही सेना । सम्मुहो=सम्मुख, सामने ।

अर्थ:—गोरीशाह की सेना का पंजाब की ओर आगमन सुनकर पृथ्वीराज उधर ही चल पड़ा। इस प्रकार पूर्व तथा पश्चिम दिशा से चौहान और शहाबुद्दीन का सामना हुआ ।

रेवातट आयौ सुन्यौ, बर गौरी चहुवान ।
बर-अवाज सब मिट्टि के, सजै सेन सुरतान ॥ ११ ॥

शब्दार्थ:–बर-अबाज=शांति की आवाज़, शान्ति की बात, शांति का वातावरण ।

अर्थ:—चाहुवान नरेश्वर को रेवातट पर शिकार के लिये गया हुआ सुनकर ही श्रेष्ठ गौरीशाह ने शांति के वातावरण में बाधा उपस्थित करके अपनी सेना को सजायी ।

दूत गये कनवज्ज दिसि, ते आये तिन थान ।
कथा मंडि[1] चहुवान की, कहि कमधज्ज प्रमान ॥ १२ ॥

ग्रा० पा० १ पा० घ० ।

शब्दार्थ:–मंडि=मांडकर, विस्तृत रूप से, ब्यौरेवार ।

अर्थ:—शाही दूत कन्नोज की ओर भेजे गये, जिन्होंने कमधज नरेश (जयचन्द) को चाहुवान नरेश्वर की सम्पूर्ण कथा से सूचित किया ।

दूत वचन संभलि नृपति, बर आखेटक खिल्लि[1] ।
रेवातट पद्धर धरा, जूह मृगब्बर मिल्लि ॥ १३ ॥

ग्रा० पा० १ घ० ।

शब्दार्थ:–संभलि=सुनकर । खिल्लि=खेल रहा है । पद्धर=समतल । जूह=समूह । मृगब्बर=श्रेष्ठ जानवर । मिल्लि=मिलते, पाये जाते ।

अर्थ:—कन्नौजेश्वर (जयचन्द) को उन दूतों द्वारा ज्ञात हुआ कि श्रेष्ठ पशुओं से युक्त रेवातट की समतल भूमि पर वह (पृथ्वीराज) आखेट में रत है

कवित्त

मिले सब्ब सामंत, मंत[1] मण्ड्यौ सु नरेसर[2] ।
दहगुंना बल साहि, सज्जि चतुरंग सु उप्पर[3] ॥
मवनमंत चुक्कौ न, सोइ वर मंत विचारौ ।
बल घट्ट्यौ अप्पनौ सोच पच्छिलौ निहारौ ॥
तन सट्टै[4] लिज्जै[5] मुगति, जुगति बँध गौरी दलह ॥
संग्राम भीर प्रथिराज बल, अप्पु मत्ति किज्जै कलह ॥१४॥

ग्रा० पा० १, २, पा० घ० । ३, ४, पा० का० घ० । ५, का० ।

शब्दार्थ:—मवनमंत=मस्ती युक्त, मतवाले । सोच=चिन्ता । पच्छिलौ=पीछे का । सट्टै=बदले में । लिज्जे=प्राप्त करना । भीर=आपत्ति । अप्पु मत्ति=अपनी बुद्धि ।

अर्थ:—इधर पृथ्वीराज ने सब सामंतों से मिलकर मंत्रणा की और कहा-हे मतवाले वीरों ! हमें दशगुना बल ग्रहण करके अपनी चतुरंगिनी सेना को सजाना और श्रेष्ठ मंत्रणा का चिंतन करके उससे नहीं हटना चाहिए, क्योंकि इस समय हमारा बल कम हो गया है (हमारे साथ सामंतों की संख्या बहुत कम है) और हमें आगे का भी ध्यान रखना आवश्यक है । अब हमारे लिए शरीर धारण करने की अपेक्षा युद्ध करके मोक्ष-प्राप्ति करना ही श्रेष्ठ है; क्योंकि गौरीशाह द्वारा छल पूर्वक सेना सजाकर आजाने से ही हम पर युद्ध की आपत्ति आगई है । अतः हमें अपने बल को देखते हुए बुद्धि से सोचकर (मंत्रणा करके) युद्ध करना चाहिए ।

सुनिय वत्त पज्जून, राव परसंग मुसक्यौ ।
देवराव बग्गरी, सैन दै पाव कसक्यौ ॥
तन सट्टै सहि-मुकति, बोल भारत्थी बुल्लै[1] ।
लोह अंच उड्डंत, पत्त तरवर जिमि डुल्लै[2] ॥
सुरतान चम्पि मुक्खां लग्यौ, दिल्ली नृप दल बानिवौ ।
भर भीर धीर सामन्त पुन, अबै पटन्तर जानिवौ ॥ १५ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थ:—मुसक्यौ=मुस्कराया । सैनदै=संकेत करता हुआ । कसक्यौ=कसा, दबाया । सहि-मुकति=सच्ची मुक्ति, सत्य मोक्ष । बुल्ले=कहा । भारत्थी=भारतीय संस्कृति का । अंच=तप्त ज्वाला ।

उडन्त=उठने पर, फैलने पर । पत्त=गिरते हुए । डुल्लै=डोलने लगेंगे, झूमने लगेंगे । मुक्खां लग्यौ=सामना किया । दलबानि=दलने को, नष्ट करने को । वो=वह । भोर=समूह । पुन=पुनः । अबै=अब । पटन्तर=परीक्षा काल ।

अर्थः—पृथ्वीराज की यह बात सुनकर पज्जूनराय और प्रसंगराय (यह सोचकर कि राजा को युद्ध द्वारा शशिवृता से विवाह करने के पूर्व यह सोचना चाहिए था कि इस प्रेमबन्धन के कारण मेरी सैन्य शक्ति की क्या दशा होगी) मुस्कराये, देवराय बग्गरी ने भी इसी विषय का संकेत करके पाँव को कुछ दबाया और बोला—भारतीय संस्कृति का यह आदर्श वाक्य है कि शरीर धारण किये रखने की अपेक्षा मुक्ति अच्छी है । हमारी तलवारों की ज्वाला के फैलने पर शत्रु मूल से कटे हुए वृक्ष के समान झूमते हुए गिरने लगेंगे । सुलतान ने दिल्लीश्वर को दबाने के लिए उसका सामना किया है । अतः हम धीर-वीर सामंतों को, इसे हमारा परीक्षा काल ही समझना चाहिये ।

कहै राव पज्जून, तार कढ्यौ तत्तारिय ।
मैं दिक्खनवै[1] देस, भीर यद्दव परिहारिय[2] ॥
मैं बंध्यौ जंगलू, राव चामंड सु सत्थैं ।
बंभन वास विरास, बीर बड़गुज्जर तथ्थैं ॥
भर विभर सैन चहुवान दल, गौरी दल कित्तक गिनौ ।
जानै कि भीम कोरौं[3] सुबर जर समूह-तरवर किनौ ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १ दे० । २ का० । ३ प्र० टि० (५) ।

शब्दार्थः—तार=ताड़ना देकर । दिक्खनवै देस=दक्ष देश, मालव प्रदेश । भीर=आपत्ति । परिहारिय=नष्ट कर दी, दूर की । जंगलू=लड़ाकू (गोरीशाह) । बंभन=ब्रह्म क्षत्रिय । विरास=विलास (रण) क्रीड़ा । विभर=बिफरते हुए, उन्मत्त । सैन=सेना में । कित्तक=कितनाक, क्या । कोरौं=कौरव । सुबर=सबल । किनो=किये गये, कहे गये, माने गये ।

अर्थ :—तब पज्जूनराय बोला—मैंने तलवार के प्रहारों से तत्तारी को निकाला, दक्ष देश (मालव) के यादव निवासियों पर आईहुई आपत्ति को मिटाया । चामंडराय सहित भिड़कर लड़ाकू (गौरीशाह) को बांधा और वीर बड़गुज्जर के बल पर ब्रह्म-क्षत्रिय चालुक्यों की भूमि पर रण क्रीड़ा की । अतः उन्मत्त हुए दलन—कर्ता

चौहान के सामन्तों की सेना के सामने गौरीशाह का दल क्या है ? मेरे समस्त विपक्षी दल उसी प्रकार हैं, जिस प्रकार भीम के समस्त सबल कौरव दल जड़वत् वृक्ष समूह के समान थे।

कहौ जैत पंवार, सुनहु प्रथिराज-राज मत।
जुद्ध साहि गोरी-नरिंद[१], गहै लाहौर-कोट गत ॥
सबै सैन अप्पनौ, राज एकट्ठ सु किज्जै।
इष्ट भ्रत्य सगपन सु हित्त, वीर[२] कग्गद[३] लिखि दिज्जै ॥
सामंत सामि इहि मंत है, अरु यु मंत चित्तै नृपति।
धन रहै ध्रम्म जसु जोग ह्वैं, दिपति दीप दिवलोक पति ॥१७॥

ग्रा० पा० १, २, भीं० घ० पा० । ३, घ० ।

शब्दार्थ:—पंवार=प्रमार। मत=मंत्रणा। लाहोर-कोट=लाहोर दुर्ग। गत=गया हुआ, या चलकर। एकट्ठ=एकत्रित। इष्ट=इष्ट मित्र। सगपन=सम्बन्धी सु-हित्त=इसके लिये, इस विषय में। कग्गद=कागज, पत्र। इहि=यह, हम। मंत=मतवाले। चित्तै=चिंतना। जसु=यश के योग्य। ह्वैं=होवें, कहलावें।

अर्थ:—जैत्र प्रमार बोला—हे नरेश्वर पृथ्वीराज! मेरी मंत्रणा सुनिये। गौरीशाह हमसे युद्ध करना चाहता है; इसलिये हमें जाकर लाहौर दुर्ग को अधिकार में कर-लेना चाहिए। अत: आप सेना को एकत्रित कीजिये और इष्टमित्रों, सेवकों तथा सम्बन्धियों को इस विषय में पत्र लिख दीजिये। हम (सब सामंत) और आप (हमारे स्वामी) दोनों युद्ध-मतवाले हैं। अत: हमें ऐसी मंत्रणा का चिन्तन करना चाहिये, जिससे हमारे धन और धर्म दोनों बने रहें और हम यश के योग्य कहलावें तथा आपकी दीप्ति इन्द्र के समान देदिप्यमान होजावे।

वह वह कहि रघुवंश, राम हक्कारि सु उठ्यौ।
सुनौ सब्ब सामंत, साहि आए बल-छुट्यौ ॥
गज रु सिंघ सापुरिख, जहीं[१] रुंधै तहां झुभ्भै[२]।
असम समौ जानहि न, लज्ज पंकै आलुभ्भै ॥

सामंत मंत जानैं नहीं, मत्त गहैं इक मरन कौ।
सुरतान सेन पहिले बँध्यौ, फिर बंधौ तो करन कौ ॥ १८॥

ग्रा. पा. १ भीं. । २ भीं. घ पा. ।

शब्दार्थः—वह वह कहि=वाह वाह कहकर । हक्कारि=हुंकार कर । बल-छुट्यौं=शक्ति का पलायन हो रहा है । सापुरिष=सत्य पुरुष, वीर पुरुष । जुभ्भै=लड़ते हैं, सामना करते हैं । असम समौ=कठिन समय । लज्ज=लाज । पंकै=पंक में । आलुभ्भै=उलझ कर, फँस कर ।

अर्थः—वाह वाह कहता हुआ रघुवंशी रामराय बड़गुज्जर हुँकार करके बोल उठा, सब सामंत गण सुनिये। शाह के आने मात्र से ही हमारी शक्ति का पलायन हो रहा है; यह कहना ठीक नहीं है। गजराज, सिंह और सत पुरुषों (वीर पुरुषों) के मार्ग में,जहाँ बाधा पड़ जाती है वहीं पर वे भिड़ जाते हैं। वे विषम समय को जानते हुए भी लज्जा के पंक में फँस कर नहीं हटते। योद्धा गण अन्य मंत्रणा तो जानते ही नहीं, वे तो केवल मरने की ही मंत्रणा ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार पहले मैंने सुलतान को सेना के बीच में बांध लिया था, उसी प्रकार पुनः उसे बांध लूँ तभी मुझे कर्ण का सच्चा पुत्र कहना।

कवित्त

रे गुज्जर गाँवार, राज लै मंत न होई।
अप्प मरै[1] छिज्जै नृपत्ति, कौन कारज गृह[2] जोई॥
सब सेवक चहुआन, देश भग्गैं धर खिल्लै।
पच्छि काम कह करै, स्वामि संग्राम इकल्लै॥
पंडित भट्ट, कबि, गाइना, नृप सौदागिर बार हुअ।
गजराज शीश शोभा भँवर[3], क्रन उड़ाइ वह शोभ लअ[4] ॥ १६ ॥

interpolated

ग्रा० पा० १, का० भीं० घ०। २, ३, का० पा० घ०।

शब्दार्थः—राज लै=राजाओं के लिये। अप्प मरै= अपन मर जायँ। देस-भग्गैं=देश का सौभाग्य, भलाई। धर=धारकर, ध्यान में रखते हुए। खिल्लै=खेले [युद्ध का खेल खेले]। पच्छि=पीछे रहने वाले। कह=कहा, कौन। भट्ट-कबि=बंदीजन। गाइना=गायक। सौदागिर=सौदागर। बार-हुअ= बाड़ स्वरूप हो जाते, घेरे रहते। भँवर=भ्रम। क्रन=कर्ण, कान। लअ=लेता, पाता।

अर्थः—तब जैत्र प्रमार बोला, हे गँवार गुर्जर। राजाओं को मंत्रणा देना ठीक नहीं। हमारे व्यर्थ ही मारे जाने पर राजा को कष्ट हो; इससे कौनसा गृहकार्य सिद्ध हो सकता है। अतः हम सब (सामंतों और चाहुवान नरेश्वर) को देश के सौभाग्य (भलाई) को ध्यान में रखते हुए युद्ध-खेल खेलना चाहिये। बिना सोचे समझे ही हमारे मारे जाने पर, संग्राम में हमारे स्वामी अकेले रहकर कौन से कार्य में सफलता प्राप्त कर सकेंगे ? (ऐसा करने पर तो सब तरह से चौपट होने की सभावना ही है) क्योंकि पीछे रहने वाले पंडित, भट्ट-कवि, (बंदीजन,) गायक और सौदागर ये तो केवल राजाओं को उसी प्रकार घेरे रहने वाले (शोभा स्वरूपा) होते हैं। जिस प्रकार हाथी के सिर की शोभा के लिये उसपर मँडराते हुए भ्रमर होते हैं और जिनको वह अपने कानों द्वारा शनैः २ उड़ाता हुआ शोभा पाता रहता है।

दोहा

परिखो रत्तन-दंग-मम, अग्ग जुद्ध सुरतान।
अब इह मंत विचारिये, लरन मरन परवान ॥ २० ॥

शब्दार्थः—परिखो=परीक्षा कर लेना। रत्तन-दंग=युद्ध में लीन होने की। मम=मेरी। परवान=निश्चय।

अर्थः—रामराय बड़गुज्जर बोला, सुलतान के साथ युद्ध होने ही वाला है। अतः तुम मेरे युद्ध में लीन होने की परीक्षा कर लेना। अब हमें यह मंत्रणा स्थिर करनी चाहिए कि हमारे लिए लड़ना मरना ही निश्चित है।

गजन संग[1] प्रथिराज कै, है दिक्खिय पर-वांन।
बज्जी पक्खर खण्डरै, चाहुआन-सुरतान ॥ २१ ॥

१ प्रा०पा०१, भीं०का०।

शब्दार्थः—गजन=गर्जना करने पर। संग=साथी। है=घोड़े। पर-वान=पंख युक्त। पक्खर=पाखरों। खंडरै=खांडे, खड्ग। चाहुआन-सुरतान=चाहुआन सम्राट।

अर्थः—इस प्रकार पृथ्वीराज के साथियों के गर्जना करते ही चौहान सम्राट के अश्वों के पंख लगगये हों, ऐसा दिखाई दिया। उसी समय घोड़ों की पाखरों की कड़ियों के साथ २ खड्ग की खनखनाहट भी होने लगी।

बँचि[१] कग्गद[२] चहुवान ने, फिरिन चंद सहथांन ।
मनो बीर तन अंकुरे, मुगति-भोगवनि-प्रान ।। २२ ।।

ग्रा०पा०१, सर्वप्रति । २, भीं०पा० ।

शब्दार्थः—बँचि=बांचा, पढ़ा । कग्गद=कागज, पत्र । फिरिन=मुड़गया । सहथान=सहुथान, उस स्थानको । चंद=चंद पुण्डीर । तनु=शरीर । मुगति-भोगवनि=मोक्षभोगी । प्रान=प्राणी ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने चन्दपुण्डीर के पत्र को पढ़कर उसकी ओर प्रस्थान किया, उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानों मोक्षभोगी प्राणियों के शरीर में वीर रस अंकुरित हो गया हो ।

मची कूह दल हिंदु के, कसे सनाह-सनाह ।
बर चिराक दस सहस भइ, बजि निसांन अरिदाह ।।२३।।

शब्दार्थः—कूह=हल्ला, शोरगुल । सनाह=कवच । चिराक=दीपक । निसांन=नक्कारे ।

अर्थः— हिन्दू-दल में शोरगुल मच गया । उसी समय वीर गण कवच कसकर सुसज्जित हो गये । वे दश सहस्र योद्धा नक्कारे बजवाकर शत्रु-समूह रूपी पतंगों को जलाने के लिये दीपकों के समान प्रज्ज्वलित होगये ।

वाव-सूर[१] कोय न भयौ[२], दूत आय तिहिं वार ।
सजी सैन गौरी सुबर, उत्तरए नद पार ।। २४ ।।

ग्रा० पा० १, सं० । २, का० पा० ।

शब्दार्थः—वावसूर=सूरया पवन, दक्षिण का पवन, बादलों को मिटा देने वाला पवन ।

अर्थः—उधर दूतों ने गौरीशाह के पास जाकर पृथ्वीराज का आखेट में जाना और चन्दपुण्डीर का पत्र प्राप्त होने पर युद्धार्थ तत्पर होना सूचित किया । यह सुनकर भी उसके योद्धाओं में से कोई भी पृथ्वीराज के (बादलों के समान) दल-समूह को नष्ट करने के लिए दक्षिण पवन के समान नहीं हुआ । फिर भी गौरीशाह ने सेना सजाकर नदी को पार किया ।

पंचासज गौरी नृपति, बंध उतरि नदि[१] पार ।
चंद बीर पुण्डीर ने, थटि मुक्यौ दर-बार ।। २५ ।।

ग्रा० पा० १, सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—पंचासज=पंजाब पर चढ़ाई । बंध=बांध, या बंधुओं सहित, तथा घट, नाव आदि बांध-कर, अथवा सेना को पंक्ति बद्ध करके । थटि=थट्ट, समूह । मुक्के=छोड़े, बढ़ाये, नियुक्त किया । दर-वार=वारि के द्वार पर, तट पर, दर्रे पर ।

अर्थः— इस प्रकार गौरीशाह ने पंजाब पर चढ़ाई की और नदी के बाँध को पार किया । यह सुनकर चंद पुण्डीर ने अपने वीर समूह को नदी के तट पर नियुक्त कर दिया ।

कवित्त

खां – मारुफ तत्तार, खान खिलची बर गढ्ढे ।
चामर छत्र मुजक्क, गोल सेना रचि गढ्ढे ॥
नारि गोर[1] जम्बूर, सुबर कीना गज-सारं ।
नूरी खां हुज्जाब, नूर महमद सिर भारं ॥
बज्जीर खान गोरी सुभर, खान खान हजरत्तिखां ।
बिय सज्जि सेन हरवल करिय, तहँ उब्भौ सजरत्तिखां ॥ २६ ॥

ग्रा. पा. १ का. घ. ।

शब्दार्थः—मुजक्क=मुयज्जूदीन (या-मयूदीन अथवा मोजदीन) । गोल सेना=अंग रक्षक सेना । गढ्ढे=दृढ़ता पूर्वक । नारि=तुपकें । गोर=गोले । जंबूर=छोटी तोपें । सुबर=उस समय । गज सारं= हाथियों को सजाये । बिय=दोनों ने । हरवल=हरावल, अग्रभाग की सेना । उब्भौं=खड़ा हुआ ।

अर्थः—चंदपुंडीर को युद्धार्थ तत्पर देख कर मारुफखां, तत्तारखां तथा श्रेष्ट खिलजी-खां (या खिलजी खानदान के) भी दृढ़ता पूर्वक डट गये । मुयज्जूदीन (मयूदीन या मोजदीन) ने छत्र और चामर धारण करके शाह की अंग रक्षक सेना को दृढ़ता पूर्वक पंक्ति बद्ध किया । उसी समय आग्नेयास्त्र धारी (तुपक, गोले, जंबूर चलाने वाले) श्रेष्ठ वीरों और हाथियों को सज्जित किया गया, जिनका भार नूरखां, हुज्जाबखां और नूरमुहम्मद पर छोड़ा गया । गौर (या गौर वंशज) के गौर कुल के श्रेष्ठ वीर वजीरखां और हजरतखां ने हरावली (अग्रभाग की) सेना को सजायी । उस सेना का भार गृहण करके सजरतखां खड़ा हुआ ।

रचि हरवल सुरतान, साहि-जादा-सुरतानं ।
खांपैदा महमूद, बीर बंध्यौ सुविहानं ॥

खां-मँगोल लल्लरी, बीस टंकी बर खंचै ।
चौतेगी सहबाज, बान अरि प्रान सु अंचै ॥
जँहगीरखान जंगी रवद[1], खां हिन्दू बरबर त्रिहर ।
पच्छिमी खान पट्ठान सह, रचि उभ्भै हरवल गहर ॥ २७ ॥

ग्रा० पा० १ भीं० ।

शब्दार्थ:—साहिजादा-सुरतानं=शाहजादे और शाह । खाँपेदा महमूद=गजनी के सगोत्रीय । बंध्यौ=बंदना की, स्थापित किया, नियुक्त किया । सुविहानं=मुसलमानों का खुदा, स्वयं शाह । बीसटंकी=तोल की, या—बीस टंकार करने वाली कमान । चौतेगी=चार २ तलवारें बांधने वाला । अंचै=ऐंचने वाला । जंगी=मुसलमानों में बड़ा । खां-हिन्दू=मुसलमांन और हिन्दू । बर २=बार २ । त्रिहर=त्रिहर जाते, चल पड़ते, भाग जाते । पच्छिमी=पश्चिम दिशा के ।

अर्थ:—सुल्तान ने सेना के अग्रभाग (हरावल) में महमूद गौरी के सगात्रीयशाही खानदान के शाहों और शाहजादों को नियुक्त किया; जिन्होंने शाह की वन्दना की। (बीस टंक तोल की या बीस बार टंकार करने वाली) कमान खींचने वाले मंगोलखाँ और लल्लरी खाँ, चार तलवारें बाँधकर वाणों द्वारा शत्रुओं के प्राणों को खींच लेने वाला शाहबाजखां एवं मुसलमानों में श्रेष्ठ और सामना होने पर मुलसमानों और हिन्दुओं को खदेड़ देने वाला जहाँगीरखाँ, हरावल की रचना कर युद्धार्थ खड़े हो गये ।

रचि हर वल पट्ठांन, खान इसमान रु गक्खर ।
केलीखां कुंजरी, साह सारी दल पक्खर ॥
खाभट्टी महनंग, खान खुरसानी बब्बर ।
हबसखांन हबसी हुजाब,[2] ग्रब्ब आलम्म जास बर ॥
तिन अग्ग अट्ठ गजराज बर, मद सरक्क पट्टे तिना ।
पंच-बिन-पिंड जो ऊपजे, जुद्धं होइ लज्जी वना ॥ २८॥

ग्रा०पा०१, भीं० । २, पा०घ० ।

शब्दार्थ:—खाभट्टी=खांपधारी, खड्गधारी । महनंग=महान अंग, महाकाय । ग्रब्ब=गर्व । आलम्म=शाह या संसार । सरक्क=छके हुए । पट्टे तिना=पट्टाधारी । पंच-बिन-पंड=पंच तत्व से जिनका शरीर बना हो । उप्पजे=पैदा हुए । लज्जीविना=बिनाशङ्का के, निः शंक।

अर्थः—पठानों द्वारा रची हुई हरावल सेना में इस्मानखां, गक्खरखां, केलीखां, कुँजरीखां और शाह की सजाई हुई अश्वारोही सेना थी। जिस सेना के नायक खड्गधारी महाकाय खुरासानी बब्बरखांन, हबसी हसनखांन और श्रेष्ठ वीर हुजाब खांन थे। उनके बल पर शाह को (या संसार को) गर्व था। उन सेनाध्यक्षों के आगे पट्टा चलाने वाले आठ श्रेष्ठ मदोन्मत्त हाथी थे। उन हाथियों से वे ही वीर लड़ सकते थे, जिनका शरीर पंचतत्वों से नहीं बनकर स्वयं (स्वयंभू) रूप से निर्मित हुआ हो या जो निःशंक हों।

करित माय चौ साहि, तीस तहँ रखिव फिरस्ते ।
आलमखां आलम गुमान[1], खान उजबक्क निरस्ते ॥
लहु मारूफ गुमस्त, खान उस्तम[2] बजरंगी ।
हिन्दु सेन उप्परें, साहि ,बज्जै रन जंगी ॥
सह सेन-टारि सोरा-रच्यौ, साहि चिन्हाव सु उत्तर्‌यौ ॥
संभले सूर सामंत नृप, रोस बीर बीरं ढुर्‌यौ ॥ २६ ॥

ग्रा० पा० १, भीं॰, पा० । २, सं० ।

शब्दार्थः—करित=करके । माय=माया । निरस्ते=बेरास्ते, उटपटांग चलने वाला । लहु=लघु । गुमस्त=गुस्ताख, घूमने वाला, मस्ताना । उप्परैं=ऊपर । साहि=शाह । सेन-टारि=सेना का चुनाव करके । सोरा-रच्यौ=सोरा किया, सोया आराम किया । चिन्हाव=चुनाव नदी । संभले= सुनकर, सूचनापाकर । ढुर्‌यौ=ढलका, झलका, छलका ।

अर्थः—इस प्रकार शाह ने चारों ओर व्यूह रचना की माया फैलादी, जिसमें तीस वीर खुदा के फरिश्ते (दूत) के समान थे। जिस पर बादशाह (या संसार) को गर्व था, ऐसा आलम खां, ऊबड़ खाबड़ (जटिल) मार्ग पर विचरण करने वाला उजबकखां, अशिष्ट व्यवहार करने वाला छोटा मारुफखां और वज्र काय रुस्तमखां को नियुक्त कर, शाह ने हिन्दू सेना से युद्ध करने के लिए रणवाद्य बजवाये। सैन्य-चुनाव के बाद कुछ समय विश्राम करके बादशाह चिनाव नदी की ओर गया-यह सूचना पाकर सामन्तों और राजा पृथ्वीराज के शरीर से क्रोध प्रदर्शित होने लगा।

तमसि-तमसि सामंत सब, रोस भरिग पृथिराज ।
तब[1] लगि रुपि पुंडीर ने, रुक्यौ[2] गोरी साज ।। ३० ।।

ग्रा० पा० १, पा० का० घ० । २, पा० ।

शब्दार्थः—तमसि-तमसि=तमोगुण में आकर। रुपि=रुपा, द्रढ पैर जमाये। रुक्यौ=रोका।

अर्थः—सामन्तों के हृदय में तमोगुण एवं राजा के मन में क्रोध व्याप्त होने लगा। उसी समय चन्दपुंडीर ने सज्जित होकर पांवों को दृढ़ जमाते हुए आगे बढ़कर गौरी शाह को रोका।

कवित्त

उतरि साह[1] चिन्हाव, घाव पुंडीर लुथ्थि पर ।
उप्पार्यौ बर चंद, पंच बंधव सु पथ्थ धर ।।
दिक्खि दूत बर चरित, पास आयौ चहुआनं ।
उप्पर गोरी नरिंद, हांस बढ्ढी सुरतानं ।।
बर मीर धीर मारूफ ढुरि, पंच अनी एकठ जुरी ।
मुर पंच कोस लाहौर तें, मेच्छ मिलानह सो करी ।। ३१ ।।

ग्रा० पा० १ का० पा० ।

शब्दार्थः—सु पथ्थ धर=श्रेष्ठ पथ (स्वर्ग) को गृहण किया। हांस=हिस्सेदार, सगोत्रीय। बढ्ढी=बढाये। ढुरि=गिरा, धराशायी हुआ। पंच=पंजाब। एकठ-जुरी=एकत्रित हो गई। अनी=सेना। मुर=रुककर। मेच्छ=मुस्लिम शाह। मिलानह=विश्राम, मुकाम।

अर्थः—जब शाह ने चिनाव को पार किया, उस समय चंदपुंडीर युद्ध करने लगा और उसके घायल होकर गिर पड़ने पर उसे उठाया गया। उसी समय उसके पांचों भाई भी श्रेष्ठ पथ के (स्वर्ग के) पथिक बन गये। उन वीरों की श्रेष्ठ युद्ध-लीला देख कर दूत चाहुवान के पास पहुँचा और कहा, आप पर गौर प्रदेश के स्वामी [शहाबुद्दीन]ने अपने सगोत्रीय वीरों को बढ़ाया है। अपनी ओर से चंदपुंडीर और उधर से श्रेष्ठ धैर्यवान मीर मारुफ घायल होकर धराशायी हुए हैं अब शाही सेना पंजाब में आ एकत्रित हो रही है और उसने लाहोर से पांच कोस की दूरी पर ही मुकाम किया है।

दोहा

बीर रोस बर बैर बर, झुकि लग्गौ[1] असमान ।
तौ नंदन सोमेस कौ, फिरि बंधौं सुरतान ॥ ३२ ॥

ग्रा. पा. १ पा. घ. भीं. ।

शब्दार्थः—रोस=क्रोध । बर=उस समय । झुकि=टेढ़ा हो ।

अर्थः—यह सुनते ही वीर पृथ्वीराज क्रोधित होकर बदला लेने के लिये टेढ़ा होकर आसमान से जा लगा और बोला :— मैं उसी समय सोमेश्वर का पुत्र कहा जा सकता हूँ, जब कि सुलतान को फिर से बंधन में ले लूँ ।

चन्द्र व्यूह नृप वंधि दल, धनि प्रथिराज नरिंद ।
साह-बंध सुरतांन सौं, सेना बिनवि धकंद[1] ॥ ३३ ॥

ग्रा. पा. १, पा. ।

शब्दार्थः—साह-बंध=बादशाह के सगोत्रीय भाई । बिनवि=इष्ट वंदना करके । धकंद=धकाई, बढ़ाई ।

अर्थः—पृथ्वीराज को धन्य है, जिसने इष्ट वन्दना करके, अपनी सेना को चन्द्र-व्यूहाकृति का रूप देकर सुलतान और उसके सगोत्रीय बंधुओं की ओर बढ़ाया (या सेना का सम्मान करके बढ़ाया) ।

कवित्त

बर मंगल पंचमि स जुद्ध,[2] दिन सु दिंनौ पृथीराजं ।
राह केत जय दीन, दुष्ट-टारै सुभ काजं ॥
अष्टचक्र जोगनी, भोग भरनी सुधि रारी ।
गुर पंचम रवि पंच, अष्ट मंगल नृप भारी ॥
कैइंद्र बुद्ध भारथ्थ-भल, कर-त्रिसूल-चक्रावलिय ।
सुभ घरिय राज-बर लीन-बर, चढ्यौ उदै-कूरह[?] बलिय ॥ ३४ ॥

ग्रा०पा०१, का०पा०घ० । २, भीं०घ० ।

शब्दार्थः—राह=राहू । केत=केतू । दुष्ट-टारै=दुष्ट गृह टालने वाले । अष्ट-चक्र-जोगनी=अष्ट भुजा यागिनी चक्रयुक्त थी । भोग-भरनी=विनोद दाता, विनोद में वृद्धि करने वाली । सुधि-रारी=युद्ध की

सुधि पाकर। कैइन्द्र=केंद्र स्थान पर। भारथ्थ-भल=युद्ध के लिये अच्छा। कर-त्रिसूल-चक्रा=शूल पाणि और चक्रपाणि। वलिय=बलवान। राज-बर= श्रेष्ठ राजा। लीन-बर=शक्ति को गृहण करता हुआ। उदै-कूरह=क्रूर सूर्य, ग्रीष्म कालीन सूर्य। बलिय=बलवान।

अर्थः—पृथ्वीराज ने पंचमी, मंगलवार का दिन श्रेष्ठ मानकर शत्रु को युद्ध की सूचना दी। उस दिन पृथ्वीराज के लिये राहू-केतु जय दायक, दुष्ट गृहों को टालने वाले एवं शुभ कार्य के कर्ता थे। अष्ट-भुजा युक्त योगिनी भी युद्ध की सुधि पाकर पृथ्वीराज के पक्ष में होकर, अपने हाथों में चक्र ग्रहण करके युद्ध-विनोद में वृद्धि कर रही थी। उस दिन पृथ्वीराज के बृहस्पति और सूर्य पांचवें, मंगल आठवें तथा बुध केन्द्र स्थान में था, जो कि युद्ध के लिये शुभ माना गया है। उसी समय बजिष्ट शूलपाणि और चक्र-पाणि दोनों भी पृथ्वीराज के सहायक थे। उस शुभ घड़ी में शक्ति को ग्रहण करते हुए पृथ्वीराज ने तेजस्वी सूर्य के समान होकर शत्रुओं पर चढ़ाई की

दोहा

सो रचि अद्ध[१]-अ अद्ध[२]-उध[३], उग्गिम हब-विधि कंद।
बरनि खेद नृप वंदयौ, कौंन-भाइ[४] कबि चंद ॥ ३५ ॥

प्रा० पा० १, २, सं०। ३, पा०। ४, भीं।

शब्दार्थः—अद्ध-अ अद्ध-उध=प्रातः उठता हुआ, मध्यान्ह होने पर, अस्त समय (उदयास्त, आदि से अंत तक)। उग्गिम=उदय हुआ। हब-विधि=हवन की तरह, हवि कुंड तुल्य। कंद= नाशक, शत्रु नांशक। बरनि=वर्णन करके, रूप देकर। कौन-भाइ=किस भाव से, किन मनो-दगारों से।

अर्थः—तेजस्वी सूर्य स्वरूपी पृथ्वीराज आदि से अन्त तक प्रज्ज्वलित हवि कुण्ड के समान होकर शत्रु नाशक होता हुआ उदय हुआ। कवि कहता है खेद है कि ऐसे सुन्दर स्वरूप धारी राजा को मैंने क्रूर रूप दिया। फिर भी वह मेरे द्वारा वंदनीय है और यही मेरा गुप्त मनोद्गार भी है।

कवित्त

प्रात-सूर बंछई, चक्क चक्किय रवि बंछै।
प्रा सूर बंछई, सुरह-बुधि बल सो इंछै॥

प्रात सूर बंछई, प्रात बर बंछि वियोगी ।
प्रात सूर बंछई, ज्यौं सु बंछै बर रोगी ।।
बंछयौ प्रात ज्यौं त्यौं उनन, बंछै रंक करन्न बर ।
बंछयौ प्रात पृथीराजनै, सती सत्त बंछेति उर ।। ३६

शब्दार्थ:—प्रात-सूर=प्रातः और सूर्दोदय, सूर्योदय वेला । बंछई=इच्छा करते । बुद्धि-बल=बुद्धि-मान । इंछै=चाहते । बर=वर, प्रियतम की । वियोगी=वियोगिनी स्त्री । रंक=दीन । करन्न वर=कर्ण की वेला, कर्ण के दान देने का समय, प्रातःकाल ।

अर्थ:—पृथ्वीराज ने रात्रि में प्रातःकाल होने की कामना उसी प्रकार की, जिस प्रकार चक्रवाक दम्पति, बुद्धि बल से देवताओं के सापेक्ष्य कर्ता ऋषि मुनि (द्विजादि), वियोगिनी, रोगी, दीन एवं सती हृदय से सूर्योदय होने की अपेक्षा करती है । (चक्रवाक दम्पत्ति का सम्पर्क दिन में होता है, ऋषि मुनि द्विजादि भी प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में नित्य कर्मादि करते हैं, वियोगिनी सती स्त्री तथा रोगी को रात्रि दुरुह लगती है, दीन भी दान लेने की इच्छा रखते हुए प्रातःकालीन वेला चाहते हैं और रात्रि में मरे हुए पुरुष की सती स्त्री साथ में जलने के लिए सूर्योदय की अपेक्षा करती है) ।

दोहा

क्रंम गाह इक मुगति की, क्यौं करिजै वाखान ।
मन अनंख सा मंतनै, कच करबति पाखान ।। ३७ ।।

ग्रा० पा० १, का० पा० ।

शब्दार्थ:—क्रंम गाह=कर्मगाथा । वाखान=प्रशंसा । मन-अनंख=मन से अनखने वाले, क्रोध करने वाले । सा=वह । मंतनै=मतवाले । करबति=करौंति ।

अर्थ:— रों की कर्म गाथा ही एक मात्र मोक्ष गाथा है-उसकी क्या प्रशंसा की जाय ? शत्रुओं पर मन से क्रोध करने वाले वे मतवाले वीर केश, करौंती और पाषाण तुल्य थे । (केशों के समान कट-कटकर भी बढ़ते रहते थे, करौंति के समान शत्रुओं के अंगों पर चलते थे, और युद्ध में उनके वक्षस्थल शिला स्वरूपी दिखाई पड़ते थे) ।

वाइ[1] विषम[2] धुंधरि परी[3], बद्दर छाए भान ।
कुन घर मंगल बज्ज ही, कें चढि मंगल आन ॥ ३८ ॥

ग्रा० पा० १, का० पा० घ० । २ पा० व० । ३ का० ।

शब्दार्थः–वाइ=वायु । धुंधरि=धुंधलाहट । कें चढि=किसके सिर पर चढ़ता है । मंगलआन=मंगल गृह आकर ।

अर्थः—विषम वायु (तुल्य सेना के बढ़ने) के कारण आकाश में रज (धूंधल) छा गई, जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानों सूर्य पर बादल छागये हों । कवि कहता है–देखें, किसके घर पर मांगलिक वाद्य बजते हैं और किसके सिर पर मंगल गृह (क्रूरगृह) आकर उतरता है ।

दिष्ट दिखिव[1] सुरतान दल, लोहा चक्कत बान ।
खहकि फेरि उडगन चले, निसि आगम फिरि जान ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः–दिष्ट दिखिव=दृष्टिगोचर होते ही । लोहा=लोह धारी । चक्कत=चक्राकृति । खहकि=आकाश मार्ग पर । फिरी=फिर से ।

अर्थः—शाह की सेना के दृष्टिगोचर होते ही लोहधारियों के बाण चक्राकृति के रूप में इस तरह चलपड़े मानों पुनः रात्रि का आगमन देखकर आकाश मार्ग पर नक्षत्र चलपड़े हों । (नक्षत्र टूट पड़े हों) ।

धजा वाइ बंकुरि[1] उड़ति, छबि कबिंद इह आइ ।
उडगन चंद नरिंद बिय, लगि[2] मांनअइ[3] पाइ ॥ ४० ॥

ग्रा. पा. १, का. पा. । २, ३. पा. ।

शब्दार्थः–धजा=ध्वजा । बाइ=वायु के कारण । बंकुरि=बांकी हो हो कर. टेढ़ी हो हो कर, झुक झुक कर । बिय=दोनों । मांनअइ=मानी जाती. मानों । पाइ=पांव ।

अर्थः—वायु के कारण (सतारक जरीन) ध्वजायें टेढ़ी हो हो कर (झुक २ कर) इस प्रकार उड़ने लगी, मानों तारागण सहित चँद्रमा दोनों राजाओं (गौरीशाह और पृथ्वीराज) के पाँव छूरहा हो (वंदना कर रहा हो) ।

सेसनि संकह[1] बज्जतह[2], बाजै कुहक सुरंग।
मिट्टै[3] सद निसान के, सुनेन श्रवन ति अंग ॥४१॥

ग्रा. पा. १, २, ३, पा.।

शब्दार्थ:—सेसनि=सहस्रों। संकह=शंख। सद्द=शब्द, ध्वनि। ति अंग=उसे, वह।

अर्थ:—सहस्रों शंखों की ध्वनि के साथ साथ सुन्दर कुहक ध्वनि (बाणों की सन-सनाहट) होने लगी। इस ध्वनि के सामने नक्कारों की ध्वनि के लुप्त हो जाने से वह कानों को नहीं सुनाई देती थी।

अनी दोउ घनघोर ज्यौं, घाइ मिले कर-थाट[1]।
चित्रंगी रावर बिनां, कौन करै दहवाट ॥४२॥

ग्रा. पा. १, भीं.।

शब्दार्थ:—अनी=सेनायें। दोउ=दोनों। कर-थाट=समूह बनाकर, समूह बद्ध हो। चित्रंगी रावर=चित्तौड़ पति रावल। दहवाट=तितर बितर।

अर्थ:—परस्पर आघात करती हुई दोनों सेनायें भयानक बादलों के रूप में समूह बद्ध होकर मिल जाने पर विपक्षी दल को चित्तौड़ पति रावल के बिना कौन तितर-बीतर कर सकता है? [अर्थात् दोनों सेनाओं के मिलते ही रावल समरविक्रम ने भी घोड़े की रास खींची]।

कवित्त

पवन रूप परचंड, घालि असु असिवर झारै।
मार मार सुर बज्जि, पत्त-तरु अरि सिर पारै॥
फहकि सद्द फेफरा, हड्ड कंकर उख्खारै।
कटि भसुंड परि मुंड, भिंड-कंटक उप्पारै।
बज्जयौ विषम मेवार पति, रज उड़ाइ सुरतान दल।
समरत्थ समर सम्मर मिलिय, अनी मुख्ख पिख्यो[1] सबल॥४३॥

शब्दार्थ:—परचंड=प्रचंड। प्रबल=दीर्घकाय। घलि=प्रवेश कर, बढ़ाकर। असु=अश्व, घोड़ा। झारै=झाड़ी, प्रहार किया। सुर=स्वर, आवाज। बज्जि=करके। पत्त-तरु=पतित तरु, गिरते हुए वृक्ष। फहकि=फूं-फूं करने लगे। हड्ड-कंकर=कंकाल की हड्डियें, शरीर की हड्डियें। भिंड-कंकट=

भंड कंटक, अपवाद स्वरूपी कंटक। उप्पारै=उपाड़ दिये, उठा दिये। बज्जयो–विषम=विषम–बात स्वरूप चल कर। रज=धूलि और रजोगुण। समरथ्थ समर=सामर्थ्यवान रावल समर–विक्रम। सम्मर=समर, युद्ध। अनीमुक्ख=सेना के मुखपर (अग्रभाग पर)। पिख्यौ=देखागया। सबल=वह विक्रम या बलवान।

अर्थः– दीर्घकाय, पवन वेगधारी घोड़े को शत्रु-सेना में बढ़ाकर सामर्थ्यवान रावल समर–विक्रम ने मार २ शब्दोच्चारण करते हुए अपने खडग-प्रहार द्वारा शत्रुओं के सिर को काट २ कर, कट कर गिरते हुए वृक्षों के समान कर दिया, जिससे उनके फेफड़े उर्ध्व श्वास छोड़ने लगे। उसने उनके शरीर की हड्डियों को उखेड़ (तोड़) दिया तथा उसके प्रहार से हाथियों के भ्रसुंड कटकट कर पड़ने लगे। इस प्रकार उसने अपवाद स्वरूपी कटकों (शत्रुओं) को उठा दिये (समाप्त कर दिये), विषम वात के समान चलकर उसने सुलतान की सेना के रजस्वरूपी रजोगुण को उड़ा दिया। दोनों सेनाओं के मुंह मिलने पर (सामना होने पर) सर्व प्रथम चित्तौड़ेश्वर ही शत्रुओं से भिड़ता हुआ दिखाई दिया।

रावर उप्पर धाइ, पर्‌यौ पंवार[1] जैत खिजि।
तिहिं उप्पर चामंड, कर्‌यौ हुस्सैन खांन सजि॥
धक्काई धक्काइ, दोय हरबल बर मभ्भै।
पच्छ सेन आहुट्टि, अनो बंधी आलुभभ्भै॥
गजराज वीय सुरतान दल, दह चतुरंगी बीर बर।
धनि धार धार धारह धनी, बर भट्टी उप्पारि कर॥ ४४॥

[1] ग्रा० पा० १ का०।

शब्दार्थ–उप्पर=सहायता पर। खिजि=क्रोध करता हुआ। कर्‌यौ=बढ़े। हुस्सैन=मीर नासुरुद्दीन हुस्सेन का पुत्र। धक्काई=बढ़कर। धक्काइ=धकेल दिया। पच्छ=पक्ष पर। आहुट्टि=आहड़ों की। आलुभभ्भे=उलभ्फ पड़ी। गजराज=श्रेष्ठ हाथी। बीय=दो। दह=दस। धार धार=खड्ग धारण करने वाले। धारह-धनी=धार राज वंशज। उप्पारि-कर=हाथ उठाये।

अर्थः—रावल समर-विक्रम की सहायतार्थ जैत्र प्रमार क्रोधित होता हुआ आगे बढ़ा। उसकी सहायता करने के लिए चावंडराय और हुस्सैनखां (मीर हुस्सैन का पुत्र गाजीहुसेन) सजधज कर बढे। उन दोनों ने बढकर हरावल के मध्य भाग को धकेल

दिया। उनके पक्ष पर आहड़ों की (मेवाड़ी) सेना पंक्ति बद्ध होकर शत्रुओं से उलझ पड़ी, जिससे शाह के दो हाथी और उसकी चतुरंगिनी सेना के दस श्रेष्ठ योद्धाओं का दलन हो गया। किन्तु धन्य है खड्ग धारण करने वाले धार राज वंशज (जैत्र प्रमार) और श्रेष्ठ भट्टी वीर को, जिन्होंने युद्ध में अपने हाथ उठाये (हाथों द्वारा युद्ध कौशल प्रदर्शित किया)।

छत्र मुजीक सु अप्पि, जैत दीनौ सिर छत्रं।
चन्द्रव्यूह अंकुरिय, राज दुअ इहाँ इकत्रं॥
एक अग्र हुस्सैन, बीय अग्रह पुंडीरं।
मद्धि भग्ग रघुवंस, राम उभ्भौ बर बीरं॥
सांखलौ सूर सारंगदे, उररि खान गोरीय मुख।
हथ नारि गोर जंबूर धन, दुहूँ बांह उभ्भैति[१] रुख[२]॥ ४५॥
ग्रा० पा० १, २, सर्वप्रति।

शब्दार्थः—अप्पि=अर्पित किया, उससे छीन लिया। राज,दुअ=पृथ्वीराज और रावल समर-विक्रम। इकत्रं=एकत्रित हो, मिलकर। अग्र=आगे को, हरावल में। बीय=दूसरे। उररि=उमड़कर। हथनारि-गोर-जंबूर=आग्नेयास्त्र विशेष। दुहूं बांह=दोनों भुजाओं पर, दोनों पार्श्व में। उभ्भैति=खड़ी। रुख=तरफ, ओर।

अर्थः—मयुज्जुद्दीन ने अंग रक्षक सेना का नेतृत्व गृहण करके जिस छत्र को धारण किया था, उसे उसने जैत्र प्रमार को अर्पित कर दिया (जैत्र ने उस छत्र को छीन लिया)। उस छत्र को जैत्र ने अपने सिरपर धारण किया। उसी समय पृथ्वीराज और रावल समर-विक्रम दोनों नरेश मिलकर सेना को चन्द्राकृति व्यूह का रूप देते हुए उस स्थान पर आ पहुँचे। एक राजा की हरावल में गाजी हुसैन (मीर हुसैन का पुत्र) और दूसरे राजा की हरावल में चंद पुंडीर प्रमुख हो गया। चन्द्र व्यूह के मध्य भाग में श्रेष्ठ वीर रघुवंशी रामराय बड़गुज्जर खड़ा होगया। उसी समय वीर सारंगदेव सांखले ने शाह पर यकायक आक्रमण कर दिया, जिससे आग्नेयास्त्र-धारी शाही सेना दोनों पार्श्वों पर खड़ी होकर देखती ही रहगई।

छुट्टि अद्ध बर घटिय, चढ्यौ मध्यान भान सिर।
सूर कंध बर-ऋद्धि, मिलै काइर कुरंग बर॥

घरी अद्ध बर-अद्ध, लोह सों लोह जुरुक्के ।
मन अग्गै अरि मिले, चित्त में कंक खरक्के ॥
पुंडीर भीर भजन भिरन, लरन तिरच्छौ लग्गयउ[1] ।
नव वधू जेम संका सु बर, उदै[2] जानि जिम भग्गयउ[3] ॥ ४६ ॥

ग्रा० पा० १, ३, सं० । २ का० पा० घ० ।

शब्दार्थ:—छुट्टि=छूट पड़ने पर । बर=बल । बर—कढ्ढि=ऐंठ निकल गई । बर-अद्ध=अर्ध बल, अर्ध सैन्य शक्ति । जुरुक्के=जड़ा, झाड़ा । अरि-मिले=शत्रुओं से जा जुटते । कंक=युद्ध खरक्के=खटकने लगा भीरभंजन=समूह को नष्ट कर दिया, भगादिया । भिरन=भिड़कर बर=वर, पति । उदै-जानि=सूर्योदय हुआ जानकर । भग्गयउ=भागजाती

अर्थ:—वीर सारंगदेव सांखले आदि के टूट पड़ने पर शाह की (सैन्य) शक्ति आधी कम होगई, उस समय मध्यान्ह का सूर्य सिर पर आगया था । उसी युद्ध में विपक्षी वीरों का शौर्य नष्ट होगया और उनकी गणना कायर मृग-पंक्ति में की जाने लगी । इतना होने पर भी शाह की अर्ध-सैन्य-शक्ति आधो घड़ी तक शत्रुओं की तलवार से लोहे पर लोहा झाड़तो रही । वीरगण मन की गति से भी तीव्र होकर शत्रुओं से भिड़ने लगे और उनके चित्त में वह युद्ध खटकने लगा । इतने में ही पुंडीर वीर तिरछा होकर लड़ने को वहां जा पहुँचा और भिड़कर उस समूह को इस प्रकार भगा दिया, जिस प्रकार शयन-गृह में रात को पति से सशंक (सभय) रहने वाली नवोढ़ा सूर्योदय होने पर वहाँ से छुटकारा पाकर भाग जाती है ।

दोहा

तेज-छुट्टि गोरी सुवर, दिय धीरज तत्तार ।
मो उम्मे सुरतान को, भीर परी इन वार ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ:—तेज-छुट्टि=हत-तेज होगया । उम्मे=रहते हुए, उपस्थिति में । भीर=आपत्ति । इन वार=इस समय ।

अर्थ:—यह देखकर गोरीशाह हत-तेज होगया । तब धीरज दिलाता हुआ तत्तार खां बोला-यह आश्चर्य की बात है कि मेरे उपस्थित होते हुए भी आप पर (सुलतान पर) इस समय आपत्ति आयी है ।

कवित्त

सोलंकी माधव नरिंद, खान-खिलची[1] मुख लग्गा।
सुव्वर बीर रस बीर, बीर-बीरा रस पग्गा॥
दुअन बुद्ध-जुध-तेग, दूहूँ[2] हथ्थन उम्भारिय।
तेग तुट्टि चालुक्क, वथ्थ परि कढ्ढि कटारिय॥
अग-अग्ग-रुक्क ठिल्ले बलन, अधम जुद्ध लग्गे लरन।
सारंग वंध घन घाव परि, गौरीवै दिन्नो मरन॥ ४८॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति। २ भीं।

शब्दार्थः—खान-खिलची=खिलजी खान। मुख लग्गा=भिड़ पड़े। सुव्वर=सबल, बलवान! बीर-बीरा=श्रेष्ठ वीर। रस-पग्गा=युद्ध विनोद में सन गया (लीन हो गया)। बुद्ध-जुद्ध-तेग=युद्ध और तलवार चलाने में प्रबुद्ध। उम्भारिय=उठाये। अग-अग्ग-रुक्कि=एक दूसरे के सामने डटकर। ठिल्ले-बलन=बल पूर्वक धकेलने लगे सारंग-वंध==सारंगदेव चालुक्य का भाई। गोरीवैं=गौरीशाह के योद्धा द्वारा।

अथः—इतने में राजपद धारी सोलंकी (चालुक्य) माधव और खिलजीखाँ में युद्ध होने लगा। दोनो ही योद्धा बलवान वीररस स्वरूप और श्रेष्ठ वीर होने के कारण युद्ध विनोद में रत होगये। वे तलवार चलाने और युद्ध करने में दक्ष थे। उन दोनों के परस्पर आघात करने के लिए हाथ उठे, चालुक्य ने आघात किया; किन्तु उसकी तलवार टूट गई। तब उसने वथगुत्थ होकर कटार निकाली। फिर वे परस्पर एक दूसरे के सामने डटकर बल पूर्वक एक दूसरे को धकेल ने लगे; किन्तु उस यवन वीर के अधम युद्ध (छल युद्ध) की शरण ले लेने पर चालुक्य वीर सारंगदेव का भाई (माधव) विशेष घावों के लगने से धराशायी होकर मारा गया।

खग्ग हटक्कि जुटिक्क, जमन सेना समंद गजि।
हय गय बर हिल्लोर गरुअ, गोइंद दिक्खि सजि॥
अनम अठेल अभंग, नीर असि मीर समाहिय।
अति दल बल आहुट्टि, पच्छ लज्जी परवाहिय॥
रज तज्ज रज्ज मुक्कि न रह्यौ, रज न लगी रज रज भयौ।
उच्छंगन अच्छर सो लयौ, देव विमान न चढि गयौ॥ ४६॥

शब्दार्थ:—हटक्कि=रोकती हुई। जुटिक्क=जुटकर, भिड़कर। जमन=यमन, यवन। गजि=गर्जना करने लगी। हय गय=हाथी घोड़े। गरुश्र-गोइन्द=बड़ा गोविन्दराय (चाहुआन)। अनम=अनम्य। अठेल=नहीं रोका जाने वाला। नीर असि=पानीदार तलवार। पच्छ=पीछे। लज्जी=लज्जा। पर-वाहिय=पुरवाई हवा, मेघों को बढ़ाने वाली हवा। रज-तज्ज=राज्य लक्ष्मी को छोड़ दिया। रज्ज मुक्किन=रजोगुण को नहीं छोड़ा। रज=कालिमा। उच्छंग=उत्संग, गोद में, बाहु पाश में। अच्छर=अप्सरा।

अर्थ:—माधव चालुक्य के मारे जाने पर तलवार द्वारा शत्रुओं को रोकती हुई समुद्र तुल्य यवन सेना जुटकर गर्जना करने लगी। उस समय श्रेष्ठ हाथी-घोड़ों ने तरंगों का स्वरूप धारण किया। यह देखकर विशेष रूप से क्रोध करता हुआ, गोयंद-राय (चाहुवान) युद्ध करने के लिए तत्पर होकर आगे बढ़ा। उधर से अनम्य और नहीं रोका जा सकने वाला एक अभंग-मीर अपनी तेज (पानीदार) तलवार ग्रहण करके लज्जा एवं सैन्यशक्ति रुपी पुरवाई हवा (मेघों को आगे बढ़ाने वाली) के सहारे आगे बढ़ता हुआ चाहुआन से भिड़ पड़ा। उसने राज्य लक्ष्मी को छोड़ दिया, किन्तु रजोगुण को नहीं छोड़ा। उसने अपने शरीर पर रज (कालिमा) नहीं लगने दी; किन्तु वह रज रज (कट कट कर रज कणों के तुल्य) होगया। उसे (यवन होने के कारण) न तो अप्सरा ही बाहुपाश में ले सकी और न उसने देव-विमान में ही स्थान पाया (फिर भी वह सीधा बहिश्त को चला गया)।

रुप्यौ बीर पुंडीर, फिरी पारस सुरतानी।
शस्त्र बीर चमकंत, तेज आरुहि सिर ठानी॥
टोप ओप तुटि किरच, सार सारह जरि भारे।
मिलि नछित्र रोहिनी[१], सीस ससि उडगन चारे॥
उठि परत भिरत भंजत अरिन, जै जै जै सुरलोक हुअ।
उठ्यौ कमंध पल पंच चव, कोन भाइ कंप्यौ सु[२] धुअ॥ ५०॥

ग्रा० पा० १ पा०। २ भीं० का०।

शब्दार्थ:—रुप्यौ=डट गया। बीर पुंडीर=चन्द पुंडीर का भाई। फिरी=फिर गई, होगई। सुरतानी=शाही सेना। आरुहि=बढ़कर। सिर ठानी=सिरपर आघात किया। ओप=उपमा। नछित्र=नक्षत्र। चारे=चलाये, न्यौछावर किये। चव=चार। भाइ=भाव, कारण। कंप्यौ=कम्पित हुआ। धुअ=ध्रुव, निश्चय।

अर्थः—उसके बाद चंदपुंडीर का भाई (जयसिंह) युद्ध करने लगा। शाही सेना ने उसे चारों ओर से घेर लिया। वीरों ने चमचमाते हुए तीक्ष्ण शस्त्रों से उसके सिर-पर आघात किया जिससे उसका शिर स्त्राण इस प्रकार टूट कर खण्ड २ हो गया, (कवि उसकी तुलना करता हुआ कहता है) मानों रोहिणी नक्षत्र ने उस वीर के सिर-पर चन्द्रमा और तारों को न्यौछावर किये हों। वह वीर धराशायी होकर भी युद्ध करता हुआ शत्रुओं को नष्ट करने लगा। यह देखकर स्वर्गलोक में उसकी जय २ कार होने लगी। मस्तक कट जाने पर भी उसका कबन्ध चार पांच पल के लिये खड़ा होगया। कवि कहता है कि उसे खड़ा हुआ देखकर ध्रुव कम्पित क्यों हुआ? (अर्थात् ध्रुव उसकी अटलता को देखकर द्वितीय ध्रुव के स्थापना की शंका से शंकित होकर कम्पित हो गया)।

परि पतंग जैसिंघ, पतँग अप्पुन तन दभ्भै।
नव पतंग गति-लीन, करे अरि अरि धजधज्जै॥
तेल ठाम बातीय, अगनि एकल विरुभ्काइय।
पंच अप्प अरि पंच, पंच अरि पंथ लगाइय॥
आरन्नि कुँआरी बर बर्यौ, दै दाहन दुज्जन दवन।
जित्तेव असुर महि मंडलह, और ताहि पुज्जै कवन॥ ५१॥

ग्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थः—पतंग=पतंग। पतँग=सूर्य। गति-लीन=ढंग गृहण किया। अरि=अड़कर। अरि=शत्रुओं को। धजधज्जै=धज्जी २। ठांम=पात्र। एकल=अकेला। पंचअप्प=पंचभौतिक शरीर को छोड़ा। अरि-पंच=पांचों से भिड़कर। पंच-अरि=उन शत्रुओं के पंच भौतिक शरीर को। पंथ लगाइय=(मृत्यु के) रास्ते लगा दिया। आरन्नि-कुँआरी=शत्रुओं की अविवाहित सेना, किसी से नहीं जीती गई सेना। बर्यौ=वरण की, काबू में की। दै-दाहन=जलन पैदा करदी। दुज्जन=शत्रुओं को। दवन=दमन किये, नष्ट कर दिये। जित्तेव=जीत गया, विजय प्राप्त की। असुर=मुसलमानों पर। पुज्जै=पहुँचता, समानता करता। कवन=कौन।

अर्थः— पतंग के समान झपटते हुए उस वीर जयसिंह ने अपने शरीर को पतगवत ही जला तो दिया किन्तु उसने तरुण-सूर्य (ग्रीष्मकालीन सूर्य) की गति (ढंग) को प्राप्त करके (प्रखर तेज प्रसारित करता हुआ) शत्रुओं की धज्जी २ उड़ादी (काट दिये, चीर

दिये)। उस समय वह अकेला ही पतंगरूपी शत्रुओं को दहन करने के लिये तैल, पात्र, बत्ती और अग्नि बन गया। उसने अपने पंच तत्वों को अर्पित करते हुए (पंच भौतिक शरीर को छोड़ते हुए) भी पांच शत्रु वीरों से भिड़कर उनके पंचभौतिक शरीरों को भी मृत्यु के रास्ते पर लगा दिया (मार दिये)। उसने शाह की अविवाहित (अजय) सेना (रूपी दुलहन) का वरण कर (काबू में कर) शत्रुओं का दमन कर दिया और उनके हृदय में जलन पैदा करदी। इस प्रकार वह मर गया फिर भी उसने यवनों पर विजय प्राप्त करली। ऐसे उस वीर की समता इस पृथ्वी पर दूसरा कौन कर सकता है ?

दुज्जनसल कूरंभ, बंध पल्हन हक्कारिय[1] ।
संम्हौ खां-खुरसान, तेग लम्बी उब्भारिय ॥
टोप तुट्टि वरकरी, सीस परि तुट्टि कमंधं ।
मार मार उच्चार, तारतं नंच कमंधं ॥
तिहि[2] देखि रुद्र रुद्रह हस्यौ, हय-हय-हय नंदि कह्यौ ।
कविचंद शैल पुत्री चकित, पिक्खि वीर भारथ नयौ ॥ ५२ ॥

पा०पा०१, सर्वप्रति । २, घ ।

शब्दार्थः–दुज्जनसल=दुर्जनसाल, नाम विशेष। हक्कारिय=हलकारा, हुंकार की। बरकरी=बड़क गई, फटगई। तारतं=ताड़ना देता हुआ, प्रहार करता हुआ। हय-हय-हय=मारा-मारा-मारा। नंदी=नंदीगण।

अर्थः–कूरंभ पल्हन का दुर्जनसल्य नामक भाई हुँकार करता हुआ उठा। यह देखकर खुरासानखां ने अपनी लम्बी तलवार को उठाते हुए उस पर प्रहार किया, जिसके आघात से उसका शिरस्त्राण टुकड़े २ होगया और उसका सिर कट पड़ा। इतना होने पर भी उसका कबंध प्रहार करता हुआ मार मार उच्चारण कर नृत्य करने लगा। उस रुद्र रूपधारी वीर को देखकर रुद्र (शिव) प्रसन्न हो गये और नन्दीगण 'मारे गये', 'मारे गये'—ऐसा कहने लगा। कविचंद कहता है कि उस वीर का महाभारत के सदृश युद्ध देखकर भगवती शैल पुत्री भी चकित हो गई।

सोलंकी सारंग, खान खिलची मुख लग्गा ।
वह पगानौ भृत्त, इते चहुवान विलग्गा ॥
है कंधन दिय पांइ[१], कन्ह उत्तरिविय वाजिय ।
गज गुंजार हुँकार, धरा गिर कंदर गाजिय ॥
जय जयति देव जय जय करहिं, पहु पंजलि पूजत रिनह ।
इक परयौ खेत साधे सकल, इक रह्यौ बंधे धुनह ॥ ५३ ॥

ग्रा० पा० १, भीं० ।

शब्दार्थः—पंगानौ भृत्त=पंगुराज (जयचन्द) का सेवक, योद्धा सारंग देव । है=घोड़े । कंधन=कंधेपर । पांइ=पैर । उत्तरिविय=उतरकर कूदकर । साधे सकल=सकल साधना करता हुआ, दाव देता हुआ । बंधे धुनह=धुन में लग गया, झूमने लगा ।

अर्थः— तब (पंगुराज का भेजा हुआ यवन सेना का सहायक) सारंगदेव सोलंकी और खिलजीखांने बढ़कर चहुआनी सेना से सामना किया । इधर से कन्ह चौहान बढ़ा । वह पंगुराज के योद्धा (सारंगदेव) को विचलित करके खिलजीखां से जा भिड़ा । उसने अपने घोड़े से कूदकर विपक्षी के घोड़े के कंधे पर पैर रख दिये, और हाथी के समान गर्जना करता हुआ हुँकार की जिससे पृथ्वी, पहाड़ और कंदरायें प्रतिध्वनित हो उठा । यह देखकर देवताओं ने पुष्पाञ्जलि देते हुए उसकी जय २ कार की । उस वीर कन्ह के वार से एक शत्रु (सारंगदेव) तो दाव देता हुआ रण-क्षेत्र में धराशाई हुआ और दूसरा (खिलजीखां) घायल होकर झूमने लगा ।

करी मुक्ख आहुट्ठ, बीर गोइंद सु अक्खै[१] ।
कविल पील जनु कंन्ह, दंत दारुन गहि नक्खै[२] ॥
सुंड-दंड भय[३] खंड, पीलवानं गज मुक्यौ ।
गिद्धि सिद्धि बेताल, आइ अंखिन पल रुक्यौ ॥
बरबीर परयौ भारथ्थ भिरी[४], लोह-लहर-लग्गत[५] झुल्यौ ।
तत्तारखांन संम्हयौ सु क्रत, सिंघ हक्कि अंबर डुल्यौ ॥ ५४ ॥

ग्रा. पा. १ २ पा. । ३ पा. घ. । ४ का. पा. । ५ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—करी मुक्ख=हाथियों से सामना कर। आहुट्ठ=आहड़ा, गुहिलोत। अक्खै=अक्षय। कव्रिल पील=कव्रलिया पीड़। कंन्ह=कृष्ण। नंखै=पछाड़ा हो। सुंड-दंड=सुंडादंड, सूंड। गिद्धि=गिद्धनियें। सिद्धि=सिद्धनियें, योगनियें। अंखिन=यक्षिणियों। पल-रुक्यौं=आमिष पर अड़ गई। लोह-लहर-लग्गत=लोह प्रहार होने से। झुल्यौं=झूलने लगा, झूमने लगा। संम्हयौ सु क्रत=सामना करने पर। हक्कि=हुंकार, गर्जना।

अर्थः—इधर अक्षय-वीर गोविंदराय गुहिलोत हाथियों से सामना करता हुआ इस प्रकार युद्ध करने लगा मानों कृष्ण, कुवलया पीड़ हाथी के दारुण दाँतों को पकड़ कर उसे पछाड़ रहा हो। उसके शस्त्राघात से हाथी की सूंड के खण्ड २ हो जाने पर महावत ने हाथी को छोड़ दिया (उतर कर दूर होगया) उस समय गिद्धनियाँ, योगिनियों, वैताल वीरों और यक्षिणीयों ने आमिष (मांस) पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार वह श्रेष्ठ वीर युद्ध में भिड़ पड़ा और शस्त्र प्रहार से घायल होकर झूमने लगा। यह कार्य उसने तत्तारखां से सामना होने पर किया। उस समय उस सिंह स्वरुपी वीर की गर्जना से आकाश भी डग-मगाने लग गया।

खोलि खग्ग नरसिंघ, खिझ्झि खल सीसह झारिय।
तुटि-धर धरनि परंत, परत संभरि कट्टारिय॥
चरन अंत उरझंत, बीर कूरंभ करारौ।
तेग घाइ चुक्कंत, झरी झल लोह सँभारौ॥
चलि गयौ क्रमन क्रम नन चलै, डुल्यौ न डुलतन हथ्थ वर।
तिन परत बीर दाहर तनौ, चामंडा बज्जी — लहर॥ ५५॥

शब्दार्थः—तुटि-धर=टूटने पर छोड़ दी (फेंकदी)। संभरि=संभाली, निकाली। कट्टारिय=कटारी, कटार। अंत=आंतें। कूरंभ=कछवाह क्षत्रिय। करारौ=करारा। सँभारौ=सम्हाला, उठाया। चलिगयौ=चलबसा। क्रमन=क्रमकर. प्रवेश कर के। क्रम-नन-चलै=कर्म से चलायमान नहीं हुआ, कर्तव्य से च्युत नहीं हुआ। डुलतन=डुलने पर। हथ्थ=हाथ। बज्जी-लहर=खड्ग चलाया, तलवारों को तरंगित किया।

अर्थः—वीर नृसिंह-कछवाहे ने क्रोधित होते हुए तलवार निकालकर शत्रु के सिर पर प्रहार किया; किन्तु उस (प्रहार) के चूक जाने से तलवार जमीन से

टकराकर टूट गई। तब उसने तलवार फेंक कर कटार निकाल ली। उसी समय उस के चरणों में मृत-शवों की आंतें उलझ गई। इस प्रकार तलवार के वार के खाली जाने और आँतों के पैरों में उलझ जाने पर उस वीर को शत्रुओं के शस्त्र प्रहारों को सहना पड़ा; फिर भी उसने अपने शस्त्रों को संभाला (उठाया) और शत्रु-सेना में प्रवेश करके अमरत्व को प्राप्त होगया; किन्तु वह कर्तव्य से च्युत नहीं हुआ। खड्ग प्रहार करते समय उसका हाथ डुलगया (चूक गया) परन्तु वह श्रेष्ठ वीर नहीं डुला। उसके धराशाई होने पर दाहिर-पुत्र चामण्ड राय की तीक्ष्ण तलवार की तरंगें बढ़ चलीं (भीषण युद्ध प्रारम्भ किया)।

जैत बंध ढहि पर्यौ, सुलख[1] लख्खन कौ जायौ।
तहँ झगरी महमाय, देवि हुंकारौ पायौ॥
हुंकारै हुंकार, जूह गिद्धनि उड्डायौ।
गिद्धिन ते अपछरा, लियौ चाहत नहीं पायौ॥
अवतरन सोइ उत-पति-गयौ, देवथान बिभ्रम भयौ[2]।
जमलोक न शिवपुर ब्रह्मपुर, भान थान भानैवियौ॥ ५६॥

ग्रा० पा० १, भीं। २, का० पा० घ०।

शब्दार्थः—बंध=बंधु, भाई। सुलख=सलखानी। लक्खन=लक्ष्मण। जायौ=उत्पन्न हुआ, पुत्र। झगरी=झगड़ने लगी। महमाय=योगिनियें। हुंकारै-हुंकार=हुंकार के साथ ही। जूह=समूह। अवतरन=पैदा हुआ। सोइ=वह। उत-पति-गयौ=वहीं पहुँच गया। विभ्रम=भ्रम। भान-थान=सूर्य मण्डल। भानै-वियौ=भेद दिया।

अर्थः—सलखानी लक्ष्मण का पुत्र (जैत्र का भाई) वहीं पर युद्ध करता हुआ धराशायी हुआ। योगिनियाँ उसका रक्तपान करने के लिए परस्पर झगड़ने लगीं और देवी ने हुंकार की। उस हुंकार के साथ ही गिद्धनियों का समूह उसे लेकर उड़ने की चेष्टा करने लगा पर अप्सराएँ भी उसे लेना चाहती थीं। अतः कोई भी उसे प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकी। वह तो जहाँ से उत्पन्न हुआ था वहीं पहुँच गया। यह देखकर देवलोक (के निवासियों) को भी भ्रम होगया। वह न तो यमलोक न शिवलोक और न ब्रह्मलोक को ही गया, किन्तु सूर्य मंडल को भेद कर सबसे उच्च लोक को प्राप्त होगया।

तन झंझरि पंवार,[१] पर्‌यौ धर मुच्छि घटिय बिय ।
बर अच्छर बिंटयौ, सुरग[२] मुक्के सुरंग-हिय ॥
तिहित काल सत बाल[३] सलख बंधित्र ढिग आइय ।
लिखिय अंग बिय अथ्थ, सोई बर बंचि[४] दिखाइय ॥
जंमन[५] मरंन[६] सुह[७] दुह सुगति, नन मिट्टै भिटह न तुअ ।
ए-वार सुबर बंट हु नहीं, बंधि लेहु सुक्की बधुअ ॥ ५७ ॥

ग्रा०पा०१, भीं० । २, घ० । ३, ७ पा०घ० । ४, ५, भीं०का०घ० । ६ पा० ।

शब्दार्थः—झंझरि=जर्जरित होकर । मुच्छि=मूर्छित अवस्था में । अच्छर=अप्सरायें । सुरग=स्वर्ग । मुक्कै=तजकर । सुरंग-हिय=सुरंग हृदयवाली, विलासी हृदय वाली । तिहित काल=उसी समय । सतबाल=सातों अप्सरायें । सलख=सलखानी को । बंधित्र=वंदना । लिखिय=लिखा, देखकर । अंग-बिय=अंगनाओं को । अथ्थ=उहाँ, वहाँ पर । बंचि=विरची । दिखाइय=दिखाया, समझाया । जंमन=जन्म । सुह=सुख । दुह=दुखों । नन=नहीं । भिटह न=नहीं छुऊँगा । ए-वार=इस समय । बंट हु=बांटना (अपने हिस्से में न लेना, वरण करने की इच्छा न करना) । बंधि लेहु=गांठ से बांधना । सुक्की-बधुअ=स्वर्गीय वधुएँ ।

अर्थः—तन से जर्जरित होकर वह प्रमार वीर धराशाई हो दो घड़ी तक मूर्छित अवस्था में पड़ा रहा । यह देखकर विलासी हृदय वाली अप्सराओं ने स्वर्ग से आकर उसे घेर लिया । वे सातों (अप्सरायें) समीप आकर सलखानी वीर से वंदना करने लगीं । उन अंगनाओं को वहाँ पर उपस्थित देखकर उस वीर ने श्रेष्ठ कथन करके समझाया कि हे स्वर्गीय बालाओं ! जन्म, मरण और सुख, दुःख प्राणी के साथ लगे हुए हैं जो अमिट होते हैं । अतः मैं तुमको स्पर्श नहीं करना चाहता और न तुम ही इस समय मुझे वर रूप में अपनाने की इच्छा करना । मैंने जो उपदेश वाक्य कहे हैं, उन्हें दृढ़ कसकर बांध लेना । (हमेशा याद रखना) ।

दोहा

राम बंध कौ सीस बर, ईस गह्यौ कर चाइ ।
अथ्थि दरिद्री ज्यौं भयौं, देखि देखि ललचाइ ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—ईस=शिव । अथ्थि=अर्थ, धन ।

अर्थ: —शिव ने प्रसन्नता पूर्वक उस रामराय प्रमार के भाई का श्रेष्ठ सिर ग्रहण किया। उसे देख देखकर वे इस प्रकार लालायित होने लगे, मानो कोई दरिद्री (निर्धन) हस्तगत धन को बार २ देखता है।

कवित्त

जंघारौ जोगी जुगिन्द, कढ्यौ कट्टारौ।
परस पानी तुंगी त्रिशूल, खप्पर[1] अधिकारौ॥
जटत-वान सिंगी विभूत्त हर–वर–हर–सारौ।
सबर सद्द वद्यौ, विषम मद-गंवन झारौ॥
आसन सु दिढ्ढ[2] निज पत्ति में, शिय सिर चँद अम्रित अमर।
मँडलीक राम रावन[3] भिरत, न भौ बीर इत्तौ समर॥ ५६॥

ग्रा० पा० १, ३, घ०। २, भी० पा० घ०।

शब्दार्थ:—जुगिन्द=पुराना। कट्टारौ=कटारी। परस=फरशा। तुंगी=तुंगाकृति गदा, या-कोई शस्त्र। खप्पर अधिकारौ=खप्परधारिनी शक्ति का उपासक। जटत-वान=जटावान, जटावाला। हर-वर=शिव का बल। हर–सारौ=सब तरह से शिव स्वरूप। सद्द=शब्द, आवाज, गर्जना। झारौ= जला दिया, नष्ट करदिया, काट दिया। दिढ्ढ=दृढ। पत्ति में=पंक्ति में, अपने गोत्र में, अपनी जाति में। इत्तौ=ऐसा।

अर्थ:—जंघारा भीम जो पुराना योगी था उसने कटार निकाल ली। उसके पास केवल फरसा, गदा, त्रिशूल, जटा और सिंगी की ही विभूति थी। वह खप्पर धारनी शक्ति का उपासक था उसे एक मात्र शिवका बल था तथा वह स्वयं शिव स्वरूप था। अपनी पक्ति में वह आसन दृढ़ कहा जाता था। जिस प्रकार शिव के भाल पर सुधा युक्त चंद्रमा स्थान पाता है. उसी प्रकार उसके ललाट पर चन्द्राकृति वाला शिव तिलक शोभा पाता था। अमरत्व को प्राप्त करना ही उसके पास अमृत था। उसने गर्जना करके मदोन्मत्त विषम हाथियों का संहार कर दिया। उसने उस समय ऐसा युद्ध किया जैसा मण्डलेश्वर राम और रावण के भिड़ने पर भी नहीं हुआ था।

सिलह सज्जि सुरतान, झुक्कि बज्जै रन जंगं।
सुनै श्रवन लंगरी, बीर लग्गा अनभंगं॥

बीर धीर सत मध्य, वीर हुंकरि रन धायौ ।
सामंतां सत मद्धि, मरन – दीनं भय सायौ ॥
पारंत धक्क हक्कंत रिन[१], पग प्रवाह खग खुल्लयौ ।
विभ्भूत – चंद – अंगन - तिलक, बहसि बीर हकि बुल्लयौ ॥ ६० ॥

प्रा. पा. १, भीं. ।

शब्दार्थः—झुक्कि=झुक कर, टेढ़ा होकर । लग्गा=लग गया, ग्रहण स्वरूप हो गया । वीर-धीर-सत-मध्य=जिसमें वीरता, धीरता और सत तीनों थे । मरन-दीनं=मृत्यु दी, मृत्यु के घाट उतार दिये । सायौ=छायौ, फैला दिया । पारंत-धक्क=धाक फैलाते हुए । हक्कंत रिन=युद्ध में विचलित करता हुआ । पग-प्रवाह=प्रवाह में प्रविष्ट हो । खग-खुल्लयौ=खड्ग निकाला । विभ्भूत-चंद-अंगन-तिलक=अंग पर विभूति, चन्द्रमा और तिलक धारण करने वाले शिव । बहसि=प्रसन्न होकर । बुल्लयौ=बोला, उच्चारण किया ।

अर्थः—बादशाह ने कवच से सुसज्जित होकर वाद्य बजवाये । उन्हें सुनकर अभंग वीर लंघरीराय उसके लिये ग्रहण रूप होकर लग गया । उस वीर में धीरता, वीरता और सत तीनों विद्यमान थे । वह हुंकार करता हुआ युद्ध में आगे बढ़ा । पृथ्वीराज के सौ सामन्तों में वह एक ही ऐसा वीर था, जिसने शत्रु के सैन्य प्रवाह में प्रविष्ट होकर अपने खड्ग को निकाला एवं विपक्षियों को मृत्यु के घाट उतार कर उनमें भय उत्पन्न कर दिया । अपनी वीरता की धाक फैलाते हुए उन्हें विचलित करता हुआ प्रसन्नता पूर्वक आगे बढ़ता ही गया । फिर उस वीर ने अंग पर विभूति, चन्द्रमा और तिलक धारण करने वाले (शिव) का नामोच्चारण किया (हर हर महादेव की ध्वनि की) ।

लंगा लोह उचाइ, पर्यौ घुंमर घन मभ्भै ।
जुरत तेग सम तेग, कोर बद्दर कछु सुभभै ॥
यौं लग्गौ सुरतान, अनल दावानल दग्गं ।
ज्यौं लँगूर लग्गयौ, अगनि अग्गे आलग्गं ॥
इक मार उभ्भार अखारमल, एक उभ्भार सुभ्भारयौ ।
इक बार तर्यौ दुस्तर रुपे, दूजे तेग उभारयौ ॥ ६१ ॥

शब्दार्थः—घुंमर घन=घुमड़ते हुए बादल। बद्दर=बादल। दग्गं=दागने लगी हो। लंगूर=हनुमान। आलग्गं=आलय, ऊँचे निवास स्थान। उभ्भार=भाड़दिया, फाड़ दिया। अखार मल=अक्कड़मल्ल, या मल्लस्वरूप। बारत-र्‌यौ-दुस्तर=दुस्तर सलिल (समुद्र) को पार करदिया। दूजै=दूसरे पर।

अर्थः—जब लंगरीराय ने शस्त्र उठाकर बादलों के समान उमड़ती हुई शत्रुसेना में प्रवेश किया; तब उसकी तलवार टकराती हुई ऐसी दिखाई दी; मानों बादलों में बिजली की कुछ कुछ रेखाएँ दिखाई पड़ती हों। वह सुलतान से इस प्रकार लग-गया (भिड़ गया) मानों (जंगल में) अग्नि या दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी हो; या हनुमान ने लंका के निवास स्थानों में आग लगा दी हो। उस अक्खड़मल्ल (या अखाड़े के मल्ल) ने एक को मार कर फाड़ दिया और दूसरे को चीर-फाड़ कर पटक दिया। युद्ध भूमि में अपने चरणों को दृढ़ता से स्थापित करके उसने एक को (अपने स्वामी को) युद्ध रूपी दुस्तर समुद्र से पार कर दिया और दूसरे (विपक्षी गौरी) पर अपना खड्ग उठाया।

लोहानौ महमुंद[1], बान मुक्कै बहु भारी।
फुट्टि सु ठट्टर ज्वान, पिठ्ठ ऊरद्ध निकारी॥
मनो किवारी लग्गि[2], पुट्टि खिरकी उग्घारी[3]।
बढ्ढारी[4] बर-कढ्ढि, वीर अवसान सँभारी[5]॥
एक भ्भर वीर उर भ्भारिभ्भर, करि सुमेर परि अरि सु किरि।
चवसठ्ठि खान गौरी परै, तीन राव[6] इक राज परि॥ ६२॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति। २ का० पा०। ३,५ भीं। ४ का० भीं० घ०। ६ का० घ०।

शब्दार्थः—ठट्टर=ठठरी, शरीर। पिठ्ठ-ऊरद्ध=पीठ पर। बढ्ढारी=बाँढने वाली, तलवार। अवसान-सँभारी=सावधान हुआ। एक-भ्भर-मीर=एक मीर को काटकर। उर-=अरु, फिर। भ्भारि-भ्भर=शस्त्र भड़ी करके।

अर्थः—इधर से लोहाना और उधर से महमूद ने एक दूसरे पर भारी बाण वर्षा की। वे बाण वीरों के तन-पिंजर को बेधकर पीठ की ओर इस प्रकार निकल गये, मानों जड़े हुए खिड़की के किंवाड़ खुल गये हों। बाद में वीर लौहाने ने तलवार

निकालकर सावधानी से एक मीर को खण्ड २ कर दिया, फिर शस्त्र प्रहार करके मृत-शत्रुओं के शवों का सुमेरु पर्वत के समान ऊँचा ढेर लगा दिया। उस समय गौरीशाह के ६४ खान, चौहान योद्धाओं में से तीन राव और एक राजा पदधारी वीर रणस्थल में धराशायी हुए।

मांनि लौह मारूफ, रोस विड्डुरि गाहक्के।
मनु पंचानन व्याहि[1], सद्द सिर-सद्द[2] हहक्के॥
दुहूँ मीर बर तेज, सीस इक सिंघह बाही।
टोप टुट्टि बरकरी[3], चंद ओपम ता पाई॥
मनु शृंग विहस्सिय[4] बिज्जुलह, रही–हेट[5]–तुटि भा नहति।
उतमंग सुहै बिब टूक ह्वै, मनु उडगन पत्तो[6] जमति॥ ६३॥

ग्रा० पा० १, ३, ५, ६, सर्वप्रति। २ ४, पा०।

शब्दार्थ:—रोस=क्रोध। बिड्डुरि=विड्डरता हुआ। गाहक्के=गर्जना की। पंचानन-व्याहि=व्याही (प्रसूता) सिंहनी। सद्द-सिर-सद्द=आवाज पर आवाज। हहक्के=हुंकार की, गर्जना की। सिंघह=सिंह तुल्य वीर ने। बाही=खड्ग चलाई, प्रहार किया। बरकरी=बड़क कर। विहस्सिय=हास्य प्रभा फैलाई, दम दमाई। रही-हेट-तुटि=तले पड़कर रही, प्रपात किया। भा=प्रभा नहति=निहित। उतमंग=उत्तमंग, सिर। सुहै=वह। बिबटूक=दो दो टुकड़े, किरचे। उडगन=तारे। पत्तो=टूट पड़े। जमति=यम।

अर्थ:— क्रोध करते और डरते हुए मारूफखाँ ने लोहाने वीर के शस्त्र प्रहार की दक्षता को स्वीकृत कर लिया फिर भी वह इस प्रकार गर्जना करने लगा जैसे प्रसूता सिंहनी गर्जना करती रहती है। मीर महमूद और मारूफखाँ-दोनों मीर श्रेष्ठ तेजधारी थे उन दोनों में से एक के सिरपर; सिंह तुल्य लौहाने ने खड्ग का प्रहार किया जिससे उसका शिरस्त्राण इस प्रकार फटकर टूट गया (कविचन्द इसकी तुलना करता हुआ कहता है) मानों गिरिशृंग पर तीक्ष्ण प्रभायुक्त चमकती हुई बिजली निहित हो। मीर के मस्तक तक पहुँचती हुई उस खड्ग के टुकड़े २ होकर उछल पड़े जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानों मृत्यु-सूचक (अनिष्ट कारी) तारे (धूमकेतु) टूट पड़े हों।

दस हथ्थी सु विहान. साहि गोरी मुख किन्नौ।
करअ काम बादी तत्तार, सार[1] चवकौंदवि छिन्नौ[2]॥

नारि गौर जंबूर, कुहक बर बान अघानं[3] ।
गज्ज भग्ग प्रथिराज, चित्त करयो अकुलानं[4] ॥
सोमोह कोह बर वज्जि के, वृज उन धारय धमसि कै ।
सामंत सूर बर बीर वर, उठे बीर वर हमसि कै ॥ ६४ ॥

पा०पा० १, २, सर्वप्रति । ३, ४ पा०घ० ।

शब्दार्थः—मुख किन्नौ=अग्रभाग पर नियुक्त किया । कग्र=किया, छोड़ा । कास=कसाकसी । वादी=विवाद । चवकौंदवि=चारों ओर को । छिन्नौ=छागया, विस्तृत हुआ, फैला कुहक=शब्द, ध्वनि । अघानं=तृप्त हो गई, पूर गई । सोमोह=सोमेश्वर का पुत्र । कोह=क्रोध करके । धमसिके= धमाका करके, गर्जना करके । हमसि के=हुमसकर, उत्तेजित होकर ।

अर्थः— शहाबुद्दीन गौरी ने अपने दस हाथियों सहित सुविहान को अग्रभाग में नियुक्त किया । तत्तार खां ने कसाकसी का विवाद छेड़ा जिसका शारगुल चारों ओर फैल गया । आग्नेयास्त्र और बाणादि के शोर से भी दसों दिशायें पूरित हो गई । इस शौरगुल से पृथ्वीराज का हाथी भाग गया, जिससे पृथ्वीराज के चित में व्याकुलता होने लगी । तब उस सोमेश्वर के श्रेष्ठ पुत्र (पृथ्वीराज) ने क्रोध करके रणवाद्य बजवाये, जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानो व्रज को डुबोने के लिए मेघ उमड़-घुमड़ कर जलधारा बरसाते हुए गर्जना कर रहे हों । उसी समय वीर-शत्रुओं से भिड़ने के लिये उसके बहादुर सामंत भी उत्तेजित होकर खड़े होगये ।

अद्ध अद्ध जोजनह, मीर उड़ि संगा फेरय[1] ।
तब गौरी सुरतान, रोस सामंतह घेरिय[2] ॥
चक्र-श्रवन चौंडोल, अग्ग शेखन पंचासौ ।
सूर कोट ह्वै जौट, सार मरनह हुल्लासौ[3] ॥
बर अगनि वगी हल्लानहीं, पद्धर[4] कोट सुजोट हुअ ।
बर बीर रास समरह परिय, सार धार बर कोट उअ[5] ॥ ६५ ॥

पा० पा० १ से ३, पा० घ० । ४, पा० ५, मीं० घ० का० ।

शब्दार्थः—संगा=सांग । फेरिय=हिलाई । चक्र-श्रवन=चक्र चलाने वाले । चौंडोल=चारों ओर । पंचासौं=पचासों । ह्वै जोट=जुड़कर संमिलित होकर । सार मरनह=लोहे द्वारा मृत्यु प्राप्त करने ।

हुल्लासौ=हुल्लास, उल्लास, प्रसन्नता, उत्साह। बर अगनि बगी=श्रेष्ठ लोहाग्नि बरसाई। हल्लोन-हीं=हल्ला करने वालों ने, आक्रमण कर्ताओं ने। पद्धर=समतल। सुजोट=श्रेष्ठ जुटा हुआ। सार-धार=शस्त्रधारा। उअ=उनके लिये।

अर्थ:—आधे २ योजन तक आगे बढ़ कर उछलते हुए मीरों ने सांग चलाना प्रारंभ किया। तब क्रोधित होकर पृथ्वीराज के सामन्तों ने गौरी शाह को घेर लिया, किन्तु शाह के चारों ओर चक्र चलाने वाले पचासों (या पांचसों) शेख योद्धा थे। वे सब सम्मिलित होकर शाह के चारों ओर दीवार स्वरूप होगये, तथा उनके हृदय में शस्त्र द्वारा मृत्यु प्राप्त करने का उत्साह बढ़गया। पृथ्वीराज के आक्रमण-कर्त्ता योद्धाओं ने श्रेष्ठ लोहाग्नि बरसाना शुरु किया जिससे जुड़ी हुई वह सैनिकों की दीवार टूटकर समतल बनगई, उन श्रेष्ठ वीरों ने उस युद्ध रूपी रास मंडल में धराशायी होते हुए भी उन विपत्तियों के प्रतिबन्ध के लिये अपनी शस्त्रधारा को श्रेष्ठ कोट बना दिया।

खां - खुरसान ततार, खिभ्भि दुज्जन दल भक्खै।
वचन सामि उर खटकि, हटकि तसबी कर नंक्खै॥
कजल पंति गज बिथुरि, मध्य सैना[1] चहुआनी।
अजै मानि जै रारि, बियसु - तेरह चँपि प्रानी॥
धामंत फिरस्तन कढ्ढि असि, दहति पिंड सामंत भजि।
वर बीर भीर बाहन करह[2], परे धाइ चतुरंग सजि॥ ६६॥

ग्रा. पा. १ सर्व प्रति। २ भीं.।

शब्दार्थ:—भक्खै=विनष्ट करने लगे। सामि=स्वामी। हटकि=हट करके, या शीघ्रता करके। तसबी=माला। नंक्खै=फेंक दी। बिथुरि=बिखर गई, यत्र-तत्र होगई। अजै मानि=विजयी समझे जाते थे। जै=वे। रारि=युद्ध में। बियसु-तेरह=दो और तेरह, पंद्रह। चँपि=दबाये गये। प्रानी=वीर प्राणी, वीर। धामंत=बढ़ते हुए। भजि=नष्ट कर दिये। भीर=भीड़, टोली। बाहन-करह=वहन करदी, हटा दिया। परे-धाइ=बढ़कर, उमड़कर।

अर्थ:—तब खुरासानखां और तत्तारखां क्रोधित होकर शत्रुओं के दल को विनष्ट करने लगे। उन वीरों के हृदय में स्वामी के समक्ष की गई प्रतिज्ञा का भंग होना खटकने लगा। अतः उन्होंने शीघ्रता पूर्वक तसबी को पृथ्वी पर डाल दिया। उनके

आघातों द्वारा सेना के मध्य भाग में स्थित कज्जलगिरि के समान जो हाथी थे वे विचलित होकर यत्र-तत्र भागने लगे। युद्ध में विजयी वीर माने जाने वाले पंद्रह पटु वीर चाहुवानी सामंतों को दबाने के लिये आगे बढ़े। उन देव दूतों तुल्य वीरों को आगे बढ़ते हुए देख कर पृथ्वीराज के सामंतों ने तलवार से तेरह वीरों को नष्ट कर दिया और अपनी चतुरंगिनी सेना के बल पर आगे बढ़कर मुसलमानों के वीर-समूह को हटा दिया।

पच्छै भौ संग्राम, अग्ग अपछर[1] विच्चारिय।
पुछै रंभ मेनिका, अज्ज चित्तं किम भारिय॥
तब उत्तर दिय फेरि, अज्ज पहुनाई आइय।
रथ्थ बैठि औ थांन, सोभ्कतह कंत न पाइय॥
भर सुभर परें भारथ्थ भिरि, ठाम ठाम चुप जीत सथि[2]।
उत्थ किय पंथ हल्लै-चल्यौ, सुथिर संभ दिखखीय[3] नथि[4]॥ ६७॥

प्रा० पा० १, ४, घ०। २, पा० घ०। ३ पा०।

शब्दार्थ—पच्छै=पीछे। अपछर=अप्सरा। अज्ज=आज। पहुनाई-आइय=पाहुने होने का न्यौता, युद्ध भूमि का निमंत्रण। औ-थान=इस स्थान। सोभ्कतह =ढूँढ़ते हुए। जीत-सथि=विजय श्री सहित, विजय प्राप्त करके। उत्थ=उधर। किय-पंथ=किस रास्ते। हल्लै-चल्यौ=होकर चला गया। सुथिर=स्थिर रूप में, टक टकी लगाये। संभ=शंभू। नथि=नहीं।

अर्थः—इधर युद्ध होने से पूर्व ही अप्सराएँ उसके बारे में विचार करने लगीं। रंभा से मेनका ने पूछा आज तुम्हारा चित्त भारी (उदास) क्यों है? तब रंभा ने उत्तर दिया-आज युद्ध देखने का निमन्त्रण आने पर मैंने रथ में बैठकर इस स्थान पर बहुत खोज की, किन्तु प्यारे को नहीं देख पायी। यद्यपि योद्धागण युद्ध में भिड़कर विजय-श्री को प्राप्त करते हुए स्थल २ पर चुप हो (मृत) पड़े हुए हैं, किन्तु न जाने वे (सीधे स्वर्ग या ब्रह्मलोक को) किस राह से होकर चले गये हैं, जिसे कोई भी नहीं जान सका; (स्थिर रूप से) टकटकी लगाये हुए खड़े २ शंभु भी उन्हें नहीं देख पाये हैं।

खां हुस्सैन ढरि पर्यौ, अस्व फुनि पर्यौ सार बहि।
खां हुजाब खां-सेर[1], खांन उजबक्क खेत रहि॥

खां—ततार मारूफ, खान खाना घट घुम्मैं ।
तब गोरी सुबिहान, आइ दुज्जन मुख भुम्मै ॥
कर तेग-झल्लि पुट्ठिय-सु-बर[२], नहि सुलतानह पन करी ।
अदिहार दीह पलटे सु बर, तबह साह फिरि पुक्करी ॥ ६८॥
ग्रा० पा० १, २, पा० घ० ।

शब्दार्थः—अस्व=घोड़ा । फुनि=फिर । सार बहि=लोहा बजाकर,तलवार बजा कर । घट=शरीर । घुम्मै=घूमने लगे,झूमने लगे । मुख-भुम्मैं=सामना किया । तेग-झल्लि=तलवार पकड़ कर । पुट्ठिय-सु-बर=पीछे को हटा । अदिहार=द्रष्टि गत नहीं होने वाला [ईश्वर] । पुक्करी=पुकारा ।

अर्थः—अपने घोड़े के मारे जाने पर पैदल ही शस्त्र प्रहार करता हुआ गाजी-हुस्सैन धराशायी हुआ । विपक्षी दल के हुज्जाबखां, शेरखां, उजबक्कखां,नत्तारखां,मारुफखां और खान खाना (श्रेष्ठखांन) घायल होकर झूमने लगे । यह देखकर खुदावन्द-गौरी शाह ने विपक्षियों से सामना किया । लेकिन तलवार ग्रहण करके भी वह पीछे हट गया और अपने सुलतान पने को नहीं निभा सका । जब द्रष्टिगोचर नहीं होने वाला [ईश्वर] ही उससे पलट गया, तब उसने उसको [ईश्वर को] फिर से पुकारा ।

तब साहिब गोरी नरिंद, सत बान समाहिय ।
पहिल बान बर बीर, हने रघुवंस गुराइय[१] ॥
दूजै बान तकंत[२], भीम भट्टी बर भंजिय ।
चाहुवान—तिय—बान, खान अद्धं—धरि रज्जिय ॥
चहुवान कमान सु संधि करि, तोय बान हथ्थह[३] रहिय ।
तब लग्गि चंपि पृथीराज ने, गौरीवै गुज्जर गहिय ॥ ६९॥
ग्रा० पा० १ सर्वप्रति । २ पा० घ० भीं० । ३ पा० घ० ।

शब्दार्थः—साहिब=शहाबुद्दीन । समाहिय=हाथ में लिये । पहिल=पहला । गुराइय=गरुर धारी, गौरव धारी । तकंत=ताककर । बर=बल । चाहुआन-तिय-बान=चाहुवान पृथ्वीराज पर तीसरा बाण ताना । अद्धं-धरि=आधा ही धर पाया, खींच पाया । तीय-बान=तीसरा बाण । हथ्थह=हाथ में ही । गुज्जर=रामराय बड़गुज्जर ।

अर्थः—फिर शहाबुद्दीन ने अपने हाथ में सात बाण लिये। उसने पहला बाण गौरव धारी श्रेष्ठ वीर रघुवंशीराय पर मारा, दूसरे बाण से ताक कर भीम भट्टी के बलको तोड़ा, तीसरा बाण चौहान (राजा) पर चलाने के लिए प्रत्यंचा पर चढ़ाया, किन्तु वह आधा ही चढ़ पाया था कि चौहान राजा पृथ्वीराज ने बाण को कमान पर साधकर शाह के तीसरे बाण को हाथ का हाथ में ही रख कर (वार को वृथा करके) उसको दबा दिया। इतने में रामराय बड़गुज्जर ने उस (गौरी) को पकड़ लिया।

गहि गौरी सुरतान; खान-हुस्सैन उपार्‌यौ।
खां-ततार निसुरत्ति; साहि झोरी करि डार्‌यौ॥
चामर छत्र रखत्त, बखत लुट्टै सुरतानी[1]।
जै जै जै चहुवान, बजी रन जुग जुग बानी॥
गज बंध बंधि सुरतांन कौं, गय ढिल्ली ढिल्ली नृपति।
नर नाग देव अस्तुति करै, दिपति दीप दिवलोक पति ॥७०॥

ग्रा० पा १, पा०।

शब्दार्थः—खान हुस्सैन=गाजी हुसैन। उपार्‌यौ=उठाया। झोरी करि=झोलियों में। गजबंध=गजारोही वीरों ने। दिपति=दीप्ति। दीप=दैदीप्यमान।

अर्थः—गौरीशाह को पकड़ लेने के बाद घायल हुए गाजीहुस्सैन को उठाया गया तथा तत्तारखां और निसुरतखां आदि पकड़ कर झोलियों में डाल दिये गये। इसके पश्चात् शाह के राज्यचिन्ह चमर, छत्र आदि एवं रसद सामान को लूट लिया गया। तब रणक्षेत्र में बाजे बजने लगे और चौहान राजा की जय जय कार होने लगी। इसके पश्चात् शाह को गजारोहियों ने बांधकर हाथी पर डाल दिया, इस प्रकार दिल्ली पति उसे साथ में दिल्ली लेगया। यह देख कर नर, नाग, देवता, आदि उसकी स्तुति करने लगे, और इस विजय से पृथ्वीराज की दीप्ति इन्द्र के समान दैदीप्यमान होगई।

समै इक्क[1] बत्ती नृपति, बर छंड्यौ सुरतान।
तपै राज चहुवांन यौं[2], ज्यौं ग्रीषम मध्यान ॥७१॥

ग्रा०पा०१, २, पा०।

शब्दार्थः—बत्ती=बीती, बितने पर। तपै=तपने लगा।

अर्थः—कुछ समय बीतने पर श्रेष्ठ राजा पृथ्वीराज ने सुलतान को छोड़ दिया और वह (पृथ्वीराज) इस प्रकार तपने लगा, जिस प्रकार ग्रीष्मकाल में मध्यान्ह समय का सूर्य तपता है।

मास एक दिन तीन, साह संकट में रुंद्धौ।
करिय अरज उमराउ, दंड हय मंगि प सुद्धौ॥
असत्र मोल[१] नव सहस, सत्त सै दीन[२] ऐराकी।
उज्जल दंतिय अट्ठ, बीस मुर ढ़ाल सुजा की[३]॥
मोतीय नग्ग मानिक नवल, करि सलाह संमेल करि।
पहिराइ[४] राज मनुहार करि, गज्जनवै पठयौ सु घरि॥ ७२॥

ग्रा०पा०१, पा०घ०। २, का०घ०। ४ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—रुंद्धौ=रूंधा रहा। सुद्धौ=सीधा, साधारण। असत्र मोल=प्रत्येक घोड़े का मूल्य। मुर=मुड़ जानेसी मुलायम। सुजाकी=सूस की (एक जानवर की त्वचा से बनी हुई)। संमेल करि=समा कर, संमेलन कर। घरि=घर पर।

अर्थः— शाह एक माह और तीन दिन तक (पृथ्वीराज के) बंधन में रहा, तब शाही उमरावों ने राजा पृथ्वीराज से उसे छोड़ देने की प्रार्थना की। तब पृथ्वीराज ने उनसे साधारण सा दंड मांगा। इस पर शाह ने नव नव हजार के मूल्य वाले सात सौ ऐराकी घोड़े, उज्ज्वल दांत वाले आठ हाथी और लचकदार बीस सुन्दर ढालें आदि पृथ्वीराज को दंड स्वरूपीय भेंट की। तब पृथ्वीराज ने भी सामंतों से सलाह करके बादशाह को नग, मोती, माणिक आदि से पिरोई हुई एक नूतन माला पहनाकर गजनी को रवाना किया।

—:❀:—

अनंगपाल

(समय २६)

दोहा

दिय दिल्ली चहुवान कौं, तूंअर बद्री जाइ ।
कहौं[1] दंद क्यौं पुक्करिय, फिरि दिल्लिपुर आइ ॥ १ ॥

ग्रा. पा. १, सं. ।

शब्दार्थः—बद्री=बद्रिकाश्रम । दंद=विघ्नकारी । पुक्करिय=पुकारा गया, कहा गया, हुआ, किया ।

अर्थः—पृथ्वीराज को दिल्ली दान में देकर तोंमर राजा अंनगपाल बद्रिकाश्रम चला गया । उसने पुनः दिल्ली लौटकर क्यों विघ्न पैदा किया ? उसी का वर्णन मैं (कविचन्द) यहाँ पर करता हूँ ।

रक्खि बीर पृथीराज कौं, गौ तीरथ्थह राज ।
व्यास वचन आनंद सजि, तिंहु पुर वज्जन बाज ॥ २ ॥

शब्दार्थः—रक्खि=रखकर । गौ=चला गया । तीरथ्थह=तीर्थ को । राज=राजा अनंगपाल ।

अर्थः—व्यास द्वारा कहे हुए भविष्य-कथन को मान कर राजा अनंगपाल प्रसन्नता पूर्वक वीर पृथ्वीराज को दिल्ली देकर तीर्थ चला गया । इससे तीनों लोकों में बाजे बजे (सुर, नर, नाग आदि को प्रसन्नता हुई) ।

जुग्गिनिपुर पृथीराज लिय, बज्जि त्रिघोष सु दंद ।
अनंगपाल तूंअर-बरन, किय तीरथ आनंद[1] ॥ ३ ॥

ग्रा. पा. १ घ. पा. ।

शब्दार्थः—जुग्गिनिपुर=दिल्ली । लिय=प्राप्त की । बज्जि=बाजे, वाद्य । त्रिघोष=उच्च ध्वनि । तूंअर-बरन=तोमर जाति के, तोमर वंशी ।

अर्थः—विघ्नकारी वाद्यों को बजाते हुए पृथ्वीराज ने दिल्ली को और तोंमर वंशी अनंगपाल ने तीर्थ का श्रेष्ठ आनन्द प्राप्त किया ।

कवित्त

तसकर चेलक विप्प, बैद दुरजन अति लोभी ।
प्राहुन अहि जल ज्वाल, काल त्रिप इनमें मोभी ॥
इन पर चिंता नांहिं, बहुत करि जौ पै कहिये ।
अप्प सहज्ज चालंत, चित्त की वत्तन[1] लहिये ॥
प्रथीराज-लोक तौंअर-घरह, अरुचि[2] दिष्ट मंडै तनह ।
भौगवै धरा जीवत धनिय, संक न कोइ मानै मनह ॥ ४ ॥

ग्रा० पा० १ पा० घ० । २ पा० ।

शब्दार्थः—तसकर=चोर । चेलक=चेला । त्रिप्प=ब्राह्मण । प्राहुन=पाहुन । मोभी=मैं स्वयं, अर्थात् कवि भी । इन=इनको । पर=पराई । अप्प=अपने । सहज्ज= स्वाभाविक । वत्त=बात । पृथीराज-लोक=पृथ्वीराज के आश्रित । तौंअर-घरह=तोंमर अनंग पाल के आश्रित । दिष्ट=दृष्टि । मंडै=करते, देखते । जीवत-धनिय=स्वामी (अनंग पाल) के जीते जी ।

अर्थः—चोर, चेला, ब्राह्मण, वैद्य, दुर्जन, अत्यन्त लोभी, मेहमान, सर्प, जल, ज्वाला, काल, राजा, और इनके अनन्तर मै स्वयं (कवि) हूं । इन सबको बहुत कुछ कहा जाय किन्तु फिर भी पराई चिन्ता नहीं होती । ये अपने स्वाभाविक रास्ते पर चलते रहते हैं (अपने रास्ते को नहीं छोड़ते, अपनी आदत से बाज नहीं आते) और न इनके मन की बात ही प्रगट होती है ।* अतः पृथ्वीराज के साथ में आये हुए आश्रित गण अनंगपाल के आश्रितों का अरुचि की दृष्टि से देखते थे और अनंगपाल के समय उसके आश्रित मन में निश्शंक होकर पृथ्वी को भोगते थे ।

स्पष्टीकरणः—चोर को दूसरे की चिन्ता नहीं होती—वह अपनी आदत को नहीं छोड़ता और न अपनी गुप्त बात ही प्रगट होने देता है । शिष्य को भी अपने अन्य साथियों की चिन्ता नहीं होती-वह अपनी ही धुन में मस्त रहता है और अपने अध्ययन विषय को गुप्त रखता है । ब्राह्मण को अन्य के हित अहित का विचार नहीं होता—यज्ञादि कार्य से दाता का फायदा हो न हो दान-दक्षिणा और सीधे (आमान्न) से काम है; वह अच्छे बुरे को नहीं सोचता—शास्त्र कथित रास्ते का ही अनुसरण करता है और अपने गुप्त विषय को दाता के हानि लाभ सम्बन्धी या अपने स्वार्थ को प्रकट नहीं होने देता । वैद्य को रोगी की चिन्ता नहीं होती—वह भी

दोहा

संभरि वै सोमेस नृप, अति उतंग आचार ।
ढिल्ली प्रिथि[1] तौंअर[2] दई[3], सुनि[4] खिज्यौ महिपार ॥ ५ ॥

ग्रा० पा० १. २ पा० । ३ घ०, पा० । ४ सर्व० ।

शब्दार्थः—उतंग=ऊँचे । आचार=आचरण । महिपार=महिपाल नामक कोई विपक्षी ।

अर्थः—संभरेश्वर-सोमेश्वर के उत्तम और ऊँचे आचरण थे । जब तोमर-राजा अनंगपाल ने पृथ्वीराज को दिल्ली दी इसकी सूचना मिलने पर महिपाल विपक्षी क्रोधित हो उठा ।

अपने स्वार्थ के रास्ते का नहीं छोड़ता और अपना गुप्त उद्देश्य प्रगट नहीं होने देता । दुर्जन को पराई चिन्ता नहीं होती – वह अपने स्वार्थ के रास्ते को नहीं छोड़ता और अपना गुप्त उद्देश्य प्रगट नहीं होने देता न वह अपने दुष्ट स्वभाव को ही छोड़ता एवं न अपनी दुष्टता को प्रकाश में हीं आने देता । अत्यन्त लोभी को पराई चिन्ता नहीं होती - वह अपने धनोपार्जन के रास्ते पर चलता रहता है और अपने गुप्त स्वार्थ विषय को प्रगट नहीं हाने देता । महमान को घर वालों को चिन्ता नहीं होती वे भी आकर डट जाते हैं और अपने खास उद्देश्य को छिपाते रहता है (अर्थात् जैसा घर वालों का और घर का खयाल घर के मालिक को होता है वैसा महमान को नहीं हाता) । सर्प को अन्य के भय का खयाल नहीं होता – वह अपने डसने की आदत को नहीं छोड़ता, और प्रगट नहीं होता । जल प्रवाह अन्य के नुक्सान को नहीं सोचता-जिधर रास्ता पाता है उधर ही वह निकलता है, उसकी गति भी अज्ञात रहती है । अग्नि ज्वाला को भी अन्य को हानि का विचार नहीं होता – वह भी चाहे जिधर फैल जाती है और उसको गति का ज्ञान नहीं हो पाता । काल भी अन्य की चिन्ता नहीं करता – वह नाशकारी रास्ते को नहीं छोड़ता और उसकी गति भी अज्ञात रहती है । राजाओं को पाराई चिन्ता नहीं होती–वे मन माने रास्ते पर चलते रहते हैं और उनकी मंत्रणा गुप्त होती है । कवि को भी साहित्य–सृजन के अतिरिक्त अन्य की चिन्ता नहीं होती – ये भी अपने नियमित मार्ग का अनुसरण करते हैं एवं इनके भी व्यंग-विषय प्रगट नहीं होते या इनको भी दाता की परिस्थिति का विचार नहीं होता, ये अपनी याचना की आदत को नहीं छोड़ते और किस प्रकार ये तुष्ट हो सकें. उनकी यह बात दान देने वाले पर प्रगट नहीं हो पाती ।

कवित्त

चंदेरी चतुरंग, सैन हय गय पल्लानं ।
ठौर ठौर कग्गदह, दए मालव धरवानं ॥
गक्खड़ गुंड भदौड़, सोरपुर सूर समाहे ।
मिलि आए महिपाल, अप्प बल सेन उमाहे ॥
एकंत मंत[1] सोमेस पर, धर[2] संभरिवै लिज्जियै ।
प्रथिराज तुँअर दिल्ली दिसा, फिरि कलहंतर किज्जियै ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० १ पा० । २ संशोधित ।

शब्दार्थ:—पल्लानं=पलाने, सजाये । दए=दिये । धरवानं=भूमि पतियों । समाहे=तत्पर हुए । मंत=मंत्रणा । उमाहे=उत्साहित हुआ ।

अर्थ:—उसी समय हाथी घोड़ों के साथ चंदेरी की चतुरंगिनी सेना सजाई गई और मालव जाति (या मालव-प्रदेश) के भूमि-पतियों को यत्र तत्र पत्र दिये गये, जिन्हें पढ़कर गौंड़, भदोर (भदावर) और सोरपुर (श्यौपुर) के गक्खड़ गर्जना करने वाले के साथ युद्धार्थ सजकर एकत्रित हो गये और महिपाल से आ मिले। इस प्रकार सबके आने पर अपनी सेना को बल-वृद्धि देखकर महिपाल उत्साहित होगया। तब सबने एकान्त में बैठकर मंत्रणा की जिसमें यह निश्चय किया गया कि पहले सोमेश्वर पर चढ़ाई कर सांभर-धरा (अजमेर और सांभर) को अधिकार में किया जाय बाद में तोमरों के मुख्य स्थान दिल्लीपर आक्रमण कर पृथ्वीराज से युद्ध छेड़ा जाय ।

बर-मालव महिपाल, चढ्यौ चहुवान सु उप्पर ।
सेन सज्जि[1] चतुरंग, दियौ मेलानह सोपुर ॥
हय गय थट्ट अघट्ट, घाट चंबिल परि आइय ।
घुरि निसान घमसान, थान थानह हल्लाइय ॥
जादव नरिंद हरि-वंस-कुल, अति आतुर अजमेर पर ।
उत्तर्यौ सरित संमित सकल, धूंसि धरा रावत्त धर ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—बर-मालव=मालव सेना के बल पर। मेलानह =डेरा। अवट्ट=अघटनीय, भयानक। चंबिल-परि=चंबलपर। घुरि=गूँजे, बजे। घमसान=युद्ध के। हल्लाइय=कंपित कर दिये। हरि-बंस-कुल=कृष्ण वंशज सह कुटुम्ब। धुंसि-धरा=भूभाग को धुमस (कुचल) दिया। रावत्त-धर=धरापति, भूपति।

अर्थः—इस प्रकार मालव के बल पर महिपाल ने चाहुवान (सोमेश्वर) पर अपनी चतुरंगिनी सेना सु सज्जितकर चढ़ाई की और श्यौपुर में आकर डेरा डाला। उसके हाथी घोड़े और भयानक वीर-समूह चम्बल के घाट पर आ उतरा तथा युद्ध के नक्कारे बजवाये, जिससे भूभाग का प्रत्येक कोना थर्रा गया। उधर कृष्ण-वंशज [पट्टन का] यादव राजा भी उसका सहायक बन तीव्र गति से अजमेर की ओर बढ़ा। सब भूपतियों ने समिलित हो नदी पार कर चाहुवानी भूभाग को धुमस (कुचल) दिया।

सुनि सोमेसर सूर, चिंति मन मत्ति[1] उपाइय।
बर प्रथिराज नरिंद, अनँगपालह बुल्लाइय॥
रज रजवट रक्खियै, **राव रावत्तन** किज्जै[2]।
रहै गल्लह संसार, आव जल अंजुल छिज्जै॥
मो बस अंस आनल अटल, कोइ न कहु काइर कहिय॥
अप्पान सुभर[3] संबोधि नृप, जुद्ध घात पुच्छत लहिय॥ ८॥

भ्रा०पा०१, घ०। २, पा०। ३, पा०भीं।

शब्दार्थः—मत्ति=मंत्रणा। उपाइय=उपजाई, पैदा की। बुल्लाइय=बुला लिया, रख लिया। रज=रजोगुण। रजवट=राज गौरव। राव-रावत्त=राव और रावत पदधारी। किज्जै=करना चाहिये, या कहना है। आव=आयु। गल्लह=ख्यात बात। छिज्जै=नश्वर है। अटल=अडिग। कहु=कहीं। काइर=कायर। अप्पान=अपने। घात=दाव। पुच्छत=पूछने लगा।

अर्थः—यह सुनकर वीर सोमेश्वर ने मनमें सोचा कि पृथ्वीराज को तो अनगपाल ने दिल्ली पर बुला लिया है। (रखलिया है) अब मेरा राव और रावत्त पद धारियों से यही कहना है:— कि हमें रजोगुण और रजवट की रक्षा कर लेनी चाहिये; क्योंकि आयु तो क्षणिक है और नष्ट होने वाला है; किन्तु वीरों की बात

संसार में रह जाती है। हमारा अक्षय वंश राजा अनल (चौहान) के अंश से है-अतः कहीं कोई हमें कायर नहीं कहदे ? इस प्रकार अपने सामन्तों को सम्बोधित-कर राजाने युद्ध की पद्धति (दाव) के विषय में उनसे पूछा।

सिँघ पँवार वरसिंघ[१]; गौड़ संजम चहुआनं।
बाहन-वीर सधीर, राज गुर राम सुजानं ॥
मंत मंति भर अवर, करे सम-चित्त अनेकं।
तुम लज्जा धर धीर, बीर बीराधि बिमेकं[२] ॥
संभरिय सोम पुच्छत बयन, कहिय बत्त सम-तत्त कल।
छल बल अनेक छित्रिय[३] करत[४], तुच्छ सत्थ पुभ्भै न[५] ग्बल ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० १, ३, पा० घ०। २ भीं० का०। ४ का०। ५ भीं।

शब्दार्थ:—बाहन-वीर=वीरवाहन, नाम विशेष। सधीर=धैर्य वाला। राज-गुर-राम=राज गुरु पदधारी (राजा पृथ्वीराज का शास्त्र गुरु) रामराय (अथवा राजा का गुरु, गुरुराम पुरोहित)। मंत=मंत्रणा। मंति=मंत्री। करे सम-चित्त=चित्त को एक समान करके, एकचित्त होकर। बिमेकं=विवेक। पुच्छत-बयन=बात पूछते हैं, प्रश्न करते हैं। सम-तत्त=तत्व युक्त, तत्व सहित। कल=सुन्दर। छित्रिय=क्षत्रिय। पुभ्भै न=नहीं पहुँचते, समानता नहीं करते।

अर्थ:—तब सिंह प्रमार, वरसिंह गौड़, संजम चौहान, धैर्यवान वीरवाहन, राज-गुरु पदधारी चतुर रामराय बडगुज्जर (या राजा का गुरु, गुरुराम) तथा अन्य मंत्रीगणों और तदुपरान्त प्रमुख सामन्तों ने एक चित्त होकर मंत्रणा की और कहा— हे वीरों ! तुम लज्जा को धारण करने वाले धैर्यवान तथा वीरों में श्रेष्ठ एवं विवेक-वान हो—अतः संभरी-पति सोमेश्वर तुमसे पूछते हैं कि:-युद्ध किस प्रकार किया जाय, तुम इस विषय में अपने विचार प्रगट करो ? तब सब सामन्तों ने सुन्दर तत्व युक्त बात कही—कि जब शत्रुओं की संख्या अधिक और अपनी सेना स्वल्प होती है तब देखा गया है कि अनेकों क्षत्रिय छल और बल को अपनाते रहे हैं; क्योंकि स्वल्प वीर विशेष वीरों से युद्ध में सामना नहीं कर सकते।

दोहा

चंद दंद-निसि दंद-मति, ऋतु सरद गुरवार।
तेरसि तकि सज्जौ सयन, रचि रतिवाह विचार ॥ १० ॥

शब्दार्थः—दंद-मति=युद्ध में मति रखने वाले। गुरवार=गुरुवार। तकि=तक कर। सयन=सेना। रतिवाह=रात्रि को छापा डालना।

अर्थः—कविचंद (या चंद पुंडीर) ने कहा:— हे युद्ध में मति रखने वाले (राजा सोमेश्वर)! आप शरद ऋतु की शुक्ल पक्षीय त्रयोदशी गुरुवार की रात्रि में छापा मारने के लिये (आक्रमण करने को) सेना सजाइये (यही मेरी सम्मति है)।

कवित्त

रत्तिवाह छल जुद्ध, अध्रम खित्री परिमानं।
कूड़[1] कपट मारियै, अध्रम निद्रागत जानं॥
मल मोचन रति रवन, सेव[2] पूजन जल न्हानं।
मंत्र जाप जप्पंत, करै नह घात सुजानं॥
तुम मंत तंत सच्चौ[3] कहिय, इह अध्रम्म ध्रम हारियै।
जो गिन न[4] पुरुख निन्दा अपर, तो[5] रतिवाह विचारियै॥ ११॥

प्रा. पा. १, टि ६। २, ३, ४, दे.। ५ सं.।

शब्दार्थः—खित्री=क्षत्रिय। परिमानं=प्रमाणते,मानते। कूड़=बुरा। अध्रम्म=अधर्म। निद्रागत=निद्राग्रस्त। मल-मोचन=शौच करते हुए। रवन=रमण। मंत=मंत्रणा। तंत=तत्व। ध्रम-हारियै=धर्म का ह्रास करना। गिन न=नहीं गिनते, परवाह नहीं करते।

अर्थः—राजा सोमेश्वर बोला:— रात्रि में छापा मारकर छद्म-युद्ध करना क्षत्रियों ने अधर्म माना है, रण-दक्ष पुरुष, कपट और अधर्म को काम में लेकर किसी को मारना ठीक नहीं समझते। वे निद्राग्रस्त, शौच, रति-रमण, सेवा पूजा, स्नान-मंत्रणा और जप करते हुए पर, घात नहीं करते। हे सामन्तों! तुमने सार युक्त सच्ची मंत्रणा कही; किन्तु ऐसे अधर्म से धर्म का ह्रास होता है। जो पुरुष अन्य द्वारा की-गई निन्दा की परवाह नहीं करता वही छापा मारने की बात सोच सकता है।

छल तक्यौ श्रीराम, सेत साइर तब बंध्यौ।
छल तक्यौ सुग्रीव, वालि जिउ ताडह संध्यौ॥
छल तक्यौ लछिमना, सूरमंडल अरि बेध्यौ।
छल तक्यौ नरसिंघ, म्रग्गकस[1] नख उर छेद्यौ॥

छल बल करंत दूखन न कोइ, किस्न कलह कंसह करिय।
सोमेस राज तकि अप्प विधि, रत्तिवाह बल मन धरिय ॥ १२ ॥

ग्रा० पा० १ का०।

शब्दार्थ–सेत=सेतू। साइर=सागर। संध्यौ=संधान किया, वेध दिया। अरि=मेघनाद। वेध्यौ=भेद गया, स्थान पाया। अग्गकस=हिरण्य कश्यप। किस्न=कृष्ण। अप्प=आप। विधि=तरीका। रत्तिवाह=छापा।

अर्थः—समुद्र पर सेतु बांधते समय रामचन्द्र ने छल किया। रामेश्वर की स्थापना के समय रावण को निमंत्रण कर विजय प्राप्त और रावण निधन का संकल्प उसी के द्वारा कराया। ताड़ वृत्तों को वेधकर सुग्रीव ने छल द्वारा बड़े भाई को मरवाया। मेघनाद के यज्ञ को पूर्ण न होने देकर लक्ष्मण ने उसे सूर्य मण्डल से भी ऊपर को स्थान दिया। अचानक स्तम्भ से प्रगट होकर हिरण्यकश्यप को नृसिंह ने चीर दिया। कृष्ण ने छल करके (जन्म से गुप्त रहते हुए अचानक आकर) कंस को मार पछाड़ा। हे राजा सोमेश्वर! छल द्वारा बल करना दोष नहीं माना गया है। अतः इस समम आप उपर्युक्त बातों को सोचकर छापा मार छद्म-युद्ध करने का ही मन से निश्चय कीजिये।

दोहा

ससि त्रिम्मल ससि-सूर-अप, दिय अस अस्त्र उतान।
प्रथुक-जोग जिन-साल जर, संजोजन सव्वान ॥ १३ ॥

शब्दार्थः–त्रिम्मल=निर्मल। ससि-सूर-अप=वह बहादुर जो स्वयम् शशि (सोमेश्वर) था। अस=अश्व, घोड़े। उतान=ऊँचे, अच्छे। प्रथुक-जोग=भिन्न २ का यथा योग्य। जिनसाल=पटकोष, कपड़े के भांडागार। जर=जरींन। संजोजन=संयोजन, संजोये, सजाये। सव्वान=सबको।

अर्थः—उस वीर सोमेश्वर ने इस बात को मानकर निर्मल चंद्रोदय के अवसर पर अपने सब वीरों को यथा योग्य अच्छे अच्छे घोड़े, शस्त्र और पट-कोष से जरींन वस्त्र देकर सुसज्जित किया।

पट्टन जादव आय नृप, किय-डेरा बरवांन।
सुनि सोमेसर दौरि-करि, ज्यौं निधि रंक प्रमान ॥ १४ ॥

शब्दार्थः–किय डेरा=डेरा किया, डेरा दिया। दौरि-करि=दौड़ की, बढ़ा। निधि=धन राशि।

अर्थः—उस तरफ पट्टन-निवासी यादव-नृप ने बरवांन में आकर डेरा दिया, इधर से सोमेश्वर, जैसे कोई रंक धन-राशि की सूचना पाकर दौड़ता है वैसे बढ़ा।

अति आतुर अजमेर-पहु, आइ कुलिंगन बाज।
यों रस रत्ता सूर भर, मुकति त्रिया धरि साज ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—अजमेर-पहु=अजमेर का राजा (सोमेश्वर)। रस रत्ता=रस में लीन। मुकति=मुक्ति। त्रिया=कामिनी। धरि-साज=शृंगार किया।

अर्थः—अजमेर का राजा (सोमेश्वर) इस प्रकार शीघ्रता से जा पहुँचा जैसे कुलिंजन पक्षी पर बाज झपटता है। उसके वीर सामन्त भी मोक्ष-रूपी कामिनी को साज-शृंगार युक्त देखकर अपनाने के लिये रस में लीन हो गये।

कवित्त

अप्प अप्प मुख अरिन, सूर संमूह झल्लारिय।
हाइ हाइ उच्चार, धरनि अम्बर तुटि-डारिय ॥
चमकि चित्त त्रिपुरारि, अष्ट गन नारद नंचिय।
सेस सटप्पटि सलकि, दिसा-दंतिन तिन[1] अंचिय ॥
मानौं कि जलद तुट्टिय तड़ित, बर पट्टन आहुट्ट भर।
रतिवाह प्रात हूंते दियौ, अगनि सार वुट्ठी[2] कहर ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १, २, पा०।

शब्दार्थ:—अरिन=अड़कर। झल्लारिय=झल्लाये गये। तुटि-डारिय=तोड़ फोड़ कर डाल दिया। सटप्पटि=सिटपिटाकर। सलकि=सल सलाया, हिला। दिसा दंतिन=दिग्गज। तिन-अंचिय=तृणग्रसे, मुँह में तृण लिया। आहुट्ट=भिड़े। हूंते=होते होते। वुट्ठी=बरसाई। कहर=विघ्न स्वरूपी।

अर्थः—अपने २ मोर्चे पर डटे हुए वीर सामना करते हुए झल्ला गये, जिससे सेना में हाहाकार मच गया। उन वीरों ने गगन-मण्डल को तोड़ फोड़कर पृथ्वी पर डाल दिया। यह देखकर त्रिपुरारि का चित्त भी चौंक उठा। अष्टगण और नारद नृत्य करने लगे। सटपटा कर शेष हिल पड़ा, दिग्गजों ने भी आश्चर्यान्वित होकर मुंह में तृण ले लिया। पट्टन वाले श्रेष्ठ वीरों से सामन्त इस प्रकार भिड़ पड़े, मानों बादल से बिजली टूट पड़ी हो। उन्होंने प्रातःकाल होते २ छापा मारकर विघ्न स्वरूपी लोहाग्नी बरसानी प्रारम्भ की।

दोहा

सार मार मच्ची कहर, दूअ दलनि सिरि[1] मंधि।
प्रौढ़ा नायक छयल रमि, प्रात न वंछै संधि॥ १७॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—मच्चो=होने लगी। सिरिमंधि=सिर पर। छयल=छैल। वंछै=चाहती। संधि=सँध कर, जुटकर, सम्पर्क पाकर।

अर्थः—दोनों दल के योद्धाओं द्वारा भयंकर मार सिर पर होने लगी, किन्तु वे युद्ध से इस प्रकार नहीं हटना पसंद करते थे जैसे प्रौढ़ा नायिका छैल छबीले पुरुष का संपर्क पाकर उससे रमण करती हुई प्रातःकाल होना नहीं चाहती।

कवित्त

सामेसर गजि[1] सूर, सूर उभझारिग झरि झरि।
सार फुट्ठि चहुआन, भिरिय जद्दों भरि लरि लरि॥
घरी इक्क[2] तिन रत्त, सार मेंगल सिर बुट्ठिय।
संभरिवै रसु आनि, सार भग्गि जु सिर तुट्टिय॥
भग्गइय सूरिमा[3] दुहु सयन, किहि न कोइ बर चंपयौ।
उप्पारि लियौ अजमेर पहु, दाग न किहुँ दिन्नौ[4]-गयौ॥ १८॥

ग्रा० पा० १, पा० भीं०। २, ४, पा०। ३, घ०।

शब्दार्थः—गजि=गर्जना करता हुआ। उभझारिग=झाड़ दिये, काट कर पटक दिये। झरि-झरि=लगातार शस्त्र झड़ी करके। सार-फुट्टि=लोहा आर-पार हो गया, लोहे द्वारा विदीर्ण कर दिये। जद्दों--भरि=यादव वीर। तिन=उस। रत्त=रात्रि। मेंगल=हाथी। बुट्ठिय=बरसा। संभरिवै=संभरेश्वर। रसु आनि=रस में आकर, विनोद में आकर, रंग में आकर। भग्गि=तोड़ दिया। तुट्टिय=तोड़ दिये। भग्गइय=भाग गये। सूरिमा=योद्धा। दुहुं सयन=दोनों (मालव और यादव) सेना के किहि-न-कोइ=कोई किसी का न हुआ, कोई किसी का साथ न दे सके। बर-चंपयौ=श्रेष्ठ ढंग से दबाये गये। उप्पारि लियौ=उठा लिया, उठवाया गया। अजमेर-पहु=अजमेर का राजा (सोमेश्वर)। किहुं=किसी को। दिन्नौ-गयौ=दिया गया।

अर्थ:—गर्जना करता हुआ वीर सोमेश्वर शस्त्र प्रहार द्वारा शत्रु-वीरों को काट २ कर गिराने लगा। यादव-वीरों के भिड़ने पर उस चाहुवान राजा ने अपने लोहे द्वारा विपत्तियों को विदीर्ण कर दिया। उस रात्रि को एक घड़ी तक हाथियों के मस्तक पर खड्ग-प्रहार होता रहा। संभरेश्वर ने युद्ध के रंग में आकर शत्रुओं के शस्त्रों के साथ २ उनके मस्तकों को भी तोड़ दिया, जिससे दोनों (मालव और यादव) सेना के यौद्धा उसके सामने से भाग गये। उनको इस प्रकार श्रेष्ठ ढंग से दबाया गया कि उनमें से कोई किसी का साथ न दे सका और न वे अपने मृत-यौद्धाओं को दागही दे पाये (पड़े ही छोड़कर चलते बने), किन्तु इस युद्ध में अजमेर-पति (सोमेश्वर) भी इतना घायल हुआ कि वह अपने योद्धाओं द्वारा युद्ध भूमि से उठाया गया।

हथ्थिय ढाल ढलक्कि, घालि लिन्नो[1] अजमेरी।
परि लंगा लंगरी, सेन दुज्जन दल फेरी॥
भाग वीर प्रुथिराज,[1] अरिन उप्पारि सु[2] लिन्नौ[3]।
इन सोमेसर राव,[.] सत्त हथ्थिन बर किन्नौ[4]॥
जिम तिमर सूर भंजै सुभर, गुरु-गल्लहां नन कवि टरै।
जब लग्गि[5] भूंमि साइर सुभ्रित, तब लगि कवित सु उब्बरै॥ १६॥

प्रा० पा० १, पा० भीं। २, घ०। ३, ४, ५, पा०।

शब्दार्थ:—ढलक्कि=ढलकती हुई। घालि लिन्नौ=डाल लिया। परि=उपर पड़कर, हमला करके। लंगा=महावीर स्वरूप। दल=दलकर। फेरी=फेर दी, मोड़ दी। भाग=भाग्य। अरिन=अड़ाकू। सत=सौ। बर=बल। सूर=सूर्य। गुरु-गल्लहां=विशेष ख्याति, महत्व पूर्ण ख्याति। नन=नहीं। टरै=मिटती। साइर=सायर, सागर। सुभ्रित=स्मृति। कवित=कविता, पद्यमय यश गाथा। उब्बरै=उबरती, बचती, अमर रहती।

अर्थ:—लटकती हुई ढाल के साथ अजमेर पति (सोमेश्वर) को हाथी के होदे में डाला गया। शेष शत्रु-सेना पर महावीर स्वरूप लंगरीराय ने हमला कर उसे कुचलते हुए भगा दिया। वीर पृथ्वीराज के सौभाग्य से वह अड़ाकू वो (सोमेश्वर) उठाया गया। इस युद्ध में सोमेश्वर राजा ने सौ हाथियों के समान बल प्रदर्शित किया, जिस प्रकार सूर्य अँधेरे का नाश कर देता है, उसी प्रकार उसने अच्छे २ विपत्ती

वीरों का नाश किया। कवि द्वारा कही गई ऐसी महत्व पूर्ण गाथा सदा अमिट है। यह पद्य-मय यश गाथा जहाँ तक पृथ्वी से समुद्र का सम्बन्ध है वहाँ तक स्मृति रूप में अमर है।

दोहा

रह्यौ न को रवि मंडलह, रहि कबि मुक्ख सु भल्ल।
जीरन जुग पाखान ज्यौं, पूर रहंदी गल्ल्ह ॥ २० ॥

शब्दार्थः—भल्ल=भलाई, अच्छाई। जीरन=जीर्ण। जुग=युग। पाखान=पाषाण, मूर्ति। रहंदी=रही। गल्ल्ह=यश गाथा।

अर्थ:—इस रवि-मण्डल के नीचे कोई भी नहीं रह पाया, केवल एक मात्र कवि के मुख से निकली हुई भलाई ही रह जाती है, युगों का परिवर्तन होता रहता है और इसीलिये वे जीर्ण मानी जाती हैं परंतु कवि-कथित सम्पूर्ण यश-गाथा का परिवर्तन नहीं होता, मूर्तिमान होकर हमेशांउसी रूप में बनी रहती है।

फिरि जद्दव भर देस दिसि, समर घाइ लैं सेन।
अवर चिंत ते अवर परि, कढ्ढि-न-सक्कै-बैन ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—भर=वीर। समर घाइ=युद्ध में घाव सहकर, युद्ध की मार सह कर। अवर=अन्य। चिंत=चिंतन किया, सोचा। अवर-परि=और ही बीती। कढ्ढि न-सक्कै-बैन=बोल नहीं सका, बोलने जैसा न रहा।

अर्थः—युद्ध की मार सहकर यादव-वीर (राजा) अपनी शेष सेना साथ में लेकर अपने देश की ओर रवाना हुआ, उसने चढ़ाई करते समय कुछ ओर हीं बात सोची थी, किन्तु बीती कुछ ओर ही, जिससे वह बोलने जैसा न रहा।

गृह सोमेसर आनि तिन, मास इक्क[1] दिन वीस।
रक्खि जतन किय न्हान जब, दियौ दांन सु जगीस ॥ २२ ॥

ग्रा० पा० १ भीं०।

शब्दार्थः—जतन=यत्न। न्हान=स्नान। जगीस=राजा।

अर्थः—सोमेश्वर को सामन्त गण अजमेर लाये, वहाँ एक मास २० दिन यत्न करने पर उसके घाव ठीक हुए, तब राजा ने स्नान किया और ब्राह्मणादि को दान दिया।

सुनिय खबरि[1] प्रथिराज नृप, चिंति भविक्खत बत्त ।
अरियन तौ आहोड़ियै, जो लब्भीजै घत्त ॥ २३ ॥

ग्रा० पा० १ पा०, भीं० ।

शब्दार्थः—खबरि=खबर, सूचना । भविख्खत=भविष्य की । आहोड़ियै । अड़ूंगा, भिड़ूँगा । लब्भीजै=प्राप्त हो । घत्त=बात, अवसर ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज को भी इस बात की सूचना मिली, जिससे वह भविष्य पर चिंतन करने लगा और सोचा कि कभी दाँव लगा तो शत्रुओं से भिड़ूँगा ।

कवित्त

अनँगपाल प्रज लोक, जाइ बद्री पुक्कारिय ।
हम तुम सेवक सांमि, छंडि ग्रह राज निकारिय ॥
नहि अदब्ब मन्नयौ, कूर मच्चौ चहुआनं ।
हो अनगेस नरेश, गई ढिल्ली धर जानं ॥
जा जियत राज धर पर बसिय, न्याय नीति[1] न प्रकासियै ।
नर नाग देव निंदै सकल, त्रिक्क[2] करंतह[3] बासियै ॥ २४ ॥

ग्रा० पा० १, २, सं० । ३, पा० भीं० घ० ।

शब्दार्थ—प्रज लोक=प्रजा के लोक, जनता । सामि=स्वामी । अदब्ब=अदब, इज्जत, प्रभाव । कूर=क्रूरता । पर बसिय=पराधीन । त्रिक्क=नरक । जाजियत=जिसके जीवित रहते हुए । बासियै=बास ।

अर्थः—उधर अनंगपाल की जनता ने बद्रिकाश्रम में जाकर पुकार की कि हे स्वामी ! हम तुम्हारे सेवक हैं हमें घर छुड़वाकर राज्य से निकाल दिया है । और चाहुवान (पृथ्वीराज) ने आपका कुछ भी प्रभाव नहीं माना है एवं उसने क्रूरता मचा दी है हे अनंगपाल राजन् ! दिल्ली तो आपके हाथों से गई ही समझिये, किन्तु जिसके जीवित रहते हुए उसकी पृथ्वी (जनता) पराधीन होती हो, तो यह न न्याय है और न नीति ही, ऐसे राजा की नर, नाग, देवता आदि निन्दा करते हैं और अन्त में उसका नरक में निवास होता है ।

सुनिय ज जाजुल्य, दूत पर धान पठाइय ।
हम भँडार धन धान, द्रब्ब सब्बह भरि लाइय ॥
व्यास वचन सँभारि, कहे तब मंत्री पुब्बह[1] ।
देस वीकर धन आदि, राज ग्रहियौ[2] गढ़ सब्बह ॥
नृप सेव-देव दुज्जन उरग, इन ढिल्लै नन मुक्किकयै ।
बर बंध पुत्त अरु तात नृप, इन विसास धर चुक्किकयै ॥ २५ ॥

ग्रा० पा० १ भों पा० का० । २ पा० ।

शब्दार्थः—जाजुल्य=ज्वाज्वल्यमान । द्रब्ब=द्रव्य । संभारि=सोचकर । पुब्बह=पहले का । ग्रहयो=गृहण कर लिया, अधिकार होगया । दुज्जन=दुर्जन, शत्रु । उरग=सर्प । बंध=बंधु । विसास=विश्वास । धर-चुक्किकये=पृथ्वी से दूर होना ।

अर्थः—यह सुनते ही उस (अनंगपाल) का तेज ज्वाज्वल्य मान होगया और प्रधान को दिल्ली दूत के रूप में भेजा और कहलाया कि हमारा धन्य, धान्य, द्रव्य सब यहाँ पर भरकर ले आओ, तब अनंगपाल का वह पहले वाला मंत्री व्यास के भविष्य-कथन को याद करता हुआ बोला-हे राजन ! देश, कृषि, धन, राज्य और गढ़ आदि पर चाहुआन का अधिकार होगया है । आपको पहले ही सोचना चाहिये था कि राजा, देव सेवा, शत्रु, और सर्प इन चारों को ढील नहीं देनी (राजा से दूर, देव सेवा में चूक, शत्र को दबाने में देरी और सर्प को मारने में विलम्ब नहीं करना) चाहिये । नीति का कथन तो यहाँ तक है कि श्रेष्ठ बंधु, पुत्र और पिता का भी ऐसे विषय में विशेष विश्वास किया जाय तो पृथ्वी से हाथ धोना पड़ता है ।

धर कज्जै[1] कौरवन, पंड जानिय न बंध - गति ।
धर कज्जै दससीस, बंध बंध्यौ भमिखन मति ॥
धर कज्जै[3] नलराय, बंध बन खेत न अप्पौ ।
धर कज्जै[4] बलिराय, देव देवाधि उथप्पौ ॥
//धर कज्ज[5] मुंज त्रिय के कहै, भोज प्रहारन मत कियौ ।
धर कज्ज[6] कन्ह तूँवर अध्रत, पुत्तह से मुख विसिदियौ[7] ॥ २६ ॥

ग्रा. पा. १ से ६ पा. । ७ घ. ।

शब्दार्थः–धर कज्जै=पृथ्वी के लिये । पंड=पांडव । बंध-गति=भ्रातृभाव । बंध=भाई । मति=मति बनाई सोची । बन=वन, जंगल । खेत=क्षेत्र । अप्पौ=अर्पित किया, दिया । देव देवाधि=देवताओं के देव, विष्णु । उथप्पौ=च्युत किया । प्रहारन=मारने का नष्ट करने का । मत कियौ=मंत्रणा की । कन्ह=कृष्ण । तूंवर=हे तोमर नरेश । अधम-पुत्तह=अधम पूतना ।

अर्थः—हे तोमर नरेश ! इस पृथ्वी के लिये कौरव और पांडवों में भ्रातृ भाव नहीं रहा, रावण ने विभीषण को बांधने की सोची, राजा नल के भाई ने नल को वन में से एक क्षेत्र मात्र भी नहीं दिया, विष्णु ने राजा बलि को उसके आसन से च्युत कर दिया । स्त्री के कहने पर मुञ्ज ने भोज को नष्ट करने की सोची और अधम पूतना ने कृष्ण के मुख में विष दिया ।

तुम तूँअर मति चुक्कना[१], करि किल्ली ढिल्लीय ।
फुनि मत अप्पन ही करिय, पृथीराज धर दीय ॥ २७ ॥

प्रा०पा०१, च० ।

शब्दार्थः–मति चुक्कना=बुद्धि हीन । फुनि=पुनि, फिर । मत अप्पन=अपने ही मत से, अपनी मन मानी करके ।

अर्थः—हे तोमर नरेश ! तुम बुद्धि हीन हो, इसीलिये तो किल्ली को ढीली की, फिर अपनी मनमानी कर पृथ्वीराज के आधिपत्य में पृथ्वी सौंप दी ।

राज दान गज तुरिय द्रव, देत न लग्गे बार ।
धर तिय रक्खन यों सु द्रढ, अहिमनि रक्खन हार ॥ २८ ॥

शब्दार्थः–राज=हे राजन । द्रव=द्रव्य । द्रब=स्थिर, अटल । अहिमति=अहिअनि, अहिको. सर्प को ।

अर्थः हे राजन ! राज्य, हाथी, घोड़े और द्रव्य देने में कोई समय नहीं लगता, ये सहज ही में दिये जा सकते हैं; किन्तु पृथ्वी और स्त्री को अटल रूप में रखना सर्प को रखने के समान है ।

मंत्रि सु मंतह सीख ले, चलि दिल्लिय चहुवान ।
आइस कों जो यस कहां, इह भृत धम्म प्रमान ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—सु मंतह=अच्छी मंत्रणा देने वाला। सीखले=विदा हो। आइसकों=आज्ञाकारी को। इह=ऐसा। भ्रत=भ्रत्य, सेवक। ध्रम्म=धर्म। प्रमान=माना गया।

अर्थः—यह कह कर वह अच्छी मंत्रणा देने वाला मंत्री अनंगपाल से विदा लेकर चौहान के पास दिल्ली की ओर चला। सत्य है आज्ञाकारी को यश कब मिल सकता है? उसे तो आज्ञानुसार कार्य करना ही पड़ता है। यही एक मात्र सेवक का धर्म है।

उठ्यौ वीर बसीठ तब[१], करि जुहार चहुआन।
धनी उभै धर लुट्टियै, इह अचिज्ज परिमान ॥ ३० ॥

ग्रा०पा०१, दे०।

शब्दार्थः—बसीठ=दूत। धनी उभै=स्वामी के रहते हुए। अचिज्ज=आश्चर्य। परिमान=प्रमाण, समान।

अर्थः—वह दून (मंत्री) जब दिल्ली पहुँचा, तो वीर पृथ्वीराज उसके स्वागत के लिये आसन से खड़ा हो गया। वन्दना करते हुए मंत्री ने चौहान से कहा कि स्वामी के रहते हुए उसकी पृथ्वी को लूटना आश्चर्य प्रद है।

कवित्त

रे बसीठ मति धीठ[१], बोल-बुल्लै[२] मति हीना।
सनैपात उप्पनै, किनै सक्कर पय दीना ॥
धर कर लुट्टिय संगि[३], हत्थ चढ़ै मरदाना।
फिरि वंछे जो मूढ, होइ ताही जिय ज्याना[४] ॥
सट्ठीय वुद्धि नट्ठिय नृपति, तुम विमत्ति दिन-लहि-कहिय।
उग्गमैं सूर पच्छिम अरक, तौ दिल्ली धर तुम नहिय ॥ ३१ ॥

ग्रा० पा० १ दे०। २ पा०। ३ भीं। ४ पा० का०।

शब्दार्थः—धीठ=ढीठ। बोल-बुल्लै=वार्तालाप करता। सनैपात=सन्निपात। संगि=साथी। वंच्छे=इच्छा करता है। जिय ज्याना=प्राणान्त। सट्ठीय=साठ वर्ष की। नट्ठिय=नष्ट हो गई। विमति=कुमंत्रणा। दिन—लहि=समय पाकर। उग्गमैं=उदय हो। सूर=वीर। अरक=अर्क, सूर्य।

अर्थः—हे ढीठ बुद्धि के दूत ! तू बुद्धिहीन व्यक्ति के सदृश वार्तालाप करता है। क्या कभी सन्निपात की अवस्था हो जाने पर रोगी को दूध और शक्कर पिलाया जाता है (अन्त समय आ जाने पर भी क्या तुम्हारे राजा को राज्य उपभोग रूपी दूध शक्कर अच्छे लगते हैं) ? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि उसके हाथ से उसकी पृथ्वी और साथी निकल गये हैं और वह पुरुषार्थी पुरुष (पृथ्वीराज) के आधिपत्य में आगये हैं ? उसे पुनः प्राप्त करने की इच्छा करने वाले को मूर्ख समझना चाहिये और समझ लेना चाहिये कि उसका प्राणान्त है। राजा (अनंगपाल) की साठ वर्ष की आयु होजाने से अब उसकी बुद्धि भी नष्ट हो गई (सठिया गई) है ? इसीलिये समय देखकर तुमने भी उसे कु मंत्रणा दी है परन्तु हे वीर वसीठ ! यदि सूर्य पश्चिम से उदय होना प्रारंभ हो जाय तो भी दिल्ली का भाग अब तुम्हारा नहीं हो सकता है।

सुनिय[1] वत्त सो दूत चलि, बिन आदर मन मंद।
दीन हीन[2] दिक्खन इसौ, मनो कि वासुर[3] चंद ॥ ३२॥

ग्रा. पा. १, दे. । २ पा. । ३ भीं. पा ।

शब्दार्थः—चलि=चल पड़ा। बिन आदर=अपमान के कारण। मंद=उदास। दिक्खत=देखा गया। इसौ=ऐसा। मनो=मानो। वासुर–चंद=दिन का चन्द्रमा।

अर्थः—यह बात सुनकर अपमानित दूत मन से उदास हो अनंगपाल के पास पुनः चला गया, उस समय वह इस प्रकार दीन हीन के समान दिखाई दिया, मानों दिनका चन्द्रमा हो। (तेजहीन चन्द्रमा के समान उसकी दशा थी)।

कवित्त

तुंअर बीर बसीठ सांमि, संदेस सु अक्खिय।
तुह[1] वृद्धत्त न कुसल, बत्त पहिले हम भक्खिय ॥
वह बलिष्ट दैवान, दैत्य बंसी चहुआनं।
सूज अग्र उप्परै, देय नह तास प्रमानं ॥
तुम दई भूमि निज हथ्थ करि, अत्थि[2] मिन्त[3] नन खोइये।
संभरहि देस देसन नृपति, तौ वृद्धत्त विगौइये ॥ ३३॥

ग्रा. पा. १, पा. । २, ३, दे. ।

शब्दार्थः—सामि=स्वामी । अक्खिय=कहने लगा । तुह=तुम्हारी । वृद्धत्त=वृद्धत्व, बुढ़ापा । भक्खिय=कहदी । सूज=सुई । अत्थि=वास्तविक अर्थ लाभ की प्राप्ति । तौ=तुम्हारी, अपनी । विगोइये= छिपाये रहिये, बचाये रहिये ।

अर्थः—तँवर राजा के उस वीर दूत ने अपने स्वामी (अनंगपाल) से जाकर कहा कि अब तुम्हारे बुढ़ापे की कुशल नहीं है, यह बात पहले से ही हमने आपसे कहदी थी। वह चौहान देवता के समान बलवान और दैत्य ढूंढा (तृतीय वीशल) का वंशज सुई के अग्रभाग के बराबर भी वह आपको पृथ्वी देने को तैयार नहीं है, अस्तु; आपने अपने हाथों से ही पृथ्वी उसे दे दी है। हे मित्र ! अब आप अपने वास्तविक अर्थ लाभ (ईश्वरोपासना और उसके द्वारा साक्षात्) से दूर न होइये। ऐसा कर आप अपनी वृद्धत्व की शान को बचाये रहिये, नहीं तो आपका अपवाद देश-विदेश के राजाओं के कानों तक पहुँचेगा।

अनंग पाल नन मानि, कूँच किन्नौ दिल्लिय दिसि ।
भूत भविख जानी न, किये रत्तेत नयन रिसि[१] ॥
अप्प सेन सजि जूह, आय ढिल्ली धरवानं ।
मात-पिता मरजाद, चिंत लग्गौ[२] चहुवानं ॥
कैवास[३] मंत पुच्छ्यौ नृपति, कहो कहा अव किज्जिये ।
अहि ग्रहिय छछुन्दरि जो तजे, नैन जठर-भखि छिज्जिये[४] ॥ ३४ ॥

प्रा० पा० १, २, ३, दे० । ४, का० पा० ।

शब्दार्थः—भविख=भविष्य । रत्तेत=रक्त वर्ण, अरुण वर्ण । रिसि=क्रोध करके । जूह=जूथ, समूह । ढिल्ली-धरवानं=दिल्ली पर अधिकार किये हुए पर, दिल्लीश्वर पर । मात-पिता=नाना । मरजाद=मर्यादा । कैवास=कैमास । अव=अब । अहि=सर्प । जठर-भखि=उदर में भक्षण कर । छिज्जियै=दुःख पाना पड़ता, दुखद, नाशक ।

अर्थः— दूत-रूप ये गये हुए मंत्री ने दिल्ली से लौटकर यद्यपि अच्छी सलाह दी; किन्तु अनंगपाल ने नहीं -ानी और उसने दिल्ली की तरफ प्रस्थान कर दिया। भूत और भविष्य की स्थिति पर भी उसने विचार नहीं किया। क्रोध के कारण उसके नैत्र रक्त वर्ण होगये। उसने अपने पक्ष के सैन्य-समूह को एकत्रित कर सजाया और दिल्ली-

श्वर पृथ्वीराज पर चढ़ाई करदा। यह सुनकर चाहुवान (पृथ्वीराज) अपने नाना की मर्यादा की रक्षा के लिये चिंतन करने लगा। और कैमास से मंत्रणा की कि अब क्या करना चाहिये ? इस समय मेरी दशा छछुन्दर को ग्रसे हुए सर्प का सी है (सर्प छछुन्दर को पकड़कर छोड़ देता है तो वह फुत्कार कर उसे अन्धा कर देती है और खा जाता है तो वह मर जाता है) अब मुझ से पृथ्वी छोड़ते भी नहीं बनती और नाना का अपमान कर निन्दा का भागी भी नहीं होना चाहता।

दोहा

जो मारौं तो मात-पित, छंड़ों तो बल हानि।
कहि मंत्री मंत्र[1] गपति, न्याइ रीति विधि जानि ॥३५॥

ग्रा० पा० १ भीं०।

शब्दार्थः—मात-पित=माता का पिता, नाना। मंत्रं=मंत्रणा। गपति=गुप्त।

अर्थः—पृथ्वीराज बोला—यदि मैं अनंगपाल को मारता हूँ तो माता के पिता (नाना) को मारने का कलंक लगता है और यदि छोड़ देता हूँ तो अशक्त गिना जाता हूँ। इसीलिये हे मन्त्री (कयमास)! सब प्रकार से न्याय-रीति के अनुसार सोच कर इस विषय में कोई उचित गुप्त राय बताओ।

कवित्त

सुनौ नृपति चौहान, न्याय तौ कलह न किज्जै।
इन दीन्ही[1] धर अप्प, अप्प तौ इनह न दिज्जै ॥
जो निम्मान प्रमान, होइ है सोइ निआनं[2]।
जब लग्गे गढ आइ, जाइ तब जुद्ध जुरानं ॥
सजि कोट ओट सामंत सथ, नारि गोर जंबूर वहि।
लग्गै न जोर छिज्जै सुभर, इन[3] सा मंत लगंत नहि ॥३६॥

ग्रा० पा० १ भीं०। २, ३ दे०।

शब्दार्थः—निआनं=न्याय। लग्गै=घेरे। जुरानं=जुटना। छिज्जै=दुःखपायें, कष्ट उठायें। इन=इस। सा=समान जैसी। लगंत-नहि=अन्य नहीं लाग खाती, अच्छी नहीं लगती, ठीक नहीं जँचता।

अर्थः—हे चौहान राजा पृथ्वीराज ! न्याय तो यही है कि इससे (अनंगपाल से) कलह (युद्ध) नहीं करना चाहिये; किन्तु इसने जो पृथ्वी आपको अर्पित कर दी है उसे आप वापस मत दीजिये। ईश्वरने जो सोच लिया है वही न्याय है और वैसा ही होगा। जब वह गढ़ घेर ले तब युद्ध करना चाहिये; किन्तु दुर्ग की दीवार की आड़ में सब सामन्तों और आग्नेयास्त्रों को सजा दो जिससे इनका वश नहीं चल सके और योद्धा कष्ट उठाकर स्वतः लौट जायँ। इस समय यहाँ पर इस मंत्रणा के समान अन्य मंत्रणा ठीक नहीं जँचती (इस प्रकार करने से ही दूध और दुहना दोनों रह सकते हैं)।

अनँगपाल बल मंडि, सुभर ढिल्ली गढ लग्गा।
लेहु लेहु करि दौरि, अप्प वर अप्प विलग्गा॥
नारि गोरि आतस्स, कोट पारस भर घाइय।
जे भर मंडे आइ, सोर करि मोर उडाइय[1]॥
लग्गै न घात तूँअर नृपति, दिवस च्यारि मंडिय ररिय।
पुज्यौन-प्रान पानप घटत, ढिल्ली धर ढिल्ली करिय॥ ३७॥

ग्रा०पा०१, दे०।

शब्दार्थः—बल मंडि=शक्ति संगठित करके। लेहु लेहु=छीन लो २। विलग्गा=उलझ गये। पारस=पास, चारों ओर। घाइय=घात की। मंडे=भिड़े। ररिय=युद्ध क्रीड़ा। पुज्यौन-प्रान=पूज्य प्राणी। पानप=तेज, नूर। ढिल्ली-करिय=ढील दी, प्रशान्त किया।

अर्थः—अनंगपाल ने शक्ति संगठित की और श्रेष्ठ योद्धाओं ने दिल्ली-दुर्ग को घेर लिया। वे झपटते हुए छीन लो (छीन लो) आवाज करने लगे और अपने आपमें ही उलझ गये। उन वीरों ने दुर्ग की दीवार के आसपास आग्नेयास्त्रों द्वारा दाव लगाने का प्रयत्न किया, किन्तु पृथ्वीराज के सामन्तों ने केवल गर्जना मात्र से ही अनंगपाल की उस हरावल (अग्रभाग की सेना) को हटा दिया। इस प्रकार चार दिन तक ऐसी युद्ध-क्रीड़ा करने पर भी जब तोंमर नृपति का गढ़ पर दाँव नहीं लगा तब उस पूज्य प्राणी (अनंगपाल) का तेज घट गया और उसने दिल्ली पर से अपने आक्रमण को ढीला कर दिया।

दोहा

अनँगपाल पंडिय गयौ, सैन सु बंधिय-थट्ट ।
अद्ध सेन अजमेर पर, टारिग सथ्थ[१] सुभट्ट ॥ ३८ ॥

प्रा० पा० १, भीं० ।

शब्दार्थ:—बंधिय-थट्ट=समूहबद्ध किया । टारिग=चुनकर विदा किये ।

अर्थ:—दिल्ली से घेरा हटा कर जब अनंगपाल पंडी-स्थान पर चला गया तब पृथ्वीराज ने सेना को समूह बद्ध किया और उसमें से आधी सेना और कुछ साथी सामंतों को चुनकर अजमेर की रक्षा के लिये विदा किया ।

बीर बसीठ सुमंत मिलि, स्वामि वचन सम काइ[२] ।
मतौ मंडि चहुआन कौ, माधौ भट्ट चलाइ ॥ ३९ ॥

प्रा० पा० १, दे० ।

शब्दार्थ:—सुमंत=मंत्री । काइ=काया । मतो=मंत्रणा । चलाइ=चलाया, भेजा ।

अर्थ:—जो वचन और काया से स्वामी के समान था ऐसे उस (अनंगपाल के) मंत्री वीर बसीठ और राजा अनंगपाल ने मिलकर चौहान के बारे में (विरोध की) मंत्रणा कर निश्चय किया एवं माधव भट्ट (वंदीजन) को (गोरीशाह की ओर) रवाना किया ।

माधौ भट्ट सु मुक्कल्यो, वर गज्जनै नरिंद ।
तूंअर अरु चहुआन के, धर बज्यौ बहुदंद ॥ ४० ॥

शब्दार्थ:—गज्जनै=गजनी के । धर=इस भूमि पर । बज्यौ=बजे, हुआ । दंद=द्वंद ।

अर्थ:—माधौ भट्ट को श्रेष्ठ गजनीश के पास भेजा । उसने जाकर कहा कि तोमर और चौहान नरेश के बीच में पृथ्वी के लिये युद्ध के वाद्य बजने लगे हैं ।

नीति राव खित्री सुबर, तूंअर तिहि परधान ।
गोरी दिसि नृप-अप्प-दिसि, भदे दियौ चहुआन ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ:—परधान=प्रधान मंत्री । गोरी-दिसि=गोरीशाह को । नृप-अप्प-दिसि=अपने राजा (अनंग-पाल) का ।

अर्थः—चतुर नीतिराव खत्री (तँवर नरेश के मंत्रियों में से था) ने भी अपने राजा (अनंगपाल) और चाहुवान राजा का सब भेद (हालात) गौरीशाह को लिख भेजा।

अनँगपाल मन्यौ[१] नहीं, बरजिय पंडि नरिंद।
तुम सु ध्रम्म मेछ्ह मिलन[२], रहै न एको बंध ॥ ४२ ॥

ग्रा० पा० १, पा०। २, दे०।

शब्दार्थः—बरजिय=मना किया। मेछ्ह=म्लेच्छों से। एकौ बंध=संगठित, एकता।

अर्थः—तब पंड़ि के राजा ने अनंगपाल को समझाया कि तुम्हारा धर्म नहीं है कि तुम मुसलमानों से मिलो, क्योंकि तुम्हारा यह संगठन नष्ट हो जायगा; किन्तु वह नहीं माना।

कवित्त

दई भूमि मा - पित्त, लई हम हत्थ पसारह।
सो पाओ फिरि[१] किमसु, बोल-बुल्लहु अविचारह ॥
तुम बिरद्ध तप जोग, राज चाहौ सु करन अब।
दयौ राज तुम हमह, कहा उपजी चित्तह तब ॥
मंगौ जु आइ फिरि भूमि तुम, सोबि राज पाओ नहीं।
जो गयौ जंत चलि गेह[२] जम, कहो सु फिरि आवै कहीं ॥ ४३ ॥

ग्रा. पा. १. का. पा। २ पा.।

शब्दार्थः—मा-पित्त=मातृ-पितृ, नाना। पाओ=पा सकते। फिरि=फिर, पुनः। बोल-बुल्लहु=वाक्य कहना। बिरद्ध=वृद्ध। दयौ=दिया। हमह=हमें, मुझे। कहा उपजी=क्या हो गया था। आइ=आकर। सोबि=वह, अब। जंत=जंतू, प्राणी। गेह=गृह। जम=यम।

अर्थः—फिर पृथ्वीराज ने भी यह (पंडा नृप द्वारा या दूत द्वारा) कहलाया कि हे मातृ-पितृ आपने मुझे पृथ्वी दी और मैंने हाथ पसार कर ली, उसे आप पुनः कैसे पा सकते हैं? आपकी बात विचार संगत नहीं है आप वृद्ध और तपस्या करने योग्य होते हुए भी अब राज्य करना चाहते हैं यदि आपकी यही इच्छा थी तो मुझे जब राज्य दिया तब आपके चित्त में क्या होगया था? आप आकर पृथ्वी की मांग कर रहे हैं, किन्तु अब आप राज्य नहीं पा सकते। आप ही सोचिये जो प्राणी यम-गृह में प्रविष्ट हो चुका हो क्या फिर वह कभी लौट कर आने का है?

जलद बूंद परि धरनि, कबहुँ न जावै न अभ्भ[1] फिरि[2]।
पवन तुट्टि तरु पत्र, तरु न लग्गै सु आइ थिरि[3]॥
तुटि तारक आकास, बहुरि आकास न जाऔ।
सिंघ उलंघि सब्ब जहँ[4], सोइ फुनि हन्नि न[5] खाऔ॥
अप्पिय सु पुहवि[6] तुम उदक सहु, सौ पाओ दूजै जनम।
तप्पौ सु जाइ बद्री तपह, मति[7] विचार राजस मनम॥ ४४॥

ग्रा० पा० १ से ३, ६, दे०। ४, ७, पा०। ५ सं०।

शब्दार्थः—अभ्भ=आभ, बादल। थिरि=स्थिर रूप। तारक=नक्षत्र। जाऔ=जाता। सिंघ=सिंह। उलंघि=लांघी हुई। सब्ब जहँ=सब्जी, घास, दूब। फुनि=फिर। हन्नि=हिरण। खाऔ=खाता। पुहवि=पुहमि, पृथ्वी। उदक=संकल्प के द्वारा। सहु=उसे। मति=मत, नहीं। राजस=राजा, ठाटबाट। मनम=मन में।

अर्थः— बादल से बूंदें पृथ्वी पर गिरकर पुनः कभी बादलों में नहीं मिलती, पवन द्वारा वृक्ष से टूटा पत्ता पुनः स्थिर रूप में आकर वृक्ष से नहीं लगता, व्योम से टूटा हुआ नक्षत्र पुनः व्योम में नहीं जाता और जिस सब्जी को (दूब या हरियाली को) सिंह लाँघ जाता है उसे हिरन नहीं खाता (जिस दूब पर सिंह के पाँव लग जाते हैं उसकी सुगंध से डरकर हिरन उसे नहीं खाता)। इसी प्रकार आपने जिस पृथ्वी को मुझे संकल्प द्वारा दे दी है। उसे आप पुनर्जन्म में हो पा सकेंगे। अतः आप पुनः बद्रिकाश्रम जाकर तपश्चर्या करिये। अब आप राजसी ठाटबाट का विचार मन में मत लाइये।

तुम गोरी पते साह, कहैं जिन मत भरमावहु।
सत्त ध्रम्म साहस्स, काइ पर कहैं गमावहु॥
सामंतनि सुलतान, बार बहु गहि गहि छंड्यौ।
उन अपत्ति कै सत्थ, सपति तुम मत्त सुमंड्यौ॥
जिम लगि जम्हें विधवा चरन, अप समान होअन[1] कहै।
मंगौ सु द्रव्य कारन सुध्रम, कछू[2] अप्प चित्तह चहै॥ ४५॥

ग्रा० पा० १, घ०। २, पा० का०।

शब्दार्थ:—कहैं जिन = उसके कहने में आकर। मत भरमावहु = मत भरमाओ, भुलावे में मत आओ। काइ=क्यों। पर कहैं=दूसरे के कहने पर। गमावहु=गँवाते हो, खाते हो। सामंतनि= सामन्तों ने। छंड्यौ=छोड़ा। अपत्ति=पति रहित, निर्लज्ज। सपति=पति सहित, लज्जावान। मत्त= मंत्रणा। जम्हैं=सौभाग्यवती (जम्हें शब्द राजस्थानी है, जो युवति का रूपान्तर है)।

अर्थ:—अतः आप गौरी शाह के भुलावे में मत आइये। दूसरों के कहने में आकर आप अपना सत्य, धर्म, और साहस क्यों गँवाते हैं। आप जानते हैं कि मेरे सामन्तों ने जिस सुलतान को कई बार पकड़ २ कर छोड़ दिया है, ऐसे निर्लज्ज के साथ आप लज्जावान होते हुए भी मंत्रणा कर रहे हैं, किन्तु ज्ञात रहे कि सौभाग्यवती स्त्री विधवा के चरण स्पर्श करती है, तो वह उसे अपने समान होने के लिये ही कहती है सौभाग्य विनष्ट होने का ही आशीर्वाद देती है। अतः आप उससे सम्पत्ति की आशा न करें। यदि आपकी सही इच्छा है तो धर्म कार्यार्थ इच्छानुसार द्रव्य मांग लीजियेगा।

अनँग पाल झुकि आप, दूत ढिंग हुँते साह जिह[१]।
तिनह[२] कह्यौ तुम जाइ, कहौ साहाब लिख्यौ[३] तिह[४]॥
दिए पत्र फुनि हत्थ, धरा दैंत न चहुवानह।
तुम आवहु चढि अतुर, कूंच पर कूंच मिलानह॥
मिलि अप्प अप्प[५] एकह सुमति[६], लरि सु लेहिं दिल्लीय धरा॥
तुम मंत छंडि तप बद्रि बर, अब सु पाँइ रुप्पें खरा॥ ४६॥

प्रा०पा०१, भीं०। २, ५, ६, पा०। ३ भीं०का०पा०। ४, सं०।

शब्दार्थ:—झुकि=झुक कर, नत मस्तक होकर। हुँते=थे। तिनह- कह्यो=उनसे कहा। साहाब= शहाबुद्दीन से। लिक्खोतिह=उसीने लिखा है। फुनि=पुनि। अतुर= आतुरता के साथ, शीघ्रता पूर्वक। अप्प-अप्प= अपने सहित, आप हम। एकह सु-मति=एक मत होकर। तुम मंत=तुम्हारी मंत्रणा पर ही। पाँइ=पाँव। खरा=खरे, दृढता के साथ।

अर्थ:—यह संदेश सुनकर अनंगपाल नत मस्तक हो गया और अपने पास आये हुए शाही दूतों से कहा कि जो कुछ पत्र में लिखा है- वह सत्य है। तुम शहाबुद्दीन से जाकर कह दो कि यह संदेश उसी (अनंगपाल) ने भेजा है फिर उस

(अनंगपाल) ने एक और पत्र लिखकर दूतों के हाथ में दिया, उसमें लिखा था कि चौहान मेरी पृथ्वी नहीं लौटाता है इसीलिये आप सजकर यथा स्थान ठहरते हुए शीघ्र ही आइये। आप हम परस्पर-मिलकर एक मत हो जांय और युद्ध करके दिल्ली के भू भाग को छीन लें; क्योंकि तुम्हारी मंत्रणा के कारण ही मैंने बद्रिकाश्रम की श्रेष्ठ तपश्चर्या छोड़ी है। अतः आप और हम दोनों दृढ पांवों पर डट जांय।

गए दूत गज्जनै, साहि सम बत्त बदैं बर।
तप सु छंडि तों बरह, आइ हरद्वार लियन धर[१] ॥
पुहवि[२] मंगि[३] प्रथिराज, राज अप्पै न इक्क तिल।
दैवादर चढि साहि. भुम्मि[४] पलिज्जै[५] सु उभय मिल ॥
सुनि साह घाव नीसान किय, चढ्यौ सैन चतुरंग सजि।
हय गय समूह साकति सकल, अनंगपाल साहस्स कजि ॥ ४७ ॥

ग्रा० पा० १ से ३, ६, दे०। ४, पा०। ५, पा० का० घ०।

शब्दार्थः—सम=सामने बदैं=कहे जाते। लियन=लेने के लिये। पुहवि=पृथ्वी अप्पै न=नहीं देता है। दैवादर=देवद्वार, हरिद्वार। घाव=चोट, डंका। साकति=साज बाज।

अर्थः—अनंगपाल के पास से लौटे हुए शाही दूत गजनी पहुँचे और उन्होंने शाह को शुभ बात की सूचना देते हुए कहा कि तँवर नरेश तपश्चर्या छोड़कर अपने भू-भाग को लेने के लिये हरिद्वार आगया है। उसने पृथ्वीराज से अपना भू-भाग लौटाने को कहा है, किन्तु वह एक तिलभर भूमि भी देने को तैयार नहीं है। इसीलिये आप देवद्वार (हरिद्वार) की ओर चढ़कर चलिये और दोनों नरेश मिलकर पृथ्वीराज से पृथ्वी ले लीजिये। यह सुनकर शहाबुद्दीन ने नक्कारे पर डंका बजवाया और चतुरंगिनी सेना सजाकर चढ़ चला उसने अनंगपाल के पराक्रम को प्रदर्शित करने के लिये ही अपने हाथी घोड़ों के समूह को सब साज-बाज से सुशोभित किया।

चढ़त साहि साहाब, चढ्यौ तत्तार खान बर।
खान खान खुरसान, खान माफरू महा भर ॥
कलिम खान कमाम, मीर नासेर अभंगह।
अलूखान आलील, चढिय हय गय चतुरंगह ॥

सथ सयन सकल सारद्ध लख, उभय सहस मत मत्त इभ ।
निस्सांन[१] बज्जि नौंबति निहसि, रहै गज्जि धर-पुर सु नभ ।। ४८ ।।

ग्रा० पा० १, दे० ।

शब्दार्थः—सारद्ध लख=सार धारी, एक लक्ष, एक लक्ष लोहाधारी । गज्जि=गर्जित, प्रतिध्वनित । धर-पुर=भू मंडल ।

अर्थः—शाह शहाबुद्दीन के चढ़ाई करने पर साथ में श्रेष्ठ तत्तारखांन, खानों में श्रेष्ठ खुरासानखां, महान योद्धा मारुफ खांन, कालिम खांन, कमाम मीर, अभंग वीर नासीर, अलूखांन, आलीलखां आदि तथा हाथी, घोड़े और चतुरगिनी सेना लेकर चढ़ चले, उस सम्पूर्ण सेना में एक लक्ष लोह-धारी और मद मस्त दो हजार हाथी थे । उस समय नक्कारे और नौबत के बजने से पृथ्वी और व्योम-मंडल प्रतिध्वनित हो गया ।

सिंध[१] उतरि सुरतान, कह्यौ सम खान ततारह ।
तुम अनगेसह लैंन, जाहु तहँ जहँ[२] हरिद्वारह ।।
सहस बीस लै सेन, अनँग सम मिलिय सोनपुर ।
बिलम करहु जिम बहुत, अभँग सजि आवहु आतुर ।।
करि नवनि खान तत्तार चलि, पहुँच्यौ हरद्वारह सहर ।
करि खबरि तब्ब अति प्रीत तन, मिल्यौ राज अनगेस बर ।। ४९ ।।

ग्रा० पा० १, पा० । २, सं० ।

शब्दार्थः—सम=से, साथ । अनगेसह=अनंगपाल को । लैंन=लेने को । नवनि=नवनि, वंदना । बिलम=विलम्ब । जिन=नहीं । सहर=शहर या-सिहर-शिखर, अथवा सु-धर । तब्ब=तब ।

अर्थः—सिन्धु को पार कर शाह ने तत्तारखां से कहा-तुम अनँगपाल को लेने के लिये हरिद्वार की ओर जाओ और अनंगपाल सहित आकर सोनपुर में मुझ से मिलो । हे वीर ! इसमें अधिक विलम्ब न कर तुम शीघ्र हो आना । यह सुन शाह को अभिवादन कर तत्तारखां चला गया और हरिद्वार पहुँचा । वहाँ अपनी सूचना दी तब हार्दिक प्रेम बताता हुआ राजा अनंगपाल उससे मिला ।

दोहा

तहँ तोअर अनगेस नृप, लए मोल बहु बाज ।
उभै सहस सेना सजित, रक्खि सुभर किय साज ॥ ५० ॥

शब्दार्थ:—लए=लिये, खरीदे । बाज=वाजि, घोड़े । सुभर=सामन्तों को । साज=सजाई ।

अर्थ:—तँवर-नरेश अनंगपाल ने बहुत से घोड़े मोल लिये और बहुत से सामन्तों को साथ लेकर दो सहस्र सुसज्जित सेना सहित युद्ध का उत्ताम साज सजाया ।

सत्त तीन भर सुभर जे, निज वैराग सरूप ।
तिन बंधी तरवारि[1] फिरि, बदलि भेख बहुरूप ॥ ५१ ॥

ग्रा. पा. १, का. ।

शब्दार्थ:—सत्त तीन=तीन सौ । निज=अपने (अनंगपाल के निजी) । सरूप=स्वरूप । भेख=भेष । बहुरूप=बहुरूपिया, स्वांग लाने वाला ।

अर्थ:—अनंगपाल के तीन सौ श्रेष्ठ सुभट सामन्त थे. जिन्होंने उसी के साथ वैराग्य धारण कर लिया था, उन्होंने फिर तलवार इस प्रकार बांधी मानों बहुरूपिये ने भेष बदला हो ।

कवित्त

मिलत खांन तत्तार, मत्त मत्तांत रत्ति वर[1] ।
दै निसान पहु फटित[2], चलै पुर - सोन उभै भर ॥
भए साह दल निकट, रक्खि जोजन जुग अंतर ।
दई खबरि सुरतान[3], चढ्यौ साहाब समं तर ॥
दस कोस अग्ग अनगेस कहुँ, मिल्यौ जाय साहाब हित[4] ।
बैठे सु उतरि अति प्रीति पर, मनहु उभै जन इक्क चित ॥ ५२ ॥

ग्रा. पा. १, ४, पा. । ३, का. ।

शब्दार्थ:—मत्त मत्तंत=मत मतांतर । रत्ति=लीन । पहु फटित=उषःकाल होते होते । पुर-सोन=सोनपुर । उभै भर=दोनों वीर (अनंगपाल और तत्तार) । जुग=युग, दो । समं=सामने, अगवानी को । तर=त्वर, शीघ्र ।

अर्थः—तत्तारखांन के मिलने पर अनंगपाल सलाह-मशविरा करने में लीन होगया। फिर (एकमत हो) वे दोनों वीर (तत्तार और अनंगपाल) उषाकाल में नक्कारे पर डंका देकर सौनपुर के लिये चले और जब शाही दल के निकट पहुँच गये तब दो योजन की दूरी पर ठहर कर शहाबुद्दीन को अनंगपाल के आने की सूचना दी गई जिसे पाकर शहाबुद्दीन शीघ्रता पूर्वक दस कोस आगे बढ़कर अनंगपाल से प्रेम के साथ मिला, फिर घोड़ों से उतर कर वे दोनों (अनंगपाल और गौरी शाह) अति प्रेम से इस प्रकार मिले मानों दोनों एक चित्त हों।

गाथा

झुकि किय घाइ[१] निसानं, चढि प्रंथिराज बाज साजेयं।
सब सामंत समेतं, दिय डेरा सु दोइ जोजनयं॥ ५३॥

प्रा० पा० १, भीं०।

शब्दार्थः—झुकि=टेढ़ा होकर। घाइ=वात्र, डंके का आघात। बाज–घोड़ा। साजेयं=सजाकर। समेतं=सहित।

अर्थः—इधर राजा ने भी युद्धार्थ नक्कारे पर डंका दिलवाया तथा घोड़े का सजाकर चढ़ चला और सामन्तों सहित दो योजन पर आकर डेरा डाला।

दोहा

दिख्खि दूत[१] गय साहि ढिग, कही खब्बरि प्रथिराज।
चढ्यौ सूर संभरि[२] धनी, हय गय दल बल साज॥ ५४॥

शब्दार्थः—सँभरि धनी=सम्भर पति। बल=शक्ति।

अर्थः—पृथ्वीराज को सज्जित देखकर दूत शाह के पास पहुँचे और यह सूचना दी कि वीर संभरि पति (पृथ्वीराज) हाथी घोड़े और सैन्य-शक्ति को संगठित कर युद्धार्थ चढ़ आया है।

सामत सूर समस्त बर, भय संसार बिरत्त।
स्वामि ध्रम्म साधन सुबर, मरन ज़रन मन मत्त॥ ५५॥

शब्दार्थः—सामत=सामन्त। बिरत्त=विरक्त। सुबर=सबल। रत्त=लीन, तत्पर।

अर्थः—साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि उसके समस्त श्रेष्ठ वीर सामन्त संसार से विरक्त होगये हैं और वे स्वामि-धर्म का पालन करने के लिये लड़ मरने तक को तत्पर हैं।

चर सु दिक्खि[१] चहुवांन के, साह खबरि कहि राज[२]।
सुनत राज प्रथिराज बर, चल्यौ जुद्ध कज्ज साज ॥ ५६ ॥

ग्रा० पा० १ पा०, भीं०। २ पा०, भीं०, का०।

शब्दार्थः—दिक्खि=देख भाल करके, हालात जानकर। खबरि=खबर, सूचना। कज्ज=लिये।

अर्थः—इधर पृथ्वीराज के दूतों ने भी शाही दल की देख-भाल कर (हालात जानकर) राजा को सूचना दी, जिसे सुनकर राजा पृथ्वीराज युद्धार्थ तय्यार होकर आगे बढ़ा।

सजि आयौ चहुआन जुध, सुन्यो श्रवन पति साह[१]।
हुकम खांन उमरान हुअ, सजौ सु[२] अंग सनाह[३] ॥ ५७ ॥

ग्रा० पा० १, ३ पा० का० घ०। २ पा० घ०।

शब्दार्थः—जुध=युद्ध। पतिसाह=पातशाह। उमरान=उमरावों को। अंग=शरीर पर। सनाह=कवच।

अर्थः—पृथ्वीराज युद्ध के लिये सजकर आगया है-यह सुनकर शाह ने उमरावों और खानों को शरीर पर कवच धारण करने का आदेश दिया।

गाथा

मुक्ख सु रिक्खि तत्तारं, बांई दिसा खांन मारूफं।
दाहिन खां-खुरसानं, मध्धि अनगेस पुट्ठि साहावं ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—मुक्ख सु=अग्रभाग पर। रिक्खि=रखकर। दाहिन=दाहिने पार्श्व पर। मध्धि=मध्यमें। अनगेस=अनंगपाल को। पुट्ठि=पृष्ठ भाग में।

अर्थः—सेना के अग्र भाग पर तत्तार को, वाम पार्श्व पर मारूफ खां को, दाहिने पार्श्व पर खुरासान खां को, और मध्य भाग में अनंगपाल को रखकर शहाबुद्दीन पृष्ठ भाग में नियुक्त हुआ। R C L

सजि ठट्ठौ सुलतानं, सुनि चहुआन अप्प व्यूहानं ।
मुख किन्नौ[१] कैमासं, चावंडराइ पुच्छ सज्जायं ॥ ५६ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—ठट्ठौ=डटा । अप्प=सर्प । व्यूहानं=व्यूह । सज्जायं=सजा ।

अर्थः—शाह की व्यूह रचना सुनकर पृथ्वीराज ने भी अपनी सेना की सर्प-व्यूहाकार रचना की, जिसमें मुख के स्थान पर कैमास और पूंछ के स्थान पर चावंडराय को नियुक्त किया ।

दोहा

मध्धि फौज प्रथिराज रचि, कह्यौ सु कर करि उंच ।
अनंग राज जीवत गहौ, इह सु रचौ परपंच ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—मद्धि=मध्य भाग । कर=हाथ । करि उंच=उठाकर । इह=ऐसा । परपंच=प्रपंच ।

अर्थः—पश्चात् मध्य भाग (सर्प के अंग के स्थान पर) में स्वयं पृथ्वीराज नियुक्त हुआ और हाथ को उठाकर बोला-ऐसा प्रपंच रचो कि राजा अनंगपाल जीवित ही पकड़ा जाय ।

जिन सु हनौ अनगेस जिय, गहौं सु जीवित साह ।
इते दुदल दिट्ठाल भय, लई बग्ग कैमाह[१] ॥ ६१ ॥

ग्रा० पा० १ सं० ।

शब्दार्थः—जिन=नहीं । हनौ=मारो । जिय=इसे । दुदल=दोनों दलों की । दिट्ठाल भय=आमने सामने दिखाई दिये, दृष्टि मिली । लई=ली, पकड़ी, उठाई । बग्ग=बाग, लगाम, रास । कैमाह=कयमास मंत्री ।

अर्थः—अनंगपाल नहीं मारा जाय और शाह को जीवित ही पकड़ लिया जाय ऐसी आज्ञा राजा ने सामन्तों को दी । उसी समय दोनों की दृष्टि मिली और कैमास ने घोड़े की रास उठाई ।

बिहूँ दल सिंधू बजै, उपजत सूर उहास ।
खयौहनि परि नंख्यौ खयंग, करि किलकी[१] कैमास ॥ ६२ ॥

ग्रा० पा० १, का० घ० ।

शब्दार्थः–बीहूँ=विय, दोनों। उहास=उच्चहास, उत्साह। ख्यौहनि=अक्षौहिणी सेना। परि=पर। नंख्यौ-खयंग=घोड़े को बढ़ाया।

अर्थः—दोनों ओर के सैन्य दल में सिंधु राग के बाजे बजने लगे, जिससे बीरों के हृदय में उत्साह उत्पन्न हो गया, उसी समय शत्रु की अक्षौहिणी सेना की ओर लल-कार कर कैमास ने घोड़ा बढ़ाकर आक्रमण किया।

कवित्त

बंधि साहि साहाब, लियौ चावंडराय बर।
हय कंधह लै डारि, गयौ निज सेंन सथ्थ नर॥
नीर उतरि पति-असुर, खेत ढुंढ्यौ प्रथिराजं।
मुसलमान सत सहस, परे सामथ करि काजं॥
पंच सै सुभर हिंदू सु परि, उभै सत्त झौरी सजिग[1]।
जित्यौ सु राज सोमेस सुअ, घने जैत बज्जै बजिग॥ ६३॥

प्रा० पा० १, सं०।

शब्दार्थः–बंधि=बांधकर। हय-कंधह=घोड़े के कंधे पर। सथ्थ=साथ में। नीर=नूर। उतरि=उतर गया। पति-असुर=मुसलमानों के स्वामी का। ढुंढ्यौ=खोजा, निरीक्षण किया। परे=धराशायी हुए। सामथ=सामर्थ्य का। उभै-सत्त=दो सौ। झौरी=झोलियें। सजिग=सजाई, बनाई। घने=बहुत से। जैत बज्जे=विजय के बाजे। बजिग=बजे।

अर्थः—शाह शहाबुद्दीन को वीर श्रेष्ठ चावंडराय ने बांधकर अपने घोड़े के कंधे पर डाल लिया और अपनी सेना सहित युद्ध भूमि से चल पड़ा। जिससे शहाबुद्दीन का नूर उतर गया। पृथ्वीराज ने रणक्षेत्र का निरीक्षण किया तो सात हजार मुसल-मान और पांच सौ हिन्दू वीर सामर्थ्य का कार्य कर धराशायी हुए। साथ ही दो सौ योद्धाओं को घायलावस्था में झोलियाँ बनाकर उठाया गया। इस प्रकार सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज ने विजय प्राप्त की, जिससे बहुत से विजय वाद्य बजने लगे।

मुसलमान धर गड्डि, दाग निज सुभर दिवायौ।
लियें-जीति प्रथिराज, समह सामँत घर आयौ॥

सभा बैठि भर सुभर, कहयौ कैमास राइ गुर ।
अनगेसह लै आउ, चल्यौ मंत्री सुलेन घर ।।
आन्यौ सु राज अनगेस तहँ, प्रथीराज लग्गौ सु पय ।
सनमान प्रान अति प्रीति सों, भाव भगति[१] राजन करय ।। ६४ ।।
ग्रा. पा. १, पा. का. ।

शब्दार्थ:—गड्डि=गाड़े, दफनाये । दाग=दाह किया । लियें-जीति=विजय लक्ष्मी को साथ में लिये । समह=सहित । राइ गुर=राजाओं का गुरु स्वरूपी पृथ्वीराज । लेन-घर=राज महल में लाने को । लग्गौ=स्पर्श किये । पय=पैर । प्रान=आत्मा । करय=की (प्रदर्शित की) ।

अर्थ:—मृत मुसलमानों को दफनाया गया और हिन्दू-वीरों की दाह क्रिया की गई । पश्चात् विजय लक्ष्मी को साथ में ले सामन्तों-सहित पृथ्वीराज घर (दिल्ली) आया और सामन्तों सहित सभा गृह में बैठ गया । उसके बाद राजाओं के गुरु स्वरूपी पृथ्वीराज ने कैमास को कहा :— अनंगपाल को हमारे सामने ले आओ यह सुन मंत्री उन्हें राज गृह में लाने के लिये गया और अनंगपाल को वहां लेआया । तब पृथ्वीराज ने अनंगपाल के चरण स्पर्श किये और विशेष प्रेम-पूर्वक हृदय से उन्हें सम्मानित कर भक्ति-भाव प्रदर्शित किया ।

दियौ हुकम दाहिम्म, ल्याउ दीवान साह कहु ।
सब दिक्खै[१] सामंत, सुक्कि[२] आनन अपत्ति बहु ।।
आन्यौ साहि हजूर, मिल्यौ प्रथिराज राज बर ।
बैठि साह साहाब, मुक्ख देखें सुब्भर भर ।।
बौल्यौ जु राज प्रथिराज तब[४], अनंग राइ तुम अति सुमति ।
भरमौ सु केम कहै[५] साहिके, इह तौ पति—उत्तरि अपति ।। ६५ ।।
ग्रा० पा० १, ३, ४ पा० । २ पा० का० । ५ का० घ० ।

शब्दार्थ:—दीवान=सभा में । दिक्खै=देखें । सुक्कि=सूखे हुए । अपत्ति=निर्लज्ज । हजूर=सेवामें । साह साहाब=शाह शहाबुद्दीन । भरमौ=बहकावे में आते । केम=कैसे । पति—उत्तरि=उत्तर दिशा (गजनी) का स्वामी, या इसकी लज्जा तो नष्ट प्रायः है । अपति=निर्लज्ज या कु शासक ।

अर्थः—फिर दाहिमे (कैमास) को आज्ञा दी कि सभा में बादशाह को लाया जाय, ताकि उस निर्लज्ज के सूखे हुए मुख को सामन्तादि सब देख लें। यह राजाज्ञा पातेही कैमास उस (शाह) को सेवामें ले आया। तब श्रेष्ठ राजा पृथ्वीराज उससे मिला और शहाबुद्दीन को भी सभा में बिठाया गया। सब बहादुर सामन्त शहाबुद्दीन के मुख की ओर देखने लगे। राजा पृथ्वीराज, अनंगपाल से कहने लगा — कि आप बुद्धिमान होकर भी शाह की सिखावट में कैसे आगये? यह उत्तर दिशा (गजनी) का स्वामी तो निर्लज्ज है (या इस कु शासक की लज्जा तो नष्ट हो गई है)।

दोहा

कहै ग॰ज प्रथिराज गुर, सुभर बुल्लि॰ बर अग्ग।
अनँग सीस उंच न करै, नाग - दमनि सिर नग्ग ॥ ६६ ॥

ग्रा. पा. १, पा.।

शब्दार्थः—गुर=गुरु वाक्य। बुल्लि=बुलाकर। अग्ग=सामने। उंच=ऊँचा। नाग-दमनि=नाग दमनी एक पौधा, या हाथियों का दमन करने वाला। नग्ग=नम गया।

अर्थः— उपर्युक्त गुरु-वाक्य (बड़प्पन का कथन) राजा पृथ्वीराज ने सामन्तों के सामने अनंगपाल को कहे, जिससे अनंगपाल का सिर इस प्रकार ऊँचा नहीं हुआ, जिस प्रकार नाग दमन के पौधे का सिर ऊपर नहीं उठता (या जो अनंगपाल युद्ध भूमि में हाथियों का दमन करने वाला था, उसका मस्तक दान देकर पलटने से नीचा हो गया)।

कवित्त

कहै गज्जि गहिलौत, कहूँ सामंत सुनौ सहु।
अप्प अनी एकंग, असुर-सुरतानि बही कहुँ ॥
समुद सजल जल खार, ससी लग्गौ सु कलंकह।
सूर गिलै रस राह, पथ्थ लुट्टाइ गोप बह ॥
दशरथ्थ श्राप काक सु विक्रम, दइ दिवान विपरीत गति।
पति साह कही सुन तें सकल, अनंगपाल नट्ठी सुमति ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—गज्जि=गर्जना करता हुआ। गहिलोत=गोविन्दराय, गुहिलोत। सहु=समस्त। अनी=सेना। एकंग=एकमत। असुर-सुरतानी=मुसलमानों का बादशाह। वही=विचलित कर दी, भगादी। कहुँ=कभी। रस-राह=रसराशि। दिवान=देव प्रदत्त। तें=उसने। नट्ठी=नष्ट हुई।

अर्थः—तब गर्ज कर गुहिलौत वीर (गोविन्दराय) बोला–हे सामन्तों सुनो ! अपनी सेना संगठित है। क्या कभी हमारी सेना को मुसलमानों के स्वामी (गौरी) ने विचलित किया है ? समुद्र सजल होते हुए भी क्षारत्व का अवगुण उसमें निहित है, उज्ज्वल शशि, कलंक के धब्बे से दूषित है, देदिप्यमान सूर्य इस राशि को खींचता है, उसके पीछे राहु लगा हुआ है। अर्जुन के उज्ज्वल यश का नाशक बहुत सी गोपियों का लूटा जाना है–वचन का पालन करने वाला दशरथ (अंधे-द्विज के) श्राप के कारण कलुषित है और प्रसिद्ध नरेश विक्रम पर कौए के भक्षण का लाञ्छन है, इस प्रकार बुद्धि में जो कलुषितपन आता है, वह तो देवों द्वारा प्रदत्त ही है। इसी तरह बादशाह ने अनंगपाल से जो कहा उसे इन्होंने सुना और इसी के कारण इनकी सुमति भी नष्ट हुई (अतः अनंगपाल निर्दोष है)।

दोहा

बदै राइ चावंड बर, इह अवस्थ हुइ[१] अंग।
जब सु मानसर तजि करै, हंस काग कौ संग ॥ ६८ ॥

ग्रा० पा० १ दे०।

शब्दार्थः–बदै=बोला। अवस्थ=अवस्था।

अर्थः—वीर श्रेष्ठ चावंडराय बोला, जब शरीर की ऐसी अवस्था (सत्य का त्याग और असत्य की लालसा) हो जाती है तो समझना चाहिये कि हँस ने मान सरोवर का संयोग छोड़कर कौवे से नाता जोड़ा है।

जिते वचन सामत कहे, तिते सहे अनगीस।
खील चील्ह सम सुनि रह्यौ, उठ्यौ न ऊरध सीस ॥ ६९ ॥

शब्दार्थः–खील=मंत्र द्वारा कीलित। चील्ह=चिल्ह जाति की डाइनी।

अर्थः—जो वचन सामन्तों ने कहे उन सबको अनंगपाल ने इस प्रकार नत मस्तक होकर सुना और सहन किया जैसे मंत्र द्वारा कीलित चिल्ह जाति की डाइनी नम्र होकर सब कुछ सुनती रहती है।

भाव भगति प्रथिराज नै, किन्नी[१] अति महिमान।
इक्क बाज सिर पाव दै, छंडि दियौ सुरतान ॥ ७० ॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—किन्नी=की। महिमान=मेहमानी, आतिथ्य। इक्क=एक। बाज=घोड़ा।

अर्थः—सद्भाव के साथ पृथ्वीराज ने शाह की महमानदारी की। फिर एक घोड़ा और शिरोपाव देकर उसे छोड़ दिया।

कवित्त

छंडि[1] दियौ सुरतान, डंड कब्बूल कियौ सिर।
बीस हस्ति सत बाज, उंच जाति गातह बर॥
उभै लख्ख बर द्रब्ब[2], दियौ साहाब सु दंडं।
सो प्रथिराज नरिंद, अद्ध दीनौ चामंडं॥
अथ दंड सव्व सामंत कहुँ, बंटि-दियौ चहुआन बर।
दै दंड खत्त नर बर सुभर, प्रथीराज छीवै न कर॥ ७१॥

ग्रा० पा० १ का० पा०। २ का० भीं०।

शब्दार्थः—सत=सौ। बाज=वाजी, घोड़े। उभै लख्ख=दो लक्ष। द्रब्ब=द्रव्य। बंटि-दियौ=बांट दिया। खत्त=क्षत्रिय। नर बर=नरपुंगव। छीवै=छूया।

अर्थः—छोड़ते समय शाह से दंड लेना स्वीकार किया। जिसमें उत्तुंग काय पर्वताकृति बीस हाथी और श्रेष्ठ सौ घोड़े एवं दो लक्ष का द्रव्य लेना निश्चित हुआ। शहाबुद्दीन ने चाहुवान राजा को यह दिया। उसमें से आधा चामंडराय को और आधा सब सामन्तों को बांट दिया गया। नरपुंगव श्रेष्ठ क्षत्रिय बहादुर राजा पृथ्वीराज ने इस प्रकार शत्रु को दण्डित किया; किन्तु उसने दण्ड से प्राप्त द्रव्य को हाथ से नहीं छुआ।

दोहा

मेछ[1] बंधि चहुआन ने, लए[2] हयगय भार।
फिरि प्रसन्न प्रथिराज किय, ढिल्ली-कोटह बार॥ ७२॥

ग्रा० पा० १, पा० का०। २ पा०।

शब्दार्थः—बंधि=बांधकर। लए=लिये। भार=भारी, बड़े २। ढिल्ली-कोटह बार=दिल्ली नगर के कोटे से जिन्हें बाहर कर दिये थे, उन्हें।

अर्थः—इस प्रकार शाह को बांधकर राजा पृथ्वीराज ने बड़े २ हाथी, घोड़े आदि दण्ड स्वरूप लिये और जिन विरोधियों को दिल्ली नगर के परकोटे से बाहर कर दिया था उन सब को राजा ने पुनः प्रसन्न किया।

बरख एक पच्छै त्रपति, तब लगि भर सबलान।
सभी हयगय दल सजे, चतुरंगी चहुआन ॥ ७३ ॥

शब्दार्थः—बरख=वर्ष। पच्छै=पीछे, व्यतीत होने पर। सबलान=सबल।

अर्थः—जब एक वर्ष बीत गया तब चाहुआन राजा पृथ्वीराज और उसके सबल सामन्तों ने हाथी और घोड़ों सहित चतुरंगिनी सेना को अजमेर लौट जाने के लिये पुनः सजाया (अनंगपाल को संतुष्ट करने के लिये दिल्ली राज्य का परित्याग करने के लिये तत्पर हुआ)

कवित्त

मिल्यौ राव पज्जून, मिल्यो मोरी महनंसिय।
मिले राव पुंडीर, गए दुज्जन बल नंसिय॥
मिले निडर रठ्योर, मिले गोइँद गहिलौतं।
मिलि खीची परसंग[1], जाम जद्दों पहिलौतं॥
आरंभ राव कनक्क मिल्यौ, रघुबंसी हय-जार-ही।
कविचंद मिल्यौ जो बंद को[2], नाम-सु-मट्ठा[3]-भार-ही ॥ ७४ ॥

ग्रा० पा०[1], भीं०। २, पा०। ३. भीं० का०।

शब्दार्थः—महनंसिय=महनसी। गए=भाग गये। दुज्जन=दुर्जन। नंसिय=नाश। रठ्यौर=राठोड़। पहिलौतं=पहला वार करने वाला, या प्रमुख। आरंभ-राव=युद्धारंभ करने वाला हय-जार-ही=जार पुरुषों का नाश कर्ता, लंपटों का नाशक। बंद को=बांधने वाला, छन्द बद्ध करने वाला। नाम-सु-मट्ठा-भार-ही=बड़े२ सुभटों के नाम (यश) को।

अर्थः—यह सुन कर पज्जूनराय, महनसीमोरी, दुर्जनों के बल को नष्ट कर उन्हें भगाने वाला पुंडीरराय, निड्डुरराय राठौड़, गोविन्दराय गुहिलौत, प्रसंगराय खींची, युद्ध में प्रथम वार करने वाला (या प्रमुख वीर) जामराय यादव, युद्धारंभ करने वाला कनकराय बड़गुज्जर, लंपट पुरुषों का नाशक रघुवंशी रामराय और

बड़े २ सुभटों के नामों को (यश को) छन्द बद्ध करने वाले कविचंद आदि वहाँ आकर मिले।

दोहा

अनँगपाल तिन पावि ग्रहि[1], अरु बर बंधव साल।
वृद्ध जोग वपु जोग धरि, चंपि जरा अरि काल ॥ ७५॥

ग्रा. पा १, पा.।

शब्दार्थ:—पावि=पांय, पांव, चरण। ग्रहि=ग्रहण किये, छुये। बंधव=कुटुम्ब। बंधव-साल=गृह बंधु, सगोत्रीय (भाइयों की कोटडियों वाले)।

अर्थ:— उन्होंने और अनंगपाल के निकट बंधुओं ने आकर अनंगपाल के चरण छुए और कहा, हे राजन ! आपका शरीर वृद्ध होगया है इसलिये योग को पुनः प्रारम्भ कर शत्रु-रूपी जरा और काल को दवा दीजिये।

युग्गिनपुर[1] प्रथिराज कौ, देव दियौ दिन वित्त।
मोह बंध बंधन तजै, ध्रम-क्रम किज्जै[2] चित्त ॥ ७६॥

ग्रा. पा. १, २, पा.।

शब्दार्थ:—युग्गिनपुर=योगिनीपुर, दिल्ली नगर। दिन वित्त=दिन बीत गये, अंतिम अवस्था हो गई। ध्रम-क्रम=धर्म कर्म।

अर्थ: हे देव अनंगपाल ! आपने दिल्ली पृथ्वीराज को दे ही दी है, अब आपकी अंतिम अवस्था है, अतः आप इस मोह रूपी बंधन के फंदे को छोड़ धर्म कर्म को चित्त में स्थान दीजिये।

कवित्त

न रहै सर वापीय, अनुप गढ मँडप बहुज्जं।
न रहै धन बन तरुनि. कूप प्रब्बत फिरि-छज्जं ॥
न रहै ससि रवि भौम, जाइ थावर अरु जंगम।
न रहै सत्त[1] समंद, धरै भंजय सोइ अंगम ॥
जानहु न प्रलै चतुरंग तम, प्रलै इहै सो दिक्खियै।
राखौ न चिंत आचिंत का, जाम-न[2] मर-न विसिक्खियै ॥ ७७ ॥

ग्रा० पा० १, का० पा० घ०। २ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—तरुनि=तरुणी । प्रब्बत=पर्वत । फिरि-छज्जं=बिगड़ते बनते । धरै=धारण किया हुआ । भंजन=नष्ट होता । अंगम=शरीर । न-प्रलै=प्रलय रहित, नश्वर । जाम-न= जनमता नहीं । मर-न= मरता नहीं । त्रिसिख्खियै=सीख लो, मानलो ।

अर्थः—सर, वापिका, अनुपमगढ़, बहुत से मण्डप, धन, बन, तरुणी, कूप, पर्वत, शशि, रवि, भूमि, स्थावर जंगम, सप्त सागर और धारण किया हुआ शरीर बनकर बिगड़ता है, ये सब स्थाई रहने के नहीं हैं। चतुरंगिनी सेना को नहीं मानते हैं, किन्तु उसका नाश भी आपने प्रत्यक्ष देख ही लिया है। अतः अचिंतनीय वस्तुओं का अब आपको चिन्तन नहीं करना चाहिये और यह मान लेना चाहिये कि न कोई जन्म लेता है और न कोई मरता ही है।

फुनि[१] बरज्यौ नृप त्रीय, जीय तिय तीय उतारिय ।
तज्जिय मान घर वार, पुच्छ्यौ व्यास हँकारिय ॥
चाहुआन अरि भज्जि, होइ धर अनँग नरेसं ।
पंच नदी करि अद्ध, वंटि अप्पै अध देसं ॥
तुम कहौ जोति जग जोति बिप, इह अपुब्ब कथ मंडिकै ।
कै ग्रहौ पंथ बद्री सरन, धरा काम कलि छंडिकै ॥ ७८ ॥

ग्रा० पा० १, का० भीं० ।

शब्दार्थः—फुनि=पुनः, फिर । बरज्यौ=निषेध किया । तिय=त्रे । तीय=तीनों (तृतीय)। उतारिय=हटा दिये । मान=अभिमान । घर वार=गार्हस्थ्य जीवन, गृह । हँकारिय=बुलाकर । पंच नदी=पांचाल, पंजाब । अध=आधा । जोति=जोने वाले, जानने वाले । बिप=विप्र । काम= कामना, इच्छा, मोह, ममत्व । कलि=निश्चय ।

अर्थः—फिर राजा (अनंगपाल) की स्त्री ने भी निषेध किया कि आप हृदय से तीनों बातों को (त्रिताप) हटाकर अभिमान का त्याग कीजिये और गृह को छोड़ दीजिये। उसने व्यास को बुलाकर पूछा और कहा—चौहान पृथ्वीराज ने ही शत्रु का नाश किया है और मेरी पृथ्वी का राजा बनने योग्य है अतः तुम कहो तो पंजाब एवं दिल्ली के भू भाग को आधा २ बांट कर हम दोनों अलग २ राजा बन कर रहें। हे जग ज्योति विप्र! तुम सभी बातों को जानने वाले हो। अतः इस अपूर्व कथन को

समझ कर मुझ से कहो, यदि तुम कहो तो यह सब पृथ्वी के ममत्व वाली बातें छोड़कर मैं पुनः मन की राह लूं और बद्रीकेश की शरण ग्रहण करूं।

कहै व्यास अनगेस, तपै ढिल्ली चहुआनं।
बहु बर बल छज्जि है, बंध मोखन सुलतानं॥
तुम बद्री तप जाहु, धरा संदे न आनहु।
इह न्रिम्मान प्रमान, पुब्ब संबंधन जानहु॥
न्रिम्मलौ ध्यान गुर ग्यान करि, हरि भजि न्रिम्मल होइये[1]।
नन करौ चित्त दुविधा न्रपति, अत्त पुस्तन खोइये[2]॥७९॥
ग्रा. पा. १, २, पा.।

शब्दार्थः—बहु बर=अनेक बार। बल छज्जि है=शक्ति का संगठन करेगा। बंध=बांधेगा, पकड़ेगा। मोखन=छोड़ेगा। पुब्ब=पूर्व जन्म। अत्त=अर्थ। पुस्तन=पुरातन, सदा से माने जाने वाला।

अर्थः—तब व्यास ने कहा:—हे राजन अनँगपाल! दिल्ली पर पृथ्वीराज ही तपेगा और अनेक बार शक्ति का संगठन करके वह शाह को पकड़ २ कर छोड़ेगा। तुम अपनी अच्छाई-बुराई की शंका छोड़ कर बद्रिकाश्रम तपस्या करने के लिये चले जाओ, क्योंकि इस निर्माण (भविष्य) का सम्बन्ध पूर्व-जन्म से ही निश्चित है। इसलिये निर्मल गुरु-ज्ञान का ध्यान कर हरि भजन करने में अपने आपको निर्मल करने लग जाइये। अतः तुम अपने चित्त को द्विधा के वश न करो और सदा से माने जाने वाले वास्तविक अर्थ (ईश प्राप्ति) को न खोओ।

न लहै मंग्यौ[1] देस, बेस फुनि[2] मंग्यौ[3] न लहै।
न लहै संग्यौ मान-पान फुनि मग्यौ[4] न लहै॥
न लहै धन मंगत्त, गत्त फुनि रूप बिनानं।
पुब्ब निबंध्यौ बंध, लहै सोई परिमानं॥
तुम जान ग्यान मतिमान गुर, नेह न लब्भै जोर बरि[5]।
आतम्म चित्त[6] अन-चिंत तजि, इहै मत्त तुम सत्त करि॥ ८०॥
ग्रा० पा० १ से ४ पा०। ५ सं०। ६ पा० का०।

शब्दार्थः—न लहै=नहीं मिलता। मंग्यौं=मांगने पर। मान-पान=सम्मान। मंगत्त=मांगने पर। गत्त=विनष्ट। फुनि=पुनः (प्राप्ति)। बिनान=ज्ञान। जोर बरि=जोरावरी, जबरदस्ती, बिना प्रयत्न किये। चिंत=चिन्तन। अन-चिंत=अन्य चिंतन।

अर्थः—मांगने पर देश-वेश, मान-पान (सम्मान), धन और ज्ञान विनष्ट होने पर पुनः नहीं मिलता। पूर्व कर्मों द्वारा निर्मित फल की ही प्राप्ति होनी निश्चित है। तुम ज्ञान के जानने वाले और महामति हो। आप स्वयं सोचलें कि कहीं बिना प्रयत्न किये श्रेष्ठ स्नेह (ईश्वर प्रेम) की प्राप्ति हो सकती है? अन्य चिंताओं को छोड़ कर आप आत्म-चिंतन करिये और इसी मन्त्रणा को आप सत्य सलाह मानिये।

अनँग राइ अति सेव, करे प्रथिराज राज अति।
मास एक वृख बित्त, बहुरि उपजी सु राज मति॥
कह्यौ पुत्रि-सुत समह, मोहिं मुक्कलि बद्री दिसि।
तहां तपु[१] साधन करौं, धरौं हरिध्यान अहो निसि॥
बुल्लयौ[२] सु राज चहुआन बर, रहौ इहां साधन करौ।
तप तुला-दान ध्रम्मह[३] बिबिध, ग्यान ध्यान[४] हिरदै धरौ॥ ८१॥

ग्रा० पा० १ पा० घ०। २, ३ पा०। ४ भों।

शब्दार्थः—सेव=सेवा। अति=इधर। वृख=वर्ष। वित्त=व्यतीत हुआ। पुत्रि-सुत=पुत्री का पुत्र पृथ्वीराज। समह=से। मुक्कलि=पहुँचादे, लौटादे। ध्रम्मह=धर्म कर्म।

अर्थः—इधर राजा पृथ्वीराज अनंगपाल की अधिक सेवा करता रहा। जब एक वर्ष और एक महिना व्यतीत हुआ तब पुनः राजा अनंगपाल को ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने पृथ्वीराज से कहा– मुझे पुनः बद्रिकाश्रम भेजदो ताकि मैं तपस्या का समारंभ करूँ और रात दिन हरि का ध्यान धरूँ। पृथ्वीराज ने कहा– आप यहीं रहकर साधन करते रहिये। तपस्या और तुलादानादि विविध धर्म कर्म कीजिये। हरि का ध्यान हृदय में धारण करिये।

कही सुत्त सोमेस, राज अनगेस न मानी।
बपु साधन तप काज, बद्रि दिसि मनछा[१] ठानी॥
तब पुत्री बर पुत्र, लक्खव इह द्रव्य सु अप्पौ।

सत अनुचरं इक जांन, बिप्र दस एक समप्पौ ॥
चल्ल्यौ अनंग बद्री सरन, पहुचायौ प्रथिराज नृप ।
तहँ जाइ राज तोंवर सु-वर, तपै राज उग्रह सु तप ॥ ८१ ॥

ग्रा० पा० १ का० पा० ।

शब्दार्थः—वपु=शरीर। मनछा=मनसा, इच्छा। लख्ख दह=दस लक्ष। अप्पौ=अर्पित किया, भेंट किया। जांन=यान, रथ। दस एक=ग्यारह। उग्रह=उग्र।

अर्थः—इस प्रकार पृथ्वीराज ने कहा-किन्तु अनंगपाल ने नहीं माना, और शरीर से तपस्या का साधन करने के लिये बद्रिकाश्रम की ओर जाने की इच्छा की, तब पृथ्वीराज ने धर्म कर्मादिकों के लिये दस लक्ष का द्रव्य दिया और सौ सेवक, एक रथ, ग्यारह विप्र साथ में दिये तथा बद्रिकाश्रम को सकुशल पहुँचाया गया। श्रेष्ठ राजा अनँगपाल ने वहाँ जाकर बद्रीकेश की शरण गृहण की और उग्र तपस्या प्रारम्भ की।

धनी सु चित्त[1] प्रथीराज, करुन रस अप्प[2] उपन्नौ ।
द्रब्ब दरक सत अद्ध, पुन्य कारज[3] भरि-दिन्नौ ॥
सबै सुभर अनगान, आनि आदर गृह बासिय ।
धनि धनि जंपै लोई, कित्ति भूमंडल भासिय ॥
आखेट दुष्ट दुज्जन दलन, करै केलि सामंत सथ ।
कवि चंद छंद-बंधिय कवित्त, पथ्थ राज[4] भारथ्थ कथ ॥ ८२ ॥

ग्र० पा० १, ३, ४, भीं। २ पा०।

शब्दार्थः—अप्प=आप, स्वयम्। उपन्नौ=उत्पन्न हुआ। द्रब्ब=द्रव्य। दरक=उष्ट्र। सत-अद्ध=पचास। भरि-दिन्नौ=दिला दिया। अनगान=अनंगपाल के। लोइ=लोग। कित्ति=कीर्ति। छंद-बंधिय=छंद बद्ध किया। पथ्थ=पार्थ, अर्जुन। भारथ्थ-कथ=महाभारत में वर्णित।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज धन्य है, नाना की विदाई से उसके चित्त में करुण रस उत्पन्न हो गया। उसने पुण्य-कार्य के लिये पचास उष्ट्र द्रव्य से लादकर अनंगपाल के साथ कर दिये और अनंगपाल के जितने आश्रित वीर थे उन सब को पुनः सम्मान

पूर्वक लाकर उनके निवास स्थानों पर बसाया। जिससे उसको सब कोई धन्य २ कहने लगे और उसकी कीर्ति सारे भूमण्डल पर छागई। वह (पृथ्वीराज) सामंतों के साथ आखेट और दुष्ट शत्रुओं का नाश करने की क्रीड़ा (युद्ध) में लग गया— महाभारत में वर्णित अर्जुन के समान ऐसे उस राजा के यश गान को मैंने (कवि-चंद ने) छन्दबद्ध किया (पद्यों में लिखा)।



घघर की लड़ाई

(पातिसाह ग्रहण युद्ध)

(समय २७)

कवित्त

दिल्लीपति[१] प्रथिराज, अवनि आखेटक खिल्लै[२] ।
साठि[३] सहस असवार, जाइ लग्गा धर टिल्लै[४] ॥
धूनि धरा—पति साह, रहै पैसोर धरत्तिय[५] ।
सथ्थ लियै सामंत, दिल्लि कैमास सु मत्तिय[६] ॥
मृगया सु रमय प्रथिराज बर, गज्जनवै धर धुम्भियै[७] ।
दूसरौ इंद्र दिल्लेस बर, सुभर सरस ढिग सुम्भियै ॥ १ ॥

ग्रा० पा० १ पा० का० । २, ३ दे० । ४ पा० । ५ घ० । ६ भीं० । ७ सं० ।

शब्दार्थः—खिल्लै=खेलता था, करता था । टिल्लै=टीला नामक पहाड़ । धूनि=कम्पायमान । धरा-पति=भू भाग का पति, भूपति । पैसोर=पेशावर । मत्तिय=मतवाला । धुम्भियै=धूबा, ताड़ना दी, आतंक फैलाया । सुम्भियै=सुशोभित ।

अर्थः—दिल्लीश्वर पृथ्वीराज आखेट में व्यस्त था । उसके साथ साठ हजार सवार थे । उन्होंने "टीला" नामक पहाड़ (भू भाग) को जा घेरा । वह भूपति (पृथ्वीराज) पैशोर के भूभाग के निकट था फिर भी शाह को अपने आतंक से कम्पायमान करता था । उसके साथ सब सामंत थे । दिल्ली की रक्षा के लिये केवल एक मात्र मतवाला वीर कैमास ही दिल्ली में था । इस प्रकार श्रेष्ठ राजा (पृथ्वीराज) शिकार खेलता और गज्जनेश्वर के भूभाग में आतंक फैलाता हुआ श्रेष्ठ सामंतों से सुशोभित दूसरे इन्द्र के समान दिखाई देता था ।

दोहा

गई खबरि[१] ध्रम्मान की, उंट[२] चढ़े असवार ।
टिल्ला[३] धर लिज्जै[४], तखत-दिसि-गज्जनै पुकार ॥ २ ॥

ग्रा. पा. १ पा. । २ का. भीं. घ. । ३ का. । ४ दे. ।

शब्दार्थ:—खबरि=खबर, सूचना। ध्रम्मान की=धर्मायन कायस्थ की। उंट=ऊँटों पर। तखत-दिसि-गज्जनै=गजनी के तख्त की ओर, गजनेश्वर को।

अर्थ:—इधर पृथ्वीराज के शिकार में जाने की सूचना धर्मायन कायस्थ ने शुतर-सवारों (उष्ट्र सवार) द्वारा गज्जनेश्वर को दी कि— इस समय पृथ्वीराज का विचार "टिल्ला" के भू-भाग को हस्तगत करने का है।

पृथीराज साजत पवँग, है गै नर भर भार।
दिल्लीपति आखेट चढि, कुहक-बान हथ नार[1] ॥ ३ ॥

ग्रा. पा. १, पा.।

शब्दार्थ:—पवँग=पमंग, घोड़ा। कुहक-बान=कुहकते हुए बाण, सन सनाते हुए बाण। हथ नार=मारने वाले चलाने वाले।

अर्थ:—जब दिल्लीश्वर पृथ्वीराज आखेट के लिये अपने घोड़ों को सजाकर सवार हुआ। उसी समय बड़े २ हाथी-घोड़े और यौद्धा एवं सन-सनाते हुए बाण चलाने वाले साथ में हो गये।

डेरा करि पैसौर नृप, सहस सट्ठि सुभ बाज।
सोन पंच[1] विचि[2] पंथ दुइ[3], गल ग्रज्जै - अग्राज ॥ ४ ॥

ग्रा. पा. १, टि. ४। २. भीं. घ.। ३, दे.।

शब्दार्थ:—बाज=घोड़े। सोन=सोन नदी। पंच=पांचाल, पंजाब। विचि=बीच। दुइ=दोनों। ग्रज्जै-अग्राज=गहरी गर्जना की (हुई)।

अर्थ:—इस प्रकार राजा (पृथ्वीराज) ने साठ हजार घोड़ों (अश्वारोहियों) के साथ पैशौर में आकर जब डेरा किया तब सोन नदी और पंजाब के बीच के रास्तों पर दोनों (पृथ्वीराज और शाह) की ललकारें होने लगी।

कवित्त

गौरी पठए दूत, चले च्यारों चतुरन्नर।
लीय खबरि[1] प्रथिराज, चले पच्छै गज्जन धर ॥
किय सलाम जब दूत, तवहि तत्तार सु बुभिझय।
कहं[1] करत्त दिल्लेस, चढत गिरवर धर धुज्जिय ॥

सँग सित[२] खट्ट सामंत चलि, तीन-पाव लक्खह तुरी ।
अनि सूर बीर नर बर सकल, उड़ी खेह धर उप्परी ॥ ५ ॥

ग्रा० पा० १, घ० पा० । २, का० ।

शब्दार्थ:—चतुरन्नर=चतुर दूत । पच्छे=पीछे । कह—करंत=क्या करता है । गिरव्वर=गिरिवर । धुज्जिय=कम्पित हो गई । सित-खट्ट=एक सो छः । तीन-पाव=वामन स्वरूप । लख्खह=लखाई पड़ते, दिखाई पड़ते । अनि=अन्य भी । खेह=धूलि, रज । उप्परी=ऊपर ।

अर्थ:—गौरी ने जिन दूतों को रवाना किया था, वे चारों चतुर पुरुष वहाँ से चले और पृथ्वीराज के सब हालातों की जानकारी कर पुनः पहुँचे उन दूतों ने जब शाह को सलाम किया; तब तत्तारखाँ ने उनसे पूछा कि दिल्लीपति क्या करता है ? इस पर दूतों ने कहा कि उसके प्रस्थान से बड़े २ पहाड़ और पृथ्वी कम्पायमान हो गई है । उसके साथ एक सौ छः सामन्त हैं उनके घोड़े वेग में त्रिविक्रम (पृथ्वी के तीन पौंड करते हुए वामन) स्वरूप दिखाई देते हैं तथा अन्य श्रेष्ठ वीर सैनिकों के साथ में चलने से धूलि ऊपर को उड़ चली है (आकाश धूलि से आच्छादित हो गया है) ।

आखेटक दिन रमय, संग स्वानं घन चीते ।
नावक पावक बिपुल, जक्कि दिन जामह जीते ॥
सहस तुरी बद्धह सु, सेत—मेधा[१] कलि कंठिय ।
सीह गोस पुच्छिय सु, लंब सिख्खा[२] सिर पुट्ठिय ॥
जुर्रा रु बाज कूही गुहा, धानुक्की दारू धरा ।
बहु काल भाल वदकं बिला, जम भय तव जित्तिय धरा ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० । १ दे० । २ घ० ।

शब्दार्थ:—नावक=किरात । पावक=पायक, पैदल । बिपुल=असंख्य, बहुत से । जक्कि=जकड़ने वाले । जामह=रात्रि । जीते=जाते हुए को । बध्धह=तबेला । सेत-मेधा=श्वेताश्व । कलि कंठिय= कल कंठ, सुन्दर ग्रीवा वाले मयूर । सीह गोस=सिंह गोष । पुच्छिय=पूंछ । सिख्खा=शिखा । पुट्ठिय=पीठ । गुहा=गुह, निषाध । दारू=कठिन । धरा=धरने वाले, ग्रहण करने वाले । बहु-काल=वहन करने का समय, आने जाने का समय । भाल=भालने वाले, जानने वाले । वदकं=बधिक । बिला=बलाय । जम=यम । भय=हुए । तव=तेरी । जित्तिय-धरा=जितनी भी भूमि, जितना भी भू भाग या तेरे द्वारा जीति हुई पृथ्वीपर ।

अर्थ:—पृथ्वीराज प्रतिदिन शिकार खेलता है। उसके साथ बहुत से शिकारी कुत्ते, चीते, शिकारी पशुओं को दौड़कर पैदल ही जकड़ने वाले (बंधन में लेने वाले) किरात, श्वेताश्व (सूर्य के घोड़ों) के तुल्य एवं मयूर सी ग्रीवा वाले (या कार्तिक स्वामी के मयूर तुल्य) सहस्रों घोड़ों के तबेले, पूँछ, शिखा मस्तक और लम्बी पीठ वाले सिंह गोष, जुर्रा, बाज, कुहीं, कठिन धनुष रखने वाले गुह (निषाध) और बलास्वरूप बधिक जो जानवरों के आजाने और घेरने के समय को जानने वाले हैं इत्यादि सब यम-तुल्य होकर तेरे जीते हुए भी तेरे भू भाग पर फैले हुए हैं।

रमै राज आखेट, सत्त एकल बन भंजै।
पंच[१] पथ्थ परिगाह, रंग अप्पन मन रंजै॥
सहस इक्क[२] बाजित्र, सूर किल्लह[३] सं पेखै।
सुनि गौरी साहाब, दाह दिल महन, बिसेखै॥
जित्तौंब जब्ब पृथिराज कौं, तब तसबी कर मंडि हौं।
टामंक सद्द नद्दह करौं, जुगति साह तब छंडि हौं॥ ७॥

ग्रा० पा० १, २, भीं। ३, घ० का०।

शब्दार्थ:—एकल=वाराह। पंच=पांचाल, पंजाब। परिगाह=परिगह, कुटुम्बी। सूर=शूरवीर। किलहन=किरणें, रश्मियां। सं पेखै=पेखी जाती, प्रस्फुटित होती। दाह=जलन। महन=में। विसेखैं—विशेष। जित्तौंब=जीत लिया। जब्ब=जब। मंडि हौं=लूंगा, ग्रहण करुँगा। टामंक=डंके की चोट। सद्द=शब्द। नद्दह=नाद। जुगति=युक्ति पूर्वक। साह=साहि, पकड़।

अर्थ—इस प्रकार शिकार करते हुए उस राजा (पृथ्वीराज) ने अपनी शक्ति से वाराहों को मार दिया है और पंजाब के रास्तों पर अपने परिगह सहित शिकारी-खेल में अपने मन को प्रसन्न कर रहा है। उसके साथ एक हजार वाजित्र हैं। उसके मुख पर सूर्य की किरणें प्रस्फुटित होती हैं। दूतों द्वारा इस बात को सुनकर शहाबुद्दीन के दिल में अधिक जलन पैदा होगई और वह बोला—अब मैं पृथ्वीराज को जीत लूंगा। तब ही हाथ में माला (तसबी) लूँगा और युक्ति द्वारा जब मैं उसे पकड़ कर छोड़ूंगा तब ही मैं अपने नक्कारे पर डंका दिलवाऊँगा।

दोहा

देस देस कग्गद फटे, पेसंगी खुरसान ।
रोम हसब्र अरु बलक में, फट्टे पहु अप्पान ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—कग्गद=कागज, पत्र । फटे=दिये । पेसंगी=पेशकशी के, चढ़ाई की सूचना के । बलक=बलख । फट्टे=अपनी ओर मिलाने को ।

अर्थः—फिर शाह ने खुरासान, रोम, हबस, बलख आदि देशों में, जो उसके पक्ष के थे उनको मिलाने के लिये अपनी पेशकशी (चढ़ाई) की सूचना के पत्र दिये ।

कवित्त

सिलह लोह सज्जन्त, लक्ख पंचह मिलि पक्खर ।
कूंच कूंच खरि खैर, गुरज धारी लख गक्खर ॥
कोस दहंदह कूच, आइ गिरवान सपत्तौ ।
दौरि दूत दिल्लेस, जामत्रय दिनकर[1]—वित्तौ ॥
मुक्काम कियौ प्रथिराज नृप, तहाँ खबरि कहि दूत सब ।
गोरी नरिंद है गै सुभर, सजि आयौ उप्पर सु अब ॥ ६ ॥

प्रा. पा. १, पा.

शब्दार्थः—पक्खर=पखरैत, अश्वारोही । खरि=खड़कर, चलकर ।खैर=खैरियत, कुशलता के साथ । दहंदह=दस दस । गिरवान=गिरि प्रदेश वाला, गजनीपति । सपत्तौ=पहुंचा । जामत्रय=तीन प्रहर । दिनकर-वित्तौ=सूर्योदय हुआ । है-गै=हाथी, घोड़े उप्पर=ऊपर ।

अर्थः—कवच और शस्त्रधारी पांच लक्ष अश्वारोही एकत्रित हुए और स्थान २ पर ठहरते हुए कुशलता पूर्वक एक लक्ष गुरजधारी गक्खरों के सहित आगे बढ़े । इस प्रकार दस २ कोस पर ठहरता हुआ वह गिरि प्रदेश (गजनी) का स्वामी आ पहुँचा । तब दिल्लीश्वर के दूतों ने आकर दिन का तृतीय प्रहर बीतजाने पर और पृथ्वीराज के शिकार से लौट आने पर सूचना दी कि गौरीशाह हाथी, घोड़े और योद्धाओं को सजाकर आपके ऊपर चढ़ाई करने के उद्देश्य से आगया है ।

चैत मास रबि तीज, सेत पख्खह कल चंदह ।
भयौ सु दिन मध्यान, चढ्यौ प्रथिराज-नरिंदह ॥
कटक सबर हिल्लोरि, भार सेसह कर भग्गिय ।
चढि सामंत सकज्ज, नद सुर अंमर जग्गिय ॥
गज रोर सोर बंधे घटा, सिलह बीज सिलकाव लिय ।
पप्पीह-चीह सहनाइ सुर, नदि घघ्घर मेलान दिय ॥ १० ॥

शब्दार्थः—सेत=श्वेत, शुक्ल । पख्खह=पक्ष । कल=कलायुक्त । कटक=सेना । सबर=सबके । हिल्लोर=तरंगित । सेसह-कर=शेष नाग का । भग्गिय=कुचला गया । सकज्ज=उस युद्ध कार्य के लिये । अंमर=आकाश । जग्गिय=जगा, छागया, प्रतिध्वनित हो गया । रोर-सोर=शोरगुल, हल चल । सिलह=सलह, कवच । सिलकाव=चमक । लिय=ली । पप्पीह-चीह=पपिहों की चीत्कार, पपिहों के स्वर । मेलान-दिय=मुकाम किया ।

अर्थः—यह सूचना पाकर पृथ्वीराज चैत्र शुक्ला तृतीया रविवार को जब चंद्रमा कला युक्त था तब मध्यान्ह समय में शाह की ओर युद्धार्थ चढ़ा और उसकी सबल सेना उत्साहित होती हुई बढ़ी, जिसके भार से शेष कुचला गया। उस युद्ध कार्य के लिये सामन्त भी चले। उनके स्वर-नाद से आकाश प्रतिध्वनित हो गया, हाथियों की हल चल और सेना की आवाज ने घटा का रूप बांध लिया और वीरों के कवचों ने बीज (द्वितीया) की चमक धारण की। पपीहों के स्वर की पूर्ति शहनाई के स्वर से हुई, इस प्रकार घघर नदी पर आकर पृथ्वीराज ने मुकाम किया।

दोहा

आयौ आतुर उप्परह, पैसंगी पतिसाह ।
पच्छाई बादल प्रबल, भग्गे राह विराह ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—पैसंगी=पेशकशी, चढ़ाई करके । पच्छाई=पश्चिम देशीय, मुस्लिम सेना । भग्गे=भागी, दौड़ पड़ी । राह विराह=यत्र तत्र ।

अर्थः—उधर से बादशाह चढ़ाई कर पृथ्वीराज की ओर तेजी से बढ़ा, उस समय पश्चिम देशीय (मुसलमानी) प्रबल सेना बादलों के समान यत्र यत्र दौड़ने लगी।

बरन बरन तहँ दिक्खियौ[१], घंटा रव गज राज।
संनाही संनाह रजि, पक्खर पक्खर साज॥ १२॥

ग्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थः— घंटा रव=घंट निनाद। संनाही संनाह=कवच धारी से कवच धारी। पक्खर-पक्खर=पखरेतों से पखरेत, अश्वारोहियों से अश्वारोही। साज=सजे, अड़े। सक्खर=अश्व।

अर्थः—दोनों (पृथ्वीराज और शाह की) सेनाओं के विभिन्न (श्वेत, काले, धूमिल) वर्ण वाले हाथियों के घंटे ध्वनित होने लगे और कवच धारी कवच धारियों से तथा अश्वारोही अश्वारोहियों से भिड़ते हुए सुशोभित हुए।

भई हलोहल सेन सब, पांन ब्यूह बर खेत।
लक्ख एक भर अंग में, छत्र धर्यौ सिर जैत॥ १३॥

शब्दार्थः—हलोहल=शोरगुल। पान=हथ पान, एक प्रकार का कर भूषण। बर=वर, श्रेष्ठ। भर=भट, योद्धा। अंगमें=लोहा लेना स्वीकृत किया।

अर्थः—रण क्षेत्र में शाही सेना ने पान (हथपान, एक प्रकार का कर भूषण) व्यूह की रचना कर शोरगुल मचाना शुरु किया। यह देखकर एक लक्ष विपक्षी योद्धाओं से लोहा लेने के लिये (पृथ्वीराज की ओर से) जैत्र प्रमार ने सेनापतित्व का छत्र सिरपर धारण किया।

हुअ टामंक सु दिसि विदिसि, हुअ संनाह सनाह।
हुअ हल्लोहल सुभ्भरन, दऊ दीन इक राह॥ १४॥

शब्दार्थः—टामंक=नक्कारे पर डंका, रणवाद्य का नाद। संनाह=कवच धारी। हुअ=भिड़े। हल्लोहल=शोर-गुल।

अर्थः—सर्व दिशाओं में रण-वाद्य का नाद शुरु हुआ और कवच धारी से कवच धारी भिड़ पड़े तथा योद्धाओं में हल-चल मच गई। इस प्रकार दोनों दीन एक ही मार्ग (युद्ध-पथ) के पथिक बन गये।

कवित्त

फ़ौज बंधि सुरतान, मुक्ख अग्गै तत्तारिय।
मधि नाइक[१] सुरतान, नील खुरसान सुभारिय॥

मोती निसुरति खान, लाल हबसी कोलंजर ।
पोंचि[२] पीठि रुस्तंम, पना बहु भंति[३] अवर नर ॥
उत्तरीय नद गौरीस पहुँ, बज्जा दस दिसि बज्जिया ।
मानौकि भद्द उलटी मही, साइर - अम्बु - गरज्जिया ॥ १५ ॥

ग्रा पा. १, घ. का. २, दे. । ३, घ. भीं. का. ।

शब्दार्थः—बंधि=व्यूह बद्ध की । मुक्ख अग्गे=अग्रभाग पर (सेनापति के स्थान पर) । लाल=लालें । कोलंजर=कालंजर । पोंचि=पहुँची । पना=पन्नै । भंति=भांति । अवर नर=अन्य सैनिक । बज्जा=बाजे । भद्द=भाद्रपद (भाद्रपद के मेघ) । साइर–अम्बु=समुद्र का जल । गरज्जिया=गरजता हो, गहरी ध्वनि करता हो ।

अर्थः—तत्तारखां को अग्रणी (आगे) कर बादशाह ने अपनी सेना को व्यूह बद्ध किया, जिसमें हथ-पान (करभूषण) के मध्य में जो हीरा (मझनायक) होता है । उस स्थान पर स्वयं शाह, आस-पास नीलम होती है उस स्थान पर अपने साथियों सहित महान् वीर खुरासानखां, मोतियों की जगह पर निसुरत्तिखां और लालों के स्थान पर कालंजर और हबसी वीर, पन्ने की पहुँची (मणीबंध) के स्थान पीठ पर रुस्तमखां एवं अन्य सैनिक हुए ।

इस प्रकार व्यूह-बद्ध होकर गौरीशाह ने नदी को पार किया और दसों दिशाओं में रणवाद्य इस भाँति बजने लगे, मानों पृथ्वी पर भाद्रपद के मेघ उलट गये हों— या समुद्र का जल गहरी ध्वनि करता हो ।

दोहा

दिल्ली पति फौजह रची, दियौ जैत सिर छत्र ।
चावँड-रा अग्गै भयौ, मनों सु गिरवर गत्त ॥ १६ ॥

शब्दार्थः–रची=व्यूह रचना की, व्यूह बद्ध किया । चावँड-रा=चावंडराय । अग्गै=अग्रगण्य । गत्त=चलना फिरना ।

अर्थः—इधर दिल्लीश्वर ने भी जैत्र प्रमार को सेनापति बना उसके सिर पर छत्र धारण करवाकर फौज को व्यूह-बद्ध किया और चावण्डराय उस सेना में अग्रगण्य बना, वह ऐसा दिखाई दिया मानों चलता फिरता पहाड़ हो ।

कवित्त

फौज सची सामंत, गरुड़ व्यूहं रचि गढ्ढिय ।
पंख भाग प्रथिराज, चंच चावंड सु मढ्ढिय [१] ॥
गाबरि अत्ताताइ, पांइ गोइंद सु ठढ्ढिय ।
पुंछ कंन्ह चौहान, पेट पंमारह पढ्ढिय ॥
सुंडाल काल अग्गौं धरै, कढे दोइ कलहन्न किय ।
चालंत बान गोरै प्रबल, मानहु अंधकि मारदिय ॥ १७ ॥

ग्रा० पा० १, सं० ।

शब्दार्थः—गढ्ढिय=दृढ । चंच=चोंच के स्थान पर । मढ्ढिय=मढ़ा, सुशोभित हुआ, शोभा बढ़ाई । गाबरि=गर्दन । पांइ=पैर । ठढ्ढिय=ठाड़ा हुआ, खड़ा हुआ । पुंछ=पूंछ । पंमार=प्रमार [जैत्र प्रमार] । पढ्ढिय=पढ़ा गया, कहा गया । सुंडाल=हाथी । अग्गौं धरै=आगे किये । कढे=निकले, चल पड़े, आगे बढ़े । कलन्न किय=कलह कर्ता । गोरै=गोले । अंधकि=अंधा । मारदिय=वार किया ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने सामन्तों से मिलकर अपनी सेना को गरुड़ व्यूहाकार जमाकर दृढ़ बनाया । जिसमें पंखों के स्थान पर स्वयं पृथ्वीराज, चोंच के स्थान पर चावंड-राय, गर्दन के स्थान पर अत्ताताई, पैरों के स्थान पर गोयंदराव, पुच्छ के स्थान पर कंन्ह चौहान, उदर के स्थान पर जैत्र प्रमार नियुक्त हुए और यम स्वरूप हाथियों को आगे बढ़ाया फिर दोनों ओर से युद्धकर्ता आगे बढ़े । उसी समय बाण आग्नेयास्त्रों की मार इस प्रकार होने लगी जिस प्रकार अंधा वीर अंधाधुंध वार करता है (अंधे का वार किसी विशेष व्यक्ति पर नहीं होता, उसके वार से शत्र मित्र सब कोई समाप्त होते दिखाई देते हैं) ।

तत्तारह उप्परह, चित्त चावंड चलायौ ।
दुहूं फौज अग्गंज, दुहूं भुज भार भलायौ ॥
मीर बान बरखंत, धार धारा हर लग्गौ ।
बाही चामँड़ राइ, भूमि तत्तारह भग्गौ ॥
उत्तरे मीर सै-पंच-दुइ, दाहिम्मै किन्नो दहन ।
पहिलै सु [१] झुभ्भ दिन–पहिल कै, मच्यौ जुद्ध जानैं महन ॥१८॥

ग्रा० पा० १, घ० का० ।

शब्दार्थ:—अग्गंज=नहीं पंजने वाले, अभंत वीर। भलायौ=समर्पित किया। धार=ग्रहण कर, पकड़ कर। धाराहर=धाराधर, तलवार। भूमि=युद्ध भूमि से। भग्गौ=भाग गया। उत्तरे=उतर पड़े, सहायतार्थ बढ़े। सै-पंच-दुई=पांचसौं के दूने, एक सहस्र। दहन=दग्ध, नाश। पहिले सु झुम्भ्झ= सबसे पहले आक्रमण करके। दिन-पहिलकै=युद्ध के शुरु दिन। मच्यौ=ठाना, मंडन किया। जानै= जिसने, उसने। महन=महान, घमासान।

अर्थ:—तत्तारखां से भिड़ने के लिये चावण्डराय आगे बढ़ा (अपने चित्त को चलाया) उन दोनों दलों में वे दोनों वीर (तत्तार और चावण्ड) प्रचंड माने जाते थे। इसीलिये दोनों की भुजाओं पर युद्ध का भार डाल दिया गया। उधर से वह मीर (तत्तार) बाण वर्षा करने लगा। इधर से चावंडराय तलवार पकड़कर उससे जा भिड़ा और वार किया, जिससे तत्तार युद्ध-भूमि को छोड़ कर भाग गया-उसकी सहायतार्थ एक सहस्र मीर बढ़े, उन सबका उस दाहिमें वीर ने नाश कर दिया। इस प्रकार युद्ध के प्रारंभिक दिन ही उसने (चामंडराय ने) सबसे पहले आक्रमण कर घमासान युद्ध को जमा दिया।

भूमि पर्‌यो तत्तार, मोरि कमनेत प्रहारै।
इक्क[1] घाउ[2] दुय टूक, परे धारन मुहु[3] धारै॥
खुर बज्जै खुरतार-चमकि चावंड चलायौ।
भरै बथ्थ सिर हथ्थ, एक-बहु लख्खन धायौ॥
जब परैं बूंद तब बीर हुअ-सत्त घरी साहस धरै।
तिन-मारि-कटक त्रिविधी-घड़ा[4], एक एक पग अनुसरै[5]॥ १६॥

प्रा० पा० १, २, ३, ५ भीं। ४, पा०, का०।

शब्दार्थ:—कमनेत=धनुर्धर। इक्क-घाउ=एक बार। धारक-मुहु-धारै=तलवार की धारा को सामने सहने पर। खुर=पैर। भरै-बथ्थ=बाहुपार्श्व में ग्रहण करता हुआ। सिर हथ्थ=सिर पर हाथ मारता हुआ। एक-बहु=अकेला वहन करता, अकेला बढ़ता। लख्खन-धायौ=लाखों का समूह बढ़ा हो, लाखों बढ़े हों। सत्त=सौ। तिन-मारि-कटक=उनके कट कटाकर, दांत पीसकर, वार करने पर। त्रिविधी-घड़ा=तीन प्रकार (अश्वारोही, गजा-रोही और पैदल) की सेना। पग-अनुसरै=पगका अनुसरण करती, एक के पीछे एक भागती।

अर्थः—धनुर्धरों के वार से तत्तारखां धराशायी हुआ और जिन विपक्षियों ने तलवार की धार का प्रहार अंग पर सहा, उनके एक ही वार में दो दो खण्ड हो गये। अश्व के पैरों में चमकती हुई और बजती हुई खुरतालों सहित चामण्डराय आगे बढ़ता रहा, बाहु पार्श्व को पकड़ कर सिर पर हथ्थल मारता हुआ वह वीर अकेला बढ़ा; किन्तु विपक्षियों को ऐसा दिखाई दिया मानो लाखों वीर बढ़े हों, उस वीर की जहाँ रक्त की एक बूंद पड़ जाती थी वहाँ सौ वीर उठ खड़े होते और वे घड़ी तक पराक्रम करते रहते थे। उनके दांत पीसकर वार करने पर तीनों प्रकार की (अश्वारोही, गजारोही और पैदल) सेना एक दूसरे के पैरों का अनुसरण करती थी। एक के पीछे एक भाग पड़ती थी।

खान खान आखूँद, अट्ठ सहसं बहु गख्खर।
परिय पंति अवनेस, पारि बहु गख्खर पक्खर[1]॥
हयौ नेज चावंड, बीर दो सहस लरे भर।
हस्ति इक्क[2] बिन दंत,तमह तिन मथ्थ[3] सहस कर॥
दाहिम्म राव मुरछ्यौ पर्यौ, दौर्यौ जैत महा बलिय।
मानौ कि अग्गि[4] जज्जर बही, कलि मझ्झै रिनबट कलिय॥२०॥

ग्रा० पा० १, ३, सं०। २, पा०। ४, दे०।

शब्दार्थः—आखूँद=आने पर कुचला गया। बहु=वहन किया, बढ़ा। गक्खर=जाति-विशेष। पंति=पंक्ति, सेना। अवनेस=अवनीस, पृथ्वीराज। पारि=गिराया, धराशायी किये। पक्खर=पखरेत। हयौ=हन्यौ, चलाया। नेज=नेजा। लरेभर=भिड़ पड़ा। मथ्थ=पर। सहस कर=सहस्र बाहु। रिन-बट=युद्धवट। जज्जर=काल, यम। बही=वहन की, फैलाई। कलिय=करिय, किया।

अर्थः—उस समय खानों में प्रसिद्ध जो खांन था वह कुचला गया, तब आठ सहस्र गख्खरवीर बढ़े, यह देखकर पृथ्वीराज की सेना ने हमला किया, जिसने बहुत से पखरेत गख्खरों को धराशायी कर दिया। चामुंडराय ने भी नेजा संभाला और वह दो सहस्र योद्धाओं से लड़ पड़ा। उसने सहस्रबाहु के समान तमोगुण धारण कर एक हाथी को दांत विहीन कर दिया, किन्तु वह दाहिमा वीर मूर्छित होकर धरा-शायी हो गया। यह देखकर शीघ्रता के साथ महान बलवान योद्धा जैत्र प्रमार इस

प्रकार आगे बढ़ा मानों कलिकाल में स्वयं यमराज क्रोधाग्नि की ज्वाला फैला कर युद्ध-वट का प्रदर्शन किया हो।

धपी मुट्ठि[१] सुरतांन, मुट्ठि छुट्टि चावद्दिसि।
मनु किपाट[२] उघ्घर्यौ[३], कूह फुट्टिय दिसि बिदिसि॥
मार मार मुख किन्न, लिन्न चावंड उपारे।
परे सेन सुरतान, जाम इक्कह परि-धारे॥
गल बत्थ घत्ति गाढ़ौ ग्रह्यौ, जानि सनेही भिंटयौ।
चावंडराइ करि-बर कहर, गौरी दल बल कुट्टयौ॥ २१॥

ग्रा० पा० १, ३, दे०। २, भीं०।

शब्दार्थः—धपी=अघा गई, तृप्त होगई। मुट्ठि=मुष्टिका। किपाट=कपाट, किंवाड़। उघ्घर्यौ=खुल गया। फुट्टिय=फट्टिय, फैली। उपारे=उठाया। जाम इक्कह=एक प्रहर तक। परि-धारे=खड्ग धारा पड़ने पर, खड्गाघात होने से। घत्ति=घायलकर, डालकर। भिंट्यौ=भिटे, मिले। करि-बर=बल करके। कुट्टयौ=कूटा, मारा।

अर्थः—शाह की मुष्टिका (हाथ) इस युद्ध में अघा (तृप्त हो) गई। चारों ओर से उस समय वीरों की मुष्टिकायें (हाथ) चलने लगीं, जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानों स्वर्ग के द्वार खुल गये हों या कूह रात्रि, दिशा-विदिशाओं में फैल गई हो। उस समय मार २ उच्चारण करते हुए चावण्डराय को उठाया गया; किन्तु उसकी खड्ग के एक प्रहर तक पड़ने से स्वयं शाह भी धराशायी होगया। चामुण्डराय ने उसके गले में हाथ डालकर ऐसा दृढ़ पकड़ा मानों एक प्रेमी दूसरे प्रेमी से मिला हो। इस प्रकार चामुण्डराय बल प्रदर्शित कर कहर (विघ्न) मचा दिया और गौरी शाह के दल पर मार की (प्रहार किया)।

जैत राइ जडधार, लियौ करदंत मुक्खकर।
परै वज्र सिर धार, मनो सेना सिर उप्पर॥
खुरसानी वंगाल, मनहु डंडूर - रमावै।
भरै पत्र युग्गिनी[१], डक्क नारद बजावै॥

अपछरा गीत गावत इला, तुंबर तंति[२] बजावही ।
सुरतान सेन दिल्लेस बर, मग्ग मग्ग सज गावही ॥ २२ ॥

ग्रा. पा. १, पा. । २, दे. ।

शब्दार्थः—जडधार=जड़लक तलवार । मुक्खकर=मुंह में लेकर । डंडूर-रमावै=डंडूर नामक खेल खेलते हों । पत्र=पात्र । युग्गिनी=योगिनियें । डक्क=कूह कर, उछल २ कर । इला=पृथ्वी । तुंबर=गंधर्व । तंति=तंत्री ।

अर्थः— जैत्रप्रमार ने एक तलवार हाथ में और दूसरी को मुँह में लेकर दाँतों से पकड़ी, उसकी खड्ग शत्रुओं के सिर पर इस प्रकार पड़ती हुई दिखाई दी मानों विपक्षी सेना पर वज्रपात हो रहा हो या खुरासानी और बंगाली मिलकर डंडूर खेल खेल रहे हों । उस समय योगिनियाँ शोणित से खप्पर भरने लगीं । नारद उछल २ वाद्य बजाने लगा, अप्सराएें गीत गाने लगीं, गंधर्व तंत्रीनाद करने लगे । इस प्रकार शाह और दिल्लीश की सेना का यश गान उनके द्वारा मार्ग २ पर होने लगा ।

सिर धुन्नत[१] पतिसाह, धाह सुनि सेना सत्थिय ।
लुत्थि लुत्थि मुह-धार, परे बत्थन सों बत्थिय ॥
जम सोंजम आहुरैं, सूर जुट्टै दुय[२] घुट्टै ।
नई गंठि तन-जोग, सूर मुंडावलि थट्टै[३] ॥
खुरसान जैत अब्बू धनिय, धार धार मुह कट्टिया ।
ऐसो न जुद्ध दिक्खौ सुन्यौ, दारुन मेछ दबट्टिया ॥ २३ ॥

ग्रा० पा० १, से ३, पा० ।

शब्दार्थः—धुन्नत=धुनने लगा । धाह=भयावह । सत्थिय=साथी । मुह-धार=तलवार के आगे, तलवार की धार द्वारा । आहुरैं=भिड़ै । सूर=योद्धा । जुट्टै=जुट पड़े । दुय घुट्टै=दो घड़ी तक । तन- ग=योग काय, शिव । थट्टै=करने लगे । मुह=मुहाने । मेछ=म्लेच्छ । दबट्टिया=दबा दिये ।

अर्थः— अपनी सेना और साथियों को भयावह सुनकर शाह अपने सिर को धुनने लगा । उस समय तलवार की धार द्वारा लोथों पर लोथें पड़ गईं और एक दूसरे से परस्पर गुत्थम गुत्था हो गये । वीर परस्पर इस प्रकार दो घड़ी तक जूझ पड़े मानों यम से यम भिड़े हों । योग काय (शंकर) नई ग्रन्थियाँ लगाकर वीर मुण्डों का संग्रह

करने लगे [मुण्ड माला बनाने लगा]। खुरासान खाँ और आबू राजवंशीय जैत्र ने तलवार धारणकर एक दूसरे के मुँहाने को काट दिया; किन्तु जैत्र प्रमार ने भयंकरता से मुसलमानों को दबा दिया। जैसा उसने युद्ध किया वैसा न तो आँखों से देखा और न कानों से सुना गया।

मनु द्वादस सूरिज्ज[1], हत्थ चंद्रमा महासर।
जिन उप्पर खलमलै, ताहि-धर गोरिय सुभ्भर॥
कटक कूह-किलकार, सार परमार बजायौ।
भिरि भंज्यौ सुरतान, एक एकह मुख धायौ॥
सिर सार धार बुठ्यौ प्रहर, तब दौर्‌यौ पज्जून भर।
निसुरत्तिखान लख्खह-बली, लख्ख इक्क[2] पाइल सुभर॥ २४॥

ग्रा० पा० १, घ० पा० का०। २, पा०।

शब्दार्थ:—सूरिज्ज=सूर्य। महासर=महान श्रेष्ठ। जिन-उप्पर=उसे उठाकर। खलमलै=खलबली मचा दी। ताहि-धर=उन्हें धर पकड़ कर। कूह–किलकार=किलकारी करके। सार=तलवार। बुठ्यौ=बरसा। लख्खह-बली=लक्ष वीरों के समान बल रखने वाला। पाइल=पैदल।

अर्थ:—उस समय वह वीर जैत्रप्रमार द्वादश सूर्य के समान दिखाई दिया और उसने तलवार क्या पकड़ी मानों द्वादश सूर्य ने हाथ में श्रेष्ठ चंद्रमां को पकड़ लिया हो। उसे उठाकर उसने गौरी के अच्छे २ योद्धाओं में खलबली (भागदौड़) मचादी। सैन्य में किलकारी कर उस प्रमार वीर ने लोहा बजाया और प्रत्येक से सामना करता हुआ स्वयं शाह से भिड़ा तथा उसे नष्ट-प्राय: कर दिया। उस वीर प्रमार पर उस समय लोहे की धार एक प्रहर तक बरसी, यह देख कर वीर पज्जून तेजी से उसकी सहायतार्थ बढ़ा। उससे सामना करने के लिये लक्ष वीरों के समान बलवान निसुरत्ति खांन, जिसके अधिकार में एक लक्ष पैदल योद्धा थे, बढ़ा।

कालंजर इक लख्ख, सार सिंधु रह गुड़ावै।
मार मार मुख चवै, सिंघ सिंघा मुख धावै॥
दौरि कन्ह नरनाह, पट्टि छुट्टिय[1] अंखिन पर।
हत्थ लई किरवान, रुंड माला किन्निय हर॥

बिहु बाह जख्ख लोहै परिय, जानि करी बरदा[२] हकिय ।
उच्छारि पारि धरि उप्परे, कलह कियौ किउ घान-किय ॥ २५ ॥
ग्रा० पा० १, का० पा० । २, पा० ।

शब्दार्थः—सिंधुरह=हाथियों को । गुड़ावैं=गिरने लगे, लुढ़कने लगे । चवैं=कहते हुए, उच्चारण करते हुए । बिहु बाह=दोनों बाहु । लोहै=लोहधारी । करी=हाथी । बरदा=बिरदाया हुआ । हकिय= बढ़ा हो । पारि=पटक, पछाड़ कर । धरि उप्परें=पृथ्वी पर । किउ=कितने ही को । घान-किय= नष्ट कर दिये ।

अर्थः—उस समय एक लक्ष कालिंजरों ने खड्ग द्वारा हाथियों को गिराना प्रारंभ किया और मुख से मार २ उच्चारण करते हुए सिंह रूपी वीरों का सामना करने लगे । यह देखकर कन्ह चौहान की आँखों से पट्टी खोली गई और तब वह वीर नरनाह शत्रुओं पर झपट पड़ा । उसने तलवार हाथ में लेते ही शिव की मुण्ड-माला को पूर्ण कर दिया । उसकी भुजाओं के आघातों से लाखों लोह-धारी योद्धा धराशायी हुए । वह इस प्रकार बढ़ा, मानों बिरदाया हुआ हाथी बढ़ा हो । उसने शत्रुओं को उखाड़-पछाड़ कर धराशाई कर दिया । इस प्रकार उसने युद्ध कर कितने ही वीरों को नष्ट कर दिया ।

कालंजर जब परिय, भगिय सेनापति साहिय ।
पंच-भौज एकट्ठ, कंन्ह करवारि समाहिय[१] ॥
धर पारे बहु मीर, सथ्थ जब सेना भग्गिय ।
गर धत्ती कंमान, लियौ गौरीय उछंगिय ॥
उत्तरे मीर पच्छे फिरे, हाय हाय मुक्खह कर्यौ ।
पज्जून झेलि-मुख मीर कौ, कंन्ह लोइ गौरी बर्यौ ॥ २६ ॥
ग्रा० पा० १, टि० ५ ।

शब्दार्थः—पंच-भौज=पांचाल देशीय सेना । एकट्ठ=एकत्रित । करवारि=करवाल, तलवार । समाहिय=पकड़ी । गर=गले में । धत्ती=डालकर । उछंगिय=गोद में । उत्तरे=उत्तर देशीय, या भगे हुए । पच्छे=पीछे । झेलि-मुख=उन्हें रोका, सामना किया । बर्यो=चला, गया, चल पड़ा ।

अर्थः—जब पांचाल देशीय सेना को एकत्रित करने के लिये कन्ह ने तलवार पकड़ी, तब कालिंजर वीर धराशायी होगये और शाही सेना भाग चली। कन्ह ने बहुत से मीरों को धराशायी कर दिया। जिससे उनकी सेना भी भाग गई। उसी समय उसने (कन्ह ने) कमान गले में डालकर गौरी को पकड़ा और उसे गोद में ले लिया। यह देखकर हाय २ उच्चारण करते हुए भागे हुए मीर वापस लौटे, जिनका सामना वीर पज्जून ने किया और कन्ह चौहान गौरीशाह को लेकर वहाँ से (अजमेर की ओर) चल पड़ा।

जनु उद्यानह लाइ, पवन चल्ले ज्यौं बांधै।
त्यौं पज्जून नरिंद, मीर जम दढ्ढै सांधै॥
परे मीर सै-सत्त, बिए रन छंडिव भज्जै।
चामर छत्त रखत्त, तखत लुट्टै ज्यौं सज्जै॥
कंन्हा नरिंद पतिसाह लै, गयौ थान अप्पन बलिय।
पंमार सिंध लग्यौ-सु पय, चाव-भाय कीरति चलिय॥ २७॥

शब्दार्थः—उद्यानह=उद्यान में। लाइ=लाय, अग्निज्वाला। बांधै=बढ़ी, वृद्धि पाई। जम दढ्ढै=कटार। सांधै=निशाना बनाया। सै-सत्त=सात सौ। बिए=अन्य, दूसरे। भज्जै=भाग गये। छत्त=छत्र। रखत्त=रसद सामान। ज्यौं सज्जै=जिस प्रकार धारण किये थे। लग्यौ-सु-पय=चरण स्पर्श किया। चाव-भाय=सन्मान।

अर्थः—वीर पज्जून ने मीरों को अपनी चमचमाती कटार का निशाना बनाकर ऐसा दृश्य कर दिया, मानों उद्यान (बाग) में पवन के सहारे अग्नि ज्वाला में वृद्धि हुई हो। उसकी मार से सात सौ मीर धराशायी हुए। शेष युद्ध-भूमि को छोड़कर भाग गये। शाह ने जिस प्रकार क्रमशः चमर छत्र और तख्त आदि राज्य चिन्ह धारण किये थे, उसी प्रकार एक २ करके सब उतार दिये और रसद सामान भी लूट लिया गया। बलवान कन्ह नरनाह बादशाह को पकड़ कर अपने स्थान पर सकुशल जा पहुँचा। सिंह प्रमार ने भी इस युद्ध में अच्छा साहस किया और पृथ्वीराज के चरण छूये। उस वीर का भी पृथ्वीराज ने अच्छा सम्मान किया, जिससे उसकी कीर्ति संसार में फैल गई।

रहै कन्ह अजमेर, गयो चहुआन जैत-लिय।
धरिअ-गगोरि नरिन्द, दौरि प्रथिराज सुद्ध दिय॥

गयौ अप्प अजमेर, तहां[१] पतिसाह नरिंदह ।
दिन किज्जै महिमान, पास ठड्ढारहै वृन्दह ॥
बैठारि तखत सिर छत्र दिय, सभा विराजे सुपहुँ भर ।
सिर फेरि खैर-दिज्जै-दुनी, यों रक्खै पतिसाह दर ॥ २८ ॥

ग्रा० पा० १, भीं ।

शब्दार्थः—जैत-लिय=विजय प्राप्त करके । धरिग्र-ग्गौरि=गोरी को बंधन में लिया । सुद्ध दिय=सूचना दी । ठड्ढारहै=खड़े रहते, नियुक्त किये । सुपहु=राजा । भर=सामंत । सिर-फेरि=मस्तिष्क को ठीक करके । खैर-दिज्जै-दुनी=संसार में शांति फैलाइये । दर=द्वार पर, अपने यहाँ ।

अर्थः—शाह को लेकर कन्ह अजमेर जाकर रहने लगा और इधर चौहान पृथ्वीराज विजय प्राप्त कर दिल्ली पहुँचा । शाह को बंधन में लेने की सूचना कन्ह ने शीघ्रता पूर्वक पृथ्वीराज को दी । तब स्वयं पृथ्वीराज अजमेर पहुँचा । वहाँ पर पृथ्वीराज ने बादशाह की हमेशा महमानदारी की । उसकी सेवा में सेवक-समूह नियुक्त कर दिया और राजाने सामंतों सहित सभा की । उसमें गौरीशाह को भी तख्त पर बिठाया और उसके सिर पर छत्र रक्खा गया फिर राजाने बादशाह को उपदेश दिया कि अपने मस्तिष्क को ठीक कर दुनिया में शान्ति बनी रहे । ऐसा आप कीजिये । इस प्रकार बादशाह को उसने अपने यहाँ सम्मान पूर्वक रक्खा ।

एक लक्ख बाजित्र, सहस तीनह मय मत्तह ।
लक्ख इक्क[१] तोरवार, तेज ऐराकी तत्तह ॥
आरब्बा[२] हथ्थिनी, सत्तसैं सत्त सुभारिय ।
चामर छत्र रखत्त, साहि लिन्निय रिध[३] सारिय ॥
सामंत सूर बहु विधि भरिग, पट्टै घावसु बंधियै ।
रन जीत सोधि संभर धनी, बज्जै अनत सु बज्जियै ॥ २९ ॥

ग्रा. पा. १, २, पा. । ३, का. ।

शब्दार्थः—बाजित्र=वाद्य । मय मत्तह=मस्त हाथी । तोरवार=घोड़े । ऐराकी=घोड़े । तत्तह=ताते, वेगवान । रखत्त=रखकर, लौटाकर । रिध=रिद्धि, सम्पत्ति । भरिग=भिड़े । सोधि=खोज करा कर ।

अर्थः—एक लक्ष वाद्य, तीन हजार मस्त हाथी, ऐराकी जाति के वेगवान एक लक्ष घोड़े, अरब देशीय दीर्घ काय सात सौ सात हथनियाँ आदि शाही सम्पत्ति छीन ली गई। केवल शाह के चँवर और छत्र पृथ्वीराज ने लौटा दिये। इस युद्ध में अपने बहुत से सामन्त भिड़ पड़े थे, विजय के बाद सँभरेश्वर ने उनकी खोज करवा कर उनके घावों पर पट्टियाँ चढ़वाईं और बहुत से विजय-वाद्य बजवाये।

रची सभा पृथिराज, सूर सामंत बुलाए।
गोयंद निद्दुर सलख, कंन्ह पतिसाह पठाए॥
करौ दंड सिर छत्र, राम प्रोहित पुंडीरह।
रा पज्जून प्रसंग[1], राव हाहुलि हंमीरह॥
इत्तने मत्त मभ्भह मिले, हम मारैं छंडे[2] न अब।
व्है है न हास[3] अबकें हमैं, फिरिन[4] आइहै[5] इह सु कब॥ ३०॥

ग्रा. पा. १, पा. घ.। २, ४, ५, दे.। ३, घ. का.।

शब्दार्थः—मत्त मभ्भह=मुख्य मंत्रणा देने वाले। छंडेन=नहीं छोड़ेंगे। हास=हास्य, उपहास।

अर्थः—फिर दूसरे दिन पृथ्वीराज ने वीर सामन्तों को बुलाकर सभा की, जिसमें गोविन्दराय, निड्डुरराय, सलख जैत्र, कन्ह, गुरुराम पुरोहित, चंद पुंडीर, पज्जूनराय, प्रसंगराय और हाहुलीराय हम्मीर इत्यादि योद्धाओं को, जो मुख्य मंत्रणा देने वाले थे, बुलाया गया। कन्ह ने भी अपने बंधन से मुक्त शाह को पृथ्वीराज के सुपुर्द कर दिया। फिर सब सामन्त बोले— हम इसे अब मारना चाहते हैं, छोड़ेंगे नहीं। ऐसा करने से यह फिर कभी नहीं लौटेगा और न हमारा पुनः उपहास ही होगा।

दिये देस खंधार, दिए पछिबानं सारं।
कासमीर कबिलास, दिए धर[1] टिला पहारं॥
गज्जन रक्खै देस, बियौ समयै प्रथिराजह।
नातरु छुट्टै नाहिं, करें हम उप्पर काजह॥
बुल्लयौ[2] कंन्ह करनाह सुनि, अबकै मारै कोइ नह।
पँजाब दियौ छुट्टै सु अब, इहह[3] मीर दिज्जे हमह॥ ३१॥

प्रा०पा०१, दे०। २, ३, पा०।

शब्दार्थ:—पछिवानं=पश्चिमीय देश। सारं=सारा, श्रेष्ठ। कविलास=काबुल। बियौ=अन्य। नातरु=नहीं तो। उप्पर काजह=उपरोक्त कार्य।

अर्थ:—फिर वे बोले-यदि खंधार, पश्चिमीय देश, काश्मीर, काबुल और टिल्ला भू-भाग के पहाड़ादि देश, पृथ्वीराज को समर्पित करदे और केवल गजनी प्रांत अपने अधिकार में रक्खे, तो यह जीवित छूट सकता है अन्यथा हम उपर्युक्त कथित कार्य को करके छोड़ेंगे, (इसे मार देंगे)। यह सुनकर नरनाह कन्ह बोला, इस बार इसे कोई नहीं मार सकता। केवल पंजाब देने पर यह छोड़ा जा सकता है। हे वीर हम्मीर! इसी बात पर हमारे कहने से ही शाह को हमें दे दीजिये (हमारे कहने से इस बार शाह को छोड़ दीजिये)।

तब बुल्ल्यौ पृथिराज, कहे काका सा किज्जै।
जेता रंजक होइ, तिता लादा भरि लिज्जै॥
जग्ग्य कियौ पंडवन, हेम का चौ उनि आन्यौ।
त्यौं लभ्यौ पतिसाह, लक्ख लोहा हम मान्यौ॥
करि दण्ड कंन्ह पतिसाह को, लौहानौ सत्थै दियौ।
असवार सहस सत्थे चले, कर सिर कंन्ह इत्तौ कियौ॥ ३२॥

ग्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थ:—बुल्ल्यौ=बोला। रंजक होइ=प्रसन्न कर सकता हो, दे सकता हो। का=क्या। चौं=चारों ओर का। उनि=उन्होंने। आन्यौ=लिया कर=लगान, ऋण।

अर्थ:—तब पृथ्वीराज ने कहा-जो काका कन्ह कहे वही बात माननी चाहिये, जितना यह (गौरीशाह) प्रसन्नता पूर्वक दे सके (दे सकता हो) उतना दण्ड भर लिया जाय (दण्ड ले लिया जाय)। पाण्डवों ने भी राजसूय यज्ञ किया; किन्तु क्या उन्होंने चारों ओर का सोना ले लिया? (चारों दिशाओं को जीत लिया लेकिन सब की सम्पत्ति नहीं ली)। उसी प्रकार तुमने बादशाह को पकड लिया है। जिससे लाखों शत्रुओं ने हमारा लोहा माना है यही विशेषता है। यह कहकर कन्ह के कथनानुसार बादशाह पर दण्ड किया गया और एक हजार सवारों सहित लोहाने को गजनी सुरक्षित पहुँचाने के लिये साथ में दिया। इस प्रकार इस बार कन्ह ने बादशाह के सिर पर प्राणदान देने का ऋण किया।

करि सलाम गजनेस, करिय नवनीह दिलेसर ।
तम रखियो हम प्रीति, बरख मन सत्त हकेसर ॥
पेसंगी धर सीम, बीच पौरान कुरानं ।
जो तक्कौ तुम अबै, तबै तुम कढ़ियो प्रानं ॥
उत्तरौं अटक तौ मैं अवर, मुसलमान नांही धरौं ।
तुम हमसु प्रीत चलि है बहुत, हूं न अबै ऐसी करौं ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—नवनीह=नमन, सलाम । बरख=वर्ष । मन-सत्त=सच्चे मन से, शुद्ध भाव से । हकेसर=श्रेष्ठ ढंग से विदा किया । पेसंगी=पेश किया हुआ, संधि रूप में दिया हुआ । अवर=अन्य, और ही । नांही-धरौ=न समझो । हूं=मैं ।

अर्थः—विदा होते समय शाह ने नम्रता के साथ पृथ्वीराज को सलाम किया और कहा, आपने एक वर्ष तक शुद्ध भाव से हमें प्रीति पूर्वक रखकर विदा किया है इसलिये जो पेश किया हुआ (संधि में दिया हुआ) भूभाग सीमाबद्ध है । उसकी ओर अब मैं फिर देखूं तो तुम्हारे और हमारे बीच कुरान और पुराण हैं । यदि फिर मैं ऐसा करूँ तो आप प्राण दंड ही दीजियेगा । अब मैं अटक से इस पार आऊँ तो मुसलमान नहीं, मुझे और ही समझिये । तुम्हारे हमारे बीच अब प्रीति रहेगी और भविष्य में ऐसा नहीं होगा ।

सु पहु[१] चल्ल्यो सुरतान, दियो लोहानों सत्थे ।
सहस सेन असवार,[२] काल छुट्यो सें हत्थैं ॥
गयो बोस म्होलान, अटक उत्तरि अनपारं[३] ।
सोवन पथ मेलान, सहस संम्हे असवारं ॥
निसुरत्ति सुतन दरिया सुतन, आइ कियो सल्लाम तहँ ।
आजान बाह महिमान किय, चल्यौ अप्प गज्जन रहँ ॥ ३४ ॥

प्रा. पा. १, सर्व प्रति । २, दे. । ३, पा. ।

शब्दार्थः— पहु=राजा पृथ्वीराज । सें हत्थै=स्वयं हाथों से । म्होलान=मुकाम । सोवन=छोन नदी । मेलान=मुकाम । संम्हे=सामने । रहँ=राह ।

अर्थ—राजा पृथ्वीराज दिल्ली रवाना हुआ और एक सहस्र सवारों सहित लौहाने को साथमें देकर पृथ्वीराज ने शाह को विदा किया ।

तब शाह ने मनमें समझा कि मैं साक्षात काल के हाथ से छूट पाया हूँ। वह रास्ते में वीस स्थान पर ठहरता हुआ गहरी अटक नदी के पार उतरा। वहाँ सोन पथ पर एक हजार सवार सामने लेकर निसुरत्तिखां और दरियाखां का लड़का आकर मिला और सलाम की। शाह ने लौहाने आजान बाहु को अपने यहाँ महमान होने का आग्रह कर उसे साथ में लिया और वहाँ से आगे बढ़ा तथा गजनी का रास्ता लिया।

रय सल्लह रिन-वट्ट[१], सहस अट्ठारह सत्थें।
हे रौ-करि पतिसाह[२], पुले-लग्गा इन-पत्थें ॥
दुत्त-च्यारिअनु सार[३], कटक देख्यौ असवारह।
कह्यौ चरन सब सत्थ, सहस दुइ सेना-सारह ॥
तिन बार बज्जि त्रंबाल बहु, सिलह सज्जि दरबार[४] सहु।
उत्तार्‌यौ कटक छोरे अटक, नद्दी हुऔ उगंत पहु ॥ ३५ ॥

ग्रा०पा०१, पा०का०। २, घ०भीं०पा०। ३, घ०। ४, पा०।

शब्दार्थः—रिन-वट्ट=युद्ध वट। हे रौ-करि=पता लगाता हुआ, खोज करता हुआ। पुले-लग्गा=चलने लगा। इन-पत्थें=उसके रास्ते, उसके पीछे। दूत-च्यारिअनु=दूताचारमें, दूत पने में। सार=सारा, श्रेष्ठ। चरन=दूतों ने। सेना-सारह=शस्त्र कुशल सेना या श्रेष्ठ सेना। तिनबार=उस समय। त्रंबाल=तासे, वाद्य। दरबार=दरबारी सैनिक। सहु=सब। कटक=दल, सेना। छोरे-अटक=अटक को पार करके। नद्दी=नाद। उगंत-पहु=दिन उदय होते २, प्रातः होते २।

अर्थः—युद्ध में जीवट रखने वाला अठारह हजार सैनिकों के साथ रयसल्ल नामक वीर बादशाह की खोज करता हुआ उसी के पीछे होगया। रयसल्ल के श्रेष्ठ दूतों ने शाह के साथ जो अश्वारोही दल था उसे देखा और उन्होंने रयसल्ल से कहा कि दो हजार शस्त्र-कुशल सेना, शाह के साथ है। यह सुनकर उसी समय उसने बाजे बजवाये और उसके सब सैनिकों ने कवच धारण किये। जब शाही दल अटक से पार हुआ तब प्रातःकाल होते २ रयसल्ल के रणवाद्यों का नाद सुनाई देने लगा।

गाथा

बज्जै पुट्ठि तँबालं[१], हथ्थिय नेजं सु उप्परं फहरँ।
जानि समुद्द उहालं, किय गजनेस हुकमयं मीरँ ॥ ३६ ॥

ग्रा. पा. १, घ.।

शब्दार्थः—पुट्ठि=पीठ पर, पीछे। तँबालं=त्रंबाल वाद्य। नेज=नेजा, पताका। उहालं=उमड़ा हो।

अर्थः—पीछे की ओर रणवाद्य बजते हुए और हाथियों पर पताकाएँ फहराती हुई दिखाई दी और रयसल्ल की सेना ऐसी दीख पड़ी मानों समुद्र उमड़ा हो, यह देख कर शाह ने मीरों को सचेत होने का आदेश दिया।

कवित्त

कह्यौ साहि[१] लोहान, कौन बज्जा बज्जाए।
दौरि दूत तिन बेर, धनी पछ्छिवानह धाए॥
कूंच कूंच पर कूंच, कौन पछ्छिवान धनी कहि।
तव जान्यौ रयसल्ल, सेन आजान बर्‌यौ सहि॥
पतिसाह चलौ हूँ[२] पछ्छि रहौं, सहस डेढ असवार दिय।
बंधेव फौज लौहान बर, दुहूँ[३] फौज टामंक किय॥ ३७॥
ग्रा० पा० १, ३, भीं०। २ का०।

शब्दार्थः—तिन बेर=उस समय। धनी=स्वामी, नरेश। पछ्छिवानह=पश्चिम देशीय। धाए=आया, बढ़ा। बर्‌यौ=स्वामित्व ग्रहण किया। सहि=सह, समस्त। हूँ=मैं। पछ्छि=पीछे। बंधेव=व्यूह बद्ध किया। टामंक-किय=नक्कारे पर डंका दिया, वाद्य बजे।

अर्थः—शाह ने लौहाने से कहा कि ये रणवाद्य किसके बजते हैं, तब दूतों ने दौड़ कर पता लगाया और कहा कि पश्चिम देशीय नरेश बढ़ रहा है। शाह ने पूछा कि निरन्तर आगे बढ़ने वाला यह कौन सा पश्चिमी नरेश है? जब ज्ञात हुआ कि यह तो वीर रयमल्ल है, तब लौहाने ने समस्त सेना का स्वामित्व ग्रहण कर बादशाह से कहा-आप चलिये, मैं पीछे रहता हूँ। यह सुनकर शाह ने ड़ेढ़ सहस्र सवार उसके साथ में दिये। तब वीर लौहाने ने अपनी सेना को व्यूह बद्ध किया और दोनों सेनाओं में रणवाद्य बजने लगे।

अरुन किरन पसरंत, आइ पहुँच्यौ रयसल्लं॥
बज्जे बान बिहंग, जानि जुट्टा दुय[१] मल्लं॥
संमाही आजान, तेग मानहु हवि दिट्ठिय।
जानि सिखर मझि बीज, कंध रेसल्लह बुट्ठिय॥

लोहान तनी बज्जै लहरि, को[२] हल्लै को[३] उत्तरे ।
परनाल रुधिर चल्लै प्रबल, एक घाव एकह मरै ॥ ३८ ॥

ग्रा० पा० १, घ० । २, ३, पा० ।

शब्दार्थ:—पसरंत=फैलने पर । बज्जे-वान—विहँग=पक्षियों के पंख-ध्वनि के समान बाणों की सनसनाहट होने लगी । जुट्टा=जुटे, मिड़े । संमाही=पकड़ी । हवि=हवि, हव्य । मझि=में, पर । बीज=बिजली । बुठ्ठिय=बरसी । तनी=की । को=कोई, कितने ही । उत्तरे=उतर पड़े । घाव=घायल ।

अर्थ:—सूर्य की अरुण किरणें जब फैल रही थीं, उस समय रयसल्ल आ पहुँचा । पक्षियों की पंख ध्वनि के समान बाणों की सनसनाहट होने लगी और लौहाना व रयसल्ल भिड़ते हुए ऐसे दीख पड़े, मानों दो मल्ल जूझ पड़े हों । लौहाने ने तलवार पकड़ी, वह तलवार हवि के समान शत्रुओं का होम (स्वाहा) करती हुई दृष्टि गोचर हुई । रयसल्ल के कंधे पर वह इस प्रकार पड़ी, मानों शिखर पर बिजली पड़ी हो । लौहाने की तलवार के चल कितने ही भाग गये और कितने ही उस तलवार के घाट उतर पड़े । भयंकर रूप से खून का परनाला बह चला । उस वीर के आघात से कोई घायल हुआ और कोई मारा गया ।

दोहा

मुह-मुह चमकै दामिनी, लोह बज्यौ लौहान ।
इक उप्पर इक इक्क तर, लुत्था[१] लुत्थ समान ॥ ३९ ॥

ग्रा० पा० १, घ० ।

शब्दार्थ:—मुह-मुह=मधुर मधुर, शनैः २ । दामिनी=बिजली । तर=तल, नीचे, तले । लुत्था लुत्थ=गुत्थम् गुत्था ।

अर्थ:—लौहाने ने ऐसा लोहा बजाया, मानों शनैः २ बिजली चमक रही हो । जिससे वीर एक दूसरे पर इस प्रकार ऊपर तले पड़ने लगे मानों वे गुत्थम् गुत्था हो रहे हों ।

पर्‌यौ लुत्थि रयसल्ल तहँ, ढुंढि खेत लौहान ।
सु बर साहि गोरी त्रिभय, गयौ सु गज्जन थान ॥ ४० ॥

शब्दार्थ:—लुथि=भिड़ कर । सु-बर=उस लौहाने के बल पर । त्रिभय=निर्भय ।

अर्थ:—उस समय रयसल्ल लड़ता हुआ धराशायी हुआ । लौहाने ने रणक्षेत्र को खोजा । उस लौहाने की शक्ति पर ही गौरीशाह निर्भय होकर गजनी पहुँचा ।

कवित्त

तत्तारिय खुरसान, सुतन गोरी पय लग्गा ।
न्यौछावरि करि-खैर, बहुत मनसा भय भग्गा ॥
लक्खव एक असवार, मिल्यौ गौरी दल पक्खर ।
लक्ख भए दरवेश, आइ पइ-लग्गे गक्खर ॥
उच्छाह भयौ गज्जन इला, गयौ मभिझ गोरी-धनिय ।
दरबार भीर मीरन्न[1] घन, मिलत आइ अप-अप्पनिय ॥ ४१ ॥

[1] पा० १, घ० ।

शब्दार्थ:—करि-खैर=खैर मनाई । बहुत मनसा=मन में बहुत से । भग्गा=दूर हो गये । पक्खर=पखरेत अश्वारोही । दरवेश=फकीर । आइ=आकर । पइ-लग्गे=चरण छूये । मभिझ=में, अन्दर, महल में । गोरी-धनिय=गोरियों का स्वामी । अप-अप्पनिय=अपने सब ।

अर्थ:—तत्तारखां, खुरासानखां और शाहजादा ने आकर शाह के चरण छुए और न्योछावर कर खैर मनाई । मन में जो आशंकायें थीं, वे सब दूर होगई । गौरी का एक लक्ष अश्वारोही दल उससे आकर मिला और लाखों गक्खर, जो युद्ध में फकीर होगये थे, वे भी आकर शाह के चरण छूने लगे । इस प्रकार गजनी में और उसके प्रान्त में उत्सव मनाया गया । फिर गोरीशाह ने महलों में प्रवेश किया । सभा में बहुत से मीरां की भीड़ लग गई और जो अपने थे वे सब आकर मिले ।

डेरा दिय लोहान, करिय मनुहारि रोज दस ।
करिय सत्त आजान तुरिय पंचास अप्प बस ॥
इह दिन्नौ लोहान, बियौ भेज्यौ नृपराजं ।
लादे दोइ हजार, सत्त सै तोल साजं ॥
इक इक्क तुरी हथ्थी सु इक, सामन्तन दीनौं सबै ।
मुह करिय कित्ति अन्नेक विधि, सुबर सूर फेरिय जबै ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ:—मनुहारि=मनुहार। करिय=करि, हाथी। सत=सात अप्प बस=मालिक के अधीन रहने वाले। बियौ=अन्य, कोष भेंट। लादे=उठ पाये। साजं=साज बाज। सुबर=सबल। सूर=शूर, शूरवीर। फेरिय=फेरा, विदा किया।

अर्थ:—लौहाने को डेरा दिलवाया गया और दस दिन तक मनुहार कर रखा। प्रस्थान के समय उसे मदमस्त सात हाथी और सवार के अधीन रहने वाले पचास घोड़े दिये। शेष भेंट पृथ्वीराज को भेजी जिसमें दो हजार सात सौ तोला (सुवर्ण) साज बाज (भूषणादि) थे। एक २ घोड़ा और एक २ हाथी सब सामन्तों के लिये भेजा। इस प्रकार उस बलवान वीर को विदाकर शाह ने अपने मुंह से राजा और सामन्तों की बहुत कुछ प्रशंसा की।

सीख दई लोहान, चल्यौ दिल्लिय पंथानं।
संग सहस असवार, अप्प रिध वासव यान॥
दिल्लीपति सामंत, कुलो[1] छत्तीसह दक्खै।
मिल्यौ बाह आजान, बत्त सुरतान सु अक्खै॥
इक इक्क तुरिय हत्थी सु इक, सामंतन पठए घरैं[2]।
सोव्रन्न रासि रंजक खरह[3], मुक्कलियै चित्रंगपुरैं॥ ४३॥

ग्रा० पा० १ से ३, दे०।

शब्दार्थ:—सीख दई=विदा दी। पंथानं=राह, पथ। अप्प=अर्पित की हुई। रिध=रिद्धि, सम्पत्ति। वासव यानं=इंद्र विमान। खरह=खरा, शुद्ध। चित्रंगपुरैं=चित्तौड़ेश्वर के पास।

अर्थ:—लौहाने ने विदा मिलने पर दिल्ली की राह ली। उसके साथ एक हजार सवार, अर्पित की हुई सम्पति और इन्द्रविमान था। छत्तीस ही वंश के रण-दक्ष सामन्तों और दिल्लीश्वर से आकर वह आजान बाहु लौहाना मिला और शाह के यहाँ की बातें कहीं। फिर राजा ने शाह द्वारा भेजा हुआ एक २ हाथी और एक २ घोड़ा सामन्तों के यहाँ भिजवा दिया और दंड-स्वरूप आया हुआ शुद्ध स्वर्ण और चांदी चित्तौड़पति के पास भेंट रूप में भेजी।

गढ़ चित्तौड़ दुरंग[1], भट्ट पठयौ परिमानं।
लहे[2] सित्त[3] सुरंग, सित्त लैं तुलत प्रमानं॥

दुय[१] हत्थी मयमत्त, मत्त हय वर कुल राकिय ।
छत्र लियौ पतिसाह, जटित मनि मानिक साकिय ।।
लै चंद चल्यौ चित्तौड़गढ़, जाइ समप्यौ राव रह ।
बहु दान दियौ रावर समर, चल्यौ भट्ट अप्पन घरह ।। ४४ ।।

ग्रा० पा० १, घ० भीं० का० । २, पा० । ३, भीं० का० । ४, भीं । ५ दे० ।

शब्दार्थ:—परिमानं=परिमाण, प्रमाण । लद्दे=लादे जा सके । सित्त=सौ । सुरंग=घोड़े । तुला=तुलादान (राजा, महाराजा, श्रीमंतादि अपने बराबर सोना चांदी तोलकर दान करते हैं, उसे तुलादान कहते हैं) । राकिय=ऐराकी । साकिय=साज ।

अर्थ:—वह द्रव्य लेकर कविचंद को दुर्गम दुर्ग चित्तौड़ भेजा जिसका प्रमाण निम्न है-सौ अच्छे घोड़े लादे गये, जितना द्रव्य था वह सौ तुला के बराबर था । दो मस्त हाथी, सौ ऐराकी घोड़े तथा जो शाही छत्र लूटा गया-वह तथा अन्य मणि-माणिक जटित साज बाज इत्यादि थे। वह उन्हें लेकर चित्तौड़ पहुँचा और वहाँ जाकर उसने रावल को समर्पित किया। तब रावल (समर विक्रम) ने चंद को बहुत दान देकर विदा किया ।

करनाटी पात्र

(समय २८)

दोहा

दूत चरित दिल्ली तनौ, देखि गयौ कनवज्ज ।
चढ़त पंग संम्हौ मिल्यौ, सु बरबीर कमधज्ज ॥ १ ॥

शब्दार्थ:—चरित=हाल । तनौ=का । कनवज्ज=कन्नौज । पंग=पंगुराज जयचंद । चढत= चढ़ाई करते समय । संम्हौ=सामने । सु=उस । बरबीर=श्रेष्ठवीर ।

अर्थ:—दिल्ली की स्थिति देखकर दूत कन्नौज गया । वह श्रेष्ठ कमधज वीर जयचंद के सामने उसी समय जाकर खड़ा हुआ, जब कि वह चढ़ाई करने वाला ही था ।

करिषल खट सुरतान सौं, दल भग्गौ सुविहान ।
अब करनाटी देस पर, चढि चल्यौ चहुवान ॥ २ ॥

शब्दार्थ:—करिषल=कर्षण, । षट=छः । सुविहान=सुबहानी, मुसलमानी, शाही ।

अर्थ:—दूत ने कहा-सुलतान से छः बार युद्ध में टक्कर हुई जिससे शाही दल को भागना पड़ा । अब वीर चौहान ने (पृथ्वीराज ने) करर्नाटक देश पर चढ़ाई की है ।

कवित्त

चढ़यौ सुबर चहुवान, बीर क्रन्नाट देस पर ।
मिली जद्दव बर सेन, तारि कढ्यौ सु तुंम[1]नर ॥
धर दक्खिन[2]दक्खिन[3]नरिंद, सबै प्रथिराज सुगाही ।
तिन राजन इक्क पात्र पठय, नाइक घर थाही ॥
बर बीर युद्ध, कमधज्ज[4] ! करि, भीर भगी बर बीर अचि ।
तिहि दिनां वीर पज्जून[5] पर, खग्ग[6] मारि[7] बोहिथ्थ मचि ॥ ३ ॥

ग्राह्यपाठ-१ का । २, से ६, सं० । ७, पा ।

शब्दार्थ:—बरसेन=नाम विशेष या श्रेष्ठ सेना । तारि=ताड़ना देकर । कढ्यौ=निकाल दिया । तुंम=तोम, समूह । गाही=कुचलदिया । पात्र=वैश्या (इसे दासी भी लिखा है) । पठय=पठाई, भेंट

स्वरूप दी। नाइक=उस्ताद (नर्तक)। घरथाही=घर की शक्ति थाह कर। अचि=शोषण कर। बोहिथ्थ=बहुत, विशेष

अर्थः—उस बलवान चौहान ने कर्नाटक देश पर चढ़ाई की, जिससे बरसेन नामक यादव को पराजित कर (यादवी सेना को पराजित करके) नर समूह को (पृथ्वीराज ने) ताड़ना दी और निकाल दिया। दक्षिणी प्रदेश और वहाँ के राजाओं को पृथ्वीराज ने कुचल दिया। उन राजाओं ने मिलकर, अपने घर की स्थिति देखकर एक वैश्या और नायक (नर्तक) भेंट स्वरूप पृथ्वीराज के पास भेज दिये। हे-कमधज्जराज! सुनिये, उस वीर श्रेष्ठ पृथ्वीराज ने युद्ध में बहुत से उत्तम वीरों का रक्त शोषण कर उन्हें भगा दिया। इस युद्ध में वीर पज्जून पर तलवार चलाने का विशेष भार पड़ा (अर्थात् उसने विशेष शक्ति लगाई)।

दोहा

ले आयौ नाइक्क सथ, करनाटी प्रिथिराज[१]।
जत्र तत्र एकठ भए, सबै साज सम्माज ॥ ४ ॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—करनाटी=कर्नाटक देश की होने से वैश्या को करनाटी लिखा गया। जत्र तत्र=यत्र तत्र। साज=सामान, वाद्य, यन्त्रादि। सम्माज=समाज।

अर्थः—इसप्रकार पृथ्वीराज नर्तक सहित करनाटी को अपने साथ में ले आया, जिससे नाट्य तथा गायन विषयक सब साज सामान संग्रहीत हुआ और उस वैश्या को देखने के लिये समाज एकत्रित हो गया।

कवित्त

संवत इकत्यांलीस[१], सुदिन प्रिथिराज राज भर।
अति सामंत उभार, तखत[३] धज ध्रम्म ढिल्लि धर ॥
दिय थानक नाइक्क, नाम किल्हन[४] गुन[५] गेयं।
अति संगत सु विद्य[६], कला लच्छन्न[७] अनेयं[८] ॥
ना सत्थ त्रीय रति रूव तन, वरस[९] चवद चातुर सकल।
दुव तीस सुलच्छित[१०] मति विमल, अति मति अगनित विद्य वल[११] ॥ ५ ॥

ग्रा. पा. १, सं.। २,३,५,७,१०, का.। ४, घ. पा.। ६, ८, का.। ९, ११, का घ.।

शब्दार्थः—उभार=फूलना। तखत=तख्त। धज=ध्वजा। ध्रम्म=धर्म। दिल्लि=दिल्ली। थानक=निवास स्थान, गृह। गुनगेयं=गुण ज्ञाता। विद्य=विद्या। लच्छंन=लक्षण। अनेयं=अपार। रूत्र=रूप। दुत्र तीस=बत्तीस। लच्छिन=लक्षण। मति=बुद्धि।

अर्थः—अनंद संवत् ११४४ (वि० १२३५) में पृथ्वीराज ने यह विजय की। वे दिन पृथ्वीराज और उसके सामन्तों के लिए अच्छे थे। इस विजय से सामन्त फूले नहीं समाये। उस समय दिल्ली का तख्त धर्म की ध्वजा स्वरूप था। पृथ्वीराज ने भेंट में आए हुए नर्त्तक किल्हन को, जो गुणज्ञ, संगीतज्ञ, विद्या एवं कला का ज्ञाता और अनेक सुलक्षणों से युक्त था, रहने के लिये निवास स्थान दिया। उसके साथ वह स्त्री (कर्नाटी वैश्या) थी, जिसके शरीर की सुन्दरता रति के समान थी। वह चौदह वर्ष की आयु वाली, सब बातों में चतुर, बत्तीस ही लक्षणों से युक्त, निर्मल मतिवाली और अपार विद्याबल कारण विशेष मतवाली थी।

दोहा

संझ समय अंदर महल, किय सु राज-ग्रह धाम।
अप्प बयट्ठौ राज तहँ, अनत सजग्गित काम॥ ६॥

शब्दार्थः—संझ=सांझ, संध्या। महल=सभा। राज-ग्रह=राज-महल। धाम=खास महल। अप्प=आप-स्वयं। बयट्ठौ=बैठा। अनत=अनंत, विशेष। सजग्गित=सजग, सचेत (जागृत अर्थ भी होता है, किन्तु मर्यादा के खयाल से काम में नहीं लिया गया)।

अर्थः—संध्या होने पर पृथ्वीराज ने राज-महलों के अन्दर अपने खास महल में सभा की और स्वयं विशेष रूप से कामदेव से सजग रहकर आ बैठा (अर्थात् वैश्या पर मोहित होकर भी उसने सभा में मर्यादा का ध्यान रक्खा)।

कवित्त

रच्च धाम अभिराम, राज हरि थान वयट्ठौ।
दिपत देह[1] सुभ लीह, तेज उभ्भर तप जिट्ठौ॥
बोलि चंद पुण्डीर[2], बोलि जद्दव रा जानं।
निड्डर बोलि कमधज्ज, अत्ति जा मति[3] बल सामं॥

बलि भद्र बोलि कूरंभ भर, लोहानौ आजान भुअ्र ।
बैठक्क बैठि आसन्न सजि, ताम[४] सतप्पै तेज धुअ्र ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १, २, टि० । ३, पा० । ४, सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—हरिथान=सिंहासन । वयट्ठौ=बैठा । सुभ=शोभित । लीह=लकीर, मर्यादा । उम्भर=फैला । जिट्ठौ=ज्यैष्ठ । बोलि=बुलाया । जद्दव=यादव । रा-जामं=जामराय । निड्डर=निड्डुरराय । जा=उसकी । सामं=समान, बराबर । कूरंम=कूर्म, कछवाहा क्षत्रिय । भर=भट, सुभट वीर । लोहानौ=लोहाना क्षत्रीय । आजान भुअ्र=आजानुबाहु । बैठक्क=निर्धारित स्थान । ताम=उस समय । सतप्पै=तपते हैं । धुअ्र=ध्रुव ।

अर्थः—उस राजमहल को सुन्दर सजाया गया, वहाँ सिंहासन लगा हुआ था, उस पर आकर राजा बैठा, जिसके शरीर पर दीप्ति और मर्यादा सुशोभित थी, जिसका तेज ज्यैष्ठ मास के समान फैल रहा था। उस राजा ने सभा में चंद पुण्डीर, जामराय यादव, अपने समान ही बल और विशेष बुद्धि रखने वाले निड्डुरराय कमधज, कछवाहा वीर बलिभद्र, और लोहाना आजानबाहु को बुलवाया। वे सब आकर अपने २ निर्धारित आसन पर बैठ गए। उस समय उनका तेज ध्रुव-कान्ति के समान था।

बोल ताम नाइक्क, सत्थ सत्थह सब साजं ।
बोलि पात्र कर्नाटि, बैठि गानं वर[१] वाजं ॥
नाटक भेव[२] निबंध; बूझि राजन वर वत्त[३] ।
क्वन कलाकृत पात्र; कहौ नाइक निज सत्तं ॥
नायंक[४] कहै प्रथिराज सुनि; एह पात्र दिक्खो[५] सु पय ।
इह रूप रंग जोवन सुवय; कला मनोहर चिंति मय ॥ ८ ॥

ग्राह्यपाठः-१, ३, ५ पा० । २ सर्व प्र० । ४ घ० ।

शब्दार्थः—सत्थ-सत्थह=साथ २ । गानं=गायन । वर वाजं=श्रेष्ठ वाद्य । भेव=भेद । निबंध=रचना । वर वत्तं=श्रेष्ठ बात । कलाकृत=कला-कौशल । सत्तं=सत्यं । नायंक=नायक, नर्तक । सु पय=अच्छा पानी, अच्छी कांति, अच्छा नूर । इह=इसका । जौवन=यौवन । सुवय=अच्छी आयु । मनोहर=सुंदर । चितिमय=चिंतन करने योग्य ।

अर्थ:— तब नर्तक को सभा में संगीत की सभी सामग्री सहित बुलाया और कर्नाटी वैश्या भी बुलाई गई। वह श्रेष्ठ वाद्य-यंत्रों के साथ बैठ कर गाने लगी। राजा शिष्ट ढंग से वार्त्तालाप करता हुआ नर्तक से नाट्य रचना के भेद और उस वैश्या की कला कुशलता के विषय में पूछने लगा और सत्य उत्तर देने के लिए आदेश दिया। तब नायक कहने लगा—हे राजन! यह अच्छे नूर (कांति) वाली है और इसका रूप, रंग, यौवन, आयु तथा कला सब प्रकार से सुंदर और चिंतन योग्य है।

साटक

विद्या विनय विवेक, वानि विमलं वर्णो कुवेर-प्रभा।
सुविचारो सुविचक्षणे सु[1] सुभनं सौजन्य सौंदर्यता॥
भाग्यं रूप अनूपमं रस रसं संजोग विभ्भोगयं।
मांगल्यं संपूर सौम्य कल सं जानंति[2] केली कला॥ ६॥

प्रा० पा०, १, २ पा०

शब्दार्थ:—वानि विमलं=शुद्ध वाणी, शुद्ध उच्चारण। वर्णो=कही जाती है। कुबेर–प्रभा=कुबेर की कांति (कुबेर का नूर उसके लक्ष्मी संपन्न होने से है, अतः लक्ष्मीवंत या लक्ष्मी स्वरूपा अथवा संतान पिता का अंश माना गया है अतः यक्ष कन्या, या कुबेर की साक्षात् कन्या भी अर्थ हो सकता है)। सुविचारो=अच्छी प्रकार से विचार लिया है, भली प्रकार से माना है, भली प्रकार से मानिये। सु=इसे। रसं=रसिक, लीन। विभ्भोगयं=उपभोग करने योग्य। सौम्य कल=चंद्रकला। सं=यह।

अर्थ:—विचक्षण पुरुषों ने इसे विद्यावान्, विनयी, विवेकी, शुद्ध उच्चारण करने वाली, कुबेर की कांति स्वरूपा लक्ष्मी (यक्ष कन्या के समान) अच्छे विचार वाली, श्रेष्ठ मनवाली, सौजन्य एवं सौंदर्य्य युक्त और भली माना है (हे विचक्षण पुरुषो! इसे उपर्युक्त गुणों से युक्त मानिए)। इस का भाग्य और रूप अनुपम है, यह नवों रसों में लीन है और संपर्क करने योग यह म [illegible] स्वरूपा, स [illegible] चंद्रकला के समान है और [illegible]लिकला को जानने वाली है।

मृदु वाचं[१] मृदु गान वाक्य[२] रचना मर्यादया[३] मंडनं ।
उद्दायं उद्दार दीप्ति[४] उवहं[५] एते गुना राजयं ॥
सोयं जान विचार सार[६] चतुर विव्वेक विच्चारयं ।
सोयं नीति सुनीति कित्तिअ तुलं प्राप्तं जयं जोरय ॥ १० ॥

प्रा० पा० १ से ६ तक पा० ।

शब्दार्थः—मृदुवाच=मधुर वचन । मृदुगान=मधुर गान । मर्यादया=मर्यादा से । मंडनं=मंडित । उद्दायं=उदित होकर । उद्दार=उदार । उवहं=प्रसारित होती है । एते=इतने । राजयं=हे राजन् । सोयं=इसे । सार=तत्त्व । चतुरं=चतुरों के । विव्वेक=विवेक । विच्चारयं=विचारा । सुनीति= सुनिए । कित्तिअ=कीर्ति । तुलं=तुल्य । जयं=विजय के । जोरयं=बल पर ।

अर्थः—हे राजन् ! इसके बचन, गीत और वाक्य रचना मधुर है, यह मर्यादा से मंडित है, इसकी दीप्ति उदित होकर फैलती रहती है, यह इतने गुणों से सुशोभित है । इसे आप चतुर पुरुषों के विचार के लिये तत्त्व रूप समझिए । यह मैंने विवेक से विचार कर कहा है । इसे नीति रूप समझिए और आपने इसे विजय के बलपर प्राप्त किया है । अतः इसे कीर्ति-तुल्य मानिए ।

दोहा

काम कला तुट्टे[१] नृपति सुग्रिह[२] पवारी द्वार ।
तिन अवास दासी सघन. अहनिस रहि[३] रखवार ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १, २. पा० । ३, पा० का० ।

शब्दार्थः—तुट्टे=सन्तुष्ट हुआ, प्रसन्न हुआ । सु=उसका । ग्रिह=घर । पवारी=रानी प्रमारिनी (इच्छनी) । सघन=गहरी, विशेष, बहुतसी । अहनिस=अहर्निशि, रातदिन । रहि=रही, रक्खी गई ।

अर्थः—उस काम-कला रूपी कर्नाटा पर राजा प्रसन्न होगया । रानी इच्छनी प्रमारनी के अंतःपुर के बाहर के द्वार पर इसे रहने को भवन दिया और उसके भवन पर रक्षा के लिए रात दिन बहुतसी दासियाँ रख दीगई ।

—:-❀-:—

देवास कथा (पीपा युद्ध)

(समय २६)

कवित्त

महलु[1] भयौ त्रप[2] प्रात, आइ सामंत सूर भर ।
ठट्टा दिसि उच्चरिय[3], गवन[4] चावंड[5] राइ वर ॥
वंभन[6] वास सु राज, कोइ मुक्कलि[7] वड़[8] काजं ।
भुम्मिय[9] लघु[10] दिघ[11] निकट[12], सीस[13] कड्ढे[14] नहिं[15] आजं ॥
कयमास[16] वोलि[17] मंत्री तहाँ, मंत्र लज्ज[18] जिहि राज[19] भर ।
सिरु[20] नाइ आइ विट्ठौ[21] ढिगह, मनहु[22] देव[23] रजि[24] इन्द्र दर[25] ॥ १ ॥

ग्रा० पा०:- १, ६, ८, ६, १०, ११, १३, १७, १८, २०, २१, २२, पा० । २, दे० का० भी० । ३, ४, ५, दे० १३, १४, १५, १६, १६, २३, २३, २५, पा० दे० ।

शब्दार्थः—महलु भयौ=सभा की त्रप=नृप, राजा । आइ=आए । सामंत=प्रथम श्रेणी के वीर । सूर=बहादुर, द्वितीय श्रेणी के वीर । भर=भट, तृतीत श्रेणी के वीर । ठट्टा=स्थान विशेष । दिसि=दिशा । उच्चरिय=कहा, बोला । गवन=गमन । चावंडराय=पृथ्वीराज का सामंत चामुंडराय (इसे खंडेराव भी लिखा है) । वंभनवास=ब्रह्मवासे (ब्रह्म क्षत्रिय चालुक्यों के भूभाग की ओर) । कोइ=किसी को । मुक्कलि=भेजा । बड़ काजं=बड़े कार्य के लिए (किसी विशेष गुप्त कार्य के लिए) । भुम्मिय=भोमिए, भूमि पति, (राजस्थान में भौमिए वे कहलाते हैं, जिनका शासन प्रारंभ से उस भूभाग पर रहता आया हो । अब उन भोमियों का उस भूभाग पर शासन न रहते हुए भी उदरपूर्ति के लिए कुछ २ जमीन कुए रह गए हैं जिनके बजाय भी क्षत्रियोचित नौकरी देनी पड़ती है) । लघु=छोटे । दिघ=दीर्घ, बड़े । सीस कड्ढे=सिर उठावें । आजं=आज । वोलि=बोलकर, बुलाकर । मंत्र लज्ज=मंत्र की लज्जा । जिहि=जिसको । राजभर=सारे राज्य को । सिरु=सिर, शीश । नाइ=नमाकर । आइ=आकर । विट्ठा=बैठा । ढिगह=पास में । रजि=सुशोभित । दर=दरवाजा, दरबार, सभा ।

अर्थः— प्रातः होने पर राजा ने सभा की, जिसमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय श्रेणी के योद्धा (क्रमशः सामन्त, शूर और सुभट) आ एकत्रित हुए । तब राजा ने श्रेष्ठ वीर

चामुंडराय को ठट्टा की ओर जाने के लिए कहा और एक विशेष व्यक्ति को ब्रह्म क्षत्रिय चालुक्य के निवास की ओर बड़े (गुप्त) कार्य के लिए भेजा। (वह गुप्त कार्य यह था कि) अपनी राज्य सीमा का निकट वर्ती कोई छोटा-बड़ा भूमि पति सिर न उठावे। ततपश्चात् कैमास मंत्री को, जिस पर सारे राज्य की मंत्रणा का भार था, वहाँ बुलाया गया। वह मंत्री सिर नमाता हुआ (आदर पूर्वक) राजा के निकट आकर बैठ गया। उस समय वह ऐसा दिखाई पड़ा, मानो इन्द्र की सभा में (प्रमुख) देवता सुशोभित हो।

कवित्त

गल्हां काज सुर्यंद; अस्त दद्धीच दीन कर।
गल्हां काज फन्यंद; कोटि पंचास[१] धरी धर॥
गल्हां काज नर्यंद; वंस दुरजोध मान रखि।
गल्हां काज सुंमान-धत्त आव्रत्त भुंमि लखि।
रहि हैं नरंणि गल्हां पहुमी; सार एक कित्ती सुमुख।
असि लक्ख हयनि दल पंग सौं; करौ क्यों न गल्हां पुरख॥२॥

१ पा० १ पा०।

शब्दार्थः—गल्हां=ख्याति सुर्यंद=सुरेन्द्र, इन्द्र। अस्त=अस्थि, हड्डी। दद्धीच=दधीच ऋषि। दीन=देना। कर=कर हाथ। फन्यंद=फुनिंद-शेष नाग। कोटि=करोड़। पंचास=पचास। धरी=धारण की। नर्यंद=नरेन्द्र, राजा। दुरजोध=दुर्योधन। मान=हठ। मन-धत्त=मान्धाता। आव्रत-भुम्मि=भू मंडल। लखि=लक्ष (उसने दिग्विजय करने की ओर ही ध्यान रक्खा)। नरंणि=नरों, पुरुषों। कित्ती=कीर्ति। सुमुख=अच्छा मुंह, विद्वानों का मुख। असि-लक्ख=अस्सी लाख। हयनि-दल=अश्वारोही सेना। पंग=पंगुराज, जयचंद। सौं=से। गल्हां पुरख=पुरुषत्व की ख्याति।

अर्थः—कैमास कहने लगा-हे नरेश्वर! ख्याति प्राप्त करने के लिए दधीचि ने इन्द्र के हाथ में अपनी हड्डियाँ दे दीं, शेषनाग ने पचास करोड़ योजन पृथ्वी को अपने सिर पर उठा लिया, दुर्योधन ने अपना कुल-हठ बनाये रक्खा और मांधाता ने समस्त भू-मण्डल को अपने अधीन करने का उद्देश्य रक्खा। (मरने के पश्चात्) मनुष्यों की ख्याति ही संसार में रह जाती है और (विद्वानों के) श्रेष्ठ मुँह द्वारा किया गया कीर्ति गान ही तत्त्व होता है। अतः हमें भी अस्सी लक्ष अश्वारोही सेना

रखने वाले पंगुराज जयचंद से लोहा लेकर (युद्ध करके) अपने पौरुष की ख्याति प्राप्त करनी चाहिए ।

दोहा

इह परतंग्य[1] नरिंद मन, करैं बनैं प्रथिराज ।
सकल सूर सामंत सम[2], मुहि अग्या सिर-ताज ।। ३ ।।

ग्रा. पा. १, २ पा. ।

शब्दार्थः—इह=यह । परतंग्य=प्रतिज्ञा । नरिंद=राजा । मुहि=मुझको । अग्या=आज्ञा ।

अर्थः—हे राजन पृथ्वीराज ! आपके मन में जो दृढ़ विचार हैं, उसे पूर्ण करना ही होगा । आप मुझे भी सब सामंत बहादुरों के समान ही अपना सेवक समझिए । आप जो आज्ञा देंगे, उसे मैं अपने सिर पर ताज के समान शिरोधार्य करूँगा ।

दोहा

सामँत[1] इक सय अग्ग[2] छह; तिन सँग[3] असी हजार ।।
असी लक्ख दल पंग सौं; गल्ह रहै संसार ।। ४ ।।

ग्राह्य पाठ–१-२-३-४ संशोधित ।

शब्दार्थः—सामँत=सामंत । सय=सौ, शत । अग्ग=आगे, ऊपर । छह=छ (६) । तिन=उन । लक्ख=लक्ष । सौं=के साथ । गल्ह=यश, ख्याति ।

अर्थः—राजा कहने लगा–हे सामंतों ! तुम्हारी कुल संख्या १०६ एवं तुम्हारे सैनिकों की (संख्या) ८० सहस्त्र है और पंगु दल की कुल संख्या ८० लाख है । यदि हमारा एक एक व्यक्ति उन सौ सौ सैनिकों से भिड़ पड़ें तो संसार में हमारी ख्याति अमर हो सकती है ।

दोहा

जग जीवनु अंछै[1] इसौ, ज्यौं[2] सुपनंतर राति ।।
अंजुलि जल जीवनु इसौ, आव घटति इम जाति ।। ५ ।।

ग्रा० पा० १, २ सं० ।

शब्दार्थः—जीवनु=जीवन । अंछै=इच्छे, इच्छा करता है । इसौ=इस तरह । राति=रात्रि । आव=आयु, उम्र । इम=इस तरह ।

अर्थः—जिस प्रकार कोई व्यक्ति स्वप्नावस्था में अपने आप को सुख सम्पन्न अनुभव करे; किन्तु उसकी वह सम्पन्नता चिरस्थायी न होकर क्षणिक ही होती है; उसी प्रकार व्यक्ति इस संसार में सुख पूर्वक जीवन यापन करना चाहता है; किन्तु उसका जीवन स्वप्न तुल्य क्षणिक ही होता है। उसकी आयु प्रतिपल उसी प्रकार कम होती जाती है, जिस प्रकार अंजली में लिया हुआ जल।

कहैं सूर सामंत सव, तो सम छत्रि न आज।
तो उर दिगपति भंभरैं; तो अग्या सिर राज ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—सव=सब। तो=तेरे। दिगपति=दिगपाल। भंभरैं=कांपते हैं। अग्या=आज्ञा।

अर्थः—सब बहादुर सामंत राजा से कहने लगे कि आपके समान आज कोई क्षत्रिय नहीं है। आपके डर से दिक्पाल तक थर्राते हैं। हे राजन्! हमें आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

चल्यौ राज सब सेन सजि, दिसि उज्जैनिय रंग ॥
आइ साहि जगह जूरन, लयैं सहायक पंग ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—दिसि उज्जैनिय=उज्जैन प्रान्त (देवास)। रंग=विनोद (ब्याह विनोद)। जूरन=जुटने को। लयैं=लिये।

अर्थ—तब पृथ्वीराज अपनी सेना सजाकर उज्जैन प्रान्त की ओर (देवास को) ब्याह-विनोद की इच्छा से चला। इधर जयचन्द से सहायता प्राप्तकर, बादशाह युद्ध करने की इच्छा से मार्ग में आ उपस्थित हुआ।

गही गैल देवास की, गहन उपन्नौ मिच्छ[१]।
नर च्यंतनु[२] उर और कछु[४], ईसुर[५] औरै इच्छ ॥ ८ ॥

प्रा० पा० १ से ५ दे०।

शब्दार्थः—गैल=रास्ता। गहन=ग्रहण, विघ्न। उपन्नौ=उत्पन्न हुआ, पैदा हुआ। मिच्छ=म्लेच्छ, यवन। च्यंतनु=चिन्तन। ईसुर=ईश्वर। इच्छ=विचारता, इच्छा करता।

अर्थ:—राजा ने यद्यपि देवास की ओर (विवाह विनोद की इच्छा से) गमन किया, किन्तु रास्ते में ही गौरीशाह से संघर्ष होगया। सच है, मनुष्य हृदय में विचारता कुछ ओर है और ईश्वर करता कुछ ओर ही है।

कवित्त

नर च्यंतनु कछु और, करै करता कछु औरै।
मन च्यंतनु करै ईसु, जीं सु नरु औरुइ दौरै॥
रचै रचनु नरु कोटि, जोटि जम पाई वस्त सह।
छिनक मद्धि[1] हरि हरै, केलि कर्त्तव्य कर्म यह॥
प्रथिराज गवनु देवास दिसि, व्याह विनोद उमंग हिय[2]।
अनच्यंत गज्जि[3] गज्जन[4] वलिय[5], आनि अचानक कंक किय[6]॥ ६॥

ग्रा. पा. १ से ६ सं०।

शब्दार्थ:—ईसु=ईश्वर। जीं=जी, जिय। नरु=कर। औरुइ=और ही, और तरफ को। दौरै=दौड़े। रचै रचनु=उपाय करके पैदा कर पाता है। कोटि=कोटि, क्रोड़, करोड़ों की संपत्ति। जमपाई=जमा कर पाता हैं, संग्रह कर पाता है, प्राप्त कर पाता है। वस्त=वस्तु। सह=सब। छिनक मद्धि=क्षण भर में। केलि कर्त्तव्य=क्रीड़ा कर्तव्य। कर्म=काम, फल। गवनु=गमन, जाना। अनच्यंत=अचानक, कल्पना तक नहीं। गज्जि=गर्जना की। गज्जन=गजनेश्वर। वलिय=बलवान। आनि=आकर। कंककिय=कलह किया, युद्ध छेड़ा।

अर्थ:—मनुष्य सोचता कुछ ओर है और ईश्वर करता कुछ और ही है। मनुष्य का मन वाह्य रूप से ईश्वर चिंतन करता है, किंतु उसका जीव अन्य वस्तु की ओर दौड़ता रहता है। वह अनेकानेक उपायों द्वारा करोड़ों की संपत्ति और विविध पदार्थ प्राप्त करके संग्रह कर लेता है; किंतु ईश्वर उन संचित वस्तुओं को क्षण मात्र में ही उससे हर लेता है। यह समस्त क्रीड़ा कर्म (भाग्य) का ही परिणाम है। पृथ्वीराज का देवास की ओर जाने का कारण वहाँ की राजकुमारी से विवाह करना था; किंतु बीच में ही, जिसके आने की कल्पना तक नहीं थी, यह बलवान गजनेश्वर आकर गर्जना करने लगा और यकायक युद्ध छिड़ गया।

PL

दोहा

जरासंध सौं जदुपति, संग पंथ सुत-वाइ ।
आनि अचानक जुद्ध[1] कौ, तिम गज्जनवै[2] आइ ॥ १० ॥

प्रा. पा. १, २ दे. ।

शब्दार्थः—सुत-वाइ=वायु पुत्र, हनुमान । गज्जनवै=गजनेश्वर ।

अर्थः—जिस प्रकार जरासंध से कृष्ण और हनुमान से रास्ते में कालनेमि ने अचानक युद्ध छेड़ दिया था, उसी प्रकार पृथ्वीराज से गजनेश्वर आ भिड़ा ।

कवित्त

ज्य वावन वलि पास; अनि अन च्यंत छलनु किय[1] ।
लै धर रक्खि[2] पताल, इन सु रनि वंधि छंड दिय[3] ।
दस हूं दिसि दल उमडि, घुमडि घन घोर आइ जनु ।
मीर मसंद मसंद; वान वहु व्रिष्टि वुंद जनु ॥
दोउ दीन दुँद दनु देव दुति; भ्रम भग्गे[4] लग्गे[5] लरण ॥
प्रलै[6] काल हाल दिखिये नजरि; मनहु म्रत्य वत्ती[7] करण ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १ से ७ । दे० ।

शब्दार्थः—वावन=वामन भगवान् । वलि=राजा बलि । छलनु किय=छल किया । रक्खि=रख दिया । पताल=पाताल । रनि=रण में, युद्ध में । वंधि=बांध कर, बंधन में लेकर । छंड दिय=छोड़ दिया । दस हूँ=दसौं, दस ही । दिसि=दिशाओं से । उमडि=उमड़ कर । मसंद=मसनद धारी, जिन्हें राज दरबार में भी मौढ़ा मसनद लगा कर बैठने की इज्जत हो । वान=बाण, तीर । व्रिष्टि=वृष्टि, बरसने लगी । वुंद=बूँदें । दुंद=द्वंद्व-लड़ाई । दनु=दानव । दुति=द्वितीय । भ्रम भग्गे=सन्देह निवारण हुआ लग्गे लरण=लड़ने लगे । प्रलै=प्रलय । दिखिये=देखा जाने लगा । म्रत्य=मृत्यु । वत्ती करण=व्यवसाय कर रही हो ।

अर्थः—जिस प्रकार वामनावतार ने बलि को छलने के लिए अचानक पहुँच कर, उससे पृथ्वी छीन कर उसे पाताल में पहुँचा दिया, उसी प्रकार गजनेश्वर भी पृथ्वीराज के पास (युद्ध करने के लिए) यकायक पहुँच गया, किन्तु वह पृथ्वी तो प्राप्त नहीं कर सका, (उलटा) स्वयं ही बंधन में आगया और जिसे पृथ्वीराज ने पुनः

छोड़ दिया (अर्थात् वामनावतार से पृथ्वीराज ने विशेष कार्य किया)। उस समय दसों दिशाओं से सेना के दल के दल इस प्रकार उमड़ पड़े, मानों घनघोर बादल उमड़ पड़े हों। मसनद धारी वीरों से मसनद धारी वीर भिड़ पड़े। बाण वर्षा ने वृष्टि का रूप धारण कर लिया। दोनों धर्मावलम्बी परस्पर देव दानव तुल्य संग्राम करने लगे, जिससे एक दूसरे की शक्ति का पता लग गया (भ्रांति मिट गई)। उस समय प्रलय काल के सदृश वातावरण दिखाई पड़ने पर ऐसा ज्ञात होने लगा, मानों मृत्यु अपना व्यवसाय कर रही हो।

उठीं ढाल सुलितान, खान अन संक अग्गि[1] सजि।
भेरि भयंक निफीर, तवल तंदूर लाग वजि ॥
गज गुमान मद मंत, अग्ग[2] मंडे गिरि कज्जल[3]।
मनहु वाइ वस जलद, गहिर गज्जे[4] जल सज्जल[5]॥
तरकंति तेग दामिनि मनहु, तीर वुंद लग्गे[6] परण।
हथ नारि नारि आतस उडी, कहर लोह सज्जे[7] करण ॥ १२ ॥

ग्रा. पा. १ से ७ दे.।

शब्दार्थः—उठीं=उठी, (उठने पर)। सुलितान=सुल्तान, शाह। अन संक=निशंक, निडर। अग्गि=आगे। भेरि=रणवाद्य, रण भेरि। भयंक=भयंकर। निफीर=नफेरी, वाद्य विशेष। तवल=तबला। लाग वजि=बजने लगा। मदमंत=मतवाले। अग्ग मंडे=आगे को पंक्ति बद्ध हुए। वाइ=पवन। वस=वश, सहारे। जलद=बादल। गहिर=गहरे। गज्जे=गर्जना करते हैं। सज्जल=सजल। तरकंति=कड़कड़ाती हुई, बजती हुई, आवाज करती हुई। परण=पड़ने लगे, लगी। हथनारि=तुपक, आग्नेयास्त्रादि। नारि=नालें। आतस=ज्वाला। कहर=विघ्न। लोह=लोहा। सज्जे=ग्रहण किया।

अर्थः—शाह द्वारा अपनी ढाल (और तलवार) उठाने पर निडर मुस्लिम वीर भी आगे बढ़े। भैरी, नफेरी, तबला, तंदूरे आदि भयानक वाद्य यंत्र बजने लगे। मदोन्मत्त हाथी कज्जल-गिरि के समान आगे २ चलने लगे। वे गर्जना करते और विचरण करते हुए इस प्रकार दिखाई दिये, मानों पवन के सहारे आगे बढ़ते हुए जल युक्त बादल गंभीर घोष कर रहे हों। परस्पर टकराती और चमकती हुई तलवारें

बिजली के समान एवं तीरों की बौछार जल की झड़ी के समान आभासित होने लगी, साथ ही तुपकों के मुँह से आग भी झड़ने लगी। इस प्रकार वीर सैनिक शस्त्र उठाकर परस्पर युद्ध करने लगे।

दोहा

दिक्खि[1] फौज हय़ंदूह से, कसि संनाह सम्रंग।
वीर मंत्र सुमिरे सवनि, करन मिच्छ[2] घट भंग ॥ १३ ॥

ग्रा० पा० १, २ देवलिया।

शब्दार्थः—दिक्खि=देखकर। हयंदूह=हिन्दू वीर। संनाह=कवच। सम्रंग=अपने अंग। सवनि=सबने घट भंग=शरीर का नाश करने।

अर्थः—विपक्षी सेना को युद्धार्थ तत्पर देखकर हिन्दू वीर हँसते हुए, अपने अंगों पर कवच कसकर वीर मंत्र का उच्चारण करते हुए मुस्लिम वीरों के अंग प्रत्यंगों को काटने लगे।

कवित्त

मुख अग्गैं[1] नर नाह, वाम गोइन्द[2] राज मडि।
दच्छिन[3] जैत पवार, भार सिर छत्र लज्जि[4] गढि ॥
पच्छ[5] फौज जदुजाम, माम स्वामित्त[6] सवाई।
गोलराज प्रथिराज, छुट्टि[7] आघात हवाई ॥
अनि सुभट सूर सामंत सब, तिन सँगतिन जुत्थ[8] तँह।
करि काल नजरि नाहर मिले, गिलन साहि सुरतान कँह ॥ १४ ॥

ग्रा. पा. १ से ८ दे.।

शब्दार्थः—अग्गैं=आगे। नर नाह=कन्ह वीर, कन्ह चाहुआन। वाम=वाम पार्श्व में। मडि=मँडि, मंडन किया, नियुक्त हुआ। दच्छिन=दक्षिण, दाहिने पार्श्व में। जैत=जैत्र, नाम विशेष। पवार=पँवार, प्रमार शाखा के क्षत्रिय। लज्जि=लाज। गडि=गाढ़ी, दृढ़। पच्छ=पीछे। जदुजाम=जामराय यादव। माम=नाम। सवाई=सवाया। गोल=मध्य भाग। छुट्टि=छूटा, आक्रमण किया। आघात=वार, चोट। अनि=अन्य। जुत्थ=यूथ-समूह। काल नजरि=काल दृष्टि। गिलन=निगलने, दबाने। साहि=पकड़ना। सुरतान=सुलतान शाह।

अर्थः—पृथ्वीराज की सेना के अग्रभाग (हरावल) में नरनाह कन्ह, वाम पार्श्व में गोविंद राय, दाहिने पार्श्व में राज छत्र की रक्षा और लज्जा का भार दृढ़ ग्रहण किए हुए जैत्र प्रमार, पश्च भाग में धर्म-धारण करने वाला जामराय नामक यादव और मध्य भाग में स्वयं पृथ्वीराज ने शत्रुओं पर वार करते हुए पवन के समान तीव्र वेग से आक्रमण किया। अन्य बहादुर सामंत अपने साथियों की शक्ति से युक्त होकर यमराज के समान दृष्टि डालते और सिंह के समान भिड़ते हुए सुलतान को घेर कर पकड़ने की इच्छा करने लगे।

दोहा

सार[1] मद्द[2] मत्ते सुभट, खग ठिल्लैं[3] गज ठाट ॥
स्वामि-धर्म सद्धैं[4] रनह; मुक्ति सु झारैं वाट ॥ १५ ॥

ग्रा० पा० १ से ४ दे०।

शब्दार्थः—मद्द=गर्व। मत्ते=मतवाले। खग=खड्ग। ठिल्ले=ठेलने, ढकेलने लगे। गज ठाट=हाथियों का समूह। सद्धैं=साधने। रनह=युद्ध में। झारैं=झाड़ते हुए, साफ करते हुए। वाट=रास्ता।

अर्थः—शस्त्र-गर्व में मतवाले सामंत अपनी खड्ग से हाथियों के समूह को धकेलते हुए, युद्ध में स्वामिधर्म का साधन करके, मुक्ति के मार्ग को साफ करने लगे।

कवित्त

छोह कोह रस पान; वोर मत्ते[1] चावद्दिसि[2]।
वल उतंग सजि जंग; वहहि रण हत्थ[3] कपिय जसि ॥
हय दल वल उच्छारि[4]; कड्ढि[5] गजदंत निडारैं।
जनु माली महि मद्धि[6], कड्ढि[7] मूरा कर धारैं।
भयभीत सीत कायर कपहि; सुभट सार सामंत रण ॥
कलि काल कहर कंकहि हकहि; मनहु अंत अत्तिय[8] करण ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १ से० ८ दे०।

शब्दार्थः—छोह=उत्साह। कोह रस=क्रोध, रौद्र रस। चावद्दिसि=चारों ओर। वल=बल। उतंग=ऊँचा श्रेष्ठ। वहहि=चलाने, प्रहारने। हत्थ=हाथ। कपिय=कपि, हनुमान। जसि=जैसे। उच्छारि=

उछालते हुए, पछाड़ते हुए। कड्डिट=काढ़ना, निकालना। डरि=डाले। माली=बागवान। महि=पृथ्वी। मद्धि=अंदर से। मूरा=मूली। कर धारैं=हाथ में लेना। सीत=शीत, हेमंत ऋतु। काइर=कायर। कंपहि=कांपने लगे। कहर=नाश। कंकह=कंकाल, शरीर। हकहि=नाश करने। अंत=अंतक, यमराज। अत्तिग्रकरण=मृत्यु का प्रचार कर रहा हो।

अर्थ:—उत्साह और रौद्र रस का पान करते हुए श्रेष्ठ और मतवाले वीर चारों ओर से युद्धार्थ तत्पर होकर हनुमान (और अन्य वानर सैनिकों) के समान हस्त बल (कौशल) प्रदर्शित करने लगे। बलवान अश्वारोहियों (या अश्वों) को पछाड़ते और हाथियों के दाँत उखाड़ते हुए वीर इस प्रकार सुशोभित होंने लगे; मानों माली खेत से मूली उखाड़ कर अपने हाथों में ले रहे हों। भयभीत एवं कायर सैनिकों के शरीर में हेमन्त ऋतु के समान कम्प होने लगा, किन्तु वीर सामन्तगण आगे बढ़ते ही रहे। वीर यौद्धा शत्रुओं के शरीर को अपने खड्गाघात द्वारा इस प्रकार नष्ट करने लगे; मानों यमराज स्वयं उपस्थित होकर मृत्यु का प्रचार कर रहा हो।

दोह

पिक्खि[1] ढाल आलम अगह; पीप पयट्ठौ[1] ठेलि ॥
जनु गयंदु सरवर सुभर; करतु कमलिनी केलि ॥ १७॥

प्रा० पा० १-२, दे०।

शब्दार्थ:—पिक्खि=देखकर। ढाल=अंगरक्षक, ढलैत सैनिक। (इस समय भी जयपुर में अंग रक्षक वीरों को ढलेत कहते हैं)। आलम=बादशाह। अगह=आगे को। पीप=पीपा प्रतिहार नामक सामंत। पयट्ठौ=प्रवेश कर गया। गयंदु=हाथी। सरवर=सरोवर। सुभर=श्रेष्ठ भरा हुआ। करतु=करने लगा, करता हो। कमलिनी=कमलनी। केलि=क्रीड़ा।

अर्थ:—शाह के आगे ढालधारी सैनिकों के दल को देख कर पीपा प्रतिहार उन्हें ढकेलता हुआ, उसके बीच में उसी प्रकार जा पहुँचा, जिस प्रकार सरोवर में हाथी प्रवेश करके हाथी कमलिनियों के साथ क्रीड़ा करता है।

कही साहि[1] तत्तार[2] सौं; खांनि खांन खुरसान ॥
मारुत मीर हसंम लै; तुम तक्कौ[3] ग्रह थान ॥ १८॥

प्रा० पा० १ से ३ दे०।

शब्दार्थः—कही=कहा । साहि=शाह । खांनि खांन=खांनों की खान, शिरोमणि । खुरसान=खुरासान खां (नाम विशेष) । मारुत मीर=नाम विशेष । हसम=हसम खां । तक्को=देखो ।

अर्थः—इस प्रकार पीपा प्रतिहार को बढ़ते हुए देख कर शाह ने तत्तारखां से कहा—तुम्हें खाँनों के खाँन-शिरोमणि खुरासान खाँ, मारूत मीर और हसम के साथ घर लौट जाना चाहिए (अर्थात् तुम पीपा प्रतिहार को बढ़ते हुए नहीं रोक सकते)।

खानिखान तत्तार[1] कहि; क्यौं छंडैं रण साहि ।
दुनियां रंग कसूम यह; क्तिक[2] दिना रहाहि ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १, २, दे० ।

शब्दार्थः—कसूम=कुसुमिया ंग । कित्तिक दिना=कितने दिनों तक । रहाहि=रह पाता है ।

अर्थः—तब खाँन-शिरोमणि खुरासानखाँ और तत्तार खाँ ने कहा—हे बादशाह ! हम युद्ध स्थल को कैसे छोड़ दें ? इस संसार का कुसुमिया रंग है; जो कितने दिन रहेगा (अर्थात् हमें एक दिन इस संसार को छोड़ना ही पड़ेगा)।

कवित्त

साहि छंडि संग्राम; जाहि घर जियन नेह धरि ।
ध्रिग्ग[1] जनम संसार; पत्थण[2] पिट्ट माइ परि ॥
वीवी क्रिया हराम; किसहु फिरते सौं ल्यना ।
ज्यंमी भारी भार; स्वामि ठड्ढन जिउ द्यंना[4] ॥
अनि कहै मीर साहाव सुनि; जौ छंडैं सुरतान रण ।
पावैं न भिस्ति दोजक परैं; कुत्ता[5] काग भखैं न तन ॥ २० ॥

सं० १ से ५ दे० ।

शब्दार्थः— जयन=जीने का, जिन्दा रहने का । ध्रिग्ग=धिक्कार । पत्थण=पत्थर । पिट्ट=पेट, उदर, कुक्षि । माइ=माता के । परि=पड़े । वीवी=बीबी । हराम=व्यभिचार । किसहु=किसी द्वारा, (किसी अन्य पुरुष द्वारा) । फिरते सौं ल्यंना=और से गर्भ धारण कराया । ज्यंमी=पृथ्वी । भारी भार=

मार दिया। ठड्ढन=खड़े रहते हुए, सामने। जिउ=जीव। थंना=दिया। साहाव=शहाबुद्दीन। भिस्ति=बहिश्त-स्वर्ग। दोजक=दोजख, नर्क। काग=कौआ। भखैं=चखें, छुएँ, भक्षण करें।

अर्थः—यदि हम जीवन (शरीर) से प्रेम रखते हुए बादशाह को युद्ध में छोड़कर घर चले जावें और स्वामी के लिए प्राणोत्सर्ग नहीं करें तो इस संसार में हमारा जीवन धिक्कार है; हम माता के गर्भ से पत्थर और पृथ्वी पर भार स्वरूपी होकर उत्पन्न हुए हैं, या हमारी माता ने पर पुरुष से व्यभिचार कर हमें गर्भ में धारण किया है।

जौ छंडै सुलितान, हत्थ[1] मुच्छौं[2] फिरि वाहैं।
जौ छंडै सुलितान, तेग हत्थौं[3] फिरि साहैं॥
जौ छंडै सुलितान, गल्ल[4] यारौं में मारैं।
जौ छंडै सुलितान, मरद हुइ जाइ सभारैं॥
सुलतान साहि साहावदी, क्यों फरमावैं हुकम हम।
हम उभ्भै साहिवु गिरैं, भ्रमैं न्रक[5] तो कोटि जम॥ २१॥
ग्रा० पा० १ से ५ दे०।

शब्दार्थः—छंडै=छोड़कर चले जायँ। हत्थ=हाथ। मुच्छौं=मूँछों पर। फिरि वाहैं=फिर कैसे दें। तेग=तलवार। हत्थौं=हाथ में। साहैं=पकड़े, ग्रहण करें। गल्ल=बातें, शेखी। यारौं में=दोस्तों में। मारैं=करें। हुई=होकर। जाइ=जावें। सभारैं=सभा में, सभासदों के बीच में। साहावदी=शहाबुद्दीन। फरमावैं=कहें। उभ्भै=रहते हुए, खड़े रहते। साहिवु=शहाबुद्दीन, स्वामी। गिरैं=पतन हो। भ्रमैं=भटकते रहें। न्रक्क=नर्क। कोटि=करोड़। जम=जन्म।

अर्थः—यदि हम आपको युद्ध में छोड़कर चले जावें तो फिर हम मूछों पर हाथ कैसे दे सकते हैं, हाथ में तलवार कैसे ग्रहण कर सकते हैं, मित्रों में अपनी वीरता की झूंठी प्रशंसा कैसे कर सकते हैं और पुरुष (वीर) कहलाकर सभा में कैसे जा सकते हैं? (अर्थात् हम वीर हैं, अतः आपको रण में छोड़कर शत्रु को पीठ नहीं दिखा सकते)। अतः हे शहाबुद्दीन! आप हमें युद्ध से हटने की आज्ञा मत दीजिये। यदि हमारे जीवित रहते हुए आपका पतन हो जाय तो हमारा करोड़ों जन्मों तक नर्क में निवास होता रहे (अर्थात् हम जीवित रहते आपका पतन नहीं होने देंगे)।

दोहा

सीस नाइ सुलतान सौं,[1] धाए खान ततार ।
परे सेन चहुआन पर; मनौ मंत मतवार ॥ २२ ॥

ग्रा० पा० १ सं० ।

शब्दार्थः—धाए=आक्रमण किया, बढ़े । परे=टूट पड़े । सेन=सेना । मंत=मतवाला । मतवार=मतवाला ।

अर्थः— यह कह कर बादशाह के सम्मुख मस्तक नवाँ कर तत्तारखाँ रणस्थल में आगे बढ़ा । उसने चाहुआनी सेना पर इस प्रकार हमला किया, मानो कोई मतवाला हाथी अन्य मतवाले हाथियों से जा भिड़ा हो ।

रत्त[1] मत्त[2] वारे सुभर, विधि-विनान उन मान ।
तहँ[3] न दुःख[4] सुक्खह[5] नजरि; मोह कोह-रस पान ॥ २३ ॥

ग्रा० पा० १ से ५ दे० ।

शब्दार्थः—रत्त=लीन । मत्त वारे=मतवाले । सुभर=सुभट, योद्धा । विधि-विनान=ब्रह्म ज्ञान । उन=उनमें । मान=मान लिया । नजरि=नजर आता । मोह=मोहित, मुग्ध । पान=पीना ।

अर्थः—सभी सामंत युद्ध रस में लीन होने के कारण ब्रह्म ज्ञानी से प्रतीत होते थे; क्योंकि उनके पास सुख दुःख की लौकिक भावना नहीं दिखाई पड़ती थी । वे तो केवल मात्र रौद्र रस का पान करने में ही मोहित थे !

कवित्त

मोह कोह रस पांन; वीर मत्ते[1] चाव्वदिसि ।
तवल तुंग वजि जंग,वीर वाहंत मत्त[2] असि ॥
जा दिक्खै[3] सुलितान; नैन बड़वानल धारी ।
प्रलै करण करपान; प्रलय सम हक्कहकारी[4] ॥
सुभि[5] लोह उदय अरुणय उदय, उर उदार च्यंता रनह ॥
प्रथिराज राज छत्रीनि गुर; गहन गज्जि ल्यंनौ पनह ॥ २४ ॥

ग्रा० पा० १ से ४ सर्व० ।

शब्दार्थः—तुंग=ऊँची अवाज से । वाहंत=चलाते । जा=उसने । बड़वानल=वाडवाग्नि । हक्क-हकारी=हहकार, हुँकार । सुभि=सुशोभित हुई । अरुणय=अरुण, सूर्य । च्यंता रनह=रण का चिंतन करने वाला । राज छत्रीनि=क्षत्रिय राजाओं को । गुर=गुरु, बड़ा । गहन=पकड़ने को । गज्जि=गर्जना करके । ल्यंनौ=लिया, किया । पनह=प्रण-प्रतिज्ञा ।

अर्थः—रौद्र रस का पान करते हुए मतवाले वीर चारों ओर फैल कर युद्ध वाद्यों को जोर से बजाते हुए तलवार चला रहे थे। उसी समय बड़वानल के समान नेत्र वाले पृथ्वीराजने बादशाह को देखा। उस वीर नरेश की कृपाण और हुंकार प्रलयं कारिणी थी, उसने जब आगे बढ़कर तलवार चलाना प्रारम्भ किया तो म्यान से लती हुई तलवार इस प्रकार सुशोभित हुई, मानो सूर्य उदय हुआ हो। वह नृपति उदार हृदय, रण का चितन करने वाला और क्षत्रिय नरेशों का गुरु था। उसने गर्जना करके शाह को पकड़ने की प्रतिज्ञा की।

साहन वाहन विरद, साहि गौरिय सयंन सम।
हय गय दल बिच्छुरहि[१], सूर संजूरहि वीर भ्रम॥
वजहि खग्ग[२] धर धार, हड्डु[३] उडहि असमानं।
मनहु स्यंघ गिरि गज्जि, हकि हत्थिय[४] सिह भानं॥
दल डोहि वहसि साहाव भर, भर-भर कर असि वर वजहि।
जाने क मेघ मत्तो दिसा, नभ निसान[५] विज्झुल लसहि॥ २५॥

प्रा० पा० १ से ५ भीं०।

शब्दार्थः—साहन=शाह को। वाहन=वहन करना. विचलित करना। साहि=पकड़ना। सयंन=सेना। सम=श्रम, श्रमित करना। हय=हाथी। गय=घोड़ा। बिच्छुरहि=बिछुड़ना, यत्र तत्र होना। सूर=शूरवीर, बहादुर। संजूरहि=जुटने पर। वीर=बावन वीरों में से कोई वीर। वजहि=बजती है। धार=तलवार की धारा। हड्डु=हड्डियां। उड्डहि=उड़तीं, उछलती हैं। असमानं=आसमान की ओर। स्यंघ=सिंह। हक्कि=बढ़कर आक्रमण करना। हत्थिय=हाथी। भानं=विदीर्ण करना। डोहि=मंथन करना। वहसि=वहन करना, भगा देना, विचलित करना। भर=भट, सामंत। भरभर=लगातार। असि=तलवार। वजहि=चलाना। जाने क=मानो। निसान=ध्वजा। विज्झुल=बिजली।

अर्थः—जिस पृथ्वीराज का बिरुद शाह को विचलित कर पकड़ने और शाही सेना को श्रमित करने में था, जिसके युद्ध में जुट जाने पर वीरों (बावन वीरों में से कोई एक) का सा भ्रम हो जाता था और अश्वारोही एवं गजारोही सेनाएँ तितर-बितर हो जाती थीं, उसकी तलवार शत्रुओं को नष्ट करती हुई जमीन से टकराकर बज उठती थी और शत्रु वीरों की हड्डियाँ कटकट कर आसमान की ओर उछलती थीं। वह शत्रुओं पर हमला करता हुआ ऐसा दिखाई पड़ता था, मानों पहाड़ों में गर्जता हुआ सिंह आक्रमण करके हाथियों के मस्तक विदीर्ण कर रहा हो। ध्वजाएँ, मेघ में बिजली चमकती हों, ऐसी सुशोभित थीं। वह तलवार के प्रहार से शाही दल का मंथन कर उसे भगा देता था। हाथियों पर चढ़ी हुई उसकी विजय पताकाएँ बादलों में चमकती हुई बिजलियों के समान सुशोभित होरही थीं।

वरकि वीर भट सुभट; झुंमि झूरहि चावदिसि ।
इक[1] इक[2] वल अठिल; घात निर्घात वीर जिसि ॥
रचि नारद नितँत; जग्गि[3] जुग्गिनी[4] हंकारही ।
मार ताल वयताल; नच्चि[5] रण वीर डकारही ॥
अम्मरिय रहसि दल दुव वहसि; करसि वीर लग्गे[6] सवर ।
चहुवांन आंन सुरतान भर; करहि केलि समरह अडर ॥ २६ ॥
ग्रा० पा० १ से ६ दे० ।

शब्दार्थः—वरकि=बड़कना, फूलना । झुंमि=झूमते हुए । झूरहि=झाड़ने लगे, वार करने लगे । अठिल=नहीं हिलने जैसे, अडिग । घात निर्घात=घात प्रतिघात । जिसि=जैसे । नितँत=नृत्य करने लगा । जग्गि=प्रकट होकर, जाग्रत होकर । जुग्गिनी=योगिनियाँ । हंकारही=हुंकार करने । ताल=ताली । वयताल=वैताल, वीर विशेष । नच्चि=नाचते हुए । डकारही=उच्च घोष करते हुए । अम्मरिय=आकाशस्थित देवता । रहसि=रहस्य । दुव=दोनों । वहसि=वहन करना, आक्रमण करना । करसि=करने लगे । सवर=अपना बल । आन=दुहाई । समरह=समर, युद्ध । अडर=निडर ।

अर्थः—उत्साह में फूले हु वीर सामंत झूमते हुए चारों ओर शस्त्राघात करने लगे । वे सभी वीर अडिग और बली थे । उनका घात प्रतिघात वीरों जैसा था । उस युद्ध स्थल में नारद नृत्य करने लगे, योगिनियाँ प्रकट होकर हुंकार करने लगीं, वैताल तालियाँ बजाने लगे और बावन हो वीर नृत्य करते हुए उच्च घोष करने

लगे। इस प्रकार दोनों दलों ने एक दूसरे पर आक्रमण करते हुए आकाशस्थित देवताओं को भी रहस्य में डाल दिया। वे निडर व.र अपनी २ शक्ति प्रदर्शित करते और चाहुआन तथा सुलतान की दुहाई देते हुए समर क्रीड़ा करने लगे।

अद्ध कोस नृप अग्ग; मिच्छ ठड्ढे पग गड्ढे।
(ज्यों) सद्द मद्द गजराज, छंडि पट्टे वल वड्ढे॥
लज्ज वंध संकुरिय, वीर अंकुरिय दिट्ठि रण।
सार धार वज्रिय कपाट, घात निर्घात धुकत रण॥
कलमलिय कंक सह मिच्छ इम; जनु लुअ लग्गहि जेठ महि।
जद्दौं सु जाम घरि इक्क लौं; जनु वडवानल चंद कहि॥ २७॥

शब्दार्थ:—अद्ध=अर्द्ध, आधा। ठड्ढे=ठाढ़े, रुके। पग गड्ढे=पैर दृढ़ता से जमाए। सद्द=सद्य, शीघ्रता पूर्वक। मद्द=मदोन्मत्त। छंडि पट्टे=पटा चलाता हुआ (पहले युद्धस्थल में जाते समय प्रशिक्षित हाथियों की सूँडों में तलवारें पकड़ा दी जाती थीं, जिससे वे रास्ता साफ करते जाते थे, शत्रुओं का संहार करते थे)। वड्ढे=वृद्धि करना वंध=बांधना। संकुरिय=शृंखला, सांकल। अंकुरिय=अंकुरित हुआ। दिट्टि=दृष्टि। सार धार=शस्त्र धारा। वज्रिय=वज्रतुल्य। कपाट=किंवाड़। धुकत=गिरने लगे। कलमलिय=तिलमिलाना। कंक=कंकाल, शरीर। लुअ=लू, गर्म हवा। जेठ=ज्यैष्ट मास। जद्दौं=यादव क्षत्रीय। जाम=जामराय

अर्थ:—राजा से आधा कोस दूर (पीछे हट कर म्लेच्छों ने पुनः अपने पैर दृढ़ता से इस प्रकार जमाए, जैसे मतवाले हाथी शीघ्रता पूर्वक पटा चलाते हुए अपनी शक्ति की वृद्धि करते हों। यह देख कर लज्जाशील जामराय यादव की दृष्टि में वीर रस अंकुरित हो गया और उसकी शस्त्र-धारा के प्रहारों से शत्रु सेना के वज्र कपाट तुल्य वीर कट २ कर धराशायी होने लगे। उसके मुसलमानों के शरीर इस प्रकार तिलमिलाने लगे मानों वे ज्यैष्ठ मास क लू की लपट से मुरझा गए हों। कवि-चंद कहता है कि वह यादव वीर युद्धस्थल में एक घड़ी तक वाडवाग्नि का रूप धारण किये रहा।

दिक्खे[1] मुच्छय[2] मच्छरं, अरु जदुवंस नाम श्रवनाई[3]।
अच्छरि[4] वर कर इच्छं[5], भ्रंमति फिरैं गैंन मग्गाई[6]॥ २७॥

प्रा० पा० १ से ६ दे०।

शब्दार्थः–दिक्खें=देखकर। मुच्छय=मूछें। मछरं=मरोड़दार, मस्ती छाई हुई। श्रवनाई=सुनकर। अच्छरि=अप्सरा। वर कर=वरण करने के लिए। इच्छं=इच्छा करके। भ्रंमति फिरें=घूमने लगीं। गैंन=गगन, आकाश। मग्गाई=मार्ग, पथ।

अर्थः—उस जामराय की मस्ती युक्त मरोड़दार (बंकिम) मूंछें देखकर और उसे यदुवंशी सुनकर वरण करने की इच्छा से अप्सराएँ आकाश मार्ग में भ्रमण करने लगीं।

कवित्त

कर वल खांन ततार, खांन न्याजी खां गोरी।
मौर व्यूह रचि राज, सज्जि[1] सव सेन सजोरी॥
च्यंचु पीप परिहार, कंन्ह गोयंद नयन धरि।
कंठ चंद पुण्डीर, पाइ जुक जैत सलख करि॥
सम पुंछि और भर सुद्ध[2] मन, व्रंन व्रंन छवि सिलह तन।
रनु रोहि रह्यौ पृथिराज मधि, गिलन स्रप्प[3] सुलतांन जन॥ २८॥

ग्रा० पा० १ से ३ दे०।

शब्दार्थः–कर=करके। वल=शक्ति। मौर व्यूह=मयूरलव्यूह। राज=राजा ने। सजोरी=जुटाई, या बलवान। च्यंचु=चौंच। नयन धरि=आंखों के स्थान पर। पाइ=पाँव। जुग=दोनों। सम=समता पर, स्थान पर। व्रंन व्रंन=विविध वर्ण। छवि=छवि, शोभा। सिलह=कवच। रनु=रण, युद्ध। रोहि=रौंधना, बाधक होना। गिलन=निगलना। स्रप्प=सांप।

अर्थः—तब तत्तारखां, न्याजीखां और स्वयं गौरीशाह (या गौरी समूह) ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। इस पर पृथ्वीराज नें सेना को एकत्रित करके मयूर-व्यूह रचा। चोंच के स्थान पर पीपा प्रतिहार, नेत्रों के स्थान पर कन्ह और गोविंदराय, कंठ के स्थान पर चंद पुण्डीर, दोनों पैरों के स्थान पर सलख जैत्र और पूंछ के स्थान पर शुद्ध मनवाले अन्य सामंत नियुक्त किये गये। उसके मयूरपंख की शोभा विविध रंग के कवचों से होने लगी। पृथ्वीराज ने सेना के मध्य भाग में स्थित होकर सर्प स्वरूपी सुलतान और उसके साथियों को निगलने के लिए उन्हें रण स्थल में रोक दिया।

गाथा

खग अगि[1] लग्गी[2] समरं[3], हुइयं मिच्छ[4] चट्ट[5] पट्टाई ।
सार स्रप्प[6] ढ्स जहरं, जित तित परैं धुक्कि[7] धरनाई ॥ २६ ॥

ग्रा० पा० १ से ७ दे० ।

शब्दार्थ:—अगि=आग । समरं=युद्धस्थल । हुइयं=हो गए । चट्ट पट्टाई=आकुल । डस=डसना, काटना । जहरं=विष । धुक्कि=झुकते हुए, झोंका खाते हुए । धरनाई=पृथ्वी पर पड़ गए ।

अर्थ—युद्धस्थल में खड्ग ज्वाला के फैल जाने से मुसलमान सैनिक आकुल हो गए । शस्त्र स्वरूपी सर्प से डसे जाने के कारण उनमें हलाहल छा गया और वे यत्र-तत्र झूमते हुए धराशाई होने लगे ।

एयं ह्यंदुअ हत्थं, वज्जे[1] वीर वज्र घाताई ।
खिल्लें[2] वहर नट जंम, ढालं माल फिरैं सु नाई ॥ ३० ॥

ग्रा० पा० १-२ दे० ।

शब्दार्थ:—एयं=अहो । ह्यंदुअ=हिंदुओं के । हत्थं=हाथ । वज्जे=बजने लगे, वार करने लगे । वज्र घाताई=वज्राघात तुल्य । खिल्लें=खेलते हों । वहर=खेल विशेष । नट जंम=जैसे नट । ढालं माल=ढाल समूह । सुँ=वे । नाई=नम कर, झुक कर ।

अर्थ ओह ! उस समय हिन्दू वीरों के शस्त्राघात वज्राघात से दिखाई देने लगे और ऐसा दृश्य दिखाई पड़ा मानों नट झुक २ कर (टेढ़े होकर) ढालें फिराते हुए जादू का खेल कर रहे हों ।

कवित्त

तन तरफहि धर मिच्छ[1], कलाछवि जानि नटन कहि ।
मंत—तंत आहुरहि, दंत सौ दंत कटक्कहि[2] ॥
समर अमर कर वंदि, भये विस्मित पलहारी ।
जह—तह चंद पुण्डीर[3], चंद ज्यों रैनि उजारी ॥
तन ग्रेह नेह सह अंत मन, भ्रम भग्गौ[4] दल मलि दुभर ।
संभरिय[5] सूर सुरतान दल, महन रंभ मच्यौ सुभर ॥ ३१ ॥

ग्रा० पा० १ से ६ दे० ।

शब्दार्थ:—कला छवि=गुलाँछैं । जानि=जानो, मानो । मंत=मतवाला । तंत=तहाँ उस स्थान पर । आहुरहि=मिड़ने लगे । कटक्कहि=कटकटाने लगे, बोलने लगे । कर वंदी=वंदीजनों द्वारा किये गये । पलहारी=मांसाहारी । रैनि=रात्रि । उजारी=प्रकाश फैलाया । ग्रेह=गेह, घर । भगते=दूर हुआ । मलि=मिलने से । दुमर=दुर्लभ, कठिन । संभरीय=चाहुआन । महनरंभ=महान् आरम्भ, घमासान युद्ध मच्यो=छिड़ा ।

अर्थ:—मुसलमानों के क्षत-विक्षत शरीर पृथ्वी पर गिर कर इस प्रकार तड़फड़ाने लगे, मानों नट गुलांछें खा रहे हों । मतवाले वीर एक दूसरे पर दांत कटकटाते हुए परस्पर भिड़ने लगे । वे वीर वंदीजनों द्वारा समर में अमर हो गए और उनके युद्ध को देखकर मांसाहारी जीव भी विस्मित हो गये । चन्द्रमाँ जिस प्रकार रात्रि में प्रकाशित होता है, उसी प्रकार चंद पुण्डीर ने युद्धस्थल में प्रकाश फैला दिया (अर्थात् युद्धस्थल में सर्वत्र उसकी तलवार चमक पड़ी) उस समय उन वीरों के मन में शरीर और घर आदि का स्नेह नहीं रहा, क्योंकि दुर्लभ सेना में स्थान पाने के कारण उनका सांसारिक भ्रम विदा हो गया था । इस प्रकार चाहुआन तथा मुस्लिम सेना के वीरों में घमासान युद्ध छिड़ गया ।

समर होत मध्यान, पीप पन मंडि सु रुंध्यौ ।
प्रबल पानि परचंड; साहि गौरी गहि वंध्यौ ॥
सेतु वंध ज्यौं राम; चंद सुरभान सूर सधि ।
यौं ल्यंनौ परिहार; वालि दस कंठ कंख मधि ॥
रण छंडि हंडि चलि मिच्छ[1] वहु; लज्जवंत[2] किक फिरि परिय ।
जय जया सद्द[3] धर अम्मरह; कवि सु चंद कित्ती[4] करिय ॥ २२ ॥

ग्रा० पा० १ से ४, दे० ।

शब्दार्थ:—पन मंडि=प्रतिज्ञा पूर्ण करने को । प्रवल=प्रबल । पानि=हाथ । परचंड=प्रचंड । सूर सधि=वीरों द्वारा साधन किया या वीर ने साधन किया । ल्यंनौ=पकड़ा, लिया । परिहार=प्रतिहार क्षत्रिय । वालि=बाली । कंख=काँख, कुक्षि में । हंडि चलि=चल पड़े । वहु=बहुत । लज्जवंत=लज्जावान् । किक=कितने ही । फिरि परिय=मुड़ पड़े । जय जया=जय २ कार । सद्द=ध्वनि । अंम्मरह=आकाश में । कित्ती=कीर्ति ।

अर्थः—युद्ध होते होते मध्यान्ह समय होने पर पीपा प्रतिहार ने शाह को पकड़ लेने की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए शत्रु सेना को कुचलकर अपने प्रबल-प्रचण्ड हाथों से बादशाह को इस तरह पकड़कर बांध लिया, जैसे सूर्य-चन्द्र और देवताओं का साधन कर (देवतादि का स्मरण कर) वीर रामचन्द्र ने सेतु बांधा तथा बालि ने रावण को काँख में धर दबाया। यह देखकर बहुत से मुसलमान युद्ध-स्थल छोड़कर भाग गए; किन्तु वीरता की लज्जा रखने वाले कितने ही वीर युद्ध करने के लिए पुनः लौट पड़े। उसी समय पृथ्वी और आकाश सर्वत्र उस वीर की (पीपा की) जय जय कार होने लगी और मैंने (कविचंद ने) भी उसका कीर्ति गान किया।

चौरंगी　चहुआन, खांन गौरिय मुख लग्यौ।
दुवनि हत्थ[1] तरवारि, ख्यालु फुल हत्थनि[2] वग्यौ ॥
सिलह वज्जि[3] खग धार, जानु घन मार गवारि।
दुवन्नि टुट्टि[4] तरवारि, वाहि गलवत्थ[5] कटारि ॥
उर फारि दुवनि दुव धर परे, भय[6] ससंक दुत स्वामि तन।
गौरीय खांन धरणी परत, भयो ग्रहन सुलतान रण ॥ ३३ ॥

प्रा० पा० १ से ६ दे०।

शब्दार्थः—चौरंगी=चौरंगीराय चाहुआन। दुवनि=दोनों के। ख्यालु=खेल। फुल=फूल डौल। वग्यौ=बजाया, किया। जानु=जनु, मनु, मानों। घन=लोहा कूटने का बड़ा हथौड़ा। मार=चोट। गवारि=लोहार। वाहि=चलाई। गलवत्थ=गुत्थमगुत्था। फारि=चीर कर, विदीर्ण कर।

अर्थः—लौट कर आए हुए खान गौरी से चौरंगीराय चाहुआन का सामना हुआ। दोनों ने हाथ में तलवारें लीं और फूलडौल (होली के बाद देव मंदिर के सामने देव मूर्ति को फूलों की डोली में आरूढ़ कर, उनके सामने जनता घूमती हुई छड़ियों से खेल करती है। जिसे राजस्थानी में "गेर" कहते हैं) का सा खेल करने लगे। एक दूसरे के खड्ग प्रहार से उनके कवच इस प्रकार बजने लगे, मानों लोहार घन पटक रहा हो। तलवारों के टूटते ही दोनों ने कटारें निकाल कर एक दूसरे के गले में हाथ डालकर प्रहार किया, जिससे दोनों के हृदय विदीर्ण हो गए और दोनों ही गिर पड़े। यह देख कर दोनों वीरों के स्वामी सशंकित

हो गए (क्योंकि आपत्ति के समय रक्षा करने वाले इनके समान और कौन हो सकते हैं ?)। खान गोरी के मारे जाने पर ही बादशाह को अच्छी प्रकार से बंधन में लिया गया।

दोहा

इन परंत सुरतान गहि; ग्रह निग्रह घट वीर।
तिन जसु जंपै का कवी; जिन किय जज्जर[1] श्रीर ॥ ३४ ॥

ग्रा० पा० १ सं०।

शब्दार्थः—परंत=पड़ने पर। गहि=पकड़ा गया। ग्रह निग्रह=सुख-दुःख। घट=शरीर। जसु=यश। जंपै=कहै, वर्णन करे। का=क्या, कहाँ तक। जज्जर=जर्जरित। श्रीर=शरीर।

अर्थः—चौरंगीराय और खान गौरी के धराशायी होने पर गौरी शाह पकड़ लिया गया। उस समय कुछ वीरों के शरीर पर विपत्ति आ पड़ी और कुछ वीर उस विपत्ति से छूट गये; किन्तु कवि उनके यश का कहाँ तक वर्णन करे, जिनके शरीर उस युद्ध में जर्जरित होगये।

कवित्त

विनु जज्जर[1] पंजर परान; साहि गौरी गहि वंध्यौ ॥
विनु सेवा विनु दान; पान खग्गह[2] खलु सध्यौ ॥
फिरि ग्रह पत्तौ[3] राज, लुट्टि[4] चतुरंग विभूतिय।
डोला तेरह तीस, मद्धि[5] साहाब सु भत्तिय[6] ॥
ग्रह गयौ लियै सुरतान सँग[7], जय जय जय जसु लद्धयौ[8]।
जयचंद कनाइति च्यंति जिय[9]; मान प्रसंन न सद्धयौ[10] ॥ ३५ ॥

ग्रा० पा० १ से १० दे०।

शब्दार्थः—विनु=बिना। पंजर=शरीर। परान=प्राण। बिनु सेव=सेवा के फल रहित। दान=पारितोषिक। पान=हाथ, बल। खग्गह=तलवार। खलु=शत्रु। ग्रह पत्तौ=घर गया (दिल्ली)। लुट्टि=लूट कर। चतुरंग=चतुरंगिनी सेना। डोला=डोलिएँ। तेरह तीस=तयालीस। सु भत्तिय=अच्छी तरह। लद्धयौ=प्राप्त किया। कनाइति=छोटा भाई (विरोधी जयचंद और गौरी का एक ही लक्ष होने से उसे जयचंद का छोटा भाई कहा गया)। च्यंति=चिंतन। प्रसंन=प्रसन्नता। सद्धयो=साध सका, प्राप्त कर सका।

अर्थः—शस्त्राघात से प्राण पिंजर जर्जरित नहीं होने देकर ही पीपा प्रतिहार ने निस्वार्थ भाव से अपने खड्ग के बल पर ही गौरीशाह को पकड़ कर बाँध लिया। तत्पश्चात् पृथ्वीराज उसकी चतुरंगिनी सेना की विभूति को लूट कर दिल्ली को रवाना हो गया। शाह और घायल वीरों को ४३ डोलियों में भली प्रकार से उठा कर साथ में ले लिये। पृथ्वीराज को तो इस युद्ध से जय २ कार के साथ यश प्राप्ति हुई, किन्तु जयचंद के छोटे भाई तुल्य गौरी शाह के हृदय में चिंता पैदा हो गई। उसे न तो मान ही मिला और न प्रसन्नता ही प्राप्त हुई।

मान भंजि सुलितान, खान खेसे खुरसानं।
मधि सिंगार हुव वीर, धीर धप्पे[1] समरानं॥
व्याह इन्छ देवास, सोम अग्गैं[2] न उचारी।
भई कत्थ[3] चहुवान, इन्द्र कुर पत्थह[4] वारी॥
मुँह मुच्छ[5] सुच्छ[6] सोमेस सुव, ध्रुव समान संभरि धनी।
पद्धरे[7] दीह जसु अक्खि[8] जगु, पर धर वर करि अप्पनी[9]॥ ३६॥

ग्रा० पा० १ से ६ दे०।

शब्दार्थः—भंजि=भंग किया। खेसे=खिसियाये, लज्जित किए। खुरसानं=खुरासानी। सिंगार=शृंगार। धप्पे=तृप्त हुए। समरानं=युद्धस्थल में। इन्छ=इच्छा करके। सोम=सोमेश्वर, पृथ्वीराज के पिता। इन्द्र कुर=कुरेंद्र, कौरवेन्द्र, दुर्योधन। पत्थह=पार्थ। मुच्छ=मूँछ। सुच्छ=स्वच्छ। सुव=सुवन, सुत। धुव=ध्रुव। संभरि धनी=संभरियों के स्वामी, पृथ्वीराज। पद्धरे दीह=अच्छे दिन। अक्खि=कहने लगे। जगु=संसार। पर=पराई। धर=भूमि। वर करि=शक्ति करके। अप्पनी=अपनाई।

अर्थः—इस प्रकार पृथ्वीराज और उसके सामन्तों ने सुलतान का मान मर्दन कर के खुरासानी खानों को लज्जित कर दिया। (यह तो भाग्य की ही बात थी कि) शृंगार रस के अंतर्गत वीर रस का प्रादुर्भाव होगया (देवास शादी की इच्छा से जाते हुए, रास्ते में युद्ध हो गया) और धैर्यवान वीर युद्ध में वीर रस से तृप्त हो गए। पृथ्वीराज ने विवाह की इच्छा से देवास की ओर जाने की बात सोमेश्वर से गुप्त रक्खी थी, किंतु रास्ते में दुर्योधन और अर्जुन के समान युद्ध के छिड़ जाने से पृथ्वीराज की यह ख्याति सब पर प्रकट हो गई। उस सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज

मुख और मूँछें निष्कलंकी ही रही तथा वह सर्वदा ध्रुव के समान ही अटल माना गया। उसके अच्छे दिनों और श्रेष्ठ वंश का संसार गान करता रहा, क्योंकि उस वीर ने दूसरों की पृथ्वी को अपनी शक्ति से अपना लिया।

दोहा

ध्यंनि राज अवसान मन, जसु जित्यौ सुलितान।
लच्छि[1] लई चतुरंग जिति, वर वज्जे[2] नीसान ॥ ३७ ॥

ग्रा० पा० १, दे० । २, सर्व० ।

शब्दार्थः—ध्यंनि=धन्य। अवसान=सावधान, सचेत। जसु=कीर्ति। जित्यौ=अपहरण किया, प्राप्त किया। लच्छि=लक्ष्मी। लई=प्राप्त की। जिति=जीतकर। नीसान=निशान, नक्कारे।

अर्थः—उस सचेत मनवाले पृथ्वीराज को धन्य है, जिसने सुलतान की कीर्त्ति का अपहरण कर लिया और चतुरंगिनी सेना पर विजय प्राप्त करके उसकी सम्पत्ति को छीनकर श्रेष्ठ विजय वाद्य बजवाये।

कवित्त

छत्र मुजिक्क[1] निसान, जित्ति[2] ल्यन्ने सुलितानं।
गौ घरि[3] ढ़िल्लिय[4] ईस, वज्जि[5] नृग्घोष[6] निसानं ॥
दिसा दसौं[7] जय कित्ति[8], जैति जंपै प्रथिराजं।
वाल वृद्ध[9] भर जुवन, जंग जंपै धनि लाजं ॥
साधर्म धरन सामत सव, दिपति दीप भूव लोक पति।
पुज्जैन[10] कोइ चहुवान कौं, सुक्ख[11] सयन पारथ्थ[12] गति ॥ ३८ ॥

ग्रा० पा० १ से १२ दे० ।

शब्दार्थः—जित्ति=जीतकर। घरि=घर। ढिल्लिय ईस=दिल्लीश्वर। जय किचि=विजय कीर्ति। जैति=जयति, जय २ कार। भर जुवन=जवानी में भरे हुए युवक। धनि=धन्य। सा धर्म=स्वामी धर्म। दिपति=दीप्ति, प्रकाश। पुज्जैन=नहीं पहुंचता, समानता नहीं कर पाता। सयन=सेना। पारथ्थ=पार्थ।

अर्थः—उस मूंजी सुलतान पर विजय प्राप्त करके उसके छत्र और नक्कारे छीन कर दिल्लीश्वर अपने स्थान को लौट गया। इसके बाद ऊँची आवाज के नक्कारे

बजने लगे और दसोंदिशाओं में उसकी विजय कीर्ति फैल गई। आबाल वृद्ध पृथ्वीराज की जय २ कार करते हुए, कहने लगे कि युद्ध में लज्जा रखने वाले इस राजा को धन्य है। उसके सब सामंत भी स्वामी धर्म को धारण करने वाले हैं। सेना संचालन में जिसकी गति अर्जुन के समान है, ऐसे चाहुआन नरेश की कौन समता कर सकता है ?

छंडि दियौ सुलितान, सुजसु पहु पीप मंडि सिर ।
(जिहि) जंग रंग राजन्न[1], इच्छ[2] पुज्जाइ[3] कित्ति[4] थिर ॥
भुम्मिय[5] इकमिलै आइ, इक्क[6] बंधिरु वस किज्जहि[7] ॥
इक्क पकरि पहिराइ, मान भंजिरु मन दिज्जहि[8] ॥
आवइ अपार लच्छी[9] सहज, वर्न सर्न सुक्खह गनय[10] ॥
चहुवान राज संभरि धनी; तपै तेज नृप त्रिग्गुनय ॥ ३६ ॥

ग्रा० प से १० सर्व० ।

शब्दार्थः—सुजसु=सुयश । पहु=राजा । पीप=पीपा प्रतिहार । मंडि सिर=सिर पर दिया । जंग रंग=युद्ध के रंग में रंगा हुआ । इच्छं=इच्छा । पुज्जाइ=पूर्ति करके । बंधिरु=बांध कर । किज्जहि=किया जाता । पहिराइ=पुरस्कार देकर, पोशाक पहिना कर । दिज्जहि=दिया जाता है । आवइ=आता है । वर्न=चारों वर्ण । सर्न=शरण । सुक्खह=सुख पूर्वक । गनय=गिने जाते । त्रिग्गुनय=तीनों (सत्व, रज, तम) गुण युक्त ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने शाह को पकड़ने का श्रेय पीपा प्रतिहार को देते हुए, बादशाह को छोड़ दिया। इस प्रकार युद्ध के रंग में रंगे हुए उस राजा ने अपनी इच्छा पूर्ति करके अपनी कीर्ति को स्थिर कर दिया। कितने ही भूमि पति उसके चरणों में स्वतः आआकर उपस्थित होने लगे और कितने ही बांधे जाकर वश में किए गये, कोई पकड़ा जाकर उससे (पृथ्वीराज से) पुनः उपहार प्राप्त करता था। इस प्रकार वह शत्रु का मान भंजन करके भी उसे अपना मन समर्पित कर देता था। अपार लक्ष्मी उसके पास स्वतः दौड़ी आती थी। चारों वर्ण उसकी शरण में सुख पूर्वक दिन बिताते थे। वह चाहुआन नरेश संभरेश्वर प्रताप और सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों सहित तपता था।

सहस अट्ठ[१] हय डंड, संड सुलतान[२] सीस किय ।
नरणाहा कुंडीर, इक्क[3] इक सहस विज्जुलिय[४] ॥
जैत राइ गोइन्द, इक्क थंनिय जदु जानं[५] ।
इक्क सहस वरदाई, उभय परिहार स मानं ॥
इनि दिए वंटि सुभटति सहस, किति[६] राज रक्खी[७] घरह ।
सुनि वत्त[८] राज सोमेस यह, वज्जि[९] पंच वज्जे[१०] दरह ॥ ४० ॥

ग्रा० पा० १ से १० दें० ।

शब्दार्थः—डंड=दंड । संड=क्लीव । नरणाहा=नरनार कन्ह । कुंडीर=चंद पुंडीर । विज्जुलिय=विद्युत गामी । थंनिय=दिए । जदु=जामराय यादव । जानं=जानो । वरदाई=मुग्ध चंद वरदाई । उभय=दो (सहस्र) । परिहार=पीपा प्रतिहार । स मानं=मान सहित । वंटि=विभाजित करके । सुभटति=सामंतों को । सहस=सहर्ष । रक्खी घरह=अपने हिस्से में । वत्त=बात । वज्जे=बाजे । दरह=द्वार पर ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने उस क्लब सुलतान से आठ सहस्र विद्युतगामी घोड़े दंड में लिए । उनमें से एक सहस्र नरनाह कन्ह को, एक सहस्र चंद पुण्डीर को, एक सहस्र जैत्रराय को, एक सहस्र गोविन्दराय को, एक सहस्र जामराय यादव को, एक सहस्र मुग्ध (वरदाई चंद) को और दो सहस्र पीपा प्रतिहार को सम्मान सहित सहर्ष प्रदान कर दिए और अपने लिए केवल कीर्ति ही रक्खी । यह बात जब सोमेश्वर ने सुनी तो उसने अपने द्वार पर पांचों प्रकार के बाजे बजवाए ॥

भइय भीर दरबार; भूरि[१] सुभटनि दुति राजहिं ।
ऐरावत आकार; मंत मंते गज गाजहि ॥
तुरी तत्त[२] निरतत्त[3]; जिनहिं दिक्खत[४] रवि भुल्लत[५] ।
वंस तीस छह अग्ग[६]; मच्छर मुच्छति[७] खग तुल्लत[८] ॥
दिक्खियै दीनु दालिद्र तहँ, सह मत्त[१०] लच्छी[११] मयन ।
दिक्खंत[१२] पित्थ[१३] प्राक्रंम पहु, जै जै सुर जंपै जयन ॥ ४१ ॥

ग्रा० पा० १ से १२ दें० ।

शब्दार्थः—द्रुति=द्युति। ऐरावत=ऐरावत इन्द्र की सवारी का हाथी]। मंत मंते=मद में मतवाले। तुरी=घोड़ा। तत्त=तेज। निरतत्त=नाचते हुए। भुल्लत=भूल जाता। तीस छह=छत्तीस। तुल्लत=तोलते, उठाते। दिक्खयै=देखे जाते। दीनु=गरीब। दालिद्रु=दरिद्री। पित्थ=पृथ्वीराज। प्राक्रंम=पराक्रम।

अर्थः—उस विजयोत्सव को देखने के लिए सभा में भीड़ लग गई। उस समय सुभटों का कान्ति अत्यन्त सुशोभित हो रही थी। ऐरावत के तुल्य मद में मतवाले हाथियों की गर्जना और तीव्र गामी अश्वों के नृत्य को देख २ सूर्य भी स्वयं अपने को भूल जाता था और छत्तीस ही कुल के क्षत्रीय मूछें मरोड़ते और तलवार उठाते हुए दिखाई पड़ते थे। दान-दरिद्री भी उस दिन अपार लक्ष्मी को पाकर मन से मतवाले हुए फिरते थे। पृथ्वीराज के इस अपार पराक्रम को अन्य राजा गण देखते ही रह गये और आकाश से देवता गण भी उस की जय २ कार करने लगे।

—:-❀-:—

करहेरा युद्ध

(समय ३०)

दोहा

कितक दिवस वित्ते नृपति, सारंगीपुर साज ।
धर मालव मंड्यौ नृपति, आखेटक पृथिराज ॥ १ ॥

शब्दार्थः—कितक=कितने ही । वित्ते=बीतने पर । मंड्यौ=की । आखेटक=शिकार ।

अर्थः—कुछ दिन बीतने पर राजा पृथ्वीराज मालव प्रदेश में शिकार करता हुआ सारंगीपुर की ओर चला ।

कवित्त

चौ अग्गानि सट्ठि, सूर सामंत सु सथ्थं ।
मालव धर पृथिराज, सज्जि आखेटक तथ्थं ॥
बर उज्जैनीराव, जीति पांवार सु भीमं ।
बल समर जोगठ्ठ, गाहि चहुआनजु सीमं ॥
सगपन सु जीति संभरि धनिय, ग्रहन जोग समबर नृपति ।
संभाग समर सुनयौ नृपति[1], समर बीर मंडन दिपति ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—चौ अग्गानी=चार ऊपर । सट्ठि=साठ । तथ्थं=तहाँ । उज्जैनीराव=उज्जैन राजवंशज। पांवार=प्रमार । बल समर=समर विक्रम । जोगठ्ठ=योगीन्द्र । गाहि=ग्रहण की, प्रवेश किया, सहायता की । सीमं=सीमा में । सगपन सु जीति=सम्बन्धी पर प्रेम की विजय की, प्रेम निभाया । ग्रहन= ग्रहण किया । समबर=स्वयंवर । संभाग=समान रूप से ।

अर्थः—मालव प्रांत में आखेट के लिये जाते समय पृथ्वीराज के साथ ६४ सामंत थे उसने उज्जैन राजवंशी प्रमार भीम (इन्द्रावती के पिता सारंगीपुर के राजा) पर विजय प्राप्त करने के लिये योगीन्द्र उपाधिधारी समर विक्रम की सीमा में प्रवेश किया

(अर्थात् समर विक्रम की सहायता पर पहुँचा)। इस प्रकार उस संभरेश्वर ने अपने सम्बन्धी पर प्रेम की विजय और इन्द्रावती से स्वयंबर करने के लिये एक ही साथ निश्चय किया। तब राजा और उसके जाज्वल्यमान सामंतों द्वारा समान रूप से युद्ध का मंडन हुआ।

दोहा

सुवर बीर चिंतै नृपति, बर बरनी दुति काज।
बर इन्द्रावती सुन्दरी, बरन तकै प्रथिराज ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—चिंतै=चिन्तन करती है, करते हैं। बरनी=वर्णन की गई। दुति=दीप्ति, कांति। काज=के, लिये। तकै=देखना, सोचना, विचारना।

अर्थः—पृथ्वीराज की श्रेष्ठ कांति वर्णन कीगई, इससे उस बहादुर राजा को इन्द्रावती अपने पति रूप में चिंतन करने लगी। इधर पृथ्वीराज भी उस इन्द्रावती सुन्दरी को वरण करने के लिये उत्सुक होगया।

अथवा—कवि कहता है-हे नृपति! उत्तम वीर उनका चिंतन कर रहे हैं, जिनकी (अप्सराओं की) कांति का श्रेष्ठ वर्णन हुआ है और इधर तू इन्द्रावती सुन्दरी का वरण करने के लिये उत्सुक है।

कवित्त

इन्द्र सुन्दरी नाम, वीय इन्द्रावती सोभै।
बर समुंद पांवार, धरिग अति सम संग लोभै॥
मनमथ मथन नरिंद, हाइ करि भाइह गाढ़ी।
रूप तरँग झंकुरित, तुंग दोऊ करि काढ़ी॥
ज्यों छित्ति काम चंप्यो परित, अति सुदेह त्रिम्मल झलकि।
संकुच सु काम कर कलिय तिहि, रिपु सु देखि आयौ ललकि॥ ४ ॥

शब्दार्थः—इन्द्र सुन्दरी=इन्द्राणी। वीय=द्वितीय। समुंद=समुद्र। पांवार=प्रमारिनी। धरिग=धारण कर लिये हैं। अति=विशेष। सम=समान। संग=साथी। लोभै=लोभित, मोहित करने वाली। मथन=मंथन। हाइ=हाव। भाइह=भाव। गाढ़ी=दृढ़। झंकुरित=हिलोरों

पर, तूफान आने पर। तुंग=शिखर। काढ़ी=निकाले। चंप्यौ परित=दबाया गया, दमन किया गया। निम्मल=निर्मल। रिपु=शत्रु, (कामदेव के शत्रु शिव)। ललकि=मुग्ध होकर, इच्छा करके।

अर्थ: इंद्रावती द्वितीय इन्द्राणी तुल्य सुशोभित थी। वह प्रमारिनो उत्तम सिन्धु के समान थी और उसी प्रकार आकर्षित करने की सामग्री भी उसके पास थी। राजा (पृथ्वी-राज) के मन को हाव भावों द्वारा खींच लेना ही उसकी दृढ़ शक्ति थी। रूप की तरंगों के तूफान से उसके अंग में दो गिरि शिखर (कुच) निकल आये थे, या जैसे २ पृथ्वी पर कामदेव का शंभू द्वारा दमन किया गया, वैसे २ ही वह विशेष रूप से सतर्कता पूर्वक देह में झलकने लगा। यह देख कर काम-शत्रु (शिव) मुग्ध होकर कलियों के रूप में उसके अंग से अवतरित हुए हों, ऐसा दीखने लगा।

दोहा

श्रीफल दुजबर हथ्थ करि, दैन गयौ चहुआन।
दिन पंचमि बर भौम दिन, लगन करै परमान॥ ५॥

शब्दार्थ:—लगन=लग्न तिथि। परमान=निश्चय।

अर्थ:—राजकुमारी के सम्बन्ध का नारियल हाथ में ग्रहण कर वहां का पुरोहित (सारंगीपुर के राजा का पुरोहित) चाहुआन नरेश्वर के पास समर्पित करने के लिये आया और उत्तम तिथि पंचमी मंगलवार को लग्न करना निश्चय किया गया।

दुज पुच्छै आतुर नृपति, किहि वय किहि उनहार।
किहि लच्छिन मति कौन विधि, कहि कहि सुमति विचार॥ ६॥

शब्दार्थ:—उनहार=सूरत, रूप। लच्छिन=लक्षण।

अर्थ:—पृथ्वीराज ने व्यग्रता पूर्वक आये हुए ब्राह्मण से पूछा कि राजकुमारी की क्या अवस्था है, कैसा सौन्दर्य है, किस प्रकार के लक्षण हैं और किस तरह की बुद्धि है? हे द्विज! अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से विचार कर कहो।

बाल सुनत प्रथिराज गुन, दुरि दुरि श्रवन सु हित्त।
जिम जिम दुजवर उच्चरत, तन मन तिम तिम रत्त॥ ७॥

शब्दार्थः—बाल=बाला। ढुरि २=लगा २ कर। रत्त=लीन।

अर्थः—पृथ्वीराज प्रेम में लीन होकर उस बाला के गुण सुनने लगा और कानों को तृप्त करने लगा। जैसे २ ब्राह्मण उसका वर्णन करता गया, वैसे ही पृथ्वीराज का तन मन उस बाला में अनुरक्त होगया।

कवित्त

वर उज्जैनीराव, रंग बज्जे नीसानं।
इन्द्रावती सुन्दरी, बीर दीनी चहुआनं॥
राज मंडि आखेट, समर कग्गर बर धाइय।
बर गुज्जरवै राव, चंपि चित्तौरै आइय॥
उत्तरे बीर प्रव्वत गुहा, धर पद्धर मेलान किय।
जोगिन्द्राव जग हथ्थ वर, गढ़ उत्तरि किरपान लिय॥ ८॥

शब्दार्थः—उज्जैनीराव=उज्जैनराजवंशी (सारंगीपुर का राजा)। रंग=मांगलिक। धाइय=प्राप्त हुआ। बर=बल। गुज्जरवै=गुर्जरेश्वर के। चंपि=दबाने को। उत्तरे=पार किये प्रव्वत=पर्वत। गुहा=गुफा। धर पद्धर=समतल भूमि। मेलान किय=मुकाम किया। जोगिन्दराव=योगीन्द्र उपाधि धारी चित्तौड़ेश्वर। किरपान=कृपाण।

अथः—इस प्रकार उज्जैन राजवंशी (सारंगीपुर के राजा भीम) ने अपनी सुन्दर राजकुमारी इन्द्रावती को चाहुआन नरेश को देने का निश्चय करके पुरोहित द्वारा वाग्दान करवाकर मांगलिक बाजे बजवाये। इधर पृथ्वीराज शिकार करने लगा (या शिकार करता हुआ चल , उसी समय रावल समर-विक्रम का पत्र मिला। उसमें लिखा था कि गुजरात के राजा की सैन्य शक्ति चित्तौड़ को दबाने के लिये आई है। वे चालुक्की वीर, पर्वत और गुफाओं को (भील प्रदेश को) पार कर समतल

में आगये हैं और वहाँ डेरा डाल दिया है। इस से संसार के श्रेष्ठ बाहू स्वरूपी योगीन्द्र राय (योगीन्द्र उपाधिधारी चित्तौड़पति) ने दुर्ग छोड़ युद्धार्थ कृपाण हाथ में ली।

दोहा

छंडि बीर आखेट बर, गौ मेलान नरिंद।
छंडि सूर सिंगार रस, मंडि बीर बर नंद॥ ९॥

शब्दार्थः—गो=गया, चल पड़ा। मेलान=मुकाम करता हुआ। नंद=प्रसन्नता युक्त।

अर्थः—यह सुनकर राजा पृथ्वीराज ने आखेट छोड़ पड़ाव करते हुए चित्तौड़ की ओर प्रस्थान किया। इस प्रकार वह बहादुर श्रृंगार (रस) को त्याग कर वीर रस का मंडन करने के लिये चला।

कवित्त

मतो मंडि चहुआन, सबै सामंत बुलाइय।
दै खंडौ पज्जून, बीर उज्जैन चलाइय॥
सथ्थ कन्ह चहुआन, सथ्थ बड़गुज्जर रामं।
सथ्थ चंद पुंडीर, सथ्थ दीनौ नृप हामं॥
आवृत्त अत्तताई सुबर, रा पज्जून सु मुक्कलिय।
मुक्कल्यौ गौर निढ्ढुर सुबर, मुक्कलि जै सिंघ पक्खलिय॥ १०॥

शब्दार्थः—मतो=मंत्रणा। खंडौ=खड्ग। उज्जैन=उज्जैन प्रांत की ओर (सारंगीपुर) या उज्जैन राजवंश की ओर। हामं=हमीर। आवृत्त=घिरा हुआ। निढ्ढुर=निड्डुरराय। गौर=कोई गौड़ क्षत्रिय। मुक्कलि=भेजा। पक्खलिय=पक्ष पर।

अर्थः—मंत्रणा करके चाहुआन नरेश्वर ने सब सामंतों को बुलाया तथा अपना खड्ग कछवाहे पज्जून को दिया और उस वीर को उज्जैन (उज्जैन प्रांत) की ओर (सारंगीपुर को) या उज्जैन राजवंशी भीम की ओर रवाना किया। उसने (पृथ्वीराज) कन्ह चाहुआन, रामराय बड़गुज्जर, चंद पुंडीर, राजा हम्मीर, श्रेष्ठ अत्ताताई, वीर गौर, निड्डुरराय और जयसिंह आदि को साथ में दिया। वे वीर पज्जून के साथ होकर उसके आसपास चलने लगे।

दोहा

मुक्कलयौ कवि चंद सथ, नृप मुक्कलि गुरुराम।
मुक्कलयौ कैमास सँग, दाहिम्मौं बर ताम॥ ११॥

शब्दार्थः—कैमास संग=कैमास के पीछे उत्पन्न होने वाला (चामंडराय)। ताम=तब।

अर्थः—इनके अलावा कविचंद, गुरुराम पुरोहित और कयमास के बाद पैदा होने वाले दाहिमा चामंड को भी राजा ने पज्जून के साथ रवाना किया।

सब सामंत सु संगली, लै चल्यौ चहुआन ।
बरनि चिन्ह उर सल्लई[१], कहिय कबिय बक्खान ॥ १२ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—संगली=सिंहली, सिंह के समान । बरनि=वरण की जाने वाली नव वधू । चिन्ह= चाहने वाली । सल्लई=खटकने लगी, चुभने लगी ।

अर्थः—सिंह के समान शक्ति रखने वाले सामंतों को साथ में लेकर चाहुआन नरेश्वर रावल की सहायता पर चल पड़ा । यह बात प्रेम करने वाली नव वधू (इन्द्रावती) के दिल में खटकी, परन्तु पृथ्वीराज ने उसकी भी परवाह नहीं की। इस विषय में कवि पृथ्वीराज की प्रशंसा करता है (अर्थात् स्त्री प्रेम से भी मित्र की सहायता करना उच्च माना) ।

दोहा

सज्जि सेन प्रथिराज बर, बीर बरन चहुआन ।
बर दसौर संभय मिल्यौ, चित्रंगी परधान ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—बीर बरन=वीर रस को वरण करने के लिये (या वीरों का अप्सराओं के साथ वरण कराने के लिये) । दसौर=दशपुर (मन्दसौर) । संभय=सामने । चित्रंगी=चित्तौडेश्वर का ।

अर्थः—वीर रस का वरण करने के लिये चाहुआन राजा पृथ्वीराज ने श्रेष्ठ सेना सजाई । इतने में चित्तौड़ेश्वर का प्रधान भी मन्दसौर स्थान पर सामने (अगवानी के लिये) आकर मिला ।

उत राव सम्हौ मिल्यो, चित्रंगी परधान ।
कहौ समर रावल कहां, पुच्छि कुसल चहुआन ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—पुच्छि=पूछा ।

अर्थः—चित्तौड़ेश्वर के प्रधान के आने पर चाहुआन नरेश्वर ने कुशल पूछी और पूछा कि रावलजी आजकल कहाँ है ?

कवित्त

कहि चित्रंगिय मंत्रि, चंपि आयौ चालुक्कह ।
तुम नन दीनौ भेद, आइ मंडो वर चुक्कह ॥

चित्रंगी चतुरग, आइ अड्डो करहेरां।
जुद्ध रुद्ध चालुक्क, हुए कोऊ दिन भेरां॥
हम दैंन खबर तुम मुक्लिय, कहौं कही मुख मुक्ख-रुख।
पृथिराज राज अग्गैं विवरि, कही वत्त परधान मुख॥ १५॥

शब्दार्थः—चंपि=दबाता हुआ। नन=नहीं। आइ=आकर। मंडो=किया। वर=श्रेष्ठ ढंग से। चुक्कह=चूक, अचानक आक्रमण। अड्डो=रोका। करहेरा=करेड़ा (मेवाड़ के अंतर्गत जैनियों का तीर्थ स्थान और स्टेशन)। कहौं=कहता हूं। कही मुख=श्री मुख से कही हुई। मुक्ख-रुख=मुख की चेष्टा, इच्छा। विवरि=व्यौरेवार। मुख=सामने या मुख्य।

अर्थः—तब चित्तौडेश्वर का मंत्री कहने लगा कि चालुक्य दबाता हुआ आ गया है। आपको इसका भेद हम न दे सकें, ऐसे ढंग से उसने अचानक आकर आक्रमण किया है। चित्तौड़ेश्वर ने ससैन्य करहेरा (करेड़ा) नामक स्थान पर उसे रोका है और अपने पक्ष वालों सहित एकत्रित होकर बहुत दिनों से चालुक्यों के साथ युद्ध में उलझा हुआ है। उसी की खबर देने के लिये मुझे आपके पास भेजा है। जैसा रावलजी ने श्री मुख से कहा है और उनकी जो इच्छा है, उसी के अनुसार मैं निवेदन करता हूँ। इस तरह प्रधान ने व्यौरेवार सब बातें पृथ्वीराज के सामने कहदीं।

नृप बुझ्झै चालुक्क, सेन कित्तक परमानं।
आइ ग्रह्यौ चित्रंग, निरत दीना नन आनं॥
सूर सुबर आवृत्त, रीति रक्खी विधि जानं।
इन अग्गै चालुक्क, बेर कित्ती भग्गानं॥
जोगिन्दराव जिप्पन बलिय, कलिय काल छप्पन बिरद।
समरंग बीर सम सिंघ बल, चंपि लैन चालुक दुरद॥ १६॥

शब्दार्थः—कित्तक=कितने, क्या है। निरत=विश्राम। आनं=और को, विपक्षियों आवृत्त=घेरा। विधि=तरीका। बेर=बार २। भग्गानं=भग गये। जिप्पन=जितने में। छप्पन बिरद=जिसके छप्पन विरुद हैं। समरंग=समर विक्रम। चंपि लैन=दबा लेने वाला। दुरद=द्विरद, हाथी।

अर्थः—प्रधान कहने लगा—हे राजन्! आपके पूछने से कहता हूँ कि चित्तौड़ेश्वर के सामने चालुक्की सेना क्या चीज है? उसने आकर चित्तौड़ेश्वर को घेर लिया; किन्तु उन्होंने विपत्तियों को विश्राम तक न लेने दिया। श्रेष्ठ वीरों से घिरे हुए होने पर भी उन्होंने ढंग से अपनी मर्यादा की रक्षा की। उनके सामने से कई बार चालुक्य भाग गये हैं। धन्य है योगीन्द्र उपाधिधारी रावलजी को, जो विजय प्राप्त करने में बलवान हैं और इस कलिकाल में जिनके ५६ विरुद हैं। कुंजर स्वरूपी चालुक्यों को दबाने के लिये समर विक्रम सिंह के समान है।

पावस रन प्रव्वाह, अभ्भ छायौ छिति छाइय।
छित्री छित्ति प्रमान, अभ्भ बदरं उठि झांइय॥
आलस नींदय खीझ, सत्त राजस गहि तामस।
धर दुहरन बुठ्ठनह, करै उद्दिम रन हामस॥
शृंगार रंभ ग्रेहं बसह, औ कुलटा सुकबीय हुव।
कारन्न कित्ति औकाल मिसि, द्रवै इंद्र सूरह सुलव॥ १७॥

शब्दार्थः—प्रव्वाह=प्रवाह। अभ्भ=अभ्र, बादल। बदरं=बादल। झांइय=चमक। आलस=आलस्य। नींदय=निंदित किया, अभाव किया। दुहरन=दुरूह, घनघोर। बुठ्ठनह=बरसने के लिये, झड़ी करने के लिये। रन=रण कुमार। हामस=हुमस कर। ग्रेहं=घर में। कुलटा=कुलटत्व। सुकबीय=स्वकीय, स्वकीया। सुलव=सुलभ, सहज में।

अर्थः—युद्ध का प्रवाह वर्षा-प्रवाह के तुल्य बढ़ा और जिस प्रकार आकाश में बादल छा जाते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी वीरों से ढ़क गई। जिस प्रकार बादलों में विविध रंग होते हैं, उसी तरह पृथ्वीपर वीरों के कवच आदि की चमक भी दिखाई पड़ी। सत्व और रजोगुण को धारण करने वाले वीरों ने तमोगुण को गृहण कर आलस्य को भगा दिया। पृथ्वी पर घन घोर प्रहार करने के लिये उन्होंने क्रुद्ध होकर युद्ध का उद्यम किया (या रण कुमार ने गर्म हो कर प्रयत्न किया)। रंभा के निवास-स्थान में सजावट के कारण मानों, शृंगार रस बस गया हो, ऐसा आभास हुआ और सुर-वाराङ्गनायें वीरों पर मोहित होकर कुलटत्व से स्वकीयत्व में प्रवृत्त हो गई। उन बहादुरों ने कीर्ति और काल द्वारा सहज ही में इन्द्र को भी प्रसन्न कर लिया।

कवित्त

ज्यौं गुनाव गारड्ड, सेन चालुक मिसि साही ।
विषम जोर फुंकयौ, सु फन ब्रह्मण्डन वाही ॥
जीभ खग्ग जम्भ्रूझरि, सेन सज्जे चतुरंगी ।
वान मंत्र मंने न, रसन कुंनन अवग्गी ॥
मन धीर बीर तामस तमसि, निधि चल्ले मन मध्य दिसि ।
भोरा भुवंग भंजन भिरन, पुव्व दई चिंतह सु बसि ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—गुनाव=गुण । मिसि=बहाने से । साही=ग्रहण की, घेरादिया । फुंकयौ=फुंकार की । फन=फण । ब्रह्मंडन=ब्रह्माण्ड को । वाही=चलाये । जम्भझरि=चलाई, झाड़ी । चतुरंगी= चित्तौड़ेश्वर । कुंनंन=कण, फेनकण । अवग्गी=उगले । निधि=नांधकर, देखकर । मध्य दिसि= मालव प्रांत को (इंद्रावती की ओर) । पुव्व=पूर्व, पहले ।

अर्थः—चालुक्केश्वर ने सेना के बहाने गारुड़ी के गुणों को काम में लेकर (गरुड व्यूहाकार) घेरा डाला; किंतु चित्तौड़ेश्वर प्रबल पराक्रम करता हुआ फुंकार कर ब्रह्मांडतक फन चलाने लगा (फैलाने लगा) । वह अपनी सेना को सर्पाकार सजाकर खङ्ग रूपी जिह्वा चलाता हुआ बाणों रूपी मंत्रों को लोप गया । रसना द्वारा जहर के झाग (फैन) उगलने लगा । यह सुन (देख) कर धीर वीर पृथ्वीराज तमोंगुण धारण कर चित्तौड़पति की मदद पर चला; किन्तु उसका मन मध्य प्रांत (इंद्रावती) की ओर था । उसने पहले भीम (चालुक्य) और उसके साथियों से लड़कर उन्हें नष्ट करने का ही निश्चय किया ।

थह संभरि चहुआन, बीर पारधि खरि आइय ।
दुहुं निसान बजि समुह, भूमि पुर कंपि हलाइय ।
बीर सिंघ आहुट्ठ; बीर चालुक मुख साहिय ।
पुच्छ मग्ग चहुआन, दुहुन बर बीर समाहिय ।
उत्तरिय मनों सामुद्द तहि, उदित दीह मंगल अरक ।
जोगिंद जेम जोगिंद कसि, अष्ट कुली बंध्यै मुरक ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—थह=स्थल, स्थान । पारधि=शिकारी । खरि आइय=चलकर आया । हलाइय=हिलादिये ।

सिंघआहुट्ठ=सिंह उपाधिधारी आहड़ा (चित्तौड़ेश्वर)। पुच्छ=पूंछ। समाहिय=पकड़ा। उत्तरिय= उतर पड़ा, निकल पड़ा। सामुद्द=समुद्र तल से। जोगिंद=रुद्र। जोगिन्द=योगीन्द्र उपाधिधारी चित्तौड़ेश्वर। अष्टकुली=सर्प। मुरक=गर्वयुक्त मरोड़ युक्त।

अर्थः—उस युद्ध स्थल में संभरेश्वर वीर चाहुआन पारधी (शिकारी) का रूप गृहण कर पहुँचा और चित्तौड़ेश्वर तथा दिल्लीश्वर के नक्कारे बजने शुरु हुए। जिससे पृथ्वी के सारे नगर कंपित होकर हिल पड़े। सिंह उपाधिधारी वीर आहड़े ने (चित्तौड़ेश्वर ने) चालुक्की वीरों का मुख भाग (मुहान) ग्रहण किया और चाहुआन ने पूंछ (पृष्ठ भाग) को पकड़ा। इस प्रकार शत्रु सेना को दोनों श्रेष्ठ वीरों ने घेर लिया (दबाया)। उस समय ऐसा दीख पड़ा, मानो अरुणवर्ण सूर्य ने समुद्रतल से निकल कर (पृथ्वीराज के उदय होते ही) प्रातः काल कर दिया हो (शत्रु-तम का नाश कर दिया) और योगीन्द्र उपाधिधारी भी रावल रुद्र रूप हो गया। उन्हें चाहने वाले उनके वीर अष्टकुली नागों के समान गर्व करने लगे।

दोहा

चालुक्कां चहुआन दल, भई सनाह सनाह।
दोऊ सेन कवि चंद कहि, बरनि बीर गुन चाह ॥ २० ॥

शब्दार्थः—सनाह=कवच।

अर्थः—चालुक्की सेना और चाहुआनी सेना ने कवच से कवच मिला दिये [छाती से छाती मिला दी अथवा कवच कस लिये]। कवि उनके उत्साह और गुणों का उत्सुकता पूर्वक वर्णन करता है।

चालुक्कां चित्रंग पति, मिले दिष्टि दुअ दौरि।
मनों पुब्ब पच्छिमहुतैं, उडि डंबर इल सौर ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—दिष्टि=दृष्टि। पुब्ब=पूर्व। डंबर=बवंडर। सौर=बारूद।

अर्थः—चालुक्की वीरों से चित्तौड़ेश्वर की दृष्टि इस तरह मिल गई मानों पूर्व और पश्चिम से पृथ्वी पर बारूद का बवंडर (ढेर) भभक उठा हो।

इत चंप्यौ चित्रंग पति, उत चुहान प्रथिराव ।
आइ राज उप्पर करन, बज्जि निसानन घाव ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—उप्पर करन=सहायता करने पर । घाव=चोट ।

अर्थ—इधर से (आगे से) चित्तौड़पति ने और उधर से (पीछे से) पृथ्वीराज ने चालुक्की सेना को धर दबाया । इस प्रार राजा पृथ्वीराज के रावलजी की मदद पर आते ही नक्कारे पर डंके की चोट पड़ी ।

कवित्त

सब सामंत रु समर, वीर दच्छिन दिसि हंडिय ।
चाहुआन हूसेन, गज्ज व्यूहं रचि गड्डिय ।
एक दंत हूसेन, दंत दच्छिनह तत्तारी ।
सुंड गरुअ गोयंद, राज कुम्भस्थल भारी ॥
दिसि वाम सबै आकार गज, महनसीहमोरी सुबर ।
बढ्ढनय अंग आहुठ्ठपति, महनरंभ मच्चौ सुभर ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—हंडिय=चले । गड्डिय=दृढ़ । तत्तारी=तत्तार खानदान का कोई गाजी हुस्सेन का साथी । राज=पृथ्वीराज । बढ्ढनय=बढ़ाने वाला, महावत । आहुठ्ठपति=आहड़ों का स्वामि चित्तौड़ेश्वर । महनरंभ=महान युद्धारंभ । मच्चो=मचाया, ठाना, किया ।

अर्थः—सब सामंतों सहित वीर समर विक्रम ने शत्रुओं पर दक्षिण की ओर से या दाहिने पार्श्व पर आक्रमण किया । उसी समय चाहुआन और हुस्सैनखां ने दृढ़ गज-व्यूह की रचना की । जिसमें एक दाँत के स्थान पर हुस्सैन, दूसरे दांत (दाहिने) के स्थान पर उसी का साथी कोई तत्तारी खानदान का योद्धा, सूंड़ के स्थान पर बड़ा गोइन्द राज, कुंभस्थल के स्थान पर स्वयं पृथ्वीराज, वाम पार्श्व के सारे अंगों के स्थान पर महनसिंह मोरी और महावत के स्थान पर स्वयं आहड़ों का मुखिया चित्तौड़ेश्वर हुआ और भयंकर युद्ध छेड़ा ।

दोहा

चालुक्कां परि सूर रन, सहस एक मुर सत्त ।
चूक चिंत चूकौ चित न' औ अचिज्ज विधिवत्त ॥ २४ ॥

शब्दार्थ:–मुर=मुड़ गये, पैर छोड़ दिये। सत्त=सौ। ग्रै=यह। अचिज्ज=अचरज, आश्चर्य।

अर्थ:—उस समय एक सहस्र चालुक्की वीर युद्ध स्थल में धराशायी हुए और एक सौ के पैर उखड़ गये। फिर भी आश्चर्य है कि छद्म चिंतन (छल करने) से उनका चित्त न हटा।

पंच पहर वित्यौ समर, दिन अथवंत प्रमान।
उभै सत्त रावर समर, प्रथीराज सत आंन॥ २५॥

शब्दार्थ:–उभै सत्त=दौ सौ। सत=शत, सौ।

अर्थ:—पांच प्रहर तक युद्ध होता रहा और सूर्यास्त होने तक युद्ध में रावलजी के दौ सौ और पृथ्वीराज के सौ १०० योद्धा काम आये (धराशायी हुए)।

निस बर घट्टिति सत्तरहि, सेस जाम पल तीन।
भिरि भोरा रावल समर, रत्तिवाह सो दीन॥ २६॥

शब्दार्थ:–घट्टिति=वह घड़ी। सत्त=सात। सेस=शेष। जाम=याम, प्रहर। रत्तिवाह=छापा मार।

अर्थ:—जब तृतीय प्रहर रात्रि में से सात घड़ी पांच पल रात्रि शेष रहीं, उस समय भीम चालुक्य और रावल समर में छापा मार युद्ध हुआ।

नदी उत्तरि चालुक्क बर, चंपि सुभर पृथिराज।
सुभर भीर उप्पर परे, मनो कुलींगन बाज॥ २७॥

शब्दार्थ:–कुलींगन=एक प्रकार का पक्षी।

अर्थ:—श्रेष्ठ चालुक्की वीरों ने नदी को पार किया, उसी समय पृथ्वीराज के योद्धाओं ने आक्रमण कर भीम के योद्धाओं को इस प्रकार दबाया जैसे बाज कुलिंग पक्षियों को दबाता है।

दोहा

औसरि भर पिच्छै परे, समर तिरच्छौ आइ।
मानहुँ खहु¹–हुत्तेसनी, भई बिभच्छनि धाइ॥ २८॥

ग्रा० पा० १, पारसोली।

शब्दार्थः—ओसरि=अवसर पाकर। पिच्छै परै=पीछा किया। खहु—हुत्तेसनी=गगनाग्नि, बिजली।

अर्थः—अवसर पाकर रावल समर विक्रम ने भी तिरछा रुख देकर चालुक्की वीरों का पीछा किया। उसकी तलवार ऐसी दीख पड़ी, मानो गगनाग्नि (बिजली) ने वीभत्स रूप धारण किया हो (अर्थात् लोह, मज्जा, मांस, हड्डियों आदि का ढ़ेर कर दिया)।

कवित्त

वीर वीर आरब्ब, चड्ढि वीरंतन हक्के।
चावद्दिसि बिड्डुरे, मोह माया न कसक्के॥
एक दिनां आहुरे, आदि जुद्धं खिति लग्गे।
कै छुट्टे मदमोख, जानि बीरन द्रग जग्गे॥
घन घाइनि घाइ अघाइ घन, मति सुभाइ विभ्भाइ परि।
कवि चंद बीर इम उच्चरै, प्रथम जुद्ध आदीत टरि॥ २६॥

शब्दार्थः—आरब्ब=अरबी घोड़े। हक्के=चलाये। बिड्डुरै=भय छागया। कसक्के=कर्षण किया, छूआ। लग्गे=दीखपड़ा। मति सुभाइ=सुहावनी मति के। विभ्भाइ=विभ्रम, भ्रमित।

अर्थः—प्रत्येक वीर घोड़े पर चढ़कर विपक्षी वीरों को विचलित करने लगा, जिससे चारों ओर भय छा गया। उन वीरों को कभी मोहमाया नहीं छू पाई थी। वे एक ही दिन में भिड़कर पृथ्वी पर पूर्वकालीन युद्धों का भ्रम फैलाने लगे। उस समय वे ऐसे दिखाई पड़े, मानों मतवाले हाथी छूट पड़े हों या चक्षु के समस्त बावन वीर जागृत हुए हों (अथवा शिवनेत्र से वीर प्रगट हुआ हो)। उन वीरों ने विपक्षियों को घायल कर दिया, जिससे सुहावनी मति वाले भी भ्रम में पड़ गये (चकित हो गये)। कवि कहता है- युद्ध में सम्मिलित वीरों ने मुझे कहा कि इस प्रकार आदित्यवार को हुआ वह प्रथम युद्ध समाप्त हो गया।

दोहा

संझ सपत्तिय बीर भर, परिग सुभर दस राइ।
तिय खवास परिगह नृपति, सिर घुम्मैं घट घाइ॥ ३०॥

शब्दार्थः—संझ सपत्तिय=सांझ हो आई। तिय=तीन। खवास=पास रहने वाले, अंगरक्षक। परिगह=परिवार के।

अर्थः संध्या हो आई। दोनों ओर के बहुत से योद्धा, दस राजा (राजा उपाधिधारी) और तीन अंग रक्षक तथा कितने ही राजपरिवार के वीर घायल होकर धराशायी हुए। उनके सिर और शरीर भूमने लगे।

कवित्त

परयौ समर खावास, जिनस जित्यौ चालुक्किय।
परि भट्टी महनंग, छत्र नंख्यौ[1] अरि संकिय[2] ॥
परयौ गौर केहरी, रेह अजमेरी लग्गिय।
परिग बीर पामार, धार धारह तन भग्गिय ॥
रघुबंस पंच पंचौ मिले, बर पंचानन और कवि।
चित्रंगराव रावर लरत, टरय दीह अथवंत रवि ॥ ३१ ॥

ग्रा० पा० १. २ पा०।

शब्दार्थः—रेह=मर्यादा। लग्गिय=लगी, धारण की, के लिये। अथवंत=अस्त होते।

अर्थः—इस युद्ध में एक जिसने चालुक्यों पर विजय पाई थी, ऐसा रावल समर-विक्रम का अंग रक्षक वीर, जिसके भय से सशंक होकर शत्रु ने सिर से छत्र हटा लिया, ऐसा महनसी भट्टी, अजमेर की मर्यादा को निभाता हुआ केहरी गौड़, तलवार लेकर टूट पड़ने वाला वीरसिंह प्रमार, पंचतत्व में मिलते हुए पांच रघुवंशी वीर, तथा पंचानन वीर और एक कवि आदि धराशाई हुए। चित्तौड़ेश्वर के युद्ध करते हुए सूर्यास्त हुआ और वह दिन भी समाप्त हुआ।

घरी अद्ध दिन रह्यौ, चलिग हुस्सैनखान भ्रम।
चालुक्कां दिसि चल्यौ, मोह छंड्यौ जु क्रमंक्रम ॥
असि प्रहार चढ़ि धार, मन न मोर्‍यौ तन तोर्‍यौ।
अस्त वस्त बज्री कपाट, दद्धिच ज्यों जोर्‍यौ ॥
वर रंभ वरन उतकंठती, सूर हूर उतकंठ मिलि।
ढिल्लीव ढोल जीरन जुगं, गल्ह बीर जुग जुग्ग चलि ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—क्रमंक्रम=क्रमशः। उतकंठती=अभिलषित हुई। हूर=मुस्लिम अप्सरायें। ढोल=नक्कारे। गल्ह=ख्याति।

अर्थ:—उस दिन जब आधी घड़ी दिन शेष था, तब हुस्सैनखां के शरीर से (सांसारिक) भ्रम दूर हुआ। वह क्रमशः ममत्व को छोड़ चालुक्यों की ओर बढ़ा। खड्ग प्रहार करता हुआ वह खड्ग से मारा गया। शरीर कट गया किन्तु युद्ध से मन नहीं हटा। उसका अस्त व्यस्त शरीर दधीचि की हड्डियों के समान पुनः जुड़कर वज्र-कपाट तुल्य हो गया। विपक्षी हिन्दू वीर से मिलने के लिये रंभा इच्छुक हुई। इधर हूर भी उस मुस्लिम बहादुर से मिलने की इच्छा लेकर चली। चाहे युगोंपरांत दिल्ली के विजयी नक्कारे मंद हो जाँय! फिर भी ख्याति युगों तक बनी रहेगी।

दोहा

निसि दिन-घटियति सत्त वर, दल चहुआनन चीन्ह।
भिरि भोरा रावर रिनह, रत्ति वाह सो दीन्ह ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ:—दिन–घटि=उस दिन की घड़ियों में से। सत्त=सात।

अर्थ:—उस रात्रि की कुल घटिकाओं में से जब सात घड़ी शेष रही, तब चाहुआन की सेना भी नहीं जान सकी और रावल रणसिंह ने (या चित्तौड़ेश्वर रावल ने) छापा मारकर भोला भीम से (या भोराभीम की सेना से) युद्धारंभ किया।

भिरि भग्गौ सुत-भुअँग को, गरुड़ समर गुर राज।
फिरि पच्छौ पुंछी पटकि, बिन सु गरब तजि लाज ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ:—सुत भुअँग=नागराज का वंशज (चालुक्की वंश में नागराज हुआ उसका पर्याय रूप लिखा गया)। पच्छौ=पीछा।

अर्थ:—गरुड़-तुल्य राजाओं के गुरु रावल समर से लड़कर भुजंग-वंशज (चालुक्य नागराज का वंशज भीम) गौरव और लज्जा को छोड़ कर पूंछ पटकता हुआ भाग गया।

खेत जीति चित्रंग, हत्थ चढ्यौ चहुआनं।
के भोरी भर सुभर, लीन अप्पह पर आनं ॥
केक किये परलोक, मुक्ति लब्भी गुर[1] जानं।
पंचतत्त मिलि पंच, सार धारह लग्गानं ॥
चहुआन समर इकतन्नि मह, तहाँ सेन उत्तरि सुभर।
चालुक्क भीम पट्टन गयौ, करि चंद कित्तिय अमर ॥ ३५ ॥

ग्रा० पा० १, प्र० टि० (१)

शब्दार्थः—खेत=रणक्षेत्र। अप्पह=अपने। पर=पराये। इकतन्नि मह=एक होने में। उत्तरि=उतर पड़ी।

अर्थः—इस प्रकार चित्तौड़ेश्वर ने रणक्षेत्र को जीत लिया। इतने में विपक्षीदल चहुआन राजा के भी हाथ चढ़ गया (अर्थात् वह भी युद्ध में शरीक हो गया), जिससे कितने ही बहादुर योद्धा दोनों तरफ से घायल अवस्था में उठाये गये, कितनों ही ने परलोक में निवास कर मोक्ष को प्राप्त किया और कितने ही शस्त्र के लगने से पंच तत्व में मिल गये। इस प्रकार चाहुआन और रावल समर के एक होने से उनकी सेना के योद्धा शत्रुओं पर एक साथ उतर पड़े। जिससे चालुक्की भीम अपने स्थान पट्टन को चला गया। इस युद्ध की अमर कीर्ति मैंने (कवि चन्द ने) फैलाई।

कवित्त

तब रानिंगर राव, झुम्भक धर रावर मंडिय।
रुक्कि सेन चहुआन, खग्ग मग्गह तन खंडिय॥
परिगहीय सब सथ्थ, गयौ चालुक्क बजाइय।
खभर खेह खग मिलिय, निरति पृथिराज न पाइय॥
वीरंग वीर बज्जर बिहर, भिरत बज्जि निय बिप्पहर।
बज्जरत बीय बंभन परत, गयौ भीम तन वर कुसर॥ ३६॥

शब्दार्थः—चालुक्क बजाइय=दूसरा ही चालुक्य, चालुक्य का प्रतिनिधि। खभर=खदेड़कर। खेह=क्षय। वीरंग=वीरधवल। बज्जर बिहर=वज्र वेग से। बीय बंभन=दो ब्रह्म क्षत्रिय। कुसर=कुशल।

अर्थः—उस समय रानिंगदेव झाला (मकवाना) ने रावल के भू भाग में युद्ध छेड़ा। यह देखकर चाहुआनी सेना ने डटकर सामना करते हुए तलवार द्वारा शत्रु शरीरों को खंडित करना प्रारम्भ किया। यद्यपि राज परिवार के वीर भाग गये थे, फिर भी चालुक्यराज के प्रतिनिधि ने शत्रुओं को खदेड़ने के लिये अपने खड्ग का प्रहार प्रारंभ किया, जिसके फलस्वरूप पृथ्वीराज भी विश्राम नहीं ले सका। वह वीरधवल वीर वज्र वेग से बढ़कर दो प्रहर तक लड़ता और तलवार चलाता रहा। वहाँ पर वज्र तुल्य दो ब्रह्म क्षत्रिय (चालुक्य) के धराशाई होने पर ही भीम का शरीर सकुशल लौट सका।

दोहा

तीस सहस बर तीस अग, गत चालुक रन मंडि।
तिन में कोइ न ग्रह गयौ, सार धार तन खंडि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—अग=आगे, सामने।

अर्थः—तीस सहस्र चालुक्की सेना में से तीस वीर ही श्रेष्ठ थे, जिन्होंने चालुक्य-राज के लौटते समय आगे बढ़कर युद्ध किया। उन्होंने शस्त्र धारा से अपने शरीर को खण्ड २ करवा दिया, किन्तु (अपने शरीर को बचाकर) कोई भी घर नहीं लौटा।

बावसूर कोइ न भयौ, धनि चालुक्की सेन।
सामि.काज तन.तुंग सौ, त्रिन करि जान्यो.जेन ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—बावसूर=सूरिया पवन, (वेगवान पवन)। जेन=जिनने।

अर्थः—धन्य है (धिक्कार है) उस चालुक्की सेना को, जिसके तीस सहस्र योद्धाओं में से कोई भी सूरिया पवन (भीषण गति वाला वर्षा लाने वाला पवन) नहीं बन सका (अर्थात् सामना नहीं कर सका), उनमें से उतंग शरीर वाले तीस वीरों ने ही स्वामी के लिये अपने शरीर को तृण तुल्य समझा।

ढ़िल्ली नृप ढिल्ली गयौ, बजि त्रिघ्घात सु दंद।
जिम जिम जस ग्रह राज करि, तिम तिम रचित कबिंद ॥ ३८ ॥

शब्दार्थः—कबिंद=कवि चंद, (कवि-इंद)।

अर्थः—युद्ध के बाद दिल्लीश्वर ऊँची आवाज से युद्ध के नक्कारे बजवाता हुआ दिल्ली लौटा। उस राजा ने जो २ यश-कार्य किये, उनको मैंने (कवि- चन्द ने) वैसे ही छन्द बद्ध किये।

जस धवलौ मन उज्जलौ, त्रिब्बी पहुमि न होइ।
भूत भविच्छति व्रित्तमन, चित्रनहार न कोइ ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—जस=जैसा। धवलो=धवल, वीरधवल। त्रिब्बी=निर्बीज। भविच्छति=भविष्य। व्रित्तमन=वर्तमान। चित्रनहार=रचना करने वाला।

अर्थः—उज्ज्वल मन वाले वीरधवल (चालुक्य का प्रधान सामंत) के समान संसार में अन्य व्यक्ति भी मिल सकते हैं, क्योंकि पृथ्वी निर्बीज नहीं है (अर्थात् ऐसे व्यक्ति समय २ पर उत्पन्न होते रहते हैं); किन्तु उनके उज्ज्वल चरित्र का वर्णन करने वाले कवि का मिलना कठिन है।

खंडौ सुनि पठयौ सु नृप, बज्जि निसानन घाइ ।
बर इंद्रावति सुंदरी, बिय बर करि परनाइ ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—खंडौ=खांडा, खड्ग । बिय=दूसरे को । परनाइ=पाणिग्रहण ।

अर्थः—उधर जब सारंगीपुर के राजा भीम ने सुना कि पृथ्वीराज ने इन्द्रावती को वरण करने के लिये अपना खड्ग भेजा है, तब उसने अपनी सुन्दरी कुमारी इन्द्रावती का विवाह अन्य व्यक्ति से करने का निश्चय कर नक्कारे पर डंका दिलवाया (युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ की)।

—:-❀-:—

इन्द्रावती विवाह
(समय ३१)

कवित्त

कहै भीम सुनि भट्ट, सूर बंध्यौ सूर हि रित ।
दीना सों प्रति प्रीति, सामि करिहै जु सामिमित ॥
रत अरत्त विष होइ[1], अमृत रसु[2] रत्त उपज्जै ।
ग्राव ग्राव[3] सों प्रीति, सार सौं सार सपज्जै ॥
कट्ठ सौं कट्ठ बर बंधियै, नारि नरन सों व्याहियै ।
इह काज राज कविचंद सुनि, त्यों बरनी बर चाहियै ॥ १ ॥

ग्रा० पा० १, ३ न २, पा० ।

शब्दार्थः—भट्ट=बंदीजन । सूरहि=बहादुर से ही । रित=लीन या रीति । सामिमित=स्वामित्व । अरत्त=विरक्त । रसु=रस । ग्राव=पत्थर । सार=लोहा । सपज्जै=मिलता है, प्रेम करता है । कट्ठ=काठ, लकड़ी ।

अर्थः—सारंगीपुर का प्रमार राजा भीम कवि चन्द से कहने लगा-हे वंदीराज ! सुनो । बहादुर और बहादुर की, स्वामी और स्वामी की, अमृत और रस की, पत्थर और पत्थर की, लोह और लोहे की, काठ और काठ की, नारी और नर की जोड़ी होती है । ये एक दूसरे के मित्र और परस्पर अनुरक्त होते हैं । यदि (उपर्युक्त अनुकूल विषय को छोड़कर) विरक्त से अनुरक्तता की जाय तो वह विष तुल्य होती है । इसीलिये राजा को चाहिये कि वे वरवधू के विषय में भी उपर्युक्त बात का ध्यान रखें ।

सुनि भीमंग पँवार, चढ़े प्रथिराज प्रपत्ते ।
समर दिसा चालुक्क, सजे चतुरंग सपत्ते ॥
धन्नि मगन तन आनि, कित्ति चहुआन सुनिज्जै ।
साम दाम[1] अरु भेद, दंड सुंदरि ग्रह लिज्जै ॥
मौ मत्त सुनौ खरि नाइतौ, नृप बर महि कलहंत भय ।
गुर गुरह सब्ब सामंत ए, लज्ज बंधि तुव हथ्थ दिय ॥ २ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—प्रपत्ते=पहुँचे। सपत्ते=सहित पहुँचे, या पहुँचे। धन्नि=धन्य, प्रसन्न होते हुए, धन्यवाद देते हुए। मगन=मग्न, प्रसन्नता। तन आनि=शरीर में लाइये। गृह लिज्जै=ग्रह में लेगा, गृहदेवी बनायेगा। खरि जाइ=लौट जाय। कलहंत=कलह। भय=होगा, डर। गुर गुरह=बड़े बड़े।

अर्थ:—यह सुन कर कवि चन्द कहने लगा–हे भीम प्रमार! सुनो। रावल समर पर आक्रमण करने के लिए चालुक्यों ने चतुरंगिनी सेना सजाई है। वे वहाँ पर पहुँच गये हैं। इसीलिए पृथ्वीराज रावल–विक्रम की सहायता करने के लिए वहाँ पहुँचे हैं। अतः उनके इस प्रशंसा योग्य कार्य को सुनकर आपको भी शरीर में प्रसन्नता लानी चाहिये; क्योंकि चाहुआन नरेश की कीर्ति तो सर्वत्र सुनी जाती है। वह साम, दाम, भेद और दंड में से किसी एक के द्वारा सुन्दरी (इंन्द्रावती) को गृह देवी बनायेगा ही–इसमें कोई संदेह नहीं है। मेरी सम्मति तो यह है कि यदि हम लौट जावेंगे तो आप दोनों राजाओं में कलह छिड़ेगा। अतः अब यहाँ पर आये हुए बड़े बड़े सामन्तों की लज्जा तुम्हारे हाथ है (अर्थात् खड्ग के साथ राजकुमारी को ब्याह दो और कलह की इच्छा मत करो)।

कहै जोइ वरदाइ, मंत कवि चंद सुआ मन।
मनवा सौ मन मिलत, जीय तक्कै कठ[1] साम न॥
जो वासुर मुर पंच, खग्ग मंडै चहुआनं।
तो भाविक जिह लेख, तिही ह्वै है परिमानं॥
भावी विगत्ति भंजन गढ़न, दइय दुसंकह जानि गति।
लिखि बाल सीस दुख सुक्ख दुह, सत्य होइ पर मान मति॥ ३॥

ग्रा० पा० १ संशोधित।

शब्दार्थ:—जोइ=देखकर, सोचकर। सुआ=यह, वह। तक्कै=देखता है। साम=सामने। वासुर=दिन। मुर=मुड़कर, लौटकर, बीतने पर। भाविक=भविष्य। तिहि=वही। परिमानं=निश्चय ही। दुसंकह=विशेष शंका से युक्त। बाल=बाला, कुमारी। पर मान मति=मेरी बुद्धि से सोची हुई।

अर्थः—भीम कहने लगा-हे वरदाई कविचंद ! तुम्हें सोच समझ कर सम्मति देनी चाहिये। मन से मन मिलता है; वह काठ की ओर आकर्षित नहीं होता। यदि चहुआन नरेश कुछ दिनों तक खड्ग का मंडन करता रहेगा तो जैसा भविष्य में लिखा होगा वैसा ही निश्चय रूप से होकर रहेगा; क्योंकि विधाता की गति दुरूह है। यदि भविष्य (भाग्य) वश हमारे दुर्गों का टूटना लिखा है तो वे टूट कर ही रहेंगे। इसी प्रकार कुमारी इन्द्रावती के सिर में (भाग्य में) दुःख या सुख जैसा भी लिखा होगा, वैसाहा होगा; किन्तु मैंने अपनी बुद्धि से जो विचार किया है, वही सत्य और सही है (अर्थात् मैं खड्ग के साथ कुमारी का विवाह नहीं करूँगा)।

दोहा

सुनि इन्द्रावति सुंदरी, धरनि सरन सिर लाइ।
कै धरनी फट्टै कुहर, कै पावक जरि जाइ ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—सरन=शरण। कुह=छेद, दरार।

अर्थः—पिता की यह बात सुन कर सुंदरी इंद्रावती ने अपना मस्तक नीचा कर लिया और मन हा मन कहने लगी-हे पृथ्वी ! तू फटकर मुझे स्थान दे दे ताकि मैं उसमें समा जाऊँ अथवा अग्नि में जल कर भस्म हो जाऊँ।

इन भव त्रप सोमेस सुअ, जुध बंधन सुरतान।
कै जलद्धि बूड़वि मरैं, अवर न वंछौं प्रान ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—इनभव=इस संसार में, इस जन्म में। जुध=युद्ध। बंधन=बांध लेने वाला। जलद्धि जलधि, समुन्द। बूडवि=डूबकर। अवर=और, अन्य।

अर्थः—मैं तो इस संसार में (या इस जन्म में) बादशाह को बांध लेने वाले राजा सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज को ही चाहती हूं उसके बिना मेरे लिए समुद्र में डूब कर मरना ही श्रेष्ठ है।

कवित्त

सखी कहै सुनि बत्त, सुनौ दानव कुल कहियै।
अवर जाति अन्नेक, राइ गुर परनह लहियै।

करे कौन परसंग, पाइ म्रगमद घनसारं ।
कोन करै कुष्टीन, सग लहि कामवतारं ।
तो पित्त अवर वर जो दियै, तो नन जंपै अलिय वच्च ।
राचियै अप्प राचै तिनह, अनरच्चैं रच्चैं न सुच ॥ ६ ॥

शब्दार्थ:—दानवकुल=ढूंढ़ा दानव का वंशज (बीसल तृतीय का वंशज) । राइ=राजा । गुर=बड़ा । परनह=शादी । मृगमद=कस्तूरी । घनसारं=कर्पूर । कुष्टीन=कुष्टि कोढ़ी । कामव्रतारं= कामावतार, कामदेव तुल्य । पित्त=पिता । नन=नहीं । वच=वचन । राचियैं=अनुराग करना चाहिये । अप्प=अपने से । अनरच्चै=अनुराग नहीं करने वाले से, प्रेम नहीं करने वाले से । सुचि= पवित्र, अच्छा ।

अर्थ:—तब सखी इन्द्रावती से कहने लगी, हे कुमारी ! सुनो, चाहुआन नरेश ढूंढ़ा दानव का वंशज कहा जाता है। उसके अतिरिक्त अन्य अनेक क्षत्रिय जातियाँ अतः तुम्हारे लिए उनमें से किसी एक श्रेष्ठ राजा के साथ विवाह करना अच्छा है, क्यों कि कस्तूरी को प्राप्त करने पर कपूर को कोई नहीं चाहता,कामदेव तुल्य पुरुष का संसर्ग छोड़ कर कोढ़ी पुरुष से कोई संपर्क नहीं करता। इसीलिये यदि तुम्हारे पिता किसी अन्य वर को तुम्हारा विवाह करदें तो तुम निषेध मत करना, क्योंकि जो व्यक्ति हम से अनुराग करता हो, हमें भी उसी से अनुराग करना चाहिये। जो हम से प्रेम नहीं करता हो उससे हमारा प्रेम करना अच्छा नहीं।

दोहा

तुम दासी दासी सु मति, मो मति न्रप पुत्रीय ।
बोलि विंन चुक्कै न नर, जो वर मुक्के जीय ॥ ७ ॥

शब्दार्थ:—विंन=वचन । मुक्के=छोड़दे । जीय=जीव, प्राण ।

अर्थ:—यह सुनकर इन्द्रावती कहने लगी। दासी होने के कारण तुम्हारी बुद्धि भी उसी के अनुसार (तुच्छ) है, किन्तु मेरी बुद्धि तो राजकुमारी सी है जो प्राण के चले जाने पर भी अपने वचनों से नहीं टलती।

कहै भीम कविचंद सुन, स्वामि काम तुम अड्डु ।
सेन सगप्पन रीत नह, तुम दानव कुल चड्डु ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—अड्ड=आड़, अर्गला। चड्ड=चंडि पुत्र।

अर्थः—इधर भीम ने कविचंद से कहा—हे चण्डी पुत्र ! यद्यपि तुम अपने स्वामी के कार्य को करने के लिए अर्गला स्वरूप हो रहे हो किन्तु (क्या तुम्हें यह प्रतीत नहीं है कि) तुम्हारे दानव वंशी राजा पृथ्वीराज का विवाह के लिए खड्ग और सेना भेज देना (स्वयं नहीं आकर) उपयुक्त नहीं है।

कवित्त

हौं सु भीम मालव नरिंद, मोहि धर[1] घर बर अच्छिय।
सवा लाख मो ग्रांम, ठाम संपजि[2] बहु लच्छिय॥
विधि विधान त्रिम्मान, कोन मिट्टै इह बत्तिय।
होन हार होइहै, पुरुष जंपै गति मत्तिय॥
तुम कहो नाम बर दाइ बर, गुरू राज बंदे चरन।
ओछी सुबत्त कह्यौ कथन, एह सगप्पन विधि बर न॥ ९॥

प्रा० पा० १, पा० भीं। २, भीं०।

शब्दार्थः-मालव नरिंद=मालव प्रांतीय राजाओं में से (मालवा के छोटे बड़े राजाओं के लिये शिला लेखों आदि में भीमालवेश, मालनरिंद आदि लिखा मिलता है जिससे मालव प्रांत के राजाओं में से ही मानना चाहिये)। सवा लाख मोग्राम=हमारे सवा लक्ष गांव हैं (हम प्रमारों के सवा लक्ष गांव हैं)। संपत्ति=पैदा होती है। विधि=तरीका।

अर्थः—पुनः भीम कहने लगा-मैं मालव प्रांत के राजाओं में से एक हूं हमारी पृथ्वी गृह और संतति श्रेष्ठ है। हम प्रमारों के सवा लक्ष गांव हैं, जिसके भूभाग से अत्यधिक लक्ष्मी प्राप्त होती है। विधि विधान से निर्मित हुई इस बात को कौन मिटा सकता है। भविष्य वेत्ता पुरुष कहते आये हैं कि होनहार होकर ही रहता है। तुम अपने नाम के साथ बरदाई लगाते हो और पुरोहित गुरुराम अपने चरणों की वंदना कराता है। अतः क्या तुम दोनों के मुंह से छोटी बात कहना श्रेष्ठ माना जा सकता है ? तुम ही कहो हमारे परस्पर सम्बन्ध की यह रीति कैसे श्रेष्ठ हो सकती है ?

दोहा

अहो भीम सत्तह सुमति, तुम मतिमान प्रमान।
औसर तकि कीजै जु[1] रन, औसर लहिजै दान॥ १०॥

प्रा० पा० १ भीं।

शब्दार्थ:-सत्तह=सत्य। सुमति=श्रेष्ठ मंत्रणा, अच्छे विचार। औसर=अवसर, मौका।

अर्थ:—तब चंद कहने लगा--तुम्हारा कहना ठीक है; क्योंकि तुम बुद्धिमान हो, किन्तु नीति कहती है कि अवसर आने पर युद्ध भी कर लेना चाहिये और दान भी स्वीकार कर लेना चाहिये (अवसर हो तो युद्ध द्वारा, नहीं तो दान द्वारा ही कार्य सिद्धि कर लेनी चाहिये)।

कवित्त

कहै भीम पज्जून, सुनौ पामर मति हीना।
अमत कियौ तुम मंत, बरन बरनी खग लीना॥
तुम सहाब बलि बंधि, गर्व सिर उप्पर ल्यन्ना[१]।
गिनों और तिल मत्त, कथन सुन्नो[२] नह कन्ना॥
खित्रीन[३] बस छतीस कुल, सम समान गिनि यै अवर।
घरु जाहु राज मुक्कौ बरन, करन ब्याह उच्छाह उर[४]॥ ११॥

ग्रा०पा०१, ३ भीं०, ७. ४ पा०।

शब्दार्थ:—अमत=कुमंत्रणा। सहाब=शहाबुद्दीन। ल्यन्ना=लिया, सवार किया। तिलमत्त=तिलमात्र। कन्ना=कानों से। खित्रीन=क्षत्रिय। राज=राजा का। मुक्कौ=छोड़दो।

अर्थ:—तब भीम पज्जून से कहने लगा कि तुम लंपट और तुच्छ बुद्धि वाले हो, क्योंकि तुमने क्षत्रिय होते हुए भी क्षत्रिय कुमारी का खड्ग से ब्याह कराने की कुमंत्रणा दी है तुम बलवान शहाबुदीन को बांध कर अभिमानी हो गये हो, इसी लिए दूसरों को तिल (तृण) मात्र समझते हो और किसी की बात कानों से नहीं सुनते। तुम्हें चाहिए कि तुम क्षत्रियों में छतीस ही वंशों को समान समझो। अतः अब तुम अपने हृदय से राजा के खड्ग ब्याह का उत्साह दूर करके घर लौट जाओ। इसी में तुम्हारी भलाई (श्रेष्ठता) है।

जैतराव जम जैत, नैन लल्ले करि बुल्ले[१]।
अहो भीम करि नीम, बत्त पहली तुम भल्ले[२]।
वल बलिष्ट केहरिय, स्यार क्यों मुख वर घल्ले।
लोक भाष बुभभीन, न्योत बैरी को मिल्लै।
हम कज्ज लज्ज सांई धरम, क्यों कढ्ढय मुख बत्तरिय।
सु विहान बरन थप्पै मरन, आज तुम्हारी रत्तरिय॥ १२॥

ग्रा० पा० १, २ पा०

शब्दार्थ:—जम जैत=यमराज पर विजय पाने वाला। लल्ले=लाल। बुल्लै=बोला। नीम=नियम, प्रतिज्ञा। भुल्ले=भूल गये। घल्ले=चलावे। लोकभास=लोकोक्ति। न्योत=निमन्त्रण देकर। मिल्लै=मेल करता है। बत्तरिय=बातें। रत्तरिय=रात्रि।

अर्थ:— यमराज पर विजय पाने वाला जैत्र प्रमार भी अरुण नैत्र करके बोला-हे भीम ! तुमने कुमारी का पृथ्वीराज से वरण कर देने का नियम लिया था। क्या तुम उस बात को भूल गये ? बलिष्ठ सिंह की ओर सियार को मुँह नहीं चलाना चाहिये (बकवाद नहीं करनी चाहिए), क्या तुम इस लोकोक्ति को नहीं समझे ? ऐसा कौन है जो शत्रु को निमन्त्रण देकर फिर संधि का प्रस्ताव कर लेता है ? हमारा मुख्य काम तो स्वामि-धर्म का पालन करना और उसकी लज्जा रखना है। तुम ऐसी बातें मुख से क्यों कहते हो ? आज की रात तुम्हारी है; प्रातः काल होने पर हम खड्‌ग-विवाह के लिये मृत्यु का स्थापित कर देंगे (अर्थात् युद्ध छेड़ देंगे)।

दोहा

तब कहि भीम नरिंद सुनि, अहो दुज्ज[1] गुर राम[2]।
अमत मंत मंडौ मरन, इह सु कोन ध्रम काम ॥१३॥

ग्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थ:—दुज्ज=द्विज। अमत मंत=बुरे विचार। ध्रम=धर्म।

अर्थ:—तब राजा भीम कहने लगा, हे द्विज गुरुराम ! सुनो, तुम्हारा यह धर्म-कार्य कैसा है ? जिसमें बुरे विचारों पर ही मृत्यु का मण्डन कर दिया जाता है।

कवित्त

त्रिया काज सुन भीम, मिल्यौ सुग्रीव राम जब।
कहिय बत्त पय लग्गि, नाथ मो बालि हत्यौ ग्रब ॥
हरी नारि तारिका, मास खट जुद्ध सु मंड्यौ।
अस्त वस्त करि सिथल, मृतक सम बरकरि छंड्यौ ॥
तुम देव सेव करुणा[1] ग्रहिय, अब सहाय तुम सारयौ।
बंधियौ सात तारह सु जिय, बलिय बान इक मारियौ ॥ १४॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ:—पग लगि=पैर छू कर। हत्यौ=नष्ट किया। तारिका=ताड़ना करने वाले। युद्ध=कलह। बरकरि=बलपूर्वक। सेव=शरण। तारह=ताड़ वृक्ष।

अर्थ:— तब गुरु राम कहने लगा-हे भीम ! सुनो, स्त्री के कारण ही सुग्रीव राम से मिला और उसने राम के चरण छूकर कहा कि हे स्वामी ! बालि ने मेरे गर्व को चूर्ण करके मुझसे मेरी स्त्री तक को छिन लिया है। छः माह तक निरन्तर कलह करते हुए उसने मेरे शरीर को अस्त व्यस्त और मृतक तुल्य शिथिल करके छोड़ दिया है। अतः हे देव ! अब मैं आपकी शरण हूँ। आप मुझ पर करुणा करके अपनी सहायता द्वारा मेरी इच्छा पूर्ति कीजिये। उस बलवान बालि का जीवन इन सात ताड़ के वृक्षों से सम्बन्धित है (इन सात वृक्षों को एक बाण से बेंधने वाला ही उसे मार सकता है) तब राम ने उस बलवान बालि को एक बाण से ही मार गिराया। (अर्थात् स्त्री के कारण ही बालि मारा गया।

दोहा

तुम बंभन बंभन सु मति, पढ़ि पुस्तक कहि सुस्त ।
दो घर मंगल मंडियै, इह घर जानी बस्त ॥ १५ ॥

शब्दार्थ:—बंभन=ब्राह्मण। सुस्त=स्वस्तिवाचन। घर जानो=घर नाश करने वाली। बस्त=वस्तु (खड्ग)।

अर्थ:—भीम बोला-हे गुरु राम ! तुम ब्राह्मण हो और तुम्हारी मति भी वैसी ही है। अतः तुम पुस्तक पढ़ना और स्वस्तिवाचन करना ही जानते हैं। तुम्हें तो दोनों घरों में मंगल हो, वैसा प्रयत्न चाहिये; किन्तु तुम जिस वस्तु (खडग विवाह की बात) को काम में ले रहे हो, वह तो गृह दोनों के नाश कराने वालो है।

अहो चंद दंद न करहु, तुम कुल दंद सुभाव ।
जैतराव मिलि राम गुरु, लै काने समझाव ॥ १६ ॥

शब्दार्थ:—दंद=कलह, विघ्न। लै काने=एकान्त में ले जाकर।

अर्थ:—हे कवि चन्द ! यद्यपि तुम्हारा वंश स्वभाव से ही कलह प्रिय है (अर्थात् वीर कविता का प्रेमी है) फिर भी तुम इस समय कलह कराने की चेष्टा मत करो और गुरुराम एवं जैत्र प्रमार को एकान्त ले जाकर समझाओ।

कहै चंद सुनि दंद, त्रीय कज रावन खंड्यौ।
बैरोचन नृप नंद, मारि अप्पन ध्रम भंड्यौ॥
कंस कन्ह सिसुपाल, कज्ज रुकमनि जुद्ध मड्यौ।
ता बंधव रुकमान, बंध मुंडवि सिर छंड्यौ॥
सुर असुर नाग नर पंखि पसु, जीव जंत त्रिय कज भिरै।
रे भीम सीम चहुआन की, ता बरनी को बर बरै॥ १७॥

शब्दार्थ:—कज=काज, के लिये। ध्रम भंड्यौ=धर्म का नाश किया। रुकमान=रुक्म। पंखि=पक्षी। जंत=जंतु। सीम=सीमा, भूभाग। बरनी=दुलहन।

अर्थ:—तब चंद कहने लगा—हे भीम! स्त्री के कारण जो विघ्न उपस्थित हुए हैं, उनको सुनो-स्त्री के लिये ही रावण मारा गया; स्त्री के कारण ही बैरोचन का पुत्र मारा जाकर धर्म से च्युत हुआ, बहिन को दुःख देने के कारण ही कंस का नाश हुआ और रुक्मणी के कारण ही कृष्ण और शिशुपाल में कलह हुआ एवं रुक्मणी के भाई रुक्मण का मुण्डन करके बांध दिया गया। इस तरह देवता, दानव, नाग, नर, पशु, पक्षी और जीव जंतु सभी स्त्री के कारण ही लड़ते रहे हैं। हे भीम! चहुआन नरेश्वर की राज्य सीमा और वाग्दान में प्राप्त हुई कुमारी को उसके अतिरिक्त अन्य कौन वरण कर सकता है?

दोहा

भीम पूछ परधान भर कहौ सु कीजै काम।
जुद्ध जुरैं चहुआन सौं, ज्यों इल रक्खै नाम॥ १८॥

शब्दार्थ:—इल=पृथ्वी पर।

अर्थ:—तब भीम अपने मंत्री और योद्धाओं से मंत्रणा कर कहने लगा कि जैसा तुम कहो, वैसा ही किया जाय। यदि हमें पृथ्वी पर नाम रखना है, तो चहुआन से (चहुआनी सामंतों से) युद्ध करना ही श्रेष्ठ है।

कवित्त

इह सुनाम अन्नाम, जेन नामह घर जाइय।
इहे नहीं घर जोग, अगनि दीपक दिक्खाइय॥
पच्छैं ही भज्जियै, होइ दुज्जना हसाई।
इंद्रावती सुन्दरी, देहु चहुआन प्रथाई॥

सुनि भीम राज तत्तौ तमकि, गइ मत्ति¹ बुभ्भी सु तुम।
हक्कारि जैत गुरुराम कवि, खग्ग व्याह न न करै हम ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—अन्नाम=बदनाम। जेन नामह=जिसके नाम पर, जिसके लये। जाइय=पैदा हुए। भज्जियै=स्वीकृत करोगे, या युद्ध से हटोगे। दुज्जना=दुर्जनों में। प्रथाई=पृथ्वीराज को। तत्तौ=तेज।

अर्थः—तब मन्त्री ने कहा कि इस समय नाम बदनाम का विचार करना वृथा है, क्योंकि ईश्वर ने इन्द्रावती को जिसके नाम पर (जिसके लिये) पैदा किया है, वह उसी को प्राप्त होगी। (हमारे शास्त्रों में) कन्या घर में रखने योग्य नहीं कही गई है, यह तो पराये के घर ही शोभा पाती है। आप व्यर्थ ही अग्नि को दीपक दिखाते हैं (अर्थात् पृथ्वीराज के अग्नि स्वरूपी प्रताप के सामने आपका प्रताप दीपक तुल्य है), क्योंकि आपको बाद में भी यह प्रस्ताव स्वीकार करना ही होगा (या युद्ध का त्याग करोगे) और उससे शत्रुओं के सामने हमारी हँसी की सम्भावना है, इसलिये सुन्दरी इंद्रावती को चहुआन के साथ व्याह देना ही अच्छा है। यह सुनकर भीम तीव्रता से आवेश में आकर कहने लगा-हे मन्त्री! हमारी मति जाती रही थी, इसीलिये हमने तुमसे इस विषय में पूछा। तुम जाकर जैत्र प्रमार, गुरुराम और कविचंद को मेरी ओर से कह दो कि हम इन्द्रावती का खड्ग-व्याह कदापि नहीं करेंगे।

दोहा

उठि चल्लै सामंत सब, करन दंद मति ठान¹।
जो बरनी बिन पछि फिरैं, नृपति न मन्नै गान² ॥ २० ॥

ग्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—गान=बात, प्रार्थना।

अर्थः—पृथ्वीराज के सामंत भी युद्ध का निश्चय करके वहाँ से उठ कर चलते बने। उन्होंने सोचा, यदि हम खड्ग के साथ कुमारी का व्याह कराये बिना ही चले जायं तो पृथ्वीराज से प्रार्थना करने पर भी वह हमारी बात कदापि नहीं मानेगा।

कवित्त

फिरि जानो पांवार राम रघुबंस विचारी।
जीवन जो उब्बरै, मरन केवल संचारी!

महंकाल बर तिथ्थ, तिथ्थ धारा उद्धारी।
स्वामि ध्रम्म तिय तिथ्थ, मुकति संसो न विचारी।
पांवार सुबल मालव नृपति, बर समुंद जिम भारयौ।
बर नीति कीत्ति[1] सुर वर असुर, मुगति मथन संभारयौ ॥ २१ ॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ:—फिरि जानी=लौट जाने के विषय में। पांवार=जैत्र प्रमार। उब्बरै=बचाले। संचारी=साथ में लगा है। तिय=तीन। मुकति=मोक्ष। संसो=संशय, संदेह। भारयौ=भारी।

अर्थ:—जैत्र प्रमार और रघुवंशी राय ने लौट जाने के विषय में सोच कर कहा कि यदि हम इस समय अपने प्राणों को बचालें तो उससे क्या होगा ? मृत्यु तो हमारे साथ लगी हुई है। हमें एक न एक दिन मरना ही है, तब इस समय युद्ध करके ही क्यों नहीं मरें, क्योंकि ऐसा अवसर अब न जाने कब मिलेगा ? हमें इस भूमि में महाकालेश्वर तीर्थ, धारा तीर्थ, और स्वामि-धर्म जैसे तीनों तीर्थ, एक ही साथ मिल गये हैं। अतः हमारी मोक्ष प्राप्ति में कोई संदेह नहीं है। यह मालव प्रांतीय-प्रमार राजा समुद्र तुल्य महान् है। हमें मोक्ष के लिये इसका मंथन करना चाहिये। देवता और दानवों की नीति के अनुसार कीर्ति ही सब से श्रेष्ठ है।

मतौ मंडि सब सथ्थ, मत्त को वित्त बिचारिय।
वर पट्टन दभिझहै, धेन लै है हक्कारिय।
बर बाहर पालि है, स्वामि खिझिहै पांवारय।
बर आतुर धाइ है, अप्प सम्हौं हक्कारय।
धरदेहि[1] कोस अधकोस बर, फिरि चावद्दिसि रुंधही।
करतार हथ्थ कित्ति[2] कला, तिहि दुज्जन फिरि बंधही ॥ २२ ॥

ग्रा० पा० १, २, पा०।

शब्दार्थ:—वित्त=बात। दभिझहै=जलायेंगे, जलाने पर। धेन=गायें। हक्कारिय=घेरने पर। बहार=सहायता, मदद। अप्प=अपन। सम्हौं=सामने। हक्कारिय=ललकारेंगे। धरदेहि=कुछ हट जायेंगे। कीत्ति=कितने ही।

अथः—इस मंत्रणा के अनुसार सबने मिलकर पट्टनपुर की गौओं को घेर लेने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि जब गौओं को छुड़ाने के लिए प्रमार वीर

पीछा करते हुए हम पर आक्रमण करेंगे, तब हम भी कोस-आधा कोस पीछे हट कर हुँकार करते हुए सामना करके उनको शीघ्रता पूर्वक रोक लेंगे। ईश्वर के हाथ में अनेकों कलाएं है। उनकी ही कृपा से हम इस प्रकार शत्रु को बन्धन में लेने में सफल हो सकेंगे।

दोहा

पंच कोस मेलान करि, लिय नृप पट्टन धेन।
कूक कहर बज्जिय, विषय चढिय भीम नृप सेन ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—मेलान=डेरा, मुकाम। कूक कहर=विघ्न कारक कोलाहल। बज्जिय=हुआ।

अर्थः—यह निश्चय करके उन्होंने वहाँ से पांच कोस की दूरी पर डेरा डाला और पट्टन नरेश (भीम) की गौओं को घेरली, जिससे विघ्न कारक विषम कोलाहल मच गया। यह सुनकर राजा भीम ने भी ससैन्य चढ़ाई करदी।

उच क्रंन अनमिष नयन, प्रफुनित[1] पुच्छ सिरेन।
रंग गंग गौ निजरि लखि, प्रज्जलि भीम उरेन ॥ २४ ॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—क्रंन=कान। अनमिष=अनिमेष। प्रफुनित=नासिका फुँकारती हुई। सिरेन=सिर पर, पीठ पर। गौ=गायें। उरेन=उर से।

अर्थः—घेरी हुई उन भयभीत गायों के कान ऊँचे, नैत्र अनिमेष, नासिका फुँकारती हुई और पूँछ सिर पर उठी हुई थी। उनका गंगा के समान धवल रंग देखकर भीम का हृदय क्रोध से जलने लगा।

कवित्त

औसरि बसि सामंत, धेन लुट्टिय पट्टनवै।
वर मंडल उज्जैन, धाक वज्जिय वद्दनवै ॥
ग्राम ग्राम प्रज्जरहि, सूर मानव बर बज्जै।
सामंतां री धाक, धार मुक्किय विधि भज्जै ॥
संभरिय बीर बाहर श्रवन, बाहर हर चढ्ढिय।
चतुरंग सज्जि पांवार बर, अगनहंकिअगपति वढ़िय ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—मंडन उज्जैन=मंडल उज्जैन (उज्जैन प्रान्तीय राजवंशी भीम के भू भाग में)। धाक=आतङ्क। बज्जिय=हुई, फैली। बद्दनवै=शोर गुल। रीं=की। धार=खड्ग धारा द्वारा। मुक्किय=छूट पड़ी, फैलगई। बाहर=ऊंचा शोरगुल। बाहर हर=सहायता करने वाले। बाहर=सहायता के लिये।

अर्थः—सामन्तों के द्वारा इस प्रकार अवसर पाकर पट्टनपुर की गौओं को घेर लेने पर उज्जैन राजवंशी प्रमार (भीम) के प्रदेश में आतङ्क पूर्ण कोलाहल छागया। गाँव पर गाँव जलाये जाने लगे, जिससे वे वीरवर श्रेष्ठ मानव कहलाये। उन सामन्तों ने अपनी खड्ग धारा के बलपर चारों ओर भय का संचार कर दिया, जिससे विपक्षी प्रमार वीर 'दई दई' (हे देव! हे देव! या हाय हाय) करने लगे। सामन्त वीरों के उत्पात और कोलाहल को सुनते ही गौओं के रक्षक चढ़ दौड़े और प्रमार राज भीम ने भी अपनी चतुरंगिनी सेना को सजाकर इस प्रकार आक्रमण किया, जैसे मृगों को विचलित करता हुआ मृगेन्द्र बढ़ रहा हो।

हय गय रथ चतुरंग, सज्जि साइक पाइक भर।
आइ मिले मुख मेल, दुहुन कढ्ढिय असि बरबर॥
तेग मार सिर झार, धुंम धुम्मर-हर लुक्किय।
परयौ घोर अँधियार, बिछुरे निसि भ्रम चक चक्किय॥
को गिनै अप्प पर को गिनै, लोह छोह छक्कैव रन।
सामंत सूर जैतह बलिय, कहत चंद जुग्गति लरन॥ २६॥

शब्दार्थः—साइक=धनुर्धारी। पाइक=पैदल। मुख=मुहाने पर, सामने। धुंम=धूम्र में, धूलि के धूम्र में। धुम्मर हर=धूम्रहर, तमहर (सूर्य)। चक चक्किय=चक्रवाक दम्पति। अप्प=अपने, पराये। छोह=उत्साह। छक्केव=छकगये। जुग्गति=युक्ति।

अर्थः—हाथी, घोड़े, रथ, धनुर्धारी और पैदल योद्धाओं से युक्त चतुरंगिनी सेना सजाकर दोनों ओर के योद्धा तलवारें निकालकर (लड़ने के लिए) आमने-सामने हो गये। तब वे परस्पर प्रहार करते हुए एक दूसरे के मस्तक काटने लगे। उस समय अत्यधिक धूल उड़ने से सूर्य छिपगया। चारों ओर घोर अंधकार के छाजाने से रात्रि होने का भ्रम पाकर चकवाक दम्पति एक दूसरे से बिछुड़ गये। बहादुरों को उस समय अपने-पराये का ज्ञान नहीं रहा; वे युद्ध में शस्त्र

चलाने के उत्साह से छक गये। कविचंद कहता है कि उन बहादुर सामन्तों में केवल मात्र जैत्र प्रमार ही ऐसा व्यक्ति था, जो युक्ति पूर्वक लड़ने लगा।

बर सिप्रा नदि तट्ट, धाइ सामंत जु रुक्किय।
रोकि मुक्ख रघुबंस, धेन पज्जून सु हक्किय ॥
दुतिय बीर बर टिके, भीम भारथ जिम लग्गिय।
सूर बिना प्रथिराज, धके जुरि खग्गन खग्गिय ॥
मुकि धेन गंठि बंधिय मिलवि, औसर खग कढ्ढिय लरन।
झरि सार तिनंगा तुट्टि बर, तिंदुव झर लग्यौ झरन ॥ २७ ॥

शब्दार्थ:—सिप्रा=क्षिप्रा। धाइ=चलकर। दुतिय=दूसरे। टिके=डट गये। लग्गिय=दिखाई पड़ा। धके=क्रोध से प्रज्ज्वलित होगये। जुरि=मिलाकर या जुटकर। खग्गन खग्गिय=खड्ग से खड्ग। मुकि=छोड़कर। गंठि=गांठ, ईर्ष्या, शत्रुता। बंधवि=ठानकर। तिनंगा=चिनगारियां। तिंदुव=तड़िद्व, तड़िता युक्त।

अर्थ:—क्षिप्रा नदी के किनारे आकर सामंत गण रुक गये। रघुवंशी रामराय ने सामना करके प्रमार नरेश (भीम) को रोक रखा, तब तक पज्जून गायों को घेरकर आगे चला गया। (रामराय के समान ही) अन्य सामंत गण भी श्रेष्ठता पूर्वक डटे रहे। उस समय प्रमार नरेश भीम महाभारत-युद्ध के भीम के समान दिखाई पड़ा, किन्तु पृथ्वीराज के न होते हुए भी पृथ्वीराज के उन बहादुर सामंतों ने क्रोध से प्रज्ज्वलित होकर युद्ध में खड्ग से खड्ग मिला दिये। इन्होंने गायों को छोड़कर शत्रुता ठानते हुए शत्रु से सामना करके मौका पाकर युद्धार्थ तलवारें निकालीं। तलवारों के टकराने पर उनसे निकलने वाली आग की चिनगारियाँ इस प्रकार दिखाई देने लगी, मानों घटाएँ टकरा कर बिजली युक्त वर्षा कर रही हों!

दोहा

आदि सूर पांवार बर, भीम मरन तिन जान।
हमसि हमसि सम्हौ भिरै, खग-पन मोख न पान ॥ २८ ॥

शब्दार्थ:—आदि=आदि से ही। तिन=तृण तुल्य। हमसि २=उमस २ कर, उमड़ २ कर। खग-पन=खड्ग। मोख=मोक्ष। पान=पाया।

अर्थः—बहादुर प्रमार आदि काल से ही श्रेष्ठ कहे गये हैं, इसी के अनुसार भीम भी मृत्यु को तृण तुल्य मानता हुआ उमसर (उमड़२)कर सामना करके भिड़ने लगा। उस समय उसके खड्गत्व ने मोक्ष नहीं पाया (उसकी तलवार चलते चलते नहीं रुकी)।

संझ होत वहि सार, मार करि तुट्टि सनह रिझ।
सो ओपम कविचन्द, भ्रंग छुट्टे कि बाल खिझ॥
टोप ओप उत्तरै, परै विपरीत विराजै।
मनों सु भाजन भौम, हथ्थ जोगिनि रुध काजै॥
यों भर्‌यौ सेन समब्बर सुबर, नन हार्‌यौ जित्यौ न कोइ।
दोउ सेन बीच सिप्रा नदी, निस कट्ठी बर बीर होइ॥ २६॥

शब्दार्थः—साँझ=साझ। मार=वार। तुट्टि=टूट गये। सनह=सनाह धारी, कवच धारी। रिझ=प्रसन्नता पूर्वक। भ्रंग=भँवरे। छुट्टे=छूट कर, झपट कर। बाल=बाला। खिझ=क्रोधित। टोप=शिरस्त्राण। उत्तरे=गिर गये। भाजन=पात्र। भौम=भूमि पर। रुध=रुधिर। काजै=के लिये। समबर=समान ही।

अर्थः—युद्ध करते २ संध्या हो गई, फिर भी वीरगण प्रसन्नता पूर्वक तलवार चलाते हुए शत्रु सेना पर इस प्रकार टूट पड़े (कवि चन्द इसकी उपमा देता हुआ कहता है), मानों किसी बाला (शत्रु सेना) पर भ्रमरा (कवचधारी वीरों) ने झपट कर उसे क्रोधित कर दिया हो। उनके प्रहारों से शत्रुओं के शिरस्त्राण पृथ्वी पर उलटे गिर पड़े, वे इस प्रकार सुशोभित हुए मानों योगिनियों के हाथ के रक्त पात्र (खप्पर) जमीन पर गिर पड़े हों। इस प्रकार युद्ध में दोनों सेनाओं की शक्ति समान ही रही। उस दिन किसी की जय या पराजय नहीं हुई। दोनों सेनाओं के मध्य में क्षिप्रा नदी थी। उसके दोनों तटों पर दोनों सेनाओं ने रात्रि में विश्राम किया।

होत प्रात सामंत पान व्यूहं जुध रच्चिय।
मोती अग सामंत, पान कूरँभ रा सच्चिय॥
बर हिरण्यउ थट्ट, पत्ति मंडी गुरुराजै।
लाल रूप कवि चन्द, मद्धि कनइक दुति साजै॥
नालीव रूप लीनो बरन, राम सुबर रघुवंस भिरि।
कोदनि सुरंग पंती करिय, बीय सहस पुण्डीर परि॥ ३०॥

शब्दार्थः—पान=हस्तपान, हस्तफूल (एक प्रकार का हाथ का भूषण)। मोती भर=समग्र मोती। पान=पाणि, हाथ। हिरण्यउ=सोने का। थट्ट=पतरा। पंती=पंक्ति। गुरुराजै=गुरुराज, राज पुरोहित, गुरुराम। कनइक=कणिका। नालीव=नीलम। कोदनि=खुदाई। सुरंग=रंगीले। बीय सहस=दो सहस्र।

अर्थः—प्रातःकाल होने पर पृथ्वीराज के सामंतों ने अपनी सेना को हस्त पान (कर भूषण) का रूप दे दिया। समस्त मोतियों के स्थान पर सामन्तगण, कर-पल्लव के स्थान पर कछवाहा राज पज्जून, हस्तापन के स्वर्णिम पतरे के स्थान पर गुरु-राम, लाल कणिका के स्थान पर मध्य में कविचंद, नीलम के स्थान पर रामराय रघुवंशी और खुदाई के स्थान पर रंगोले दो सहस्र पुंडीर योद्धा रखे गये।

दिन पलट्यौ पावार, सस्त्र बाहै सरत्रन पर।
चावद्दिसि सामंत, भीम बीट्यौ सुरंग नर।
तन सट्टे अरिसट्ट, बंधि लीने उज्जैनी।
बल छुट्यौ संग्रह्यौ, दई बर भंभर नैनी।
कविचंद छंडायौ बीच परि, बाल सुबर सुंदरबरी।
धनि सूर बीर सामंत हौ, सुबर जुद्ध इत्तौ करी॥ ३१॥

शब्दार्थः—सुरंग=रंगीले। तन सट्टे=शरीर के बदले में [शरीर की परवाह न करके] अरिसट्ट=नज़दीक भिड़कर। उज्जैनो=उज्जैन राज वंशी। संग्रह्यौ=पकड़ लिया। भंभर=भयातुर। छंडायौ=छुड़ाया। सुबर=अपने बल पर।

अर्थः—प्रमार भीम का दिन पलट गया आघात-प्रत्याघात करते हुए भी चारों ओर से रंगीले सामंतों ने उसे घेर लिया। शरीर की परवाह न करके परस्पर नज़दीक भिड़ कर सामंतों ने उज्जैन राजवंशी भीम को बांध लिया। उसकी शक्ति नष्ट होगई। वह पकड़ा गया और भयातुर द्रगों वाली (नवोढ़ा स्त्री) राजकुमारी इंद्रावती पृथ्वीराज को समर्पित करदी गई। कविचंद ने बीच में पड़ कर राजा भीम को छुड़ाया। बाद में वह सुन्दर बाला पृथ्वीराज के खड्ग से ब्याही गई। धन्य है, बहादुर सामंतों को, जिन्होंने अपने बल के भरोसे पर ऐसा युद्ध किया।

दोहा

भीम[1] भयानक भै[2] ग्रह्यौ, सरन राम कविराज ।
बर इन्द्रावती सुन्दरी, में दीनी प्रथिराज ॥ ३२ ॥

ग्रा० पा० १, २ भीं० ।

शब्दार्थ:—भै=भय ।

अर्थ:—भयानक प्रमार भीम ने भयभीत होकर गुरुराम और कविचन्द की शरण ग्रहण की और कहा कि मैं पृथ्वीराज को इंद्रावती समर्पित करता हूँ ।

जो मति पच्छै उप्पजै, सो मति पहले होइ ।
काज न विनसै अप्पनौ, दुज्जन हँसे न कोइ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ:—पच्छै=पीछे । उप्पजै=उत्पन्न होती है ।

अर्थ:—कवि कहता है-जो बुद्धि पीछे उत्पन्न होती है, वह पहले ही उत्पन्न हो जाय तो अपने कार्य का विनाश भी नहीं हो और न कोई शत्रु ही परिहास कर सके ।

आदर करि आने सु ग्रह, भगति जुगति बहु कीन ।
जे भर घाइल उप्परै, जतन जिवाइ सु दीन ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—जुगति=रचना । उप्परे=उठाये गये । जतन=यत्न ।

अर्थ:—आदर सहित भीम सामन्तों को अपनी राजधानी में ले गया और तरह २ से स्वागत किया । जो योद्धा घायल उठाये गये थे, उनका उपचार कर बचा लिया गया ।

खग विवाह भीमंग रुचि[1], बाजे बज्जन लग्गि ।
मंगल मिलि अलि गावहीं, गोख गोख निस जग्गि ॥ ३५ ॥

ग्रा० पा० १ पा०

शब्दार्थ:—भीमंग=भीम । अलि=सखियाँ । निस=निशा ।

अर्थ:—भीम के खड्ग विवाह की रचना की ओर बाजे बजने लगे । रात्रि में जाग कर झरोखों में बैठी हुई सुन्दरियाँ मिल जुलकर मांगलिक गीत गाने लगीं ।

लिखि कग्गद चहुआन दिसि, दिय पुत्री भीमान ।
इंद्रघरनि सम सुन्दरी, कलह कुसल बर बानि ।। ३६ ।।

शब्दार्थः—इंद्रघरनि=इंद्राणी । कलह कुसल=कला में कुशल ।

अर्थः—सामंतों ने पृथ्वीराज को पत्र लिखा कि भीम ने अपनी पुत्री आपको समर्पित करदी है। वह सुन्दरी इन्द्राणी तुल्य, कला कुशल और श्रेष्ठ बोलने वाली है।

करि शृङ्गार अलि अलिन संग, रिम झिम झुण्डन मंझ ।
बसन रंग नवरंग रंगे, जानु कि फुल्लिय सझ ।। ३७ ।।

शब्दार्थः—अलि=सुन्दरी । अलिन=सखियें । संझ=संध्या ।

अर्थः—विवाह के समय सुन्दरी इन्द्रावती रुन-झुन पायल बजाती हुई, सखियों की टोली के बीच विविध रंग में रंगे हुए वस्त्रों से विभूषित ऐसी दीख पड़ी, मानों संध्या फूली हो।

सत हथ्थी हय सहस बिय, साकति साजि अनूप ।
हथलेवौ चहुआन कों, दियौ भीम वर भूप ।। ३८ ।।

शब्दार्थः—सत=सात या सौ । बिय=दो । साकति=साज, सामान । हथलेवौ=कन्यादान दहेज ।

अर्थः—राजा भीम ने चहुआन राजा पृथ्वीराज को दहेज में (पाणिग्रहण में) अनुपम सजे हुए एक सौ हाथी (या सात हाथी) और दो सहस्र घोड़े दिये।

नग्ग जरित चौंडोल सौ, मुर सत दासिय सथ्थ ।
दै पहुचाइय सुन्दरी, कही बने वर गथ्थ ।। ३९ ।।
प्रा० पा० १ पा० भीं० ।

शब्दार्थः—नग्ग=नग । जरित=जटित । चौंडोल=पालकियाँ । मुर=मरोड़ करती हुई, इठलाती हुई, या मालव देशीय । कही बने=वर्णन करने योग्य । गथ्थ=गाथा, ख्याति ।

अर्थः—नग-जटित सौ पालकियों में इठलाती हुई सौ दासियों (या मालव देशीय दासियां) को साथ देकर सुन्दरी इन्द्रावती को विदा किया गया। उसकी ख्याति वर्णन करने योग्य है।

मात पुत्ति परठिय सुमँति[१], विधि विवेक विनयान।
पतिवृत सेवा सुख धरम, इहै तत्त मति ठान॥ ४०॥

ग्रा० पा० १ भी०।

शब्दार्थः—मात=माता। पुत्ति=पुत्री। परठिय=विदाई के समय दी। विनयान=विनय। तत्त=तत्व।

अर्थः—इंद्रावती की माता ने विदाई के समय इंद्रावती को विनय-विवेक के तरीके की सुमंत्रणा दी कि हे पुत्री! स्त्री का मुख्य धर्म पतिव्रत पालन और पति-सेवा ही है। अतः इसी तत्व युक्त वाणी को सदैव याद रखना।

पति लुप्पै लुप्पै जनम, पति बंचै बंचाइ।
इहै सीख हम मन धरौ, ज्यों सुहाग सचवाइ॥ ४१॥

शब्दार्थः—लुप्पै=लोपना, प्रतिकूल होना। लुप्पै=विपरीत। बंचै=ठगना। बंचाइ=ठगी जाना। इहै=यह। सीख=शिक्षा। सुहाग=सौभाग्य। सचवाइ=संचय हो, वृद्धि हो।

अर्थः—पति के प्रतिकूल होने में स्त्री का जन्म विपरीत हो जाता है। पति को ठगने से वह स्वयं ठगी जाती है। यह मेरी दी हुई शिक्षा मन में धारण किये रहना, जिससे सौभाग्य की वृद्धि होगी।

बंदिन दान प्रवाह दिय, लिय सुन्दरि जुध जीति।
दुहुँ जस त्रम्मल छंद गुन, पढ़न कविन इह रीति॥ ४२॥

शब्दार्थः—पढ़न=वर्णन किया। कविन=कवि ने। इह रीति=इसी रूप में।

अर्थः—विवाह के समय में बंदीजनों को दान दिया गया और युद्ध विजय कर सुन्दरी को प्राप्त किया। इस प्रकार दोनों तरह से वीरों का यश निर्मल माना गया और कवि द्वारा उसी रूप में वर्णन किया गया।

कवित्त

धनि सामन्त समथ्थ, जेन नृप बिन जुध जित्तो[१]।
धनि सामन्त समथ्थ, जेन जस किद्धि विदित्तो[२]॥
धनि सामन्त समथ्थ, जेन बरनी बर संध्यौ।
धनि सामन्त समथ्थ, जेन भीमँग रन बंध्यौ॥

सामन्त धन्नि जिन क्रित्ति बरि, ढिल्ली दिस पायान[३] करि ।
वैसाख मास अष्टमि सितह, क्रित्ति संचरिय देस परि[४] ॥ ४३ ॥

ग्रा० पा० १, २, ३, ४ पा०।

शब्दार्थः—धनि=धन्य । समथ्य=सामर्थ्यवान । जेन=जिनने । जित्तो=जीता, विजय की । किद्धि=किया । विदित्तो=विदित, प्रसिद्ध । बरनी=दुलहिन, इंद्रावती । बर=दुल्हा, पृथ्वीराज । संध्यौ=मिलाये । भीमंग=भीम प्रमार । बरि=अपनाई । पायान=प्रयाण । सितह=शुक्लपक्ष । देसपरि=स्वदेश में ।

अर्थः—धन्य है. सामर्थ्यवान सामन्तों को, जिन्होंने राजा के नहीं होते हुए भी युद्ध में विजय प्राप्त की और यश पाया । पृथ्वीराज और इन्द्रावती का सम्बन्ध जोड़ा, भीम को युद्ध में बाँधा, कीर्ति का वरण किया (अपनाया) और दिल्ली की ओर रवाना हुए । उनकी यह कीर्ति स्वदेश में वैशाख शुक्ला अष्टमी को फैल गई । (अर्थात् वै० शु० ८ को सामंतगण इंद्रावती को लेकर दिल्ली पहुँच गये) ।

ढिल्लिय पति सिनगारि[१], हट्ट पट्टन की सोभा ।
गौख गौख जारीन, दिक्खि त्रिय नर सुर लोभा ॥
भूंगल भेरि नफेरि, नद्द नीसान म्रदंगा ।
नाना करत सँगीत, ताल सौं ताल उपंगा ॥
गाजंत नभ्भ गज्जिय गुहिर, नृप प्रवेस सुन्दरि करिय[२] ।
सामंत जैत पय लग्गि प्रथ, प्रथक प्रथक परसंस किय[३] ॥ ४४ ॥

ग्रा० पा० १, ३, पा० । २ भीं०, ।

शब्दार्थः—हट्ट=हाट, । जारीन=जालियें । उपंगा=उपंग एक प्रकार का बाजा । गुहिर=गहरा । पय लग्गि=पैर छूये । प्रथ=पृथ्वीराज । परसंस=प्रशंसा ।

अर्थः—दिल्लीश्वर ने इन्द्रावती सहित सामंतों के आने की सूचना पाकर अपने नगर को सजवाया । उस के प्रत्येक झरोखों और जालियों में स्त्री–पुरुष दिखाई देने लगे, जिन्हें, देखकर देवता भी मोहित हो जाते थे । भूंगल, भेरि, नफेरि, नक्कारे, मृदंग, उपंग आदि बाजों के साथ ताल से ताल मिलाकर विविध प्रकार के गीत गाये जाने लगे और विविध वाद्यों के बजने के कारण आकाश प्रतिध्वनित होगया । ऐसे मंगलाचार

के साथ राजा ने इन्द्रावती को महल में प्रवेश कराया। उसी समय सब सामंतों सहित जैत्र प्रमार ने पृथ्वीराज के चरण छुये और पृथ्वीराज ने उन सब सामंतों की अलग-अलग प्रशंसा की।

दिस दच्छिन तच्छिन महल, सुंदरि समुद समप्पि।
सकल सत्त दासी अनुप, नृप इंद्रावति अप्पि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ:—दिस दच्छिन=दक्षिण दिशा। तच्छिन=उसी क्षण। सकल=कलायुक्त।

अर्थ:—राज महलों में दक्षिण की ओर के महल इंद्रावती सुंदरी के प्रमोद के लिये राजा ने दिये और एक सौ अनुपम कलायुक्त दासियाँ भी उसकी सेवा के लिये रक्खीं।

कवित्त

अगर कपूरति महल, सार घन सार सु रम्मिय।
धूप दीप सुग्गंध, दीप दस दिसि वृत जम्मिय।
सेज सुरंगति रंग, हेम नग जरे जरानं।
दिये भीम भूपाल, भोग साजं सु सबानं।
न्रप देखि अचंभ स मानि मन, मुख आतुर देखन महिल[1]।
आनिय सु सेज त्रिय अलिन मिल, अलि गुंजत उप्पर चहिल ॥ ४६ ॥

[1] ग्रा० पा० १ भीं।

शब्दार्थ:—सार=तत्व। घन=विशेष रूप से। सार=सजाया। वृत=वृत्ताकार। जम्मिय=जमाये। हेम=स्वर्ण। जरे=जड़े हुए। जरानं=जरीन। सबानं=सब प्रकार के। महिल=महिला को। अलिन=सखियों ने। मिल=मिलकर। चहिल=चहल, मंडराते हुए।

अर्थ:—वह महल अगर-कपूरादि तत्व युक्त पदार्थों से विशेष रूप से सजाया गया। धूप, दीप सुगंधादि वस्तुएँ और वृत्ताकार दसों दिशाओं में दीपक जमाये गये। अच्छे रंग की ज़रीन शैया, जो स्वर्ण और नग से जड़ी हुई थी और जो राजा भीम ने दहेज में दी थी, वह विलास युक्त सब साजों से सजाई गई उस सजावट को देखकर राजा ने भी मन में आश्चर्य किया और इंद्रावती का मुख देखने के लिये आतुर हुआ। उसी समय सखियाँ सुंदरी इंद्रावती को, जिस पर भ्रमर मँडराते हुए गुन गुना रहे थे, शयन भवन में ले आईं।

हंस गवन हंसह सर न, गनि गति मति सारद ।
रूप देखि भूल्यौ नृपति, रचिय विरंचि विहद ॥ ४७ ॥

शब्दार्थः—गवन=गामिनी । सर न=समान नहीं । सारद=शारदा । विहद=सीमा से परे ।

अर्थः—उस हंसगामिनी सुंदरी के सौन्दर्य को हंस नहीं पहुँच सकते थे । उसकी बुद्धि की गति शारदा तुल्य थी । ब्रह्माने उस इंद्रावती की सीमा से परे रचना की थी । उसे देख कर राजा स्वयं अपने को भूल गया ।

सुकी सरस सुक उच्चरिग, गंध्रव गति सो ग्यान ।
इह अपुव्व गति संभरिय, कहि चरित्त चहुआन ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—सुकी=स्वकीया (चन्द की व्याहिता पत्नी) । सुक=स्वकीय, अनुकूल पति, (कवी चन्द) ।

अर्थः—शुक ने (कविचंद ने) सरसता पूर्वक शुकी (अपनी पत्नी) से कहा कि यह ब्याह गन्धर्व विवाह की रीति से हुआ जानना चाहिये । इस तरह यह संभरेश्वर चहुआन के चरित्र का अपूर्व तरीका है, जो मेरे द्वारा कहा गया है ।

जैत्रराय

(समय ३२)

कवित्त

किहि भेखत प्रथिराज, किहित भेखत चिहु पासं ।
किहि भेखत दिसि विदिसि, कहौ मन-या उल्हासं ॥
किहि उमाह उच्छाह, कोन ओपम द्रग-राजै ।
सो उत्तर कविचंद, देव-गुर राज विराजै ॥
सजि मान बीर चतुरंगिनी, कमल गहन सुरतान बर ।
नव रस विलास जस रस सकल, तपै तुंग चहुआन बर ॥ १ ॥

शब्दार्थ:—भेखत=भेष, वेश, स्वरूप । चिहु पासं=उसके पास रहने वाले । दिसि विदिसि=देश विदेश । मन-या=मन में इसका । उल्हासं=उल्लास, प्रसन्नता, अभिलाषा । उमाह=उमंग, तरंग । उच्छाह=उत्साह । ओपम=उपमा, तुलना । द्रग-राजै=देखने पर । देव गुरु=देवताओं का गुरु । सजि मान=मान करके, सगर्व । कमल=कर कमल । गहन=गृहण करने वाले । तुंग=उं..., उन्नत ।

अर्थः—(चंद की स्त्री ने प्रश्न किया कि) पृथ्वीराज और उसके पास में रहने वालों का कैसा वेश (स्वरूप) है और वह देश विदेशों में किस स्वरूप में माना जाता है। उसके उत्साह की तरंगे किस भांति की हैं और देखने पर उसकी तुलना किससे की जा सकती है ? मेरा मन उसे सुनने को उत्सुक है। अतः आप उसका वर्णन करिये। कविचद ने उत्तर दिया कि पृथ्वीराज सब बातों में देवताओं के गुरु के समान शोभित होता है। वह वीर नरेश्वर सगर्व अपनी चतुरंगिनी सेना को सजाता है और उसके कर-कमल शाह को बन्धन में लेने वाले हैं। वह नव रस का विलासी और सब प्रकार से यश का प्रेमी है तथा वह उन्नत होकर तप रहा है (शासन कर रहा है)।

नीत राव खित्रीय, भेद लै ग्रह चहुआनं ।
दिल्ली कौ वर[1] भेद, लिख्यौ कग्गद सुरतानं ॥

वरख उभै खट मास, फेरि सुविहान पलान्यौ ।
खट्टूबन प्रथिराज, बहुरि आखेटक जान्यौ ।।
सामन्त सूर सथ्थइ न को, बर बराह बर खिल्लइय ।
दैवान जोध चहुआन बर, भिंरि दुज्जन भर ठिल्लइय[२] ।। २ ।।

प्रा० पा० १ भीं० । २ दे० ।

शब्दार्थः—खट=छः । पलान्यौ=चढ़ाई की, सजा । आखेट=शिकार करता हुआ । जान्यौ=जाना, ज्ञात हुआ । सथ्थइ=साथ में । न को=कोई नहीं । बराह=वाराह । खिल्लइय=खेलता है । दैवान= देवताओं के समान । जोध=योद्धा, वीर । ठिल्लइय=ठेल देता है, धकेल देता है ।

अर्थः—नीतिराय खत्री ने चौहान के गृह तथा दिल्ली नगर के सम्बन्ध में भेद देकर सुलतान को पत्र लिखा । यह सूचना पाकर ढ़ाई वर्ष बाद मुसलमानों के खुदा-स्वरूपी गौरी शाह ने फिर चढ़ाई की । उसे ज्ञात हुआ कि पृथ्वीराज खट्टूवन में शिकार खेल रहा है और उसके साथ कोई वीर सामन्त नहीं है । वह वीर वाराहों के साथ उत्तम रीति से खेल (शिकार) कर रहा है । वह चौहान वीर देवताओं के समान बलवान है । अकेला ही वह विपक्षी योद्धाओं से लड कर धकेल देने वाला है ।

सत चीता द्वादसति, स्वान अच्छे सुरंग दह ।
बीय अग्ग च्यालीस, सीह-वर-गोस कहंदह ।।
सत्त सत्त म्रग अच्छ, सत्त दह अग्गनि पाजी ।
आखेटक प्रथिराज, बीर ओपम अति राजी ।।
उप्पारति राय खट्टूति बर, मिली बसीठ गोरी सुबर ।
मंगे हुसेन साहावदी, पंच देस बंटन सुधर ।। ३ ।।

शब्दार्थः—सत=साथ । दह=दस । बीय=दो । कहंदह=कहे जाते । सत्त=सात । अच्छ=अच्छे । पाजी=प्राजी, प्राजाक, सारथी, रथ चलाने वाले, फंदा-डालने वाले, घेरा डालने वाले । राजी=सुन्दर । उप्परति=प्रारंभ करने वाला था । बसीठ=दूत । मंगे=मांगा है । हुस्सैन=गाजीहुसैन । बंटन= बांटने के लिये ।

अर्थः—पृथ्वीराज के साथ शिकार में सात चीते, सुन्दर देह वाले द्वादश शिकारी कुत्ते सिंह के समान श्रेष्ठ कान रखने वाले बयांलीस सिगोश, अच्छे २ पालतू चौदह

मृग, तथा सत्रह रथ (या रथारोही) थे, वे आगे २ चल रहे थे! उस समय शिकारी वेश में देखने से पृथ्वीराज पर साक्षात् वीर रस की उपमा फबती थी। राजा जब वन में शिकार प्रारंभ करने ही वाला था, उसी समय गौरी द्वारा भेजे हुए श्रेष्ठ दूत राजा से आकर मिले और कहा कि शहाबुद्दीन ने आप से हुस्सैन (गाजी हुसेन) को मांगा है और पंजाब देश के भूभाग को बांटने के लिये कहा है।

मुक्कि राज आखेट, सूर सामंत बुलाइय।
सुबर साह गोरीस, आनि उप्पर खरि आइय॥
मंगे धर पंजाब, खान हुस्सैन सु मग्गै।
इष्ट भ्रत्त अवसान, दिए कग्गद लिखि अग्गै॥
संमुहे सूर सामंत सब[1], दै मिलान सम्हौ खरिय।
चालंत जेम लग्गन[2] दिवस, झुकि लग्यौ गोरी गुरिय॥ ४॥

ग्रा० पा० १, २, का०।

शब्दार्थः—मुक्कि=छोड़कर। सुबर=श्रेष्ठ। आनि उप्पर=अपने ऊपर। खरि आइय=चढ़ आया। अवसान=सचेत। संमुहे=सँभल कर। गुरिय=भारी।

अर्थः—यह सुनकर पृथ्वीराज ने शिकार करना छोड़ अपने वीर सामन्तों को बुलाया और कहा कि बलवान गौरीशाह अपने ऊपर चढ़ आया है और वह पंजाब की भूमि एवं हुस्सैन (गाजी हुस्सैन) को मांगता है। उसने अपने इष्ट मित्रों को पत्र देकर पहले से ही सावधान कर दिया हैं। उसके सब वीर योद्धा अब भिड़ने के लिये भली प्रकार तत्पर होगये हैं। वह पड़ाव करता हुआ इस प्रकार बढ़ा है, जैसे कोई दु हा लग्न दिवस की उमंग में आतुर होकर चलता है। वह भारी वीर गोरी अपने पीछे वक्र होकर लग गया है।

दोहा

बेगि सूर सामंत सह, मिल जाइ चहुआन।
सिंध विहथ्थें दूत मिलि, गोरीवै सुरतान॥ ५॥

शब्दार्थः—बेगि=शीघ्र। सह=सब। सिंधु विहथ्थे=सिंधु से बहते हुए, सिंध से चलकर आते हुए। गोरी वै—सुरतान=गौरी शाह के।

अर्थ:—यह जानकर रहे- सहे वीर सामन्त भी चौहान से जा मिले ! इधर गौरी शाह के वे दूत, जो सिंध से चलकर आये थे, राजा से पुनः आकर मिले ।

अनँगपाल तीरथ्थ गय, बंधव रण सुरतान ।
बैर बीर ढिल्लिय तिनह, बर मंगै चहुआन ॥ ६ ॥

शब्दार्थ:—बंधव=बांध लिया । तिनह=से ।

अर्थ:—उन्होंने कहा-अनंग पाल तीर्थ यात्रा चले गये हैं और आपने शाह को युद्ध में बंदी बना लिया था, वही वैर दिल्ली से गौरी शाह लेना चाहता है ।

कवित्त

बर बसीठ उच्चरै, साहि जानौ पहिलौ ना ।
अप्पौ पहु हुस्सैन, साहि जानौ दस गुंना ॥
कंक बंक करतें नरिंद, कबहुक घर छिज्जै ।
भिर गौरी तिन भरह, रहट घट्टी घट भज्जै ॥
दुप्परह छांह दीसै फिरत, भावी गति दिख्खी किनह ।
मिलि थप्पि मत्त प्रथिराज बर, करहु एक बुद्धी सुनह ॥ ७ ॥

शब्दार्थ:—बसीठ=दूत । जानौ=समझो । पहिलौ=पहले जैसा । अप्पो=अर्पितकरो, सौंपदो । पहु=राजा । कंक=कलह, युद्ध । छिज्जै=नष्ट हो जाता । रहट=रहँट, अरहट । घट्टी=घटिका । घट घड़ा । भज्जै=फोड़देता । दीसै=देखी । करहु-एक=एकता करिये । बुद्धी-सुनह=बुद्धिमत्ता सुनी गई ।

अर्थ:—दूतों ने आगे कहा- आप शाह की शक्ति को पहले जैसी मत मानिये । उसकी शक्ति इस समय पहले से दस गुनी अधिक बढ़ गई है । अतः हे नरेश्वर ! हुस्सैन (गाजी हुस्सेन) को दे दीजिये । अभिमान रखकर कलह करने से कभी २ घर नष्ट होने की संभावना आ उपस्थित होती है । अतः आप गौरीशाह और उसके योद्धाओं से मत लड़िये । ऐसा भी देखा गया है कि कभी २ रहँट की घटिका घड़े को फोड़ देती है । भविष्य की स्थिति को किसी से नहीं देखा गया है । क्या किसी ने दो प्रहर (मध्यान्ह) के समय अपनी छाया को देखा है ? इसलिये हे श्रेष्ठ राजा पृथ्वीराज ! अपने सामंतों से मिलकर आप ऐसी अच्छी मंत्रणा निश्चित कीजिये, जिससे आप और शाह में एकता हो जाय । इसी में बुद्धिमत्ता है ।

अरे ढीठ बस्सीठ, कौन हार्यौ को जित्यौ ।
किन वित्तग वित्तयौ, कौन वित्तग अब बित्यौ ॥
पंच तत्त पुत्तरी, पंच-हथ्थन कर नच्चे ।
अजै बिजै गुन बंधि, चित्त तामस रस रच्चै ॥
बंछै जु सुख्ख फल-राज गति, वह करतार सु नन करै ।
उच्चरै किति छल ना रहै, तब लग्गै गल-बल-परै ॥ ८ ॥

शब्दार्थ:—ढीठ=धृष्ट । बस्सीठ=बसीठ, दूत । वित्तग=घटना । वित्तयौ=बीती, व्यतीत हुई । तत्त=तत्व । पुत्तरी=पुत्तलिका, शरीर । पंच-हथ्थन=पांच हाथ की । कर-नच्चै=हाथ नचाती, हाथ चलाती । तामस=तमोगुण । गति=दशा । नन=नहीं । बल-परै=बल पर, शक्ति के सहारे ।

अर्थ:—यह सुनकर पृथ्वीराज बोला ऐ ढीठ बसीठों:—क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है। पहले कौन पराजित हुआ और किसकी विजय हुई थी ? क्या बात बीत चुकी है। और अब भविष्य में क्या बीतेगी। इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यह पांच तत्वों द्वारा बनी हुई पांच हाथ की पुतली (शरीर) हाथ नचाती (चलाती) रहती है। पराजय और विजय के गुणों से आबद्ध इस पुतली का चित्त तमोगुण के रस में लीन रहता है। सांसारिक सुख और राज्य-फल की इच्छा हो; ऐसी लोलुप दशा ईश्वर हमारी कभी नहीं करे। हम छद्म रहित बनकर शक्ति के सहारे ही एक दूसरे के गले से लगें-और उसी के द्वारा हमारा कीर्ति गान होता रहे। (ईश्वर से केवल हम यही चाहते हैं और हमारा दृढ़ निश्चय भी यही है)।

दोहा

कै कोसां ढिल्ली धरा, कै कोसां गज्जान ।
खंडा सौं बर बंधिया, चहुआना सुरतान ॥ ९ ॥

शब्दार्थ:—कै कोसां=कितने कोसों पर । गज्जन=गजनी । खंडा=खांडा, खड्ग, तलवार । सौं=से । बर-बंधिया=श्रेष्ठ बँध गये, श्रेष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिया ।

अर्थ:—दिल्ली और गजनी बहुत कोसों की दूरी पर हैं, किन्तु मैंने (दिल्ली पति चाहुवानने) और सुलतान ने तलवार का अच्छा सम्बन्ध स्थापित कर लिया है (वह टलने का नहीं)।

मैं रक्खौं[१] हुस्सैन बर, बर बंधौं[२] सुरतान ।
उठ्ठाए बस्सीठ बर, बर बज्जै निस्सान ॥ १० ॥

प्रा० पा० १, २, सं० ।

शब्दार्थः—उठ्ठाये=उठा दिये, विदा किये ।

अर्थः—मेरा यही दृढ़ निश्चय है कि हुस्सैन (गाजी हुसेन) को शरण में रक्खूंगा, और सुलतान को बंधन में लूंगा । यह कहकर राजा ने दूतों को विदा किया और भारी नक्कारे बजवाये ।

गाथा

तं बीरं जल गंभीरं, आव यों उप्पटी सेनं ।
गोरी दिसि चहुआनं, चहुआनं गोरियं साही ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—तं=तमोगुण । बीरं=वीरों । आव यों=प्रवाह के समान ।

अर्थः—उसी समय वीरों में तमोगुण रुपी गहरा जल-प्रवाह उमड़ पड़ा और चौहान ने गौरी की ओर तथा गौरी ने चहुआन की ओर प्रस्थान किया ।

चढत सिंध सुरतान पुल[१], दूत सपत्ते आइ ।
चर चरित्त चहुआन दल, कहै साह सों जाइ ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—सिंध=सिंधु प्रदेश । सपत्ते=आये । चर=दूत । पुल=पहुंचा । चरित्त=चरित्र ।

अर्थः—जिस समय सुलतात सिंधु प्रदेश तक पहुँचा, उसी समय शाही दूत दिल्लीश्वर के पास से रवाना होकर शाह के पास पहुँचे और उन्होंने चहुआन की सेना का सब हाल कहा ।

कवित्त

नहिन-इंद्र प्रथिराज-सोम-नंदन सिवरं-दिसि ।
बर इंद्रह दोसैन, महल मंड्यौ सु दुहूं निसि ॥
जब ही हम संचरै, काल तब ही दिखि[१] पासं ।
परत-वाह लख्खंत, दिष्ट देवन सुख वासं ॥
लच्छीन ग्रीव बसि[२] बीर-रसि[३] दह दिसि भर[४] दानव मिलिय ।
मेलान कोस पर पंच को, गौरी वै सम्हौ चलिय ॥ १३ ॥

प्रा० पा० १ से ४ का० ।

शब्दार्थः—नहिन-इंद्र=इंद्र कुछ भी नहीं। सोम-नंदन=सोमेश्वर का पुत्र। सिवरं-दिषि=शिविर में। दीसैन=देखा। महल-मंझ्यौ सभा की। दुहूं=दोनों। संचरै=गये। दिसि=देखा। परत-वाह=बाहु प्रहार, कर प्रहार। लख्खंत=दीख पड़ा। सुख वासं=सुख भोग। लच्छीन=लक्ष्मी। वसि=बस गई, लिपट गई। बीर-रसि=वीर रस। दह-दिषि=दसों दिशा। भर=भट, योद्धा, सामंत। दानव=तृतीय बीसल, ढुंढा। मिलिय=मिले, एकत्रित हुए। मेलान=मुकाम। पर=पड़ा हुआ। सम्हौ=सामने।

अर्थः—वे दूत बोले—हम दो दिन तक वहाँ पर रहे और रात्रि में उसकी सभा देखी। उसके सामने इन्द्र कुछ भी नहीं है। वास्तविक इन्द्र तो इस समय हमने सैनिक-शिविर में देखा है; वह सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज ही हो सकता है। जब हम उसके पास गये, तब ही से हमको ज्ञात होरहा है कि यमराज हमारे पास हैं, उसके कर-प्रहार और सुख-भोग की ओर देखने से वह साक्षात् देवता ही दीख पड़ता है। उसकी ग्रीवा से (राज्य) लक्ष्मी और वीर रस (जय लक्ष्मी) लिपटी हुई है। ऐसे दानव (तृतीय वीसल) तुल्य उस वीर की सेवा में दसों दिशाओं (चारों ओर) के योद्धा आकर एकत्रित होगये हैं। उसने पांच कोस पर पहला पड़ाव किया और पश्चात वह आपकी ओर चल पड़ा।

दोहा

इह अवाज चहुआन दल, बंटि सेन सुविहान।
काइर भर सह उच्चरै, कहि बंधन सुरतान॥ १४॥

शब्दार्थः—इह आवाज=इस आवाज पर, ऐसा हाल सुनकर। बंटि=विभाजित की। काइर=कायर। सह=सब।

अर्थः—चौहान की सेना का ऐसा हाल सुनकर मुसलमानों के खुदा (गोरी) ने सेना को विभाजित किया, किन्तु जितने कायर थे, उनके मुख से यही निकला कि सुलतान पकड़ा जायगा।

कवित्त

हाइ हाइ कहि साहि, चरनि वरज्यौ सुविहानं।
झुम्भ रहै कै जाइ, जु कछु पत्तौ चहुआनं॥
बरन मेच्छ बर हिंदु, सुनत रन प्रन करि हेरिय[1]।
जय जानी अन चंप पंच चतुरंग सु भेरिय[2]॥

भुअ[3] वीर रूप गोरी सु वर, मुक्कि भयानक नट्ट जिम ।
पलटयौ भेष देखत सयन, वर बज्यौ नीसान तिम ॥ १५ ॥

ग्रा० पा० १, २, भीं० का० । ३, सं० ।

शब्दार्थ—सुविहानं=खुदाबंद । चरनि=दूतों ने । वरज्यौ=मना किया । झुम्भक=युद्ध । जुकछु पत्तौ=वह जैसा है वैसा । वर-मेछ=मुसलमानों से श्रेष्ट । पन=प्रण । करि=करते हुए । हेरिय=देखे गये । जय=जयराय, जैत्रराय प्रमार । जानी=जाना गया, माना गया । अनचंप=नहीं दबाई जाने जैसी । पंच चतुरंग=पांचाल-देशीय सेना । भेरिय=भैरवी, भयानक । भअ=भय, हुआ । मुक्कि-भयानक=भय छोड़कर । भेख=भेष, स्वांग ।

अर्थः—हाय २ करते हुए उन दूतों ने शाह को युद्ध करने से इन्कार किया और कहा-हे खुदाबंद ! वह जैसा है वैसा आप उस चौहान को जानते ही हैं, उससे भिड़ने पर युद्ध अपने हाथ में रहेगा या नहीं; क्योंकि मुसलमानों से हिन्दू-वीर श्रेष्ठ हैं जो युद्ध सुनकर प्रतिज्ञा करते हुए दिखाई देते हैं, इस युद्ध में चुना गया सेनापति जयराय (जैत्र प्रमार) भी नहीं दबने जैसा वीर है और उसकी मदत पर पंचाल देशीय सेना है वह भी भयानक है अतः उन्हीं की विजय निश्चित है। यह सुनते ही गौरी-शाह भय को छोड़कर इस प्रकार साक्षात वीर रूप में परिवर्तित हो गया मानों नट ने स्वांग बदला हो । उसे इस प्रकार वीर रूप में देखकर सेना में भारी नक्कारे बजने लगे ।

अट्ठ अट्ठ जोगिनिय, सुक्र संम्हौ सुरतानं ।
दिसासूल दिसि बाम, बैर कंन्हा चहुआनं ॥
सिंघ बाम भैरवी, गहक बोली गोरी दिसि ।
गुर पंचम रवि नवों, राह ग्यारमों सुरंग ससि ॥
ईसान मध्य देवी पहकि, गहक सभम्भ घूघू बहक ।
आकास मद्धि गज्यौ गयन, परी[1] बूंद बेबंग हक ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १ पा० भीं० ।

शब्दार्थः—अट्ठ अट्ठ=चौंसठ । सुक=शुक, या शक्र, इन्द्र । सम्हौ=सामने । बैर=बेल, सहायता पर । कंन्हा=कृष्ण, या काका कन्ह । भैरवी=चितकबरी चिड़िया [चीपड़े] । गहक=गह-गहाकर, उच्चस्वर से । दिसि=ओर, उसके प्रतिकूल । सुरंग=युद्ध क्रीडा । फहकि=फेंकड़ी,

जम्मू मादा। मभम्भ=उसी मध्य, उसी के साथ २। घूघू=उल्लू पक्षी। वहक=बबका, बोला। गज्यौ=गोरंभ, भूकंप। बेब्रंग=बंब्रा, स्रोत। हक=प्रवाहित हो चला।

अर्थः— उस समय चौंसठ ही योगिनियाँ और दैत्य-गुरु शुक्र, (या इंद्र) तुल्य पृथ्वीराज शाह को सामने दिखाई दिया। उस दिन पृथ्वीराज को दिशाशूल बायें था और चाहुवान की सहायता पर कृष्ण या (काका कन्ह) थे। गौरी के लिये निषिद्ध शकुन में बायीं ओर सिंह और भैरवी (चितक बड़ी चिड़िया) उच्चर स्वर से बोल रही थी। पृथ्वीराज के गुरु पांचवें, रवि नवमें स्थान पर था और गौरी-शाह के राहु और चंद्रमा ग्यारहवें स्थान पर अशुभ फल दायक थे। ईशान कोण में देवी स्वरूप फेंकड़ी (जम्मू मादा) और साथ ही घू घू (उल्लू पक्षी) बोल रहा था। उसी समय आकाश तक गोरंभ गर्जना करने लगा (भूकंप हुआ) और बूंदों के बरसने से जल-स्रोत प्रवाहित होने लगा। इस प्रकार एक (पृथ्वीराज) को शुभ और दूसरे (गौरीशाह) को अशुभ शकुन हुए।

त्रतिय पहुर पर पहुर, बीर घरियार ठनक्किय।
गोरीवै से हथ्थ, चंपि चहुआन सु तक्किय॥
घरिय इक्क बनि सेन, सूर सामन्त परक्खिय।
धरि ओड़न करि बग्ग, बैर सुविहान खरक्किय॥
करबार धारि सिप्पिर करह, एक होइ उप्पर तरै।
दिसि वाम चंपि दुज्जन दलह, उसरि सेन सम्हौ भिरै॥ १७॥

शब्दार्थः—पहुर=प्रहर। पर=तक। बीर घरियार=बीर घन्ट। ठनक्किय=बजी। से हथ्थ=अपने हाथों से। चंपि=दबाना, धर पकड़ना। तक्किय=सोचा। बनि-सेन=सेना को बनाई, व्यूह बद्ध किया। धरि-ओड़न=कमान को कन्धे में धर (डाल) कर। करि बग्ग=रास को हाथ में की (उठाई)। खरक्किय=खटका। करबार=करवाल, तलवार। धरि=गृहण की। सिप्पिर=शीघ्र, क्षिप्र। उसरि सेन=सेना को उकसाता हुआ, सेना को उत्साहित करता हुआ। सम्हौ-भिरै=सामना किया।

अर्थः—प्रातः काल से लेकर दिन के तृतीय प्रहर तक वीर घंटायें बजती रही, उसी समय गौरी शाह को अपने ही हाथों से धर पकड़ने का विचार चाहुवान ने किया और अपने वीर सामन्तों को जाँचते हुए उसने एक घड़ी में अपनी सेना

को व्यूह बद्ध बना लिया। खुदाबन्द-गोरी चाहुआन को खटका जिससे उसने कामन को कन्धे पर डालकर अपने घोड़े की रास हाथ में उठाई और शीघ्रता पूर्वक हाथ में तलवार पकड़ी जिससे शत्रु-सेना के वामपार्श्व को धर दबाया और सेना को उत्साहित कर बढाते हुए शत्रु से सामना किया।

खिझि नंख्यौ है नरिँद, भूंमि[1] धुज्जिय खुरतारं।
मनु बद्दर गज्जंत, सद्द पर सद्द पहारं ॥
उड्डिय नाल चमंकि, मभ्भ धुंधर छबि लग्गिय।
रबि ओपम कांवचंद, चंद मावस घन उग्गिय ॥
अरि सेन भग्गि दिसि विड्डुरिय, परे मध्य सेना-घनिय[2]।
धनि धनि नरिंद सोमेस सुअ, इहु अरि तें तिन वर गनिय ॥ १८ ॥

प्रा० पा० १, का० । २, सं० ।

शब्दार्थ:—है=हय, घोड़ा। नंख्यौ=बढ़ाया। सद्द पर सद्द=आवाज पर आवाज। पहारं=प्रहार। धुंधर=धूली की धूंधल, अंधकार। रबि=रवि, सूर्य। मावस=अमावस्या। दिसि-विड्डुरिय=दिशायें विड्डर पड़ी, दिशायें कम्पायमान होगई। सेना-धनिय=सेनापति, जैत्रप्रमार। धनि धनि=धन्य है धन्य है। सुअ=सुत। इहु=इह, ऐसे। तें=तेने।

अर्थ:—क्रोध में आकर राजा पृथ्वीराज ने अपना घोड़ा बढ़ाया जिसके खुरों के आघात से पृथ्वी कंपित हो उठी। वह प्रहार करता हुआ इस प्रकार आवाज पर आवाज (गर्जना) करने लगा मानों बादल गर्ज रहे हों। घोड़े के चलने से उड़ने वाली धूल की धूंधल कूह-रात्रि का आभास देने लगी और लगातार चमकती हुई नालों से ऐसा ज्ञात होने लगा मानों कितने ही सूर्य और चन्द्र उदित हुए हों। उसी समय सेनापति जैत्र प्रमार भी शत्रु सेना के मध्य में प्रवेश कर गया जिससे शत्रु सेना भाग चली। दिशायें कम्पित होगई। यह देखकर कवि कहता है कि:-हे सोमेश्वर के पुत्र वीर नरेश्वर! तुझको धन्य है। तुमने ऐसे शत्रु को तृण तुल्य माना है।

इत्त खान-मारुफ, फिरत उसमान खान ढहि।
इन दुज्जन हय नंखि, बाग आजान बाह गहि ॥

इतै दीह अथ्थम्यौ, सूर बर सिंधु सपन्नौ।
मुकत तट्ट मिलि सूर, स्याम रन अप्प अपन्नौ॥
साखला सूर सारंग ढहि, जुरि जुवान पंचाइनौ।
केहरी गौर अजमेर पति, परयौ झुम्भिझ रन भाइनौ॥ १६॥

शब्दार्थः—इत्त=इधर। फिरत=मुड़ने पर, भागने पर। ढहि=ढहा, गिरा। इन=उपरोक्त। दुज्जन=दुर्जन, शत्रू। हय-नखि=घोड़े को बढ़ाया। बाग=लगाम, रास। अथम्यौ= अस्त हुआ। सूर= सूर्य। सपन्नौ=पहुंचा, प्रवेश कर गया। मुकत-तट्ट=मोक्ष सिंधु के तट पर। सूर=शूरबीर। स्याम=स्वामी। अप्प=अपने को। अप्पनौ=अर्पित कर दिये। जुरि=जुटकर। जुवान=जवान, युवक। झुम्भिझ=युद्ध करता हुआ, भिड़ता हुआ। रन-भाइनौ=युद्धेच्छु।

अर्थः—इधर आजान बाहु ने रास पकड़ कर अपना घोड़ा बढ़ाया और मारुफ खां को भगाकर उसमानखां को धराशाई कर दिया। इतने में दिनास्त हुआ और सूर्य समुद्र में प्रवेश कर गया, साथ ही मोक्ष-रूपी समुद्र के तट पर मिलकर वीरों ने भी स्वामी के लिये अपने (प्राणों) को अर्पित कर दिया। इस युद्ध में वीर सारंग देव-सांखला, युवक वीर पंचायन और वंश सूचक "अजमेर पति" विरुद धारण करने वाला युद्धेच्छुक केशरी गौड़ (क्षत्रिय) आदि विपक्षियों से लड़ते हुए धराशायी हुए।

दोहा

निसि घट्टिय घट्टिय तिमिर, दिसि रत्ती धवलाइ।
सैसब में जुव्वन कछू, तुच्छ तुच्छ दरसाइ॥ २०॥

शब्दार्थ—घट्टिय=घटी, समाप्त हुई। दिसि=दिशा। रत्तो=अरुणिमा। धवलाइ=धवल, उज्ज्वल। सैसव=शैशवावस्था। जुव्वन=युवावस्था।

अर्थः—रात्रि समाप्त हुई। अँधेरादूर हुआ और उज्ज्वल दिशा में अरुणिमा इस प्रकार फैली जैसे शैशव और यौवनावस्था के संधिकाल में यौवन तनिक सी झलक दिखाई देत है।

कवित्त

जाम निसा पाछली, सेन सज्जिय दोउ बीरं।
सामंता चहुआन, आनि गोरी कढ्ढि' मीरं॥

भान-पयान न भयौ, करे द्रिग रत्तह चढ्ढिय ।
ता पहिले पायान, जोध रन असुरन कढ्ढिय ॥
अदिहार बीर गोरी सुबर, चाहुआन दिन सुदिन घन ।
करतार हथ्थ कित्त कला, लक्ख मरन तक सीर नन ॥ २१ ॥

ग्रा० पा० १, का० ।

शब्दार्थः—जाम=याम, प्रहर । पाछली=पिछली । आनि=आने गये, लाये । कछि=कच्छी, घोड़े । भान-पयानन=सूर्य न उठा, सूर्योदय न हुआ । पायान=प्रस्थान । जोध=योद्धा, हिन्दूवीर । असुरन=मुसलमान वीर । कढ्ढिय=निकले, चलपड़े । अदिहार=बुरे दिन । लरन-मरन=लड़ भिड़ने तक ही । सीर नन=साथी नहीं ।

अर्थः—प्रहर रात्रि शेष रहने पर दोनों ओर के वीरों ने सेना सजाई । उसी समय सामन्त, राजा पृथ्वीराज, गौरी और मा ों की सवारी के घोड़े लाये गये । सूर्योदय नहीं हुआ उससे पहले ही उन्होंने अरुण नैत्र कर घोड़ों पर सवारी की और उनके प्रस्थान से पूर्व ही हिन्दू और मुसलमान वीरों ने रण-स्थल की ओर कदम बढ़ाया । वह दिन सबल-वीर गौरी के लिये बुरा और चाहुआन (पृथ्वीराज) के लिये विशेष अच्छा था । योद्धओं का लड़कर मर जाने तक ही साथ नहीं होता आगे स्वर्ग तक के साथी होते हैं । अस्तु-कला पूर्ण कीर्ति देना ईश्वर के ही हाथ में है [योद्धाओं के लड़ कर मरजाने पर भी जय पराजय ईश्वराधीन है] ।

दोहा

परत साहि गोरी सु धर, है गै भूमि भयान ।
रन रुंध्यौ सुरतान कों, परी बींटि चहुआन ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—गै=गयन्द, हाथी । भयान=भयानक । रुंध्यौ=घेर लिया, रुंध लिया । परीबींटि=घेरे में पड़ गया ।

अर्थः—गौरीशाह के भयावने हाथी-घोड़ों के धराशायी होते ही चहुआनी सेना ने घेरा डाला और शाह को रौंध (रोक) लिया ।

कवित्त

गहि गोरी सु विहान, हथ्थ अप्पौ¹ चहुआनं ।
चामर छत्त रखत्त, तखत लुट्टै सुरतानं ॥

गोरीवै हुस्सैन, बीर तुट्टै आहुट्टिय ।
मान तुंग चहुआन, साहि मुख के-बल खुट्टिय ॥
मध्यान भान पृथिराज तप, बर समूह दिन दिन चढै ।
जस जोतिमंत संभर धनिय, चंद बीज जिम बर बढ़ै ॥ २३ ॥

प्रा० पा० १, का० ।

शब्दार्थः—अप्पौ=सौंपा । रखत्त=रसद सामान । तुट्टै=टूट गये, कट गये, नष्ट होगये । आहुट्टिय=भिड़कर । मानतुंग=सम्मान के शिखर स्वरूपी । मुख=मुहाना । के-बल=बल करके । खुट्टिय=नष्ट कर दिया । जोतिमंत=कला पूर्ण ।

अर्थः—ठीक प्रातःकाल होते २ गौरीशाह को पकड़ कर सामन्तों ने पृथ्वीराज के हाथों में सौंपा और उसके चँवर, छत्र, रसद, तखत आदि लूट लिये । उस समय गौरीशाह और हुस्सैन (गाजी हुस्सैन) के वीर लड़कर नष्ट होगये । इस प्रकार सम्मान के शिखर स्वरूपी चाहुआन (पृथ्वीराज) ने शाही मुहाने को बल प्रदर्शित कर तोड़ दिया । संभरेश्वर पृथ्वीराज का श्रेष्ठ तप दिन प्रतिदिन फैलने और उसका कलापूर्ण यश द्वितीया के चन्द्रमा के समान वृद्धि पाने लगा ।

कांगुरा युद्ध

(समय ३३)

कवित्त

कितक दिवस निस मास, आइ जालंधर रानी ।
कहै राज सूं[1] बचन, हूं सु कंगुर द्रुग जानी ॥
तो तुट्ठी कर-पान लेह, में वाचा दक्खिय ।
भोट भान धुर जीत्ति[2], पल्ह पच्छै फिरि अक्खिय ॥
हम्मीर भीर अग्गैं करैं, दल भज्जै मति सत्ति करि ।
बरनी सु लच्छ लच्छी सहज, परनि राज आवह सु घरि[3] ॥ १ ॥

प्रा० पा० १, घ० का० । २, घ० । ३, पा० ।

शब्दार्थः—कितक दिवस=कितने दिनों में,कुछ समय बीतने पर । निस=निशि, रात्रि । मात=माता । आइ=आई । सूं=से । हूँ सु-कंगुर-द्रुग-जानी=मुझे कांगुरा द्रुग पर रहने वाली समझ । तुट्ठी=तुष्ट हूं, प्रसन्न हूँ । करपान-लेह=कृपाण ले, तलवार गृहण कर । वाचा दक्खिय=वचन कहती हूँ, वर देती हूँ । भोट भान=भोट वंशीभान, या भोटियों का सूर्य । अक्खिय=कहा । भीर=सहायता । अग्गैं-करैं=आगे को करेगा या अग्रगण्य करगा । भज्जै=भंजे, नष्ट करेगा । मति=मंत्रणा, सम्मति । सत्ति करि=सत्य मान । बरनी=दुलहन, हम्मीर की राज कुमारी । लच्छ=लक्षण । लच्छी=लक्ष्मी । सहज=सहज में, या स्वाभाविक । परनि=विवाह कर ।

अर्थः—कुछ समय बीतने पर देवी-जालन्धर-रानी रात्रि में स्वप्नावस्था में राजा पृथ्वीराज के समक्ष आई और राजा से कहने लगी मैं कांगुरा दुर्ग पर निवास करने वाली हूँ और तुझ पर प्रसन्न होकर वर देती हूँ, हाथ में तलवार गृहण कर; निश्चय रूप से पहले तूं भोटी-भान से फिर वीर पल्हन से विजय प्राप्त करेगा । मेरी इस सम्मति को तू सत्य मान । इस युद्ध में हमीर तेरा सहायक होकर सेना का नाश करेगा बाद में जो लक्ष्मी के स्वाभाविक लक्षणों से युक्त (हम्मीर की) राजकुमारी है उससे विवाह कर सहज ही तू घर लौटेगा ।

दोहा

चलिय राज कंगुर दिसा, दयौ भोट[1] फुरमान ।
कै आवै हम सेव पय, कै जित्तों नृप भान ॥ २ ॥

ग्रा० पा० १, टि० नं० ४ ।

शब्दार्थः—फुरमान=फरमान, आदेश । सेव पय=चरणों की सेवा करने को ।

अर्थः—तब पृथ्वीराज ने काँगुरे की ओर प्रस्थान किया । और भोटी राजा को आदेश दिया कि या तो तुम हमारे चरणों की सेवा करने के लिये उपस्थित हो जाओ अन्यथा हे राजा भानु ! तुमको जीत लिया जायगा ।

कवित्त

तब सुनि भान नरिंद, स-बद उब्भार अतुरबर ।
रे जंगली जुवान, मोहि पुज्जे अप्पन बर ॥
जो खजुआ अति तेज, तोइ कांइ[1] दिनयर लोपै ।
जोइ चना अति सूर, तोइ का भाठी कोपै ॥
हूं नीति जानि अनितन्न करि, तूँ लोभी आतुर अतुर ।
इनि बात मोहि अग्गैं[2] अवन, आई फुनि जैं हैं सु तुर[3] ॥ ३ ॥

ग्रा० पा० १, घ० का० । २, पा० । ३, घ० भीं० का० ।

शब्दार्थः—स-बद=उसने कहा । उब्भार=उभर कर, उमस कर, जोष में आकर । अतुरबर=अतुलित बली । जुवान=युवान, युवक । पुज्जै=पहूंच सकता, समानता कर सकता । अप्पन बर=अपने बलपर । खजुआ=खगुआ, तारा या खदुआ [खद्योत, जुगनू] । कांइ=क्या दिनयर=सूर्य । लोपै=लोप-सकता, दबा सकता । तोइ=तोभी । का=क्या । कोपै=क्रोध कर सकता । हूं=मैं । अनितन्न करि=अनीति मत कर । अतुर=अतुल, अति । इनिवात=यह बात । मोहि=मेरी । अग्गै अवन=आगे आयगी, भविष्य में होकर रहेगी ! फुनि=पुनः । जैं हैं=जायगा । तुर=तुड़कर, नष्ट होकर ।

अर्थः—यह संदेश सुनकर अतुलित बलवान राजा भानु उमस कर बोला, हे जंगली युवक ! तू अपने बल के भरोसे पर मुझसे कैसे समानता करता है । यदि खगुआ (तारे या जुगनू) में विशेष चमक हो तो क्या वह सूर्य को दबा सकता है । यदि चना अधिक शूरा (कठोर) हो जाय तो क्या वह भट्टा पर क्रुद्ध होकर उसका कुछ कर सकेगा ? मैं नीतिज्ञ हूं मेरे सामने अनीति मत कर, किन्तु तू क्या करें तू तो

स्वार्थ वश अति आतुर है। अतः मेरी यही बात भविष्य में पूरी होगी कि यदि तू मेरे सम्मुख आयगा तो नष्ट होकर ही लौटेगा।

दोहा

सुनि रु दूत पच्छौ फिर्यौ, कही राज सौं बत्त[1]।
तमकि तोन लिन्नौ[2] नृपति, मनों सुजोधन पथ्थ ॥ ४ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थ:—पच्छौ=पीछा, वापस। वत्त=बत्त, बात। तमकि=तमस कर, तेष में आकर।

अर्थ:—भोटीभान द्वारा कही हुई बात सुनकर पृथ्वीराज का दूत लौटा, और राजा से सब बात कह दी। जिसको सुनते ही राजा पृथ्वीराज ने क्रोध में आकर इस प्रकार भाथे पर हाथ डाला, मानों दुर्योधन पर अर्जुन क्रोधित हुआ हो।

कवित्त

चढ़िग राज प्रथिराज[1], सथ्थ सामंत सूर भर।
है गै रथ चतुरंग, गौरि जंबूर नारि सर॥
कूंच कूंच अरि भान, आइ अड्डौ खग बज्यौ।
जनु कि मेघ में बीज, तमकि तत्तौ[2] होइ रज्यौ॥
आवृत्त झरत झारत परत, श्रोन धार धर पैर चलि।
इत उत्त सूर देखै लरत, घरी पंच रवि रथ न हलि॥ ५॥

ग्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थ:—सथ्थ=साथ। है=हय, घोड़ा। गै=गय, हाथी। सर=शर, बाण। आइ-अड्डौ=आड़ा आ डटा, सामना किया। खग-बज्यौ=तलवार चलाई। तमकि=क्रोधित हो। तत्तौ=तेज होकर, तेजी के साथ। आवृत=लगातार। झरत=कट २ कर। झारत=वार होने से। श्रोन=शोण। पैर-चलि=बह चली। सूर=शूर, बहादुर। न हलि=नहीं चलाया, रोक लिया।

अर्थ:—फिर आग्नेशास्त्र और बाणादि से सज्जित सामंत-गण और हाथी घोड़े, रथादि चतुरंग सेना सहित राजा पृथ्वीराज ने चढ़ाई की। उधर कूंच पर कूंच करता हुआ विपक्षी राजा भानु भी सामना करने के लिये आगया और क्रुद्ध होकर उसने तेजी से इस प्रकार तलवार चलाई मानों मेघ माला में बिजली चमक उठी हो। उसके द्वारा लगातार वार होने से सेना कट कट कर पृथ्वी पर गिरने लगी। जिससे श्रोणित

धारा पृथ्वी पर बह चली। इधर उधर बहादुरों को लड़ते हुए देख कर सूर्य ने भी अपने रथ को पांच घड़ी तक थांभ लिया।

दोहा

भिरत भान अति छोह करि, जन-जन-मुख-मुख-जानि।
घोर विछुट्टी दामिनी, सब चक चौंधिय आनि ॥ ६ ॥

शब्दार्थः–छोह=उत्साह के साथ। जन-जन-मुख-मुख-जानि=प्रत्येक के मुखसे यही निकला। विछुट्टी=गिरि, प्रपात हुआ।

अर्थः—उत्साह पूर्वक राजा भानु को लड़ते हुए और उसकी तलवार को चमकते हुई देखकर सब चकाचौंध हो गये और प्रत्येक के मुख से यही निकला कि भयानक विद्युत पात होरहा है।

कवित्त

खग वाहिय भिरि भान, अरिन अद्धर धर किन्नौ।
जै जै[1] मुख उच्चार, सीस उमया पति[2] लिन्नौ ॥
रीझि[3] रुलिग उतमग, अमिय विख जंग सु ढरयौ।
टंडव[4] मडि असंध, नंदि[5] भौअंग जु परयौ ॥
बीभच्छ भयानक भय उमा, रुद्र रुद्र मुख हास हुअ।
सिंगार बीर अच्छर बरन, नव रस सुनिहि[6] नरिंद दुअ ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १, घ० का०। २, ४, ५, ६, भीं। ३, पा० घ० का०।

शब्दार्थ–खग-वाहिय=खड्ग चलाई, खड्गाघात किया। अद्धर=बिना सहारे के, उठाने योग्य। उमया पति=उमापति, शिव। रीझि=प्रसन्न होता हुआ, हँसता हुआ। रुलिग=झूलने लगा। उतमंग=उत्तमांग, सिर। विख=विष। टंडव=तांडव, नृत्य। मंडि=करने लगा। असंध=टूटा हुआ, चत विक्षत शरीर। नंदि=नंदीगण। भौअंग=भुजंग। अच्छर=अप्सरा। सुनिहि=सुने गये। नरिंद=राजा भानु। दुअ=द्वय, चल बसा।

अर्थः—राजा भानु उत्साह पूर्वक भिड़ता हुआ खड्गाघात करने लगा (उस समय वीर) किन्तु विपक्षी (चाहुआन राजा और उसके सामंतों) ने उसके शरीर को आश्रय हीन (उठाने योग्य) कर दिया (तब करुण), उसके कटे हुए सिर को उमापति (शिव) ने

जय जय कार शब्द कर उठा लिया। वह सिर प्रसन्नता पूर्वक शंकर की मुण्ड माला में झूलने लगा। उसके हिलने से शिव के भाल (स्थित चन्द्रमा) से अमृत और कंठ से जहर ढुलक पड़ा जिससे (अमृत के छींटे लगने से) भानु का क्षत विक्षत शरीर (धड़) नृत्य करने लगा और (विष नंदिगण पर पड़ा, इससे) नंदिगण की ओर तले को (विष-पान करने के लिये शिव के गले में लिपटा हुआ) सर्प झपट पड़ा (जिससे अद्भुत),पार्वती भी उस समय (रुधिर पान करती हुई) वीभत्स और भयानक स्वरूप वन गई, एवं रुद्र के मुख पर रौद्र और हास्य दीख पड़ा, उस वीर का अप्सरा के साथ वरण होने में शृंगार रस भासित हुआ, उसी समय राजा भानु के प्राणान्त हो गये (शांत रूप में चल बसा)। इस प्रकार वहाँ पर नव रस भासित होते हुए सुने गये।

दोहा

समभिलाप[1] गंधर्व हुअ, नारद तुंबर[2] गान।
संकर कल किंचित भयौ, चाहुआन अप्रमान[3] ॥ ८ ॥

ग्रा० पा० १, भीं० पा०। २, ३, पा० का० घ०।

शब्दार्थः—समभिलाष=अभिलाषा युक्त, अभिलषित। तुंबर=वाद्य, विशेष। कलकिंचित= किल किंचित हाव, जिसमें भय-प्रसन्नता-प्रेम और क्रोध एकही बार हो आता है। अप्रमान=अतुल्य।

अर्थः—इस प्रकार विपक्षी के साथ पृथ्वीराज को युद्ध करते देखकर गंधर्व और नारद तुम्बर द्वारा उसका गुण गान करने लगे और चाहुआन की प्रचण्ड वीरता देख कर शङ्कर को भी पृथ्वीराज के शत्रुओं पर उस समय किलकिंचित (हाव) भय, प्रसन्नता, प्रेम और क्रोध एक साथ ही हो आया।

कवित्त

जित्ति[1] समर भिरि भान, परिय[2] अरि मग्ग अरिट्ठह[3]।
रन मुक्कि न ग्रह गइय, बरत अच्छरि नन दिट्ठह ॥
कहुँ त[4] मंस कहुँ अंस, हंस कहुँ सस्त्र बस्त्र कहँ।
ब्रंह्मथान शिव थान, थान दिक्खिय[5] न जम्म जहँ ॥

दीयौ न अग्गि[6] रबि[7] भेद ननि, तत्व जोति जोतिहि[8] मिल्यौ ।
इह दीख चरित प्रथिराज नैं, कवित एह जुग जुग चल्यौ ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० १,पा० घ० । २,७, भीं० । ३, सं० । ४, घ० । ५, पा० । ६, का०भीं० । ८ पा० का० ।

शब्दार्थः—मग्ग=मग, रास्ता । अरिट्ठह=अरिष्ट । मुक्कि=छोड़कर । बरत=वरण करते हुए, विवाह करते हुए । दिट्ठह=देखा गया । हंस=प्राण पखेरु । जम्म=यमराज । दीयो न अग्गि=आग नहीं दी, अग्नि संस्कार नहीं हुआ । ननि=नहीं । कवित=यश काव्य, यश गान ।

अर्थः—यद्यपि पृथ्वीराज की विजय हुई किन्तु भोटी राज युद्ध लड़कर विपत्तियों (पृथ्वीराज के साथियों) की राह में अरिष्ट बनकर ही धराशायी हुआ । वह युद्ध को छोड़कर घर नहीं लौटा । उसे अप्सरा के साथ विवाह करते हुए भी किसी ने नहीं देखा । उसके मांस-भाग, प्राण-पक्षी तथा शस्त्र और वस्त्र आदि का कहीं पता नहीं लगा । उसकी आत्मा ने ब्रह्म-स्थान और शिव-स्थान को देखा; किन्तु वह यम-स्थान को नहीं देख सकी । उसके शरीर का अग्नि संस्कार न हो सका और न वह रवि-मण्डल को ही भेद पाया । उसकी तत्व पूर्ण ज्योति ज्योति में निहित हो गई । यह अपूर्व घटना देखकर पृथ्वीराज भी कह उठा कि इस भोटीराज का यश-गान युगों तक होता रहेगा ।

इह परंत चहुआन, मोख लभ्यौ सु रत्थ[1] रबि ।
दिन पूरन पुनि भयौ, मिटे झंकुरन भान छबि ॥
हरह भग्गि उतकंठ, भग्गि मन्नौ रथरंभति[2] ।
चतुरानन भगि चेत, टारि रथ मग्ग सुरंगति[3] ॥
झल हलत नीर काइर मुखन, प्रलय सुभर रन रत्त रह ।
दिनपति पतन्न सह पतन तन[4], भान भान-भेदन्न[5] तह ॥ १० ॥

ग्रा० पा० १, पा० भीं० । २, भीं । ३, ४, ५, पा० ।

शब्दार्थः—इह परंत=उस भोटी राजा के धराशाई होने पर । मोख=मोक्ष । लभ्यो=प्राप्त किया । रत्थ-रवि=रवि-रथ । दिन पूरन=दिनास्त । झंकुरन=सघन वृक्ष । भान=भानु, सूर्य । हरह=शिवकी । भग्गि=भंग हो गई । उतकंठ=अभिलाष । मन्नोरथ=मनोरथ । रंभति=रंभाका । भगि चेत=चेतना संग

होगई (समाधिस्थ हो गये)। रथमग्ग=रथाङ्ग, चक्रवाक। सुरंगति=रंगत, विनोद, क्रीड़ा। नीर=नूर, कांति। रन-रत्तरह=युद्धरत। सह=साथ। भान=भोटी भान्। भान-भेदन्न=सूर्य मण्डल को भेद दिया।

अर्थः—भोटी राज के धराशायी होने पर चौहान ने रवि रथ को मोक्ष प्राप्त करते हुए [छिपते हुए] देखा। दिनास्त होगया और सूर्य तथा सघन वृक्षों की शोभा समाप्त होगई। शंकर की (मुण्ड प्राप्ति की) अभिलाषा, रंभा का मनोरथ, ब्रह्मा की चेतना और चक्रवाक दम्पति का विनोद भंग होगया। कायरों के मुखपर पुनः कांति दिखाई देने लगी, किन्तु युद्ध रत योद्धा प्रलय स्वरूप बने रहे। सूर्य के पतन के साथ (सूर्यास्त के साथ) राजा भानु के शरीर का भी पतन (नाश) होगया, और वह भानु-मण्डल को भेदकर ऊर्ध्व लोक में जा बसा।

तब कंगुर पाल्हंन, चित्त चिंता उप्पन्नी।
सुनि भोटी भर मरन, सरन कोइ सुद्धि न मन्नी ॥
निसि अंतर करि ध्यान, मात कंगुर आराधी।
सो आई नृप सुपन, कहै सुनि बात अगाधी ॥
मो भति[1] अनेक जानै न को, मो सेवा को परि लहै।
भावी विगत्ति हों प्रकृति हों, तो प्रधान भूंठह कहैं ॥ ११ ॥

[1] ग्रा० पा० १, पा० भीं।

शब्दार्थः—उप्पन्नी=पैदा हुई। सुद्धि न मन्नी=स्मृति में न आया, नहीं दिखाई दिया। अगाधी=अगाध। मो भति=मुझे। को परि लहै=कौन कर सके। भावी विगत्ति=भविष्य में मेरी गति, भविष्य को कहने वाली हूं। तो-प्रधान=तब ही तो प्रधान हों, तब ही तो प्रकृति को प्रधान कहते हैं। भूंठह-कहैं=क्या यह कहना झूठ है।

अर्थः—जब ऐसी स्थिति हुई तो भोटी राज के साथी वीर पल्हन कांगुरे के चित्त में चिंता उत्पन्न हुई। भोटी राज की मृत्यु सुन कर उसको किसी शरण दायक की याद नहीं आई और न कोई दिखाई दिया; तब उसने रात्रि में ध्यान कर देवी कांगुरा की आराधना की देवी राजा के स्वप्न में आई और उसने कहा कि मेरी सम्पूर्ण बात सुन मुझे अनेक पुरुष नहीं जान पाये। ऐसा कौन है जो मेरी सेवा कर सके ? मैं

भविष्य को सूचित करने वाली प्रकृति देवी हूं। इसीलिये मुझे प्रकृति प्रधान कहते हैं, क्या मेरे लिये यह कहा जाना असत्य है ?

सो सुपनंतर राज, नैन दिट्ठौ सु कह्यौ रचि।
बर बंसी सिसपाल[1], पल्ह आयौ सु सेन सचि॥
लक्ख इक्क[2] असवार, लक्ख इक[3] पाइल भारी।
अप्प सेन उप्परैं, जुगं जुग कहि[4] उच्चारी॥
घरि अद्ध अद्ध अप सेन मुरि, पच्छि उररि दुज्जन परिय।
चढि गयौ बीर प्रव्वत[5] गुहा, सामंतां कुंडल फिरिय॥ १२॥

ग्रा० पा० १, ५, पा० का० घ०। २ से ४ पा०।

शब्दार्थ:—सो=वही, देवी। सुपनंतर=स्वप्न में आई)। नैन दिट्ठौ=रात्रि में स्वप्न में जो देखा। सिसुपाल=शिशुपाल। सचि=संचय करके, एकत्रित करके। पाइल=पैदल। अप्प=अपनी। उप्परैं=उठावें, उकसावें। कहि=कही जायगी, कहेंगे। उच्चारि=उच्चारण करने वाले, कवि। उररि=उलट पड़ा। दुज्जन=दुर्जन, शत्रू। प्रव्वत=पर्वत। गुहा=गुफा। कुंडल-फिरिय=कुंडलाकृति होगये, घेर लिया।

अर्थ:— उस देवी ने पृथ्वीराज को भी स्वप्न दिया, राजा ने विस्तार पूर्वक स्वप्न के सम्बन्ध में सब कहा–कि शिशुपाल का वंशज पल्हन, सेना एकत्रित कर आया है। एक लाख सवार और एक लाख पैदल उसके साथ हैं। अतः अपनी सेना भी तय्यार होनी चाहिये। जिससे युगों तक इसकी ख्याति का कथन कवियों द्वारा किया जाता रहे। मैंने स्वप्न में देखा कि अपनी आधी सेना आधी घड़ी तक मुड़ गई और पीछे से शत्रु झपट पड़ा, फिर वह वीर पर्वतीय गुफा में चढ़ गया और अपने सामन्तों ने उसे घेर लिया।

बर रघुबंस प्रधान, राज मंड्यौ विच्चारिय।
बोलि वीर हम्मीर, भेद जानै धर सारिय॥
बाट घाट बन जूह, धरा पद्धर नद घाटह[1]।
अब्ब जान त्रिमान, कोन पद्धर बन बाटह[2]॥
अगिवान[3] देहु नारिन्न[4] बर, कछुक मंत जंपौ सु तुम।
जालंधराज जंबू[5] धनी, स्वामि ध्रम्म-मंडहित-हम॥ १३॥

ग्रा० पा० १, २ भीं०। ३, ५ पा०। ४, घ०।

शब्दार्थः–मंड्यौ=स्थापित किया, नियुक्त किया। बिचारिय=सोचसमझ कर। बाट=रास्ता। घाट=नाके। बनजूह=वन समूह, सघन–वन। पद्धर=समतल। नद-घाट=सरिता के करारे। श्रव्व=सब। निमान=निर्माण, रचना। पद्धर=सीधे। अगिवान=अग्रगण्य। नारिन्न=नारेनराय, नाम विशेष। मंत=मंत्रणा। स्वामि भ्रम्म-मंडहित-हम=हमारा स्वामी (धर्म धारण करके, हमारे विश्वास पात्र होकर।

अर्थः – यह कहकर और कुछ सोच विचार कर, रघुवंशी प्रतिहारों के प्रमुख वीर हम्मीर को बुलाकर कांगुरा आदि प्रदेश पर उसे स्थापित किया जो उस प्रदेश के रास्तों, सघन जंगलों, समतल जमीन और सरिता को करारों आदि की रचना और भेद को जानने वाला था। उसे स्थापित करने के बाद राजा ने कहा. हे जालंधर के राजा जम्बूपति ? तुम्हारा अग्रगण्य वीर श्रेष्ठ नारेन को बनाता हूँ। अतः हमारे विश्वास पात्र बन कर इसको कुछ नेक सलाह देते रहना।

सुनि हाहुलि हम्मीर, हथ्थ जोरे नृप अग्गैं[1]।
सकल भुम्मि[2] को भेद, राज जानै ए भग्गैं[3]॥
अति सु बिकट वन जूह, चढै संग्राम न होई।
अश्व पाय गज पाइ, चढन किहि ठौर न कोई॥
बन बिकट जूह प्रब्बत[4] गुहा, बर बेंहर[5] त्रंकम[6] विखम।
दारुन्न भयानक अति सरल, बर प्रस्तर नहिं जल सुखम॥ १४॥

ग्रा० पा० १, ३, पा० घ० । २, ५, ६, पा० । ४, पा० का० घ० ।

शब्दार्थः–ए-भग्गैं=यह दुर्ग तोड़ा जा सकता है। पाइ=पैर। चढ़न किहि=चढ़ने की, चलने की। ठौर=स्थान। बेंहर=बीहड़। प्रस्तर=फैला हुआ। सुखम=सूक्ष्म, कम।

अर्थः—यह सुनकर वीर हालुलिराय-हम्मीर ने राजा के सामने हाथ जोड़ कर निवेदन किया, हे राजन् ! इस भू भाग का सारा भेद जानने से ही यह (दुर्ग) तोड़ा जा सकता है। यहाँ के जंगल विकट हैं। चढ़ाई करने से युद्ध में सफलता नहीं मिल सकती। घोड़ों और हाथियों के चलने के लिये यहाँ स्थान नहीं है, यह विकट वन-समूह कई पर्वत और गुफाओं के कारण बीहड़, विषम तथा बड़ा ही दारुण एवं भयानक है। कहीं कहीं सुगम भी है। यह चारों ओर फैला हुआ है यहां जल की कोई कमी नहीं है।

तब लगि पान सु पान, हथ्थ नारेन मंड़ि लिय ।
नमि चरननि कर-वाहि[१], रोस आरोहि अंखि बिय ॥
ताजी तुंग सु अथ्थि, जेन रुक्के बर विय करि ।
तीनवार[२] कुटवार, संग दिन्नौ[३] नरिंद बरि ॥
बारंग—वीर बज्जर विहर[४], निध[५] निसान बज्जे सुभर ।
ने पुरह अप्प बरनी बरा, सु ज्सु मुकट[६] प्रथिराज बर ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १ से ५ पा० । ६ पा०, का०, घ० ।

शब्दार्थः—पान=ताम्बूल । सु पान=पृथ्वीराज के हाथों से । मंडि लिय=ले लिया । कर-वाहि=हाथ पसार कर, हाथों से स्पर्श करके । आरोहि=छागया । अंखि बिय=दोनों नेत्रों में । तुंग=उरंग । अथ्थि=वहीं पर । जेन=उन्होंने । रुक्के=छोड़ दिये । बर=बल । बिय=दोनों । तीनवार=उस समय । कुटवार=कोतवाल, नगर । बरि=वर, श्रेष्ठ । वारंग-वीर=वीरंग वीर, श्रेष्ठ वीर । बज्जर विहर= वज्र तुल्य चल पड़े । निध=नाँधे गये, देखे गये, सुने गये । ने=उन्होंने । पुरह=कांगुरे की नगरी । अप्प=स्वयं । बरनी=दुलहन । बरा=वरण की ।

अर्थः—हम्मीर यह निवेदन कर रहा था, तभी वीर नारेन ने पृथ्वीराज के हाथ से बीड़ा अपने हाथ में उठा लिया और राजा के चरणों को झुककर स्पर्श किया। उस समय उसके नैत्रों में रोष बढ़ता हुआ दिखाई दिया। ताजी जाति के ऊँचे घोड़ों को दोनों ने (हम्मीर और नारेन ने) वहीं छोड़कर बल प्रदर्शित किया। उस समय श्रेष्ठ राजा पृथ्वीराज ने उनके साथ अपने नगर रक्षक को भी कर दिया। वे वीर श्रेष्ठ वज्रपात के समान चले, जिससे नक्कारे बजते हुए सुनाई पड़े। उन्होंने कांगुरे की नगरी रूपी दुलहन का वरण (विजय प्राप्त) कर यश का श्रेष्ठ मुकुट पृथ्वीराज के सिर पर सुशोभित कर दिया।

बर-भरियं बर अप्प, लियो फुरमान नरिन्दं ।
लाज राज बिंटयौ, जानि पारस बिचि[१] चंदं ॥
सीय[२] काज श्रीराम, सुबल[३] हनमंतह तैसै ।
स्वामि काज सामंत, बियौ धर सम्भव जैसे ॥
जस तिलक हथ्थ चहुआन कै[४], दुज्जन दल जित्तन चल्यौ ।
रविवार सुरंग सु सत्त में, गुन प्रमान ंबुअ खुल्यौ ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १ से ४, पा० ।

शब्दार्थः—बर भरियं=बल से भरपूर हो गये, जोश में आगये। लियौं=प्राप्त करके, पाते ही। बिंच्यौ=बींट लिया, रक्षा की। जानि=मानों। पारस=घेरे, कुंडल। बिचि=बीच में। सुबल=सबल, बलवान। हनमंतह=हनुमान। बियौं=दूसरा ही। मभ्भझब=मझेला, लक्ष्मण। कै=करने को, करके। सुरंग=सुन्दर, श्रेष्ठ। सत्तमें=सप्तमी। गुन-प्रमान=गुण तुल्य, यथा नाम तथा गुणा। जंबुअ= जंबू द्वीप। खुल्यौ=सुशोभित हुआ, भासित हुआ।

अर्थः—पृथ्वीराज का फरमान पाते ही वे (नारेन और हम्मीर) जोश में आगये। उनके द्वारा राजा की लज्जा (यश) इस प्रकार रक्षित हुई, जैसे कुंडल में सुरक्षित चन्द्रमाँ हो। उनमें से एक रामचन्द्र के कार्य को सफल करने और सीता को खोज लेने वाले बलवान हनुमान जैसा और दूसरा अपने स्वामी (बड़े भाई रामचन्द्र) के कार्य के लिये मझेले भाई (लक्ष्मण) सा था। उस समय वीर हम्मीर अग्रणी होकर शत्रुदल को जीतने और पृथ्वीराज के सिर पर अपने हाथ से यश का तिलक करने के लिये श्रेष्ठ रविवार सप्तमी के दिन चल पड़ा। जम्बूपति अपने शौर्य-गुण से जम्बू द्वीप के समान ही मालूम हुआ।

दोहा

हाँ कहतैं ढीलन करी, हल्ल करी[1] अरि मत्थ।
ताथैं बिरद हमीर को, हाहुलिराव सु कत्थ ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १ भीं।

शब्दार्थः—हल्ल करी=हमला किया। अरि मत्थ=शत्रु पर। ताथैं=इसीलिये,। कत्थ=कहा। सुशोभित किया।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज के मुख से आक्रमण करने के लिये "हाँ" कहते ही हम्मीर ने शत्रु पर हमला कर दिया। इसीलिये राजा ने उसे हाहुलिराय के विरद (उपाधि) से सुशोभित किया।

चढि चल्लै बंदे[1] सुकन, भागह जे प्रिथिराज[2]।
बर प्रब्बतवै देस सधि, वीर बजी रनबाज ॥ १८ ॥

प्रा० पा० १ सर्वप्रति। २ पा०।

शब्दार्थः—सुकन=शकुन। भागह=भाग्य से। जे=वे। प्रिथिराज=पृथ्वीराज। प्रब्बत वै=पहाड़ी। सधि=साध कर, साधन करके। बज्जे=बजवाये। रन-बाज=रण वाद्य।

अर्थः—पृथ्वीराज के सौभाग्य से अच्छे शकुन लेते हुए वे वीर चले और उन्होंने उस पहाड़ी प्रदेश पर युद्ध का साधन कर रणवाद्य बजवाये।

बंस दुजन घर गाहि फिरि, तब लगि दुजति सपन्न।
इकल्लै[1] रघुवंस ने, लैं[2] गढ़ सबर प्रपन्न ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १, २, पा०

शब्दार्थः—बंस=वंश, कुटुम्ब। दुजन=दुर्जन, शत्रु। गाहि=कुचल कर। फिरि=फिर या लौटा। तब लगि=तबतक। दुजति=द्विज, पुरोहित, गुरुराम। सपन्न=आ पहुंचा। इकल्लै=अकेले। रघु-बंस=रघुवंशी हम्मीर प्रतिहार। लैं-गढ=गढ़ पर अधिकार करके।

अर्थः—अकेले बलवान वीर रघुवंशी हम्मीर प्रतिहार ने शत्रु के कुटुम्ब और घर को कुचल कर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इतने में पृथ्वीराज का भेजा हुआ गुरुराम पुरोहित कांगुरे दुर्ग पर उसे स्थापित करने के लिये उसके पास आ पहुँचा।

कवित्त

सवै सूर सामन्त, पल्लह बंध्यौ गढ़ लिन्नौ।
थप्प्यौ राम नरिंद, हथ्थ फरमान सु दिन्नौ ॥
तुम रहयौ इन थान,[1] जाइ कंगूर सँपत्तौ।
मिलौ जाइ प्रथिराज, राज संमहो प्रपत्तौ[1] ॥
आनंद फतै तप तुभ्भ बल, धन समूह आइय-सु-धर।
सुभ्भर सु घाइ तेरह परे, विय दाहिम्म नरिंद बर ॥ २० ॥

ग्रा. पा. १, पा.।

शब्दार्थः—थप्प्यौ=स्थापित किया। राम=गुरुराम पुरोहित। नरिन्द=राजा के रूप में। हथ्थ=हाथ में। फुरमान=फरमान, परवाना, सनद। जाइ=जा। कंगूर=कांगुरे पर। सँपत्तौ=पहुंचा। मिलौ=मिला। राज=राजा पृथ्वीराज। संमहौ–प्रपत्तौ=सामने गया, अगवानी की। तुभ्भ=तुझे, तेरे। धन समूह=धन्य है सामन्त समूह को। आइय-सु-धर=भूभाग अधिकार में आगया। घाइ=घायल होकर। बिय=दो।

अर्थः—तमाम वीर सामंतों ने पल्लहन को बांध कर उसके दुर्ग पर अधिकार कर लिया। पश्चात् राजा पृथ्वीराज के भेजे हुए गुरुराम पुरोहित ने हम्मीर को वहाँ का

(कांगुरे का) राजा नियुक्त किया और पृथ्वीराज का भेजा हुआ फरमान (सनँद) भी उसके हाथ में देदिया और कहा-इस स्थान पर तुम्हीं रहो तब वह (हम्मीर) कांगुरे दुर्ग पर गया और बाद में पृथ्वीराज से आकर मिला। राजा (पृथ्वीराज) ने उसकी अगवानी की और कहा, हे वीर हम्मीर! तेरे तपोबल से ही यह विजय का उत्सव मनाया गया है। यद्यपि इस युद्ध में तेरह वीर और दो दाहिमे नरेश घायल हो-कर रण क्षेत्रमें रहे फिर भी धन्य है उस सामंत-समूह को जिसने इस भूभाग को मेरे अधिकार में कर दिया।

सबै भुम्मि[1] अरि गाहि, आन फेरी चहुआनं।
पर्यौ भान रघुवंस, बीर बंचै फुरमानं॥
पाल्हन वास नरिंद, राज रख्यौ तिन थानं।
बर बंध्यौ अरि साहि, खून कढ्यौ परवानं॥
बर बरनि वीर प्रिथिराज[2] बर, बर रघुवंस बुलाइयौ।
दिन देव दसमि बर भोम[3] बर, त दिन सुरंगन पाइयौ॥ २१॥

ग्रा० पा० १ से ३ पा०।

शब्दार्थः—भुम्मि=पृथ्वी, भू भाग। गाहि=कुचलकर। आन=दुहाई। फेरी=फेर दी। पर्यौ-भान=भोटी भान धराशाई हुआ (मारा गया)। रघुवंस=रघुवंशी हम्मीर प्रतिहार। पाल्हन वास=पाल्हन को उसी के पास पाल्हन नामक स्थान पर (आज भी पालम घाटी कांगुरे के पास है वहां पर)। रक्खौ=रक्खा, नियुक्त किया। बर-बंध्यौ=बल बढ़ा, बल में वृद्धि हुई। अरि-साहि=शत्रु बादशाह के। खून=बदला। कढ्यौ=लिया। परवानं=प्रमाना गया, माना गया। बरनि=दुलहन। तदिन=उस दिन। सुरंगन=श्रेष्ठ रंगीली दुलहन। पाइयौ=प्राप्त की।

अर्थः—शत्रु के सारे भू भाग को अधिकृत कर चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) की दुहाई फेर दी गई। रघुवंशी हम्मीर प्रतिहार ने राजा का फरमान पढ़ कर सबको सुनाया, जिसमें लिखा था कि भोटी भान मार दिया गया है और पल्हन को पाल्हम नामक स्थान पर सोच समझकर नियुक्त किया जाता है। यह सब इसलिये किया गया कि हमारे शत्रु बादशाह (गौरी) के बल में इन्हीं के कारण से वृद्धि होती रही है और उसी का यह बदला लिया गया है। उसके पश्चात् दुलहन (हम्मीर की पुत्री) को वरण करने के लिये रघुवंशी हम्मीर प्रतिहार ने प्रथ्वीराज को निमंत्रित

किया और देव दशमी के दिन जब वर पक्ष में श्रेष्ठ मंगल गृह था। तब उसने (पृथ्वीराज ने) सुन्दर दुलहन को प्राप्त किया (उससे शादी की)।

दोहा

परनि बीर प्रथिराज बर, बर सुन्दरी सु लच्छि[1]।
देव व्याह दुज्जन-दवन, दिन पद्धरौ सु अच्छि[2] ॥ २२ ॥

ग्रा० पा० १, २ सर्वप्रति।

शब्दार्थ:—परनि=वरण की। सु=वह, जो। लच्छि=लक्ष्मी। देव व्याह=देव विधि से विवाह। दुज्जन-दवन=शत्रु का दमन, नाश। पद्धरौ=अच्छा। सु=वह, उस। अच्छि=यक्ष।

अर्थ:—वीर श्रेष्ठ पृथ्वीराज ने लक्ष्मी तुल्य श्रेष्ठ सुन्दरी (हम्मीर पुत्री) से वरण किया। यक्ष तुल्य उस राजा के वे अच्छे दिन थे जिसका विवाह शत्रु-नाश के साथ साथ देव विधि से हुआ।

कवित्त

दिक्खिन[1] वृत्त सु नाभ, तुंग नासा गज गमनी।
सासनि — गंध सरोज[2], कुटिल केसं रति रमनी[3] ॥
बर जंघन मृदु पथु[4] सुरंग[5] कुरँग लज्जै छबि हीनं।
इह उप्पम[6] कवि चंद, हथ्थ करतार सु कीनं ॥
बर बरनि वीर प्रिथिराज[7] बर, घन निसान बज्जै सु बर।
जंबूअराव हम्मीर नैं, ध्रुम्म काज दिन्नौ — सु — कर ॥ २३ ॥

ग्रा० पा० १ टि० २।३ से ८ पा०।

शब्दार्थ:—दिक्खिन वृत्त=दक्षिण वृत्त (दक्षिण की ओर चक्कर खाती हुई)। तुंग=उत्तंग, उठी हुई। सासनि-गंध=सुवास, सुगंध, मुख वास। सरोज=कमल। कुटिल-केसं=गुच्छेदार केशपाश। रमनी=रमणी। मृदु=मृदुल, कोमल। पथु=पृथुल, स्थूल। सु-रंग=उसका अङ्ग रङ्ग। कुरंग=हिरण, कंचन मृग। ध्रुम्म काज=धर्म कार्य। दिन्नौ-सु-कर=हाथ दिया, हाथ बढ़ाया।

अर्थ:—जिस रति तुल्य रमणी (हम्मीर-पुत्री) की नाभि दक्षिणावृत्त, (दक्षिण को चक्कर खाती हुई), उठी हुई नासिका (उत्तुंग), गज सी चाल, कमल तुल्य स्वासागंध (मुखवास), गुच्छेदार केशपाश, स्थूल और मृदुल जंघाएँ, कंचन मृग को लज्जित और छबि क्षीण करने जैसा उसका अङ्ग रङ्ग था। कवि (चन्द) उस पर तुलना करते हुए कहता है कि सृजन कर्ता ने उसका निर्माण स्वयं अपने

हाथों से किया है। ऐसी उस श्रेष्ठ दुलहन को वीर पृथ्वीराज ने विशेष नक्कारे बजवाकर व्याही और जम्बूपति हम्मीर ने कुमारी का विवाह पृथ्वीराज के साथ करके इस धर्म कार्य में अपना हाथ बढ़ाया (उदारता प्रदर्शित की)।

बर बरनी दै हथ्थ, गुंट अप्पै जु इक्क[1] सौ ।
चौंर मृगम्मद मधुर, व्रम्म सु संत दीन[2] सौ ॥
अट्ठ सुरँग गजराज, बाज पाजी[3] सौ दासी ।
बर लच्छी चतुरंग, चन्द पिक्खिय सो भासी ॥
ढिल्लीव नाथ ढिल्ली दिसा, अरिन जित्ति[4] बर परनि कैं[5] ।
संजीव काम बेलिय[6] सु ढिंग, बर निसान बर वरनि कें[7] ॥ २४ ॥

ग्रा० पा० १ पा० । २, ६ सर्वप्रति । ३ पा० का० । ४ पा० भों० घ० । ५, ७ घ० ।

शब्दार्थः—दै हथ्थ=हाथ में दे। गुंट=गुंठा, ठिंगना (छोटी कद) पहाड़ी टट्टू। मधुर=मधुर-सौरभ मय। व्रम्म=चर्म, त्वचा। सुसंत=सौंसे की (जिसकी ढालें सुन्दर और मजबूत होती हैं)। दीन=दी। सुरंग=सुन्दर। बाज-पाजी=बाजी, घोड़े जुतने वाले रथ, अश्वरथ। चतुरंग=चार प्रकार की। पिक्खिय=देखी। सो-भासी=वही कही, वही कहता हूं। संजीव=संजीवनी। ढिँग=पास, साथ। निसान=झंडे, पताका। वर-वरनि कैं=विविध वर्ण की श्रेष्ठ।

अर्थः—कवि (चंद) कहता है—कि मैं आँखों देखी बात कहता हूं—कि हम्मीर ने श्रेष्ठ दुलहन का हाथ पृथ्वीराज के हाथ में देते समय राजा को एक सौ पहाड़ी छोटी कद के (ठैंगने) घोड़े, चामर, मधुर सौरभमय कस्तूरी, सौंसे की एक सौ त्वचायें, आठ सुन्दर हाथी, अश्व-रथ और एक सौ दासियें एवं चार प्रकार की लक्ष्मी समर्पित की। इस प्रकार शत्रुओं पर विजय प्राप्तकर श्रेष्ठ दुलहन से विवाह कर संजीवनी या काम-लता के समान कुमारी (हम्मीर पुत्री) के सहित दिल्लीश्वर ने विविध वर्ण की श्रेष्ठ पताकायें फहराते हुए दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

दोहा

आयौ नृप ढिल्ली पुरह, बर वज्जै त्रिघोष ।
डोला पंच नरिंद सँग, मधि सुन्दरी अदोष ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—नृप ढिल्ली=दिल्लीश्वर। पुरह=दिल्ली नगर को। त्रिघोष=निर्घोष, जोरों से। डोला=पालकियां। मधि=में। अदोष=अदूषित, अविवाहित।

अर्थः—रानी हम्मीरनी (हम्मीर पुत्री) की पालकी के साथ उसकी पांच अविवाहित सहेलियों की डोलियों के साथ दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) दिल्ली पहुँचा और जोरों से नक्कारे बजने लगे।

* समाप्त *

नरसिंह ५९४ ५९२

अक्रूराग ५९८ 497 ५९५ ५९६

